सिन्ध की त्रिवेणी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

5753

सामी

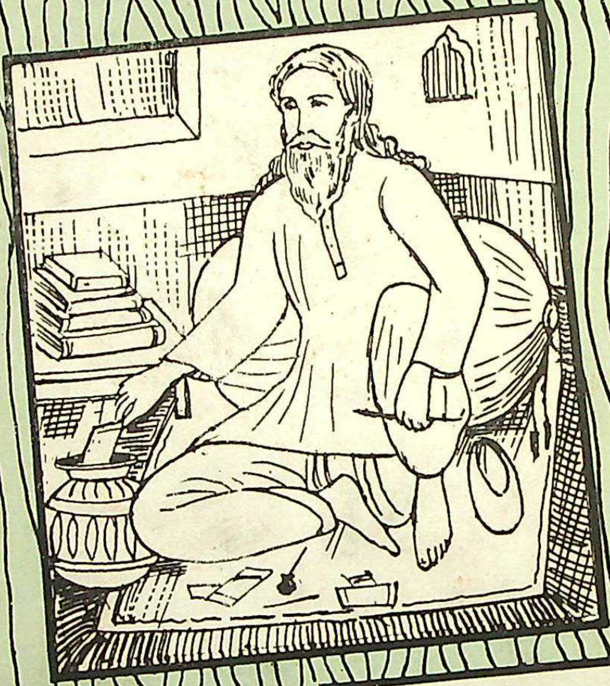

सचल

शाह

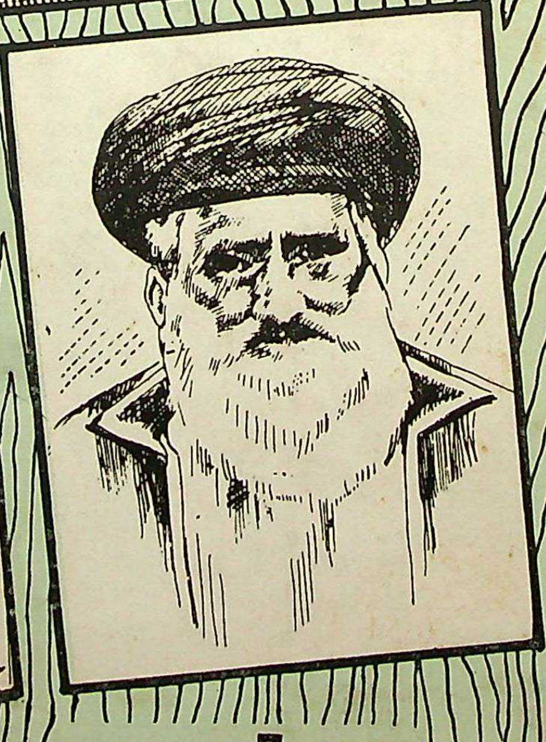

भुवन वाणी ट्रस्ट
लखनऊ-3

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिन्धी

सिन्ध की त्रिवेणी

(सामी, शाह, सचल)

अनुवाद एवं लिप्यन्तरण

कुमारी पुष्पा टी० आसवाणी

एम० ए०, साहित्यरत्न

प्रकाशक

भुवन वाणी ट्रस्ट

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड़, लखनऊ-२२६००३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रथम संस्करण—

१९७८–७९ ई०

पृष्ठसंख्या— $\frac{१८ \times २२}{८}$ =४०८

मूल्य— २०·०० रुपया

राजकीय संग्रहालय
क्रमसंख्या 5753
प्राप्ति तिथि ....
विभाग ....
श्रेणी ....
STATE MUSEUM, LUCKNOW.

मुद्रक —

वाणी प्रेस

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियां रोड, लखनऊ–२२६००३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समर्पण

सिंध की त्रिवेणी देवनागरी

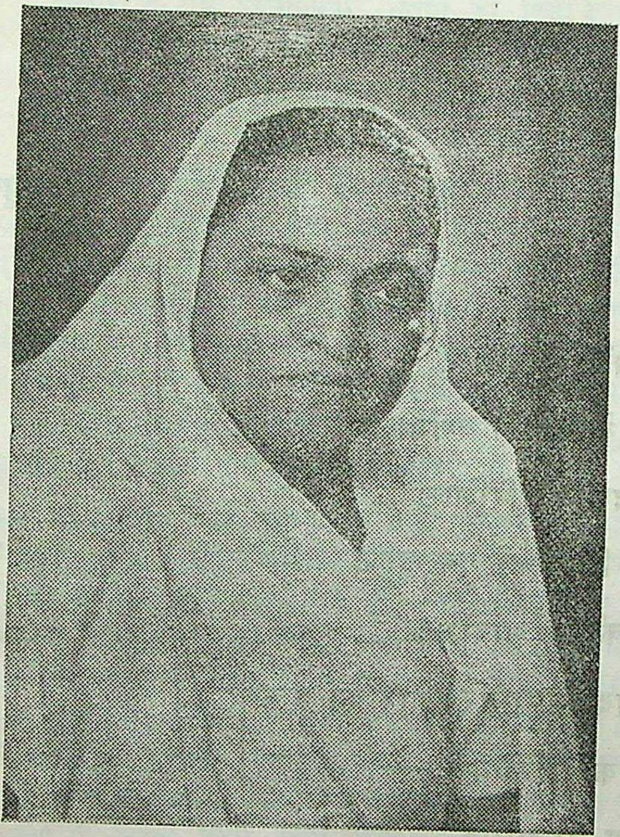

लिपि में सामी शाह सचल

स्व० श्रीमती भोदीबाई ठाकुरदास आसवाणी

माँ,

हम सबका लालन-पालन करते हुए आपने हमारे मन को सुसंस्कृत तथा सदभिरुचि-सम्पन्न बनाने के लिए आजीवन अथक् परिश्रम किये। मुझमें जो अल्प-सी साहित्य सम्बन्धी रुचि है, वह आप ही के प्रोत्साहन का फल है। इस अनुवाद-कार्य का श्रीगणेश आपकी उपस्थिति में हो गया; आपके आशीर्वाद से यह अब पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहा है।

हमारा दुर्भाग्य है, आप इसे इस रूप में देखने के लिए हम लोगों के बीच आज उपस्थित नहीं हैं।

आपकी पावन स्मृति को यह अल्प-सी अनुवादित कृति श्रद्धा-पूर्वक समर्पित है।

नागरी में लिप्यन्तरित मूल सिंधी छन्द, जिनके द्वारा विरचित हैं, वे उन्हीं महान् सन्तों को समर्पित हैं। (कु० पुष्पा टी० आसवाणी)

'ईश कृपा' प्लाट नं० ६१७, १४वाँ रास्ता, खार, बंबई-५२

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

विषय	पृष्ठसंख्या
समर्पण	३
प्रकाशकीय परिशिष्ट	५-७
सिन्धी देवनागरी वर्णमाला चार्ट	८
अनुवादकीय परिशिष्ट	९-१२
सिन्धी लिपि पर एक दृष्टि	१३-१६
प्रकाशकीय (आरंभिक)	१७
सानुवाद लिप्यन्तरणकार का वक्तव्य	१९
सामी का परिचय	२०
सामीअ जा सलोक	२३
शाह जो रसालो—शाह अब्दुल् लतीफ़ का परिचय और काव्य	२४५
सचल सरमस्त—उनका परिचय और काव्य	३४९-४०६
देवनागरी अक्षयवट	४०७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशकीय परिशिष्ट

आज़ादी के बाद 'जलावतनी' सिन्धी को मिला इनाम।
धाम-धाम में सजी भारती-भाषाओं को किया प्रणाम॥

उठी कसक, जब मिला न निज को पृथक्, देश में कहीं मुकाम।
पहन नागरी-पट, संन्यासिन ने चुन लिया विश्व को धाम॥

भारतीय भाषाओं में सिन्धी ही एक ऐसी भाषा है, जिसका स्वतंत्रता-प्राप्ति और भारत-विभाजन के बाद, देश में अपना कोई निजी क्षेत्र नहीं है। इसके बरअक्स, सिन्धी समुदाय, अपनी मातृभूमि (सिन्धु-प्रदेश) से निर्वासित होने के बाद, सारे देश में तितर-बितर हुआ अपनी रोज़ी की समस्या में लगा। राष्ट्रभाषा हिन्दी के चक्रवर्तित्व के उन्माद में ग्रस्त चाहे वे हिन्दीभाषी हों, अथवा वाजिब और ग़ैरवाजिब भावनाओं से त्रस्त विभिन्न अञ्चलीय भाषाओं के हामी; सबको सिन्धीभाषी बन्धुओं के धैर्य और भाषा के संदर्भ में उनकी राष्ट्रीय उदात्त भावना से नसीहत लेना चाहिये।

सन् १९४७ ई० से, मैं नागरी लिपि के माध्यम से भाषाई सेतुकरण के काम में संलग्न हूँ। सभी लिपियाँ और भाषाएँ अपने निजी रूप में अपने अञ्चलों में फूलती-फलती रहें; साथ ही उनका सत्साहित्य नागरी कलेवर में समस्त देश को उपलब्ध हो जाय; वह समस्त मानव जगत्, और कम से कम भारतीय जगत् की सम्पत्ति बन जाय; यह उद्देश्य हमारे कार्यक्षेत्र का स्रोत है। इसी संदर्भ में, मैंने सिन्धु समाज से भी यत्र-तत्र सम्पर्क स्थापित किया। लखनऊ, अजमेर, राजस्थान और दिल्ली में सिन्धी विद्वानों से मिलने का सौभाग्य हुआ। महाराज दाहिर और महाराज चच के पराभूत होने के बाद से सिन्धु प्रदेश प्रायः आक्रान्त ही रहा। कदाचित् यही कारण है कि वहाँ के साहित्य में वेदान्त और सूफ़ी विचारधारा का प्राधान्य है। संकटमय जीवन में आत्मज्ञान ही से शान्ति की उपलब्धि सम्भव है।

पृष्ठ १३-१६ पर उद्धृत एक प्राचीन लेख से प्रकट है कि अरबी लिपि से हज़ारों वर्षों से परचित और अभ्यस्त होने के बावजूद सिन्धी भाषा की लिपि सदैव नागरी-परक रही है। अरबी लिपि तो, ताज़ी बात है, अंग्रेज़ों के शासनकाल में लादी गई। फिर भी, जनता की विस्मृति सहज लक्षण है; मैंने देखा कि अधिकांश सिन्धी भाई और विद्वानों को अरबी जामे की सिन्धी लिपि से अधिक मोह था। उनका सारा साहित्य उसी लिपि में था। उसके विनष्ट होने से वे आशंकित थे। उन्होंने सिन्धी लिपि में अपना साहित्य नवीन भारत में फिर से छापना-सवाँरना आरम्भ किया।

किन्तु इस बुद्धिजीवी समाज के अच्छे खासे वर्ग ने नागरी लिपि की महत्ता और मौजूदा परिवेश में उसको अपनाने की आवश्यकता को समझा। उस वर्ग ने तेज़ी से अपना नया-पुराना साहित्य नागरी लिपि में प्रकाशित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करना आरम्भ किया। और मैं समझता हूँ कि सिन्धी भाषा का देवनागरी लिप्यन्तरण जितना हुआ है, उतना अन्य किसी भारतीय भाषा का नहीं।

सिन्धी भाषा और उसके संत-काव्य के संदर्भ में एक संस्मरण उल्लेखनीय है। ४०-४५ वर्ष पूर्व मुझको कराची जाने के कई अवसर प्राप्त हुए। कराची में 'बगीचे वाले हकीम' नाम से प्रख्यात एक प्रसिद्ध और सम्पन्न हकीम थे। उनके बहुत बड़े मतब में अनगिनत मरीज़ मुफ़्त तक इलाज पाते थे। उनके छोटे भाई हकीम परमानन्द जी (मेरे सुपरिचित) सन्त काव्य के बड़े प्रेमी थे। सिन्ध के अवतारी पुरुष स्वामी प्राणनाथ जी रचित 'क़ुल्ज़ुम शरीफ़' की हस्तलिखित पाण्डुलिपि की उनको खोज थी। वे किसी भी मूल्य पर उसकी प्रतिलिपि करवाना चाहते थे। उनकी जिज्ञासा और अनुरोध पर लखनऊ, पटना आदि नगरों के पुराने नवाबी काल के पुस्तकालयों में मैंने खोज की, किन्तु वह प्राप्त न हो सकी। हकीम परमानन्द जी से अन्तिम साक्षात्, देश-विभाजन के बाद जब उनका सब उजड़ चुका था, कल्याण शरणार्थी शिविर में अति दयनीय दशा में हुआ; शायद वे अब दिवंगत हो चुके हैं।

कुछ साल हुए, नई दिल्ली में सुश्री श्रीमती विमला मेहता से भेंट हुई। इन विदुषी महिला ने भगीरथ श्रम करके सिन्धी के इस पवित्र ग्रन्थ क़ुल्ज़ुम शरीफ़ को कहीं से उपलब्ध कर उसका नागरी लिप्यन्तरण अनेक ऐतिहासिक टिप्पणियों सहित प्रकाशित किया है। लगभग १६०० वृहत् पृष्ठों का यह ग्रन्थ 'क़ुल्ज़म स्वरूप' के नाम से श्री प्राणनाथ प्रकाशन, १० ए/१२ शक्ति नगर, नई दिल्ली से उपलब्ध है। वहाँ से सिन्धी का और भी साहित्य नागरी लिपि में प्रकाशित हुआ है।

सामी, शाह लतीफ़, सचल सरमस्त—तीन सन्तों का वृत्त विदुषी अनुवादिका ने उनके कलाम आरम्भ होने से पूर्व दिया है। वेदान्त की इस्लामी धारा को ही तसव्वुफ़ कहते हैं। संसार के त्रिविध तापों से विकल होकर मानव, माया के बन्धन से छुटकारा पाने के लिए छटपटाता है; और तब अध्यात्मवाद में उसको शरण मिलती है। इस विचारधारा से संसार का कोई धर्म बचा नहीं है। इस्लाम में 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस कथन की गुन्जाइश नहीं है। ब्रह्म में किसी भी हस्ती का साझा, समन्वय अग्राह्य है। ब्रह्मवाद में समाहित सूफ़ी सन्तों को भी प्रेम अथवा भक्ति के द्वारा अल्लाह से सान्निध्य, सामीप्य ही मानकर अपनी आध्यात्मिक पिपासा को शान्त रखना पड़ा है। यह वेदान्त का द्वैतवाद (शुहूदी मार्ग) है। पूर्ण अद्वैत (वुजूदी मार्ग) पर चलने का दुःसाहस करनेवाले मस्त दरवेशों को प्राण तक की जोखिमें उठानी पड़ी हैं। फलस्वरूप मुस्लिम सन्तों के पूर्ण अद्वैत में लीन होते हुए भी उनकी वाणी में भक्त-भजनीय अथवा प्रेमी-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रियतम का ही भाव आत्मा और परमात्मा में व्यक्त होता है। 'वुजूदी'— एकमात्र ब्रह्म का वजूद (अस्तित्व)। शेष, प्रकृति और जीव, सब उसी से उत्पन्न, उसी में समा जानेवाले, और अज्ञान की सृष्टि हैं। 'शुहूदी' परब्रह्म से अपनी पृथक् सत्ता मानकर शाहिद (साक्षी) रूप में ब्रह्म को साक्ष्य मानकर अपने को उसमें तल्लीन करता है।

प्रस्तुत पुस्तक में शाह लतीफ़ द्वैतमार्गी और सचल सरमस्त पूर्ण अद्वैत के सूफ़ी सन्त प्रतीत होते हैं। सामी अपने सलोकों में माया के छली बन्धनों को काटकर, सद्गुरु की सहायता से, ब्रह्म में तल्लीनता की ओर रुजू करते हैं। उनकी वाणियों में स्पष्ट श्री गुरुग्रन्थ साहिब का प्रभाव है। हमने 'सामी जा सलोक' रूपी गंगा का आवाहन किया था। सौभाग्य से सामी, शाह, सचल—सिन्ध की त्रिवेणी उपलब्ध हुई।

पुस्तक में पृष्ठ ४ से २२ तक प्रस्तुत सामग्री अवलोकनीय है। उसमें सिन्धी भाषा का इतिहास, पुस्तक-विषय, विदुषी अनुवादिका का परिचय, सिन्धी-नागरी वर्णमाला आदि सामग्री 'सिन्ध की त्रिवेणी' पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त है। ट्रस्ट की विद्वत्परिषद् के वरिष्ठ सदस्य और न्यासी डॉ० गजानन साठे ने इस कार्य का संयोग बनाया था; उनको पूर्ण श्रेय है। ट्रस्ट की विद्वत्परिषद् के सिन्धी सलाहकार श्री एन० के० केवलरामानी जी से भी हम समय-समय पर प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं। इस सत्कार्य के सानुवाद लिप्यन्तरण को वाञ्छनीय ढंग पर सम्पन्न करने का श्रेय कुमारी पुष्पा टी० आसवाणी जी को ही है। उन्हें साधुवाद और उनके मंगल की हम कामना करते हैं।

आभार प्रदर्शन— ट्रस्ट को, उदार सदाशयों, विद्वानों, एवं उत्तर-प्रदेश शासन से प्राप्त सहायता से बड़ा सहारा मिलता रहा है। अन्य भाषाई ग्रन्थों के साथ, सिन्धी भाषा की 'सामी, शाह, सचल की त्रिवेणी' भी अपनी सहज गति से प्रकाशित होती रहती। सौभाग्य से केन्द्रीय राज्यशिक्षामन्त्री माननीया श्रीमती रेणुकादेवी बरकटकी, भारत सरकार के राजभाषा सलाहकार बहुभाषामर्मज्ञ श्री रमाप्रसन्न नायक और शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय के भाषानिदेशक श्री के० के० सेठी जी की अनुकम्पा हुई। इसके परिणाम-स्वरूप, यह पुस्तक १९७८-७९ ई० में परिपूर्णता को प्राप्त हुई। हम उनके अतिशय अनुग्रहीत हैं। हम विश्वास के साथ निवेदन करते हैं कि भुवन वाणी ट्रस्ट की भाषाई सेतुकरण की विशाल और अद्वितीय योजना उत्तरोत्तर फलवती होकर शासन और जनता को संतुष्ट करती रहेगी।

नन्दकुमार अवस्थी

मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ—३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुवन वाणी ट्रस्ट द्वारा प्रयुक्त

सिन्धी वर्णमाला का देवनागरी रूपान्तर

प्रस्तुत सिन्धी-देवनागरी वर्णमाला चार्ट के सम्बन्ध में कुछ बातें समझना जरूरी हैं। सिन्धी वर्णमाला में समस्त भारतीय भाषाओं की अपेक्षा अधिक अक्षर हैं। देवनागरी लिपि के तथा अ़रबी लिपि के सब अक्षर और पाँच सिन्धी भाषा के निजी अंतःस्फुट (Implosive) अक्षर—इनको मिलाकर सिन्धी लिपि पूर्ण होती है।

अन्तःस्फुट ॻ ॼ ॾ ॿ अक्षरो को अन्तस् की ओर खींच कर उच्चारण करना पड़ता है। अ़रबी लिपि में स़ाद, सीन, से़ तथा ज़े, ज़ाल, ज़ो, ज़ाद आदि के उच्चारणों में अन्तर है और उनसे शब्दों के अर्थ में अन्तर पड़ता है; जैसे ज़िल्लत, ज़िल्लत और ज़िल्लत के अर्थ क्रमशः भूल-चूक, अपमान और भटक जाना है। इसलिए अ़रबी से आये शब्दों को सिन्धी लिपि में—जो अब अ़रबी लिपि में ही लिखी जाती है—अ़रबी के अनुसार ही लिखा जाता है। किन्तु बोलने में इन अक्षरों के उच्चारण में अन्तर मिट गया है; ज़ाल, ज़े, ज़ो, ज़ आदि का उच्चारण, सिन्धी में अब समान है।

सिन्धी (देवनागरी वर्णमाला)				
भ ڀ	प پ	ॿ ٻ	ब ب	अ إ
थ ٿ	स ث	ट ٽ	ठ ٺ	त ت
घ گھ	ङ ڱ	ॻ ڳ	ग گ	ख ک
ड़ ڙ	ज़ ز	र ر	फ ڦ	फ़ ف
ड ڊ	ॾ ڏ	ध ڌ	ज़ ذ	द د
ल ل	व و	श ش	स س	ढ ڍ
ण ڻ	न ن	क़ ق	क ڪ	म م
च چ	ञ ڃ	ॼ ڄ	ज ج	ह़ ح
स़ ص	झ جھ	ह ھ	ख़ خ	छ ڇ
ज़ ظ	त़ ط	ग़ غ	अ़ ع	ज़ ض
		य ي		

☞ इसलिए सिन्धी भाषा के देवनागरी-लिप्यन्तरण में ज़े, ज़ाल, ज़ो, ज़ाद के लिए 'ज़'; सीन से़, स़ाद के लिए 'स'; ते, त़ो के लिए त; छोटी-बड़ी हे और ह़े के लिए 'ह'; अ़ैन और अलिफ़ के लिए 'अ'; फ़े के लिए फ़; ग़ैन के लिए 'ग़'; क़ाफ़ के लिए 'क़'; ख़े के लिए ख़ का प्रयोग किया गया है। किन्तु सिन्धी-देवनागरी लिपि के चार्ट में ज़ाद, ज़ाल, ज़े, ज़ो, सीन से़, स़ाद, ते, त़ो, हे, ह़े, अ़ैन; अलिफ़ या हम्ज़ः आदि के लिए प्रथक् प्रतिनिधि अक्षरों को क़ायम कर दिया गया है। किसी धार्मिक अथवा साहित्यिक ग्रंथ-विशेष के देवनागरी लिप्यन्तरण में इनका प्रयोग करके अर्थ के अनर्थ अथवा विपरीत अर्थ से बचा जा सकता है। नित्य के व्यवहार में इनको पृथक् लिखने की ज़रूरत नहीं। चीनी-जैसी चित्र-लिपियों के अलावा, सिंधी की वर्णाक्षरी कदाचित् विश्व में सब से बड़ी हो!

—नन्दकुमार अवस्थी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुवादकीय परिशिष्ट

सिन्ध के तीन अनमोल कविसन्तों—शाह, सचल, सामी—की रचनाओं के कुछ चुने रत्नों का यह हिन्दी गद्यानुवाद आप के समक्ष पुस्तकाकार प्रस्तुत करते हुए मुझे शब्दातीत प्रसन्नता हो रही है। १९७१ ई० के आरम्भ में मैंने यह अनुवाद-कार्य, भुवनवाणी ट्रस्ट की त्रैमासिक पत्रिका 'वाणी सरोवर' के लिए आरम्भ किया था। उस समय मैंने यह कल्पना तक नहीं की थी कि मेरा यह अनुवाद किसी दिन पुस्तक का आकार ग्रहण करेगा। वास्तव में इस कार्य-सम्पन्नता का श्रेय भुवन वाणी ट्रस्ट के मुख्यन्यासी श्री नन्दकुमार जी अवस्थी तथा आर० ए० पोद्दार वाणिज्य महाविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष श्री डॉ० गजानन साठे को है। ये दो महानुभाव ही मुझे समय-समय पर कार्य करने के लिए प्रेरित करते रहे तथा आनेवाली कठिनाइयों को दूर करने में सहायता देते रहे।

कु० पुष्पा टी० आसवाणी

मान्यता है कि प्रत्येक जाति अथवा क़ौम की सभ्यता एवं संस्कृति की जानकारी उस जाति व क़ौम के साहित्य से ही प्राप्त की जा सकती है। जाति की प्रगति भी, उस जाति के लोगों की साहित्यिक सूझ-बूझ, अनुभूति तथा पहचान पर आधारित है। जो जाति अपने साहित्य को उन्नत बनाने के लिए तथा उसकी सुरक्षा के लिए प्रयत्न नहीं करती, वह शीघ्रातिशीघ्र अवनति के अतल गर्त में डूब जाती है।

खेद की बात है कि भारत के विभाजन के फलस्वरूप, अपने वतन से बिछुड़ने के बाद, सिन्धी जाति, अपनी साहित्यिक महत्ता और गरिमा से दिन प्रति दिन बेख़बर होती रही। इस बेख़बरी और ग़फ़लत के लिए जिम्मेदार सिन्धी जाति नहीं बल्कि परिस्थितियाँ मानी जाएँगी। यह तो निर्विवाद सत्य है कि किसी भी जाति का साहित्य तब पनपता एवं विकसित होता है, जब जाति के लोग सम्पन्न, चिन्तारहित तथा समृद्ध होते हैं। सिन्धी जाति के लोग न केवल अपनी मातृभूमि, बल्कि धन-सम्पत्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खोकर तथा अपना सर्वस्व गवाँकर आज के भारत में नए ढंग से बसने के लिए आए, तब वे पूर्णरूप से टूटे हुए थे। वास्तव में यह उनका परीक्षाकाल था। जीवन की नयी परिस्थितियों के साथ समझौता करना तथा नए रहन-सहन के अनुरूप उन्हें अपने को बदलना था। ऐसे समय में अपने साहित्य की रक्षा तथा उसे उन्नत बनाने का विचार ही कैसे आ सकता है ?

सिन्धी का साहित्य प्रायः अ़रबी लिपि में लिखा हुआ था। भारत में सिन्धी जाति को अपनी भाषा और अपनी लिपि को जैसा का तैसा बनाए रखना कठिन-सा था; परिणामस्वरूप नयी पीढ़ी के लोग अपने साहित्य के प्रति अपनी आस्था खो बैठे। जब जाति के लोग अपनी भाषा और अपनी लिपि से ही अनजान बनते गए, तब साहित्य के प्रति लगाव ही कैसे संभव है ? इन परिस्थितियों में नये साहित्य-सृजन की बात भी कल्पनातीत-सी थी।

कुछ विद्वानों को अपने साहित्य के प्रति यह अवहेलना और उदासीनता सहन न हो सकी, अतः उन्होंने देवनागरी लिपि को अपनाना उचित समझा। उनकी धारणा थी कि देवनागरी लिपि अपनाने से सिन्धी साहित्य न केवल सिन्धी जाति के लिए उपयोगी होगा, बल्कि सारे राष्ट्र और नागरी-जगत् को उससे लाभ प्राप्त होगा। अतः अ़रबी लिपि में लिखे साहित्य को देवनागरी लिपि में लिखने के प्रयास किए गए; परन्तु यह कार्य भी सरल न था। जो लोग अ़रबी जानते थे उन्हें देवनागरी लिपि का कुछ ज्ञान नहीं था; और जो देवनागरी जानते थे, वे अ़रबी लिपि से अनजान थे। यदि कुछ लोग दोनों लिपियाँ जानते भी थे, तो फिर अ़रबी लिपि में मौलिक पुस्तकों का मिलना कठिन था। इसके अतिरिक्त अनेक अन्य व्यवहारिक कठिनाइयों के कारण किसी के मन में सिन्धी-साहित्य-निधि का देवनागरी लिप्यन्तरण का साहस ही नहीं होता था। संयोग से डॉ० साठे जी ने मुझे भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ द्वारा भाषाई सेतुकरण के प्रयास से अवगत कराया तथा सिन्धी की किसी शाश्वत रचना का अनुवाद तथा लिप्यन्तरण करने की प्रेरणा दी। फलस्वरूप मैंने सामी जी के श्लोकों का लिप्यन्तरण एवं गद्यानुवाद आरम्भ किया। वाणी सरोवर के सम्पादक श्री नन्दकुमार जी अवस्थी, तथा विनयकुमार जी अवस्थी के, हिन्दीतर विविध भाषाओं के मूलग्रन्थ नागरी लिपि में हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करने के साहसपूर्ण अद्वितीय कार्य से, केवल सिन्धी भाषा जाननेवाले ही नहीं, बल्कि अन्य भाषा-भाषी भी नागरी लिपि के माध्यम से इन प्रयासों से लाभ उठा सकते हैं।

काल-क्रम की दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक "सिन्ध की त्रिवेणी" में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहले शाह, बाद में सचल और अन्त में सामी जी की रचनाएँ रखी जानी चाहिए थीं। किन्तु तथ्य यह है कि आरम्भ में यह योजना केवल सामी के सलोकों के संग्रह-प्रकाशन की थी। बाद में, श्रीवर अवस्थी जी ने परामर्श दिया कि सिन्धी भाषा के प्रथम नागरी-लिप्यन्तरण में, सामी, शाह, तथा सचल—तीनों सन्तों के पद देकर नागरी-जगत् को उत्प्लावित किया जाय। यह बात श्री डॉ० गजानन साठे और मुझको भी पसन्द आई। फलतः प्रस्तुत पुस्तक 'सिन्ध की त्रिवेणी' में काल-क्रम के विपरीत, सामी, शाह और सचल—इस क्रम में कलाम संकलित किये गये हैं।

हिन्दी साहित्य में जो स्थान सूर, तुलसी तथा कबीर का है, सिन्धी साहित्य में वही स्थान शाह, सचल और सामी का है। ये सिन्धी साहित्य के वे जगमगाते सितारे हैं, जिन्होंने अपनी आभा और गरिमा से सिन्धी साहित्य को जगमगाया है। एक ओर जहाँ शाह साहब ने सूफ़ियाने प्रेम (सान्निध्य भक्ति) की वर्षा की है, तो दूसरी ओर सचल जी ने तसव्वुफ़ (वेदान्त) के द्वारा मानव को ख़ुदी नष्ट कर ख़ुदा से तद्रूप हो जाने की युक्ति बताई है। शुद्ध वेदान्तवादी सामी जी ने जगत, जीवन तथा माया सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत कर मानव को सही रास्ता दिखाया है।

चाहे सिन्ध के सूफ़ी कवि हों, चाहे वेदान्ती संत हों, सबने एक ही ब्रह्म अथवा हक़ (सत्य) के अस्तित्व की मान्यता में अपने अस्तित्व को मिटाया है। अन्तर केवल इतना ही है कि सूफ़ी कवियों ने लौकिकता से अलौकिकता की उड़ान मारी है और निराकार ब्रह्म अथवा हक़ को एक सुन्दर रूप देकर, उसके नाज़, नख़रों, सुन्दरता एवं श्रृंगार का जादू-भरा वर्णन किया है। एक ही प्रकार के परिवेश में रहने के कारण न तो शाह और सचल अपने को वेदान्ती विचारों से दूर रख सके हैं और न सामी अपने को सूफ़ियाने प्रेम से अलग रख पाये हैं। तीनों कवियों में हमें सूफ़ियाने प्रेम, तसव्वुफ़ और वेदान्त का मिलन दिखाई देता है।

वास्तव में तसव्वुफ़ और वेदान्त में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। जिसे भारतीय आत्मविद्या कहते हैं उसे सूफ़ी तसव्वुफ़ कहते हैं। वेदान्ती 'ब्रह्म' कहते हैं, उसे ही सूफ़ी 'मुत्लक़ हस्ती' कहते हैं। जिसे वेदान्ती 'सत्' कहते हैं, सूफ़ी 'हक़' कहते हैं। वेदान्ती 'माया' कहते हैं, सूफ़ी 'तिलिस्म' कहते हैं। वेदान्ती की तरह सूफ़ी भी परमात्मा को पाने के लिए चार मंज़िलों का वर्णन करते हैं। जिसे वेदान्ती 'अहं ब्रह्म अस्मि' कहते हैं उसे ही सूफ़ी अनुअलहक़ 'मैं ख़ुद हक़ हूँ' कहते हैं। अतः स्पष्ट है कि शाह, सचल और सामी ने सिन्धी काव्य में, तसव्वुफ़ और वेदान्त को मूर्तिमान कर दिया है।

सिन्ध की त्रिवेणी, सिन्धु प्रदेश के सन्त-त्रय—सामी, शाह और सचल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के पारिवारिक, सामाजिक और दार्शनिक जीवन की झाँकी, प्रस्तुत पुस्तक में क्रमशः पृष्ठ २०, २४५ और ३४९ पर उनके कलामों के शुरू में उपलब्ध है।

अनुवाद करते समय कठिनाइयों का आना स्वाभाविक था, पर कार्य-सम्पन्नता के पश्चात् उनका वर्णन करना उचित न समझकर, मैं विनम्रता-पूर्वक इतना ही कहना पर्याप्त समझूंगी कि मैंने रचनाकारों की विशिष्ट शैली का यथासम्भव अनुसरण करने का प्रयास किया है। इसके कारण आपको कहीं-कहीं पर अटपटापन का आभास होना अस्वाभाविक नहीं; परन्तु मूल को यथार्थ रूप देने का पूरा-पूरा यत्न किया गया है। समय-समय पर अन्तर्निहित अर्थ को कोष्ठक में देने का प्रयास भी किया गया है।

अनुवाद-कार्य में, तथा संदर्भ-ग्रन्थ एवं कवियों के चित्र आदि उपलब्ध करने में जिन महानुभाव ने मुझे हर तरह की सहायता दी है, वे हैं बम्बई के प्रसिद्ध जयहिन्द कालेज के अवकाश-प्राप्त श्री कल्याण बी० आडवाणी जी। आपने सिन्धी भाषा के अलावा, अंग्रेजी और फ़ारसी भाषा का भी अध्यापन किया है। मान्यवर आडवाणी जी को अपनी मातृभाषा सिन्धी के प्रति विशेष लगाव है और वे सदैव उसे समुन्नत करने के प्रयत्न में लगे रहते हैं। आपके प्रयास से ही सिन्धी-साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ 'शाह जो रसालो' तैयार हो पाया। इस ग्रन्थ पर आपको १९६८ का साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया था। प्रस्तुत पुस्तक में शाह साहब की जो गाथाएँ दी गई हैं, वे इन्हीं की पुस्तक से ली गई हैं। ऐसे उदारहृदयी व्यक्ति के प्रति मात्र शब्दों द्वारा आभार प्रकट कर मैं अपने कर्तव्य की इति नहीं समझती हूँ।

इस अनुवाद को पूर्ण कराने में जो दूसरे महानुभाव हैं उनका उल्लेख भी आवश्यक समझती हूं और वे हैं श्री गजानन साठे। वास्तव में जब-जब भी मैंने अनुवाद-कार्य के प्रति कठिनाइयों के कारण, उपेक्षा दिखाई, तब-तब उन्होंने मुझे ऐसी प्रेरणा दी जिसके सामने मैं निरुत्तर हो जाती और कार्य करना स्वीकर कर लेती।

भुवन वाणी ट्रस्ट, उसके प्रतिष्ठाता श्री नन्दकुमार अवस्थी, और ट्रस्ट के सभी सहयोगी एवं कार्यकर्ता, अखिल भाषाई सेतुबन्धन के पुनीत कार्य में जिस मनोयोग से लगे हुए हैं, उसमें अपना भी यह योगदान देखकर मैं अपने को कृतकृत्य मान रही हूँ।

(कु०) पुष्पा ठाकुरदास आसवाणी
अध्यक्ष-हिन्दी विभाग,
ला० लाजपतराय कालेज आफ़ कामर्स, बम्बई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिन्धी लिपि पर एक दृष्टि *

सिन्धी का उद्‌गम संस्कृत से हुआ है। सौभाग्य से यह अब भी विदेशी शब्द-जाल से सुरक्षित है। प्राकृत के मर्मज्ञ वैयाकरण आज भी अपभ्रंश के स्फुट एवं निखरे हुए स्वरूप का दर्शन वर्तमान सिन्धी बोली में विना हिचकिचाहट के कर सकते हैं! भाषा-शास्त्र की दृष्टि से एवं भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से सिन्धी में—हिन्दी, मराठी और बंगला से बढ़कर—संस्कृत और प्राकृत से घनिष्टता दृष्टिगोचर होती है। ठेठ प्राकृत धातुओं एवं शब्दों के विद्यमान प्रचुर प्रयोग इसकी अत्यन्त सन्निकटता व्यक्त करते हैं। सुतरां, सिन्धी अपनी संस्कृतपरायणता के कारण अन्य वहनों की स्पर्धा की पात्री बनी हुई है। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह अपनी परम्परागत शैली का समुचित सम्मान कर, तथा प्रचलित ढीली-ढाली और सीधीसाधी नवीन बनावट को अपना कर, तदर्थ व्याकरण के नियमों को भी अनुकूल बना, परिष्कृत एवं परिमार्जित शब्दों के गठन में अपनी एकतारिता (इण्टर्नल हारमोनी), मधुरता, रुचिरता एवं सुन्दरता में यह अन्य भाषाओं से अधिक समुन्नत है।

प्राकृत के मर्मज्ञ वैयाकरण क्रमादीश्वर ने जो-जो नियम अपभ्रंश के सम्वन्ध में निर्धारित किये हैं, उन सब नियमों का पालन सिंधी-भाषा में ठीक-ठीक हो रहा है। अतएव एक उद्‌गम होने पर भी सिंधी एक स्वतन्त्र भाषा बन गयी है, जो स्वरूप में दूसरों से सर्वथा भिन्न है।

सिन्धी सिन्ध में बोली जाती है, जो तीन भागों में विभाजित है। व्याकरण की दृष्टि से विशेष अन्तर न रखते हुए भी तीनों का उच्चारण प्रायः भिन्न-भिन्न है। 'लारी' पश्चिमी सिन्ध (Lower-Sind) में, 'सिराइकी' हैदराबाद के पश्चिमोत्तर प्रदेश (Upper-Sind) में, और 'थरेली' थरपारकर प्रदेश (Thar) में बोली जाती है।

'लारी' अधिकांशतया गद्य में प्रयुक्त होने पर भी सर्वथा शुद्ध नहीं है, जिसमें स्वरों को ख़ूब तोड़मरोड़ कर व्यंजनों को भी उसके अनुरूप बनाने के लिए कोमल बना दिया है। 'सिराइकी' बोली ने 'लारी' से अत्यधिक शुद्ध होने के बावजूद भी अपने उच्चारण को बिलकुल बिगड़ने नहीं दिया है। 'सिराइकी' की सरसता एवं शुद्धता के फल-स्वरूप सिन्धी में एक कहावत प्रचलित है—"लारजो पढ़चो, सिरेजो ढगो"। इसका तात्पर्य यह है कि 'लारी' का पंडित भी 'सिराइकी' का बैल ही है। 'थरेली' भाषा जोशीली और इन दोनों से निराली ही है। वह प्रायः मारवाड़ी में मिल गई है जिसको शिकारी एवं जरायम पेशा लोग बोलते हैं। 'थरेली' का अपना विशिष्ट साहित्य नहीं है। ये उपर्युक्त वाक्य डा० ई० ट्रम्प के "सिन्धी-भाषा के व्याकरण का अन्य भारतीय भाषाओं से सम्बन्ध" नामक पुस्तक से लिये गये हैं, जिसको १८७२ में भारत-सरकार की आज्ञा से लिफ़ज़िग (Liefzig) (जर्मनी) में छपवाकर ट्रवनर एण्ड कंपनी ने प्रकाशित किया था। संस्कृत की प्राकृत अवस्था से ही अपभ्रंश का आविर्भाव

*** लखनऊ की 'माधुरी' पत्रिका के अप्रैल, १९४६ के अंक में प्रकाशित। वाणी सरोवर अंक जनवरी १९७० में उद्धृत। श्री डी० बी० मीरचंदानी के अंग्रेजी-लेख का श्री रघुनन्दन विद्यार्थी द्वारा अनुवाद। तदर्थ धन्यवाद।**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ है। अपभ्रंश दो भागों में विभक्त है—नागरी और विराचद (व्राचड़)। यह 'विराचद' अपभ्रंश ही घिस-घिसाकर सिन्धी-भाषा में परिणत हुई है। प्राकृत के वैयाकरण मार्कण्डिव ने भी इसको स्पष्ट किया है कि जो अपभ्रंश सिन्धु देश में प्रचलित है, उसे 'विराचद' कहते हैं। दुर्भाग्य से सिन्ध के बाहर बहुत ही थोड़ा शिक्षित-समाज सिन्धी के इस इतिवृत्त को जानता है। अधिकतर लोग इसका प्रादुर्भाव अरबी तथा फ़ारसी से मानते हैं। इस भ्रान्त धारणा का मूलस्रोत इसकी अरबी-सिन्धी-लिपि है। अतः यह बतलाना नितान्त आवश्यक है कि सिन्धी-भाषा अरबी-लिपि में कैसे लिखी जाने लगी और इसी को प्रमाणित करने के लिए आपका ध्यान हम भारत के प्राचीन इतिहास की ओर आकृष्ट करते हैं।

सिन्ध में ७१२ ए० डी० तक आर्यों का शासन था। बौद्धधर्म के प्रभाव से भी यह अछूता नहीं रहा था। बौद्धकाल के भग्नावशेष, जो भिन्न-भिन्न स्थानों में पाये जाते हैं, इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। भारत का सीमान्तप्रदेश यह बृहस्पतिक्षेत्र सर्वप्रथम ७१२ ए० डी० में अरबों के शिकंजों में ग्रसित हो रौंदा जाने लगा। हिन्दू मुसलमान बनाये जाने लगे। परिणामतः बहुत थोड़े काल में सिन्ध की अधिकांश जनता अरबी संस्कृति एवं सभ्यता का स्वागत कर मुसलमानी रीति-रिवाजों को अंगीकृत करने लगी। लगभग ग्यारह सौ वर्ष तक सिन्ध की यही दशा रही, बल्कि उत्तरोत्तर बिगड़ती ही गई। तथापि हिन्दू, रूढ़िवादी एवं सनातनी होने के कारण, बचे हुए अति अल्पसंख्यक भी अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने में समर्थ हुए। सन् १८४३ में जब अंग्रेज़ों ने सिन्ध को जीता, उस समय हिन्दू-संस्कृति अपने जीर्णशीर्ण स्वरूप में विद्यमान थी।

सिन्ध की लिपि उस समय वणिकी देवनागरी थी, जो वहीखातों आदि में लिखी जाती थी। संस्कृत भी पाठशालाओं में पढ़ाई जाती थी, जिनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। मीरों के शासनकाल में शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था। मुल्ला और मौलवी क़ुर्आन शरीफ़ को पढ़ाया करते थे। ऐसे मदरसों की संख्या अंग्रेज़ी राज्य के प्रारम्भ में छः सौ थी। अंग्रेज़ों ने जब शिक्षाप्रसार की ओर ध्यान दिया तो उन्हें ख़ूब कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। हिन्दू और मुसलमानों की एक भाषा होने पर भी लिपि एक न थी। राजभाषा फ़ारसी थी। हिन्दू अपना हिसाब-किताब 'मोड़ी वणिकी' (मुड़िया) में रखते थे, जिसमें मात्राओं का अभाव होने से पढ़ने में कठिनता पड़ती थी।

अंग्रेज़ों ने फ़ारसी के स्थान पर सिन्धी को राज-भाषा बनाना चाहा, किन्तु उनकी दृष्टि में कोई स्वतन्त्र सिन्धी-लिपि न थी। सिन्धी की वास्तविक और ठीक लिपि देवनागरी ही थी, परन्तु सर रिचर्ड बर्टन ने अरबी-लिपि को, जो सिन्धी के विशिष्ट उच्चारण से समन्वय नहीं रखती थी, नये-नये लात और नूनों का आविष्कार करके भी अपनाने का आग्रह किया। कैप्टेन स्टेक (Stack) जो सिन्धी के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् थे तथा जिन्होंने सिन्धी-अंग्रेज़ी-कोष 1854, अंग्रेजी-सिन्धी-कोष 1847 और सिन्धी-व्याकरण 1849 नामक तीनों पुस्तकों का देवनागरी में ही निर्माण किया था, नागरी को ही सिन्धी की अधिकारिणी बतलाते हुए प्रान्त में चलती 'वणिकी' को आवश्यक सुधार के साथ स्वीकृत करने की प्रार्थना की। पर उस समय के सिन्ध के कमिश्नर सर बार्टल फ़ेअर ने इस पर अपनी विवशता प्रकट की। उनका मत था कि न हिन्दू अरबी-लिपि को जानने को तैयार होंगे और न मुसलमान नागरी को ही स्वीकार करेंगे।

एक भाषा के बिना कारोबार चलना कठिन था, अतः सन् १८५३ में ईस्ट इंडिया कम्पनी के कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स ने अरबी-लिपि को प्रयोग में लाने का निश्चय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया; तदर्थ दस सहस्र रुपयों का प्रचार-व्यय भी सेंकशन कर दिया। उस वर्ष मि० इलियस (Ellias) के नेतृत्व में सिन्धी के कतिपय विद्वानों की एक समिति ने अरबी के उनतीस अक्षरों को सिन्धी वोली की विशिष्ट कण्ठच, तालव्यादि ध्वनियों का प्रतिपादन करने में असमर्थ जान, बावन वर्णों की एक लिपि अरबी-सिन्धी निर्धारित की। तत्पश्चात् उसी लिपि में फ़ारसी, मराठी, अरबी और गुजराती ग्रन्थों के अनुवाद होने लगे। वही अरबी-सिन्धी १८६६ में पुनः दुहराई गई। इसी तरह सुरभारती से उद्भूत सिन्धी का राज्य-कारणों से अनावश्यक लिपि-परिवर्तन मोटी भूल ही नहीं, सिन्धी का अधःपतन था। ठीक डाक्टर ट्रम्प ने घोषणा की—

"No alphabet suits the Sindhi letters, than the Sanskrit alphbaets, the Sindhi being the genuine daughter of Sanskrit."

सिवा देवनागरी के सिन्धी बोली को कोई भी लिपि अनुकूल नहीं हो सकती। सिन्धी-व्याकरण (1872) के २६ वें पृष्ठ पर फिर उसी बात को दुहराते हुए डाक्टर साहब ने लिखा है कि भारतीय भाषाओं को अरबी अथवा अन्य विदेशी लिपि में लिखना उनकी हत्या करना है।

सिन्धी के विदेशी लिपि में लिखी जाने का मुख्य दुष्परिणाम यह हुआ है कि इतरप्रांतीय इसका आविर्भाव अरबी तथा फ़ारसी से मानने लगे। यहाँ तक कि भाषाशास्त्रज्ञ भी सिन्धी की इस वंशपरम्परा को नहीं जानते। दूसरे, हम सिन्धी हिन्दुओं का भारत के अन्य हिन्दुओं से सांस्कृतिक सम्बन्धविच्छेद हो गया। हम धार्मिक ग्रंथों के परिशीलन से सर्वथा वंचित रहते, जो केवल संस्कृत और हिन्दी में ही पाये जाते हैं। यही तो कारण है कि सिन्ध के हिन्दू नये-नये मत-मतान्तरों को अपनाते हैं; पाश्चात्य सभ्यता के उपासक बन आमोद-प्रमोद में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

सिन्ध में हिन्दुओं की अल्प संख्या होने के कारण देवनागरी को ठुकराना इष्ट नहीं था, जब कि संस्कृत से आविर्भूत अन्य भारतीय भाषाएँ देवनागरी में ही लिखी जाती हैं। साम्प्रदायिकता का कारण केवल बहाना-मात्र था; क्योंकि बंगाल में बंगला, महाराष्ट्र में मराठी और गुजरात में गुजराती को तत्-तत्प्रांतीय ईसाइयों, मुसलमानों और यहूदियों ने प्रेम से अपनी-अपनी मातृभाषाओं के रूप में अपनाया है। सिन्ध में भी सिन्धी मुसलमान इसे प्रेम से अपनाते, यदि यह स्वीकार की जाती। सुतरां इसके दोषी अंग्रेज़ ही हैं।

यह भी ध्यान में रखने योग्य बात है कि सिन्धी केवल सिन्ध में ही नहीं बोली जाती। सिन्ध के निकटवर्ती कच्छ और काठियावाड के उत्तरी प्रदेश में बोली जाने-वाली 'कच्छी' भी सिन्धी ही है। ठीक इसी तरह उत्तर में बहावलपुर से मुलतान तक बोली जानेवाली 'लहंदा' भी सिन्धी से घना सम्बन्ध रखती है। १८६२ ई० में सिन्धी-भाषा के नवीन व्याकरणकार श्री झमटमल नारूमल ने अपनी पुस्तक के उपोद्घात में बतलाया है कि यद्यपि सिन्धी शुद्ध संस्कृतभाषा है, तथापि आठवीं शताब्दी से अरबी के साथ सम्पर्क होने के कारण सिन्धी में फ़ारसी तथा अरबी-शब्दों का सम्मिश्रण हो गया है। उनके मतानुसार सिन्धी की शब्दसंख्या बीस हज़ार है, जो इस तरह से विभाजित है :—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संस्कृत १२०००, देशी (संस्कृत के तद्भव शब्द) ३५००, फ़ारसी २०००, अरबी २५००

इस सम्बन्ध में हमें यह बतलाते हुए प्रसन्नता होती है कि सिन्धी की समस्त क्रियाएँ, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय, प्राकृतिक और भौगोलिक नाम, पशु और पक्षियों की बोलियाँ, उद्योग-धन्धों के नाम तथा अन्यान्य आवश्यक शब्द, जो भाषा के मुख्य अंग हैं, केवल संस्कृत के ही शब्द हैं। फ़ारसी और अरबी के केवल राजकीय, शिकार, युद्ध, सेना और औषधियों के नाम ही सिन्धी में स्थान पा सके हैं।

अतः यह निर्विवाद सत्य है कि प्रचलित अरबी-सिन्धी-लिपि अप्राकृतिक (unnatural) और अयोग्य होने के साथ-साथ अग्राह्य भी थी। किन्तु यह लगभग अस्सी वर्षों से प्रयोग में आ रही है। प्रान्त की बहुसंख्यक मुसलिम जाति भी इसी के पक्ष में है। इस वक़्त लिपि-परिवर्तन के प्रश्न को हल करना अतीव दुष्कर ही नहीं, असाध्य भी है।

अतः भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए पाश्चात्य सभ्यता को श्रेयस्कर माननवाले, पतन के कगारे पर खड़े हुए भी विनाशकारिणी तन्द्रा में झूमते हुए आर्य-सन्तानों को बचाना हमारा पुनीत कर्तव्य है। उसके लिए हम अधोलिखित कार्यक्रम को यथाशक्य अपनाना चाहते हैं—(१) सिन्धी-भाषा में लिखी जानेवाली समस्त धार्मिक, सामाजिक और शिक्षाप्रद (moral) पुस्तकें देवनागरी में लिखी जायँ। (२) समस्त घरेलू पत्रव्यवहार नागरी में हो। (३) सम्पूर्ण कन्या-शालाओं में सिन्धी, देवनागरी-लिपि में लिखाई-पढ़ाई जाय। (४) इतरप्रान्तीय बन्धु, जैसे कि गुजराती, पंजाबी, दक्षिणी, संयुक्तप्रान्तीय और मारवाड़ी आदि, जो सिन्ध के निवासी बन चुके हैं, अनिवार्य रूप से सिन्धी को देवनागरी में पढ़ें। *

इन सब बातों की ओर ध्यान देकर ही आज सिन्ध ने अपने प्रांगण में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलद का आवाहन किया है। अतएव हम भारतीय हिन्दी के कर्मनिष्ठ अनन्य उपासकों का ध्यान इस ओर आर्कषित करते हैं कि इस शुभ अवसर पर समस्त आपदाओं को झेलते हुए भी आप सिन्ध में पधारें और भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्र-भाषा हिन्दी को समुन्नत एवं पल्लवित बनाने के लिए गन्तव्य पथनिर्देश करें।

*** सिन्धु समाज के अनेक विद्वानों से भेंट करने पर विदित हुआ कि उनमें का एक समुदाय, यह जानते हुए, कि मौजूदा सिन्धी लिपि सवा सौ वर्ष पूर्व उनके पूर्वजों के विरोध के बावजूद अंग्रेज़ी शासन द्वारा जबरन लादी गई थी, आज देवनागरी लिपि को अपनाने में, अपनी आर्थिक क्षति समझ रहा है। इस लेख से प्रेरणा लेकर उन्हें समझना चाहिए कि देवनागरी लिपि के अपनाने-मात्र से लेखकों-प्रकाशकों का साहित्य नष्ट न होकर सारे राष्ट्र में फैल जायगा। सिन्धी लिपि को त्यागने की ज़रूरत नहीं है। उसको क़ाइम रखते हुए, सिन्धी-साहित्य को देवनागरी लिपि में सारे राष्ट्र में प्रसारित करना राष्ट्रीय-एकीकरण एवं भाषाई सेतुकरण के लिए नितांत आवश्यक है। उपर्युक्त लेख को आज से ४०-५० वर्ष पूर्व के परिवेष में देखा जाय। —सम्पादक**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीअ जा सलोक

अनुवादिका— प्रा० कु० पुष्पा आसवाणी,
एम. ए., साहित्यरत्न

प्रकाशकीय

'भुवन वाणी ट्रस्ट' के विशाल भाषाई कार्यक्रम में 'सिन्धी' का समावेश अब तक नहीं हुआ—यह बात पाठकों को खटक रही थी। किन्तु सिन्धी तथा देवनागरी लिपि और सिन्धी तथा हिन्दी भाषा—दोनो पर समान अधिकार-प्राप्त विद्वान् का सहयोग अब तक सुलभ न होने के कारण, उत्कट इच्छा होने के बावजूद, 'वाणीसरोवर' में इस आवश्यक स्तंभ का शुभारंभ न हो सका था।

हर्ष की बात है कि 'श्री चिनाई कॉलेज ऑफ़ कामर्स एण्ड एकॉनामिक्स', बंबई की प्रांध्यापिका सुश्री कुमारी पुष्पा टी. आसवाणी ने इस कार्य-भार को अपने ऊपर लेकर ट्रस्ट के इस अभाव की पूर्ति कर दी। कु० आसवाणी हिन्दी तथा सोशिआलाजी की एम. ए., साहित्य-रत्न, लगभग एक दशक से अध्यापन-कार्य में ख्याति-प्राप्त और परम निष्णात हैं। यही नहीं, भारतीय दर्शन में उनका उल्लेखनीय अनुराग है; और यही सुयोग है जिसके फलस्वरूप अपरिमित वेदान्त-साहित्य की सगर्भा सिन्धी भाषा के 'सामीअ जा सलोक' जैसे जनप्रिय काव्य-संग्रह के सानुवाद लिप्यन्तरण का पुण्योदय हो रहा है। इस अनुपम सिन्धी वेदान्त-रत्न का विशद परिचय अनुवादिका के वक्तव्य में प्राप्त कीजिए।

सिन्धी भाषा की वर्णमाला में, अन्य सभी भारतीय भाषाओं की अपेक्षा, अधिक वर्ण हैं। इसमें हिन्दी के सब अक्षरों के अलावा, अ़रबी की समग्र वर्णमाला तथा सिन्धी भाषा के निजी चार अक्षर-विशेष भी सन्निविष्ट हैं। इनका विवरण अन्यत्र 'सिन्धी-देवनागरी' टेबुल में दिया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जा रहा है। लिपि के अतिरिक्त, एक ओर अ़रबी उच्चारणों की शैली का समावेश, तो दूसरी ओर हिन्दी प्राकृत, ब्रजभाषा, यहाँ तक कि अवधी तक के प्रयोग प्राचीन सिन्धी काव्य में प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि प्राचीन सिन्धी काव्य में ब्रजभाषा और अवधी के शब्दों का बाहुल्य है, जिनके देवनागरी लिपि में प्रस्तुत होने पर, सिन्धी-भाषी की अपेक्षा हिन्दी-भाषी उनको अधिक शुद्धता से पढ़ और समझ सकते हैं। यही बात गुरमुखी के प्राचीन काव्यों की भाषा के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व सिन्धी भाषा को अ़रबी लिपि में लिखने की शुरूआत हुई। फलस्वरूप एक ओर तो अ़रबी के अनुकरण पर सिन्धी में भी मात्राओं, हलन्त और संयुक्ताक्षरों को चिह्नित न करने की पद्धति चल पड़ी; और दूसरी ओर सिन्ध-निवासी, तत्कालीन साहित्य के उद्‌गम-स्थान उत्तर भारत से दूर पड़ जाने के कारण, उपर्युक्त लिपि और भाषा की उथल-पुथल का सामना न कर सके और अवधी तथा ब्रजभाषा के शब्दों से धीरे-धीरे अपरिचित होने लगे। अ़रबी शब्दों का प्रयोग बढ़ने लगा। फलतः प्राचीन सिन्धी साहित्य में, और घरों में परस्पर बोली जाने वाली सिन्धी भाषा में, आज भी यद्यपि उन अवधी और ब्रजभाषा के शब्दों की भरमार है, किन्तु उन शब्दों के मूल रूप अथवा शुद्ध रूप में विकृति आ गई है।

'श्रीलाल उडैरो (दरयासाहब)' नामक लोकप्रिय पुस्तक के गद्यांश और पद्यांश की भाषा में अन्तर है। शुद्ध उच्चारण में प्रस्तुत किये जाने पर वह पद्यांश सिन्धी-भाषी की अपेक्षा हिन्दी-भाषी के लिए आज अधिक बोधगम्य है।

अस्तु, इन जटिलताओं के कारण शुद्ध उच्चारण और समुचित भाव-व्यञ्जना की दृष्टि से 'सामीअ जा सलोक' का हिन्दी-अनुवाद तथा देवनागरी-लिप्यन्तरण सामान्य कार्य न था। कु. आसवाणी जैसी व्युत्पन्न विदुषी के सहयोग के बल पर ही इस महान् कार्य को हाथ में लेने का हम साहस कर सके हैं। ट्रस्ट उनका अनुग्रहीत है।

—नन्दकुमार अवस्थी

मुख्यन्यासी, सभापति—भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ–३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सानुवाद लिप्यन्तरणकार का वक्तव्य

सिन्धी भाषा—

सिन्ध प्रान्त में बोली जानेवाली सिन्धी भाषा आधुनिक आर्य भाषाओं में से एक है। यह व्राचड़ (विराचद) अपभ्रंश से निकली है।§ इसके उल्लेखनीय कवि अब्दुलकरीम, शाह लतीफ़, सचल और सामी आदि हैं। मूल सिन्धी भाषा की छः उपभाषाएँ हैं—सिरैकी, बिचोली, लारी, थरी, लासी और कच्छी।

सिन्धी की अपनी लिपि लण्डा (लहन्दा) है। पर अरबी के एक संशोधित एवं परिवर्द्धित रूप तथा गुरुमुखी लिपि का भी प्रयोग होता है। कहा जाता है कि गुरु अंगदसिंह ने नागरी लिपि की सहायता से लण्डा को सुधारा और उसी का गुरुमुखी नाम रखा। सामीजी ने अपने श्लोक गुरुमुखी लिपि में ही लिखे थे; जब कि शाह लतीफ़, सचल आदि मुसलमान कवियों का साहित्य अरबी-सिन्धी लिपि में मिलता है। परिस्थिति बदल गई है। सिन्धी-भाषी सारे देश में फैले हुए हैं। सिन्धी भाषा अब सिन्ध-प्रदेश तक ही सीमित नहीं है। इस लिए देश मात्र की सम्पर्क-लिपि देवनागरी लिपि के माध्यम से सिन्धी-साहित्य और पठन-पाठन में अभिरुचि तेज़ी से बढ़ रही है।

सिन्धी साहित्य में सामीजी का स्थान—

शाह, सचल तथा सामी—सिन्धी साहित्य के अमूल्य रत्न माने जाते हैं। इन्हें सिन्धी साहित्य की त्रिमूर्ति तथा 'त्रिवेणी' कहा जाता है। सिन्धी-साहित्य-शिरोमणि शाह लतीफ़ अपनी रचनाओं में लौकिकता से अलौकिकता की ओर प्रवृत्त दिखाई देते हैं। लोक-कथाओं को काव्य का रूप देकर, उन्होंने न केवल लोगों का मन बहलाया है, बल्कि साथ ही साथ उन्हें आध्यात्मिक प्रेम की ओर उन्मुख किया है। सचल अद्वैतवादी थे। वे आत्मा तथा परमात्मा में किसी प्रकार का अन्तर नहीं मानते थे; तभी तो उन्होंने कहा है:—

"अल्हा, अल्हा छो चवीं,
पाणई अल्हा ज़ाण।"

---

§ 'वाणी सरोवर' के जनवरी १९७० के अंक के पृष्ठ १३ पर 'सिन्धी भाषा बनाम सिन्धी लिपि' शीर्षक लेख इस विषय में पठनीय है। —सम्पादक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अर्थात् मनुष्य तू 'अल्लाह ! अल्लाह !!' क्यों पुकार रहा है ? तू अपने आप को ही अल्हा (अल्लाह-परमात्मा) समझ। सचल जी जाति-पाँति के कट्टर विरोधी थे और वे नमाज़ तथा रोज़े के पाबन्द न थे। वे तो प्रियतम के प्रेम रूपी सरोवर में सदैव डूबे रहते थे। शाह तथा सचल ने सिन्ध को क़ुर्आन शरीफ़ तथा मौलाना रूम की मस्नवी आदि से परिचित कराया। सामीजी एक दार्शनिक तथा भक्त थे। उन्होंने वेदों, शास्त्रों तथा पुराणों के सार को सिन्धी भाषा में लिखकर लोगों का मार्गदर्शन किया। इसके अतिरिक्त उनके श्लोकों में हमें गीता, भागवत, भक्त-गाथाओं, लोकदर्शन एवं उपनिषदों का तत्त्व मिलता है। फलतः हम कह सकते हैं कि शाह, सचल और सामी, सिन्धी साहित्य में त्रिवेणी के समान हैं, जिनके काव्य की बदौलत इस्लाम, सूफ़ी मत एवं वेदान्त का सलिलामृत, तीन धाराओं में सम्यक् प्रवाहित हो रहा है।

सामी का परिचय—

सामीजी सिन्धी-साहित्य-गगन के सूर्य माने जाते हैं। उन्होंने अज्ञान तथा अविद्या के अन्धकार में भटकती हुई सिन्धी जनता को अपने ज्ञान के प्रकाश से सत्य का मार्ग दिखाया, तथा वेदों के गूढ़ एवं गहन रहस्यों को सरल सिन्धी भाषा में प्रस्तुत किया। यही कारण है कि वे जनता के कवि माने जाते हैं।

सामीजी सिन्ध प्रान्त के शिकारपुर शहर के निवासी थे। उनका पूरा नाम चैनराइ बचूमल दातारामाणी लुण्ड था। उनका जन्म संवत् १७८७ (सन् १७४३) में तथा मृत्यु संवत् १९०७ (सन् १८५०) में हुई। बचपन से ही सामीजी के हृदय में परमात्मा के प्रति प्रेम तथा साधु-महात्माओं के प्रति अटूट श्रद्धा थी। सामीजी के पिता श्री बचूमल एक प्रतिष्ठित और धनी व्यापारी थे, फिर भी सामीजी सदैव सादा और सरल जीवन ही व्यतीत करते थे। कहा जाता है कि सामीजी काग़ज़ के छोटे-छोटे टुकड़ों पर अपने श्लोक लिखकर मिट्टी के एक घड़े में डाल दिया करते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके सुपुत्र श्री घनश्यामदासजी ने सर्वप्रथम काग़ज़ के उन टुकड़ों को घड़े से निकाल, लाहौर के एक प्रेस में छपाया। बाद में वे ही श्लोक अरबी-सिन्धी लिपि में प्रकाशित होकर 'सामी जा सलोक' के रूप में प्रख्यात हुए।

श्री मेंघराज, सामीजी के गुरु थे। वे बहावलपुर प्रदेश के अहमदपुर शहर के निवासी और एक पहुँचे हुए संत थे। उन्हें 'सामी', 'मंगतराम', ब्राँभण (ब्राह्मण) आदि नामों से भी पुकारा जाता था। चैनराइ के हृदय में अपने गुरु के प्रति अपार प्रेम एवं श्रद्धा थी। अतः अपने श्लोकों के अन्त में उन्होंने अपना नाम न लिखकर अपने गुरु 'सामी' का ही नाम लिखा है। 'सामी' उनका स्वतः का उपनाम नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी के दार्शनिक विचार—

वेदान्त के अनुसार मनुष्य, ब्रह्म और ब्रह्माण्ड में किसी भी प्रकार का भेद नहीं है। एक परम शक्ति से ही यह सारा ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है, वही शक्ति संसार की प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है। उस शक्ति का न आदि है और न अन्त। सामीजी ने भी अपने श्लोकों में हमें बताया है कि परमात्मा निराकार है, उसका न आदि है, न अन्त। उस निराकार परमात्मा ने ही नाना प्रकार के रूप धारण कर लिये हैं, अतः सामी जी को संसार की सभी वस्तुओं में उस का ही रूप दिखाई देता है। उस रूप को देखकर वह अपनी सुध-बुध तक खो बैठते हैं।

सामीजी तथा कबीर के आतमा और माया संबंधी विचारों में बहुत कुछ समानता दिखाई देती है। कबीरदासजी की तरह सामीजी भी मानते हैं कि परमात्मा का निवास मनुष्य के भीतर है पर माया के आवरण के कारण वह दिखाई नहीं देता। जब मनुष्य अपने पाँच विकारों को नष्ट कर अन्तर्मुख होगा तब ही उसे उस ज्योति का दर्शन होगा। माया अत्यन्त ही प्रबल है; वह मनुष्य को मृगतृष्णा की तरह व्याकुल करती है और परमात्मा को प्राप्त करने में अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित करती रहती है। वह नाना रूप धारण कर मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करती रहती है, अतः मनुष्य अपने सच्चे परमात्म-स्वरूप को भूलकर, उसके जाल में फँसता और अपने अमूल्य मानव-शरीर को व्यर्थ ही नष्ट कर देता है।

सामीजी मानते हैं कि संसार स्वप्न की तरह है। जिस प्रकार स्वप्न में जो कुछ दिखाई देता है वह सत्य नहीं है उसी प्रकार संसार की सभी वस्तुएँ झूठी हैं। सामीजी ने संसार को वृक्ष की छाया, मृगतृष्णा तथा अस्तित्वहीन सागर के समान माना है। आत्मा, परमात्मा, माया, अविद्या, संसार आदि विषयों के अतिरिक्त सामीजी ने मानव-शरीर, गुरु-महिमा, साधु-संगति, साधुओं के लक्षण, प्रेम, भक्ति, वैराग्य आदि विषयों पर भी अनेक श्लोक लिखे हैं।

काव्य—

सरलता तथा स्वाभाविकता सामीजी के काव्य की विशेषताएँ हैं। वेदान्त के कठिन, गूढ़ एवं गहन विषयों को जिस सरलता के साथ सामीजी समझा सके हैं वैसा शायद ही कोई दूसरा कवि कर पाता। आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि वाले कवि होने के कारण प्रो० मंघाराम मल्काणीजी ने सामीजी को सिन्ध का ''मिल्टन'' कहा है। सिन्ध के सूफ़ी परिवेश में रहकर भी वेदान्त की ओर उन्मुख होना, सामीजी की विशेषता है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि सामीजी को प्रकृति से ही वेदों के ख़जाने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खोलने की मानो कुंजी मिली थी, जिससे उन्होंने गहन तथा गंभीर विषयों को सरल व सुगम बनाकर लोगों के सामने रखा ।

सामीजी ने अपने श्लोक सिरैकी उपभाषा की शिकारपुरी बोली में लिखे । सामीजी संस्कृत के तो विद्वान् थे ही, पर साथ ही साथ उन्होंने अरबी और फ़ारसी भाषा का भी गहन अध्ययन किया था । उनके श्लोकों में संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों के साथ-साथ अरबी, फ़ारसी के शब्दों तथा मुहावरों का भी सफल प्रयोग दिखाई देता है ।

अन्ततः कहा जा सकता है कि 'सामी के श्लोक' भाव पक्ष तथा कला पक्ष—दोनों ही दृष्टियों से सिन्धी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं । यद्यपि वे पहले दार्शनिक हैं, बाद में कवि, फिर भी उनके श्लोकों से हमें पता चलता है कि काव्य शास्त्र से भी वे पूर्ण परिचित थे । उनकी रचनाओं में उपमा तथा रूपक अलंकारों की भरमार है ।

आशा है भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ द्वारा प्रकाशित. इन श्लोकों के हिन्दी अनुवाद साहित देवनागरी लिप्यन्तरण से न केवल सिन्धी-भाषी वरन् अखिल देश की जनता सिन्धु-प्रदेश के भाव-भाषामृत का रसास्वादन करेगी ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्रीगणेशाय नमः

[ॐ]

सामीअ जा सलोक

(अथवा वेदान्त-सार)

माया

माया कया मर्कट, मोहे जीअ जहान जा ।
भवनि भौसागर में, ग़िचीअ पाए ग़ट ।
कटी सभ कल्पना, समुझी कंहिं सुभट ।
पाए खिम्याँ खट, सामी सुम्हयों सराइ में ।। १ ।।

माया ने संसार के जीवों को आकर्षित कर उन्हें बन्दर बना दिया है, अतः वे अपने गले में प्रपंच रूपी फाँसी लटका कर भवसागर में भटकते रहते हैं । सामीजी कहते हैं कि किसी सुभट (ज्ञानी ही) ने इस धोखे को सोच समझ कर काट दिया है, अब वह (संसार-रूपी) सराय में शाँति की शय्या बिछाकर सो गया है ।। १ ।।

माया करे मकरु, मूर्ख मोहिया मोह साँ ।
पुठी ड्रेई पाण खे, भवनि भौसागरु ।
सामी तर्यो साध संगि, को दानाहु दुतरु ।
पूरणु परमेश्वरु, ड्रिठो जंहिं अख्युनिसाँ ।। २ ।।

माया ने कपट कर, मोह से मूर्खों को अपनी ओर आकर्षित कर दिया है, जिससे वे अपने आप को भूलकर भवसागर में भटक रहे हैं (गोते खा रहे हैं) । सामीजी कहते हैं कि कोई बुद्धिमान तथा ज्ञानवान ही साधुओं के संग के सहारे पार हो गया है तथा पूर्ण परमात्मा को अपनी आँखों से देख पाया है ।। २ ।।

माया करे मकरु, मोहे मारे सभ खे ।
रखे न रतीअ जेत्रो, ड्राइणि कंहिजो ड्ररु ।
को प्रेमी लंघे पार पियो, भारी भौसागर ।
पूरणु परमेश्वरु, सामी ड्रिठो जंहिं साधसंगि ।। ३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया कपट तथा मोह से सब को मार देती है (नष्ट कर देती है।) वह डाइन रत्तीमात्र भी किसी से नहीं डरती। सामीजी कहते हैं, जिस प्रेमी ने साधुओं के सत्संग से पूर्ण परमेश्वर को देखा है, वही इस भारी भवसागर से पार उतर पाया है ॥ ३ ॥

माया करे मकरु, मोहे मारे सभखे।
रखे न रतीअ जेत्रो, ड्राइणि कंहिंजो ड्रुरु।
सामी बचियो को सूर्मो, सुजाग्गो सुभरु।
पूरणु परमेश्वरु, ड्रिठो जंहिं आकास जाँ ॥ ४ ॥

माया धोखे से सब को आकर्षित कर मार देती है। यह डाइन रत्तीमात्र भी किसी से नहीं डरती। सामीजी कहते हैं कि कोई बहादुर, जागृत (ज्ञानी) और प्रेमी, जिसने पूर्ण परमात्मा को आकाश की तरह (निर्लिप्त होकर) देखा है, वही इस माया से बच सका है ॥ ४ ॥

माया करे मकरु, मोहे मारे सभखे।
विझी गर्टु ग्रिचीअ में, घुमाए घरु घरु।
इस्थति रहे आकास जाँ, को साधूजनु सुभरु।
पूरणु परमेश्वरु, सामी ड्रिठो जंहिं सम थी ॥ ५ ॥

माया कपट से सब को आकर्षित कर मार देती है। वह (मनुष्य के) गले में प्रपञ्च रूपी फाँसी डालकर, उसे घर-घर घुमाती रहती है (अनेक जन्म भुगताती रहती है)। सामीजी कहते हैं कि किसी प्रेमी साधु जिसने सम होकर पूर्ण परमात्मा को देखा है, वही आकाश की भाँति स्थित रहता है ॥ ५ ॥

माया कया मोग्गा, सामी जीअ जहान जा।
हणनि वातु, वीचार रे, उठनि जाँ ओग्गा।
जनी नां जोग्गा, था तर्क चलाइनि तिनिते ॥ ६ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने संसार के जीवों को मंद (मूर्ख) बना दिया है। वे मूर्ख ऊँट की तरह (मूर्खों की भाँति) बिना सोच-विचार के मुँह चलाते रहते हैं (बकवास करते रहते हैं)। जो जानने योग्य नहीं उसपर ही वे तर्क करते रहते हैं ॥ ६ ॥

माया खसे मति, सामी विधी सभजी।
स्वप्न जे संसार खे, मूर्ख ज्ञाणनि सति।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, आशिकु थियो अपरन्ति।
जाग्गी जुर्यो तिति, जिते तूँ माँ नाहिं का ॥ ७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि माया ने सब की बुद्धि छीन ली है; यही कारण है कि वे मूर्ख स्वप्न के समान (झूठे) संसार को सत्य समझ रहे हैं। पर कोटि मनुष्यों में से किसी ही एक प्रेमी ने जागृत होकर, संसार से अलग (निर्लिप्त) होकर वहाँ निवास किया है जहाँ 'तू'-'मैं' की भावना नहीं है ॥ ७ ॥

माया करे ग़ुलाम, सामी विधो सभखे ।
को नेहीं व्युसि निकिरी, निरविकल्पु निष्कामु ।
लधो जंहिं गुरु ज्ञात साँ, अन्भय आदी धामु ।
जंहिं में रम्ता रामु, सूर्य जाँ साक्षी रहे ॥ ८ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने सब को गुलाम बना दिया है। कोई निर्विकल्प, निष्काम प्रेमी ही उससे बच पाया है, जिसने गुरु के ज्ञान (उपदेश) से अन्भय आदि-धाम ढूँढ निकाला है, जिस (धाम) में राम सूर्य के समान प्रत्यक्ष तथा व्याप्त हैं।

[विशेष:—सामीजी ने ब्रह्म का निरूपण राम के नाम से किया है। इनका राम कबीर की भाँति दशरथ-पुत्र राम से भिन्न है। वह निराकार सर्वव्यापक तथा अविनाशी है।] ॥ ८ ॥

माया खसे मति, मोग़ो कयो माणु हुनि खे ।
जन्मु पाए जग में, भवनि नाना भाँति ।
समुझी थियो सामी चए, को आशिकु उपरन्ति ।
जंहिखे साध संगति, लख्य लखाई अन्भई ॥ ९ ॥

माया ने मनुष्यों की बुद्धि छीनकर उन्हें मंद बना दिया है, अतः वे संसार में जन्म लेकर अनेक प्रकार से भटक रहे हैं (दुःख भोग रहे हैं)। सामीजी कहते हैं कि कोई विरला प्रेमी जिसे साधुओं के संग ने अन्तर्बोध द्वारा लक्ष्य दिखा दिया है, वही इस माया को समझकर इससे अलग रह सका है ॥ ९ ॥

माया खसे मति, मोग़ो कयो माणुहुनि खे ।
भोग़िनि भोग़ भर्म जा, सामी ज्ञाणी सति ।
को सुजाग़ो सूर्मो, उल्टी थियो उपरन्ति ।
तक्यो कयाऊँ तिति, जिते आहि न नाहिंका ॥ १० ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने मनुष्यों की बुद्धि छीनकर, उन्हें मन्द कर दिया है, अतः वे झूठे भोगों को सत्य मानकर भोग रहे हैं। पर कोई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विरला जागृत वीर ही इस माया से मुख मोड़कर, निश्चिन्त हो वहाँ जा बसा है जहाँ 'है' और 'नहीं है' की भावना नहीं है ।। १० ।।

माया खसे मति, सभजी वर्ती वेसाह साँ ।
स्वप्न जे संसार खे, सामी ज्ञाणनि सति ।
पाण पछाणनि कीनकी, अन्धा थी उपरन्ति ।
विया विञाए पति, अमोलकु अकुलरे ।। ११ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया ने विश्वास से सब की बुद्धि छीन ली है (हटा ली है), अतः वे स्वप्नवत् संसार को सत्य मान बैठे हैं। ये अन्धे (अज्ञानी) संसार से अलग होकर भी अपने स्वरूप को नहीं पहचानते। अमूल्य बुद्धि के होते हुए भी ये (अज्ञानी) अपनी मर्यादा खो बैठे हैं ।। ११ ।।

माया जग़तु ठग़े, सामी सारो वसि कयो ।
जिनिखे सायो सन्त जो, तिनिखे कीन लग़े ।
लंघे वर श्राप खों, पहुता यार अग़े ।
जिते ज्योति जग़े, अठई पहर अन्भई ।। १२ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया ने संसार को ठग कर अपने वश में कर लिया है; पर जिनपर संतों की कृपा है उनपर इस (माया) का प्रभाव नहीं पड़ता। वे प्रेमी वरदान तथा श्राप से ऊपर उठकर वहाँ जा पहुँचे हैं जहाँ आठों पहर आतमप्रकाश की ज्योति जल रही है ।। १२ ।।

माया करे वल छल, मोहिया जीअ जहान जा ।
वहिया वञनि वह में, कंहिखे पवे न कल ।
सोंटो हँयुसि सम जो, कंहि साधु जन सबल ।
जंहिखे प्रेम पहल, सामी पीआरी सतिगुरुअ ।। १३ ।।

माया ने छल-बल से संसार के लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर दिया है, अतः वे अनजान बनकर उसके प्रवाह में बह रहे हैं। सामीजी कहते हैं, पर किसी बलवान साधु ने, जिसे सतगुरु ने प्रेम की घुट्टी पिलाई है, (उसने ही) समता रूपी डंडे से उस (माया) पर प्रहार किया है ।।१३।।

माया मति मलीनु, मोहे कयो माणुहुनि खे ।
रहनि ख़ाब ख़्याल में, अठई पहर अधीनु ।
जाग़ी जुर्यो स्वरूप साँ, को प्रेमी प्रब़ीनु ।
जंहिखे पाकु यकीनु, सामी द्रिनो सतिगुरुअ ।। १४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया ने मनुष्यों को मोहित कर उनकी बुद्धि मलीन कर दी है, अतः वे आठों पहर झूठे स्वप्नों तथा विचारों के अधीन होकर रहते हैं। पर सामीजी कहते हैं कि कोई विरला प्रवीण प्रेमी, जिसे सतगुरु ने पवित्र विश्वास दिया है, वह ही जागृत होकर अपने स्वरूप (परमात्मा) से जा मिला है ॥ १४ ॥

माया भुलाया, भवनि जीअ भर्म में।
मने वेठो पाण खे, कल्पत जी काया।
उल्टी पंहिंजे घर में, के आशिक जन आया।
जेके जग़ाया, सामी पूरे सतिगुरुअ ॥ १५ ॥

माया में (अपने स्वरूप को) भूलकर जीव, भ्रमों में भटक रहा है, अतः वह स्वयं को 'नाशवान शरीर' ही मान बैठा है। पर सामीजी कहते हैं कि कुछ प्रेमी, जिन्हें पूर्ण सद्गुरु ने जागृत किया, वे संसार से मुख मोड़कर अपने घर (हृदय) में स्थित हो बैठे हैं ॥ १५ ॥

माया भुलाए, विधा जीअ भर्म में।
सामी द्रिसे कोनको, मूंहुं मढ़ीअ पाए।
जंहिंखे अविद्या निन्ड्रमों सतिगुरु जाग़ाए।
सो वेही वज़ाए, नंगारो निरबाण जो ॥ १६ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने जीव को भ्रमों में भुला दिया है, अतः वह अपने भीतर झाँककर नहीं देखता, पर जिसे सद्गुरु ने अविद्या रूपी नींद से जगा दिया है, वह बैठकर निर्वाण रूपी नगारा बजाता है (अर्थात् ब्रह्मानन्द में मस्त रहता है) ॥ १६ ॥

माया भुलाए, विधो जीउ भर्म में।
पाण पंहिंजो पाण मों, वेठो विञाए।
अण हूंदे दर्याह में, ग़ोता नितु खाए।
मंहुं मढ़ीअ पाए, सामी द्रिसे कीनकी ॥ १७ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने जीव को भ्रमों में भुला (उलझा) दिया है अतः वह अपने आप को खो बैठा है। वह (जीव) (माया के) अस्तित्व-हीन समुद्र में सदैव गोता खाता रहता है, पर अपने भीतर झाँककर नहीं देखता ॥ १७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

माया भुलाए, विधा जीअ भर्म में ।
अन्धो द्रिसे कीनकी, मूंहुं मढ़ीअ पाए ।
सामी अविद्या निन्ड्र मों, सतिगुरु जाग्राए ।
त सुखी थी खाए, अन्भय फल आकास जाँ ।। १८ ।।

माया ने जीव को भ्रम में उलझा दिया है, अतः वह अन्धा (अज्ञानी) अपने भीतर झाँककर नहीं देखता है। पर सामीजी कहते हैं, जिसे सद्‌गुरु ने अविद्या की नींद से जगाया है वह आकाश की तरह सुखी हो अन्तर्ज्ञान-रूपी फल खाता है ।। १८ ।।

माया भुलाए, विधो जीउ भर्म में ।
अणहून्दे दर्याह में, ग़ोता नितु खाए ।
सामी द्रिसे कीन की, मूंहुं मढ़ीअ पाए ।
सतिगुरु जाग्राए, त जाग्री जुरे पाण साँ ।। १९ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया ने जीव को भ्रमों में उलझा दिया है, अतः वह (माया के) अस्तित्वहीन समुद्र में नित्य ग़ोते खा रहा है, वह अपने भीतर झाँककर नहीं देखता है; पर यदि उसे सद्‌गुरु जागृत कर देता है तो वह अपने (परमात्मा) से जा मिलता है ।। १९ ।।

माया भुलाए, जीअ कया वसि पंहिंजे ।
कंहिंखे छद्दे कीनकी, सभ खे नचाए ।
सामी बचियो को सूर्मो, साधुअ जे साये ।
वेठो लिवं लाए, चेतन चिदाकास में ।। २० ।।

माया ने जीव को भुला कर अपने वश में कर दिया है, वह किसी को भी नहीं छोड़ती, सबको नचाती रहती है। पर सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर (ज्ञानी), साधु की कृपा से इस माया से बचता है और चेतन चिदाकाश (परमात्मा) में मस्त होकर बैठता है ।। २० ।।

माया भुलाए, विधा जीअं जहान जा ।
नाना रूप रचे करे, वेठा ठठु ठाहे ।
पंहिंजे पंहिंजे मति खे, सभुको वद्धाए ।
मूंहुं मढ़ीअ पाए, सामी द्रिसे कीन की ।। २१ ।।

माया ने संसार के जीवों को भुला रखा है (अपने स्वरूप से भुला दिया है), अतः वे अनेक प्रकार के रूप धारण कर आडम्बर सहित बैठे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। सामीजी कहते हैं कि प्रत्येक (जीव) अपने-अपने मत (पंथ, विचार) की प्रशंसा कर रहा है पर कोई भी अपने भीतर झाँककर नहीं देखता है॥ २१॥

माया बुरी बलाइ, कंहिखे छद्दे कीन की।
सामी लुटे सभखे, देई ह्लिसु-हवाइ।
तंहिजो लेखो नाहि को, जंहिखे सचुसहाइ।
सूर्त सभहीं जाइ, ड्रिसे कुलु आलम में॥ २२॥

सामीजी कहते हैं कि माया दुष्ट बला (नागिन) सदृश है, वह किसी को भी नहीं छोड़ती, वह लोभ-लालच आदि देकर सब को लूट लेती है। जिसे सत्य का सहारा है उसका वर्णन अकथनीय है; क्योंकि वह पूरे संसार में, प्रत्येक जगह उसी सूरत (परमात्मा) को देखता है॥ २२॥

माया करे मकरु, मोहे मारे सभखे।
रहे अलेपु आकास जाँ, को निरासो निड्ररु।
पर्चो लधो जंहिं पंहिंजो, अन्भय आदी घरु।
सामी जर अजरु, माणे मौज मुक्ति जी॥ २३॥

माया ने धोखे से सब को आकर्षित कर मार (नष्ट कर) दिया है। सामीजी कहते हैं कि कोई निराश एवं निडर (व्यक्ति) ही आकाश के समान निर्लिप्त रहता है (माया का उस पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता)। उसने राज़ी होकर अपना अन्तर्मुख आदि-घर (वह घर जहाँ ज्ञान का प्रकाश रहता है) ढूंढ लिया है, अतः वह विनाश और अविनाश में भी मुक्ति का आनंद लूटता रहता है॥ २३॥

माया करे मजूरु, छड्डिया जीअ जहान जा।
वञनि मति मर्म रे, विषयनि काणि वहलूरु।
रहे पंहिंजे हाल में, को महबती मामूरु।
जंहिखे निर्मल नूरु, सामी ड्रिनो सतिगुरूअ॥ २४॥

माया ने संसार के जीवों को विवश बना दिया है, अतः वे बुद्धि-हीन एवं निर्लज्ज हो विषयों (के प्रवाह) में बहते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, परन्तु जिस पूर्णप्रेमी को सद्गुरु ने निर्मल प्रकाश (ज्ञान) दिया है वह अपनी हालत पर ही मस्त रहता है॥ २४॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया जीअ मोहिया, लाड़े लाए पंहिंजे ।
विझी ज्ञारु भर्म जो, सभजा खम्भ खोहिया ।
के पक्षी व्यसि निकिरी, उज्यलु अछोहिया ।
बेहद जा गोहिया, द्रीआ द्रिठा जंहिं द्रील में ।। २५ ।।

माया ने जीवों को अपने पीछे पागल (मस्त) बना दिया है। उसने भ्रम रूपी जाल फैलाकर सब के मार्ग अवरुद्ध (बन्द) कर दिये हैं। पर कुछ अनंत को ढूँढनेवाले, शुद्ध विचारोंवाले, अछूते (माया से अप्रभावित) उस जाल से निकल गये और उन्होंने अपने शरीर में ही (ज्ञान के) दीपक देखे ।। २५ ।।

माया भुलायो, सामी जीउ स्वरूपखों ।
देही मने पाणखे, सन्से मँझि आयो ।
जीएं नारीअ निन्ड्र में, ब्रालकु विञायो ।
जागये जागयो, तद्रीं कणो कल्पत न रही ।। २६ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया ने जीव को स्व-रूप से भुला दिया है, अतः वह भ्रम में पड़कर अपने को शरीर ही मान रहा है। जिस प्रकार नारी नींद में बालक गवाँकर बेचैन हो जाती है (पर जागृत होने पर ही उसकी बेचैनी नष्ट होती है) उसी प्रकार ज्ञान के उदय होने पर ही भ्रम का पूरा निवारण होता है ।। २६ ।।

माया भुलाए, विधो जीउ भर्म में ।
पाण पंहिंजो पाण मों, वेठो विञाए ।
स्वप्न में सामी चए, कोट जन्म पाए ।
अविद्या पटु लाहे, सामी द्रिसे कीनकी ।। २७ ।।

माया ने जीव को भ्रम में डालकर भुला दिया है अतः वह अपने अहं में अपने को खो बैठा है। सामीजी कहते हैं कि इस (माया रूपी) स्वप्न में वह कोटि-कोटि जन्म प्राप्त करता है किन्तु अज्ञान रूपी आवरण को हटाकर नहीं देखता ।। २७ ।।

माया भुलायो, सामी जोड़े जीअ खे ।
नांगु द्रिसी नोड़ीअ में, दूरों द्रहकायो ।
गणितीअ लेखे दुःखे जे, सन्से मंझि आयो ।
सतिगुर समुझायो, तद्रीं संमुझे सोझिरो पाण में ।। २८ ।।

माया ने जीव को अपने से जोड़कर उसे भुला दिया है, अतः दूर से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही रस्सी को सर्प समझकर वह भयभीत होता रहता है; दुःख की चिन्ता के कारण वह भ्रमित हो गया है। पर जब उसे सद्गुरु ने ज्ञान दिया तब उसे अपने आप में प्रकाश दिखाई दिया ॥ २८ ॥

माया मकरु करे, मोहे मारे सभखे।
सामी रहे को सूर्मो, पापिणि खों परे।
पीतो जंहि प्रतीति साँ, प्यालो पाकु भरे।
सभ में ड्रिसी ठरे, पंहिंजे अख्यें पाण खे ॥ २९ ॥

माया कपट से सब को मोहकर मार देती है। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर ही इस पापिन से अपने को दूर रख सका है। जिसने विश्वासपूर्वक (ज्ञान का) पवित्र प्याला भर कर पिया है वह अपनी आँखों से सब में अपने ही स्वरूप को देखकर शीतल होता है ॥ २९ ॥

माया मचाई, कूड़ी रांदि कल्पत जी।
सची ज्ञाणी सभुको, छाणे नितु छाई।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, अन्भय में आई।
सामी सदाई, इस्थिति रहे आकास जाँ ॥ ३० ॥

माया ने प्रपंच का झूठा खेल खेला है, जिसे सब सत्य मान कर अपने मुँह में धूल डाल रहे हैं। सामीजी कहते हैं किसी विरले गुरुमुख को ही यह (माया का रूप) समझ में आया है। अब वह सदैव आकाश की भाँति (सर्वत्र-व्याप्त, सर्वमय) स्थित रहता है ॥ ३० ॥

माया मचाई, कूड़ी रांदि कल्पत जी।
तंहिं में मोहे ख़लिक़ सभ, फाहीअ फासाई।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, समुझ में आई।
सामी सदाईं, मुखि रखी मौजाँ करे ॥ ३१ ॥

माया ने प्रपंच का झूठा खेल रच कर, उसमें सभी लोगों को आकर्षित कर, फन्दे में फँसा दिया है। सामी जी कहते हैं, किसी विरले गुरुमुख को ही वह (माया) समझ में आई है; अतः वही सदैव अन्तर्मुख हो आनन्द मनाता रहता है ॥ ३१ ॥

माया मचायो, कूड़ो खेलु कल्पत जो।
तंहिंमें कनि तद्रूपु थी, मूर्ख मनु भायो।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, अन्भय में आयो।
सामी समायो, जल पपोटो जल में ॥ ३२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया ने प्रपंच का झूठा खेल रचा है जिसमें मूर्ख (जीव) तद्रूप होकर मनचाहा (कार्य) कर रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि किसी विरले गुरुमुख को ही (माया का रूप) समझ में आया है; तब वह जल के बुदबुदे की तरह जल में ही समा गया (अर्थात् जिस प्रकार पानी का बुदबुदा पानी से मिलकर अपना अस्तित्व नष्ट कर देता है, उसी प्रकार गुरुमुख की आत्मा परमात्मा में लीन हो अपना अस्तित्व खो देती है ।।३२।।

माया मचायो, भारी भेषु भर्म जो ।
तंहिं में मोहे सभखे, ड्रह द्रिस दौरायो ।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, अन्भय में आयो ।
पंहिंजो परायो, ख्यालु छड़े ख़ामोशु थियो ।। ३३ ।।

माया भ्रम का अत्यन्त मोहक भेष धारण कर उसमें सब (जीवों) को आर्कषित कर उन्हें दसों दिशाओं में दौड़ाती है। पर किसी विरले गुरुमुख को वह (माया का रूप) समझ में आ जाता है; अतः वह अपने-पराये की भावना छोड़कर शान्त हो जाता है ।। ३३ ।।

माया मति खसे, वर्ती माणुहुनि जी मोह साँ ।
गुझी ग़ाल्हि अन्दर जी, कंहिंखे कीन ड्रसे ।
सामी हँयुसि कंहिं सूर्मे, बेहद ब्राणु कसे ।
हर्दमि द्रिसी हँसे, पाणु वराए पाण साँ ।। ३४ ।।

माया ने मोह से मनुष्यों की बुद्धि छीन ली है। वह भीतर के गूढ़ रहस्य को (परमातम-स्वरूप का दर्शन) किसी को नहीं होने देती। सामीजी कहते हैं, पर जिस शूरवीर (गुरु) ने अनहद रूपी तीर कसकर मारा वह अहं खोकर हर जगह अपने स्वरूप को लख कर प्रसन्न हो रहा है ।। ३४ ।।

माया मति खसे, सभजी विधी वल साँ ।
सामी अन्भय आत्मा, ड्रेंहों ड्रूरि ड्रसे ।
हँयुसि ग़टु ग़िचीअ में, कंहिं दर्दवन्द दसे ।
हर्दमि द्रिसी हँसे, पाणु वराए पाण खे ।। ३५ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया ने छल से सब की बुद्धि छीन ली है, अतः वह (माया) भीतर (हृदय में) स्थित आत्मा को दूर देशों में भरमाती है। जिसके गले से, किसी प्रेम से पीड़ित (गुरु) ने, (अपने) बल से (माया की) फाँसी उतार दी है, वह अपने अहं को खोकर सदैव अपने स्वरूप को देखकर आनन्दमाग्न रहता है ।। ३५ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया मति हरे, मोगो कयो माणुहुनि खे।
भवनि भौसागर में, नाना रूप धरे।
को आशिकु चढ़ियो अछते, सर्व त्यागु करे।
सामी द्रिसी ठरे, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ॥ ३६ ॥

माया ने मनुष्यों की बुद्धि हर कर उन्हें मन्द बना दिया है, अतः वे नाना प्रकार के रूप धारण कर भवसागर में भटक रहे हैं। सामी जी कहते हैं, पर कोई प्रेमी ही सर्वस्व त्याग कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है। वह बाहर-भीतर आत्मा को देख कर शीतल हो रहा है ॥३६॥

माया मति मोगी, मोहे कई मूढनि जीं।
भुली भौसागर में, भवनि था भोगी।
सामी मिल्यो स्वरूप साँ, को जाग्रयो जोगी।
अन्भय अरोगी, धिरी लधो जहिं घर मों ॥ ३७ ॥

माया ने मूर्खों को मोह कर उनकी बुद्धि मन्द कर दी है, अतः वे भोगी बन, भवसागर में भूल कर भटक रहे हैं। सामी जी कहते हैं कि कोई अरोगी (माया के रोग से मुक्त), अन्तर्ज्ञानी एवं जागृत योगी ही (हृदय रूपी) घर में प्रवेश कर अपने स्वरूप को ढूंढ उससे जा मिला है ॥ ३७ ॥

माया मवाली, कया जीअ जहान जा।
छद्रे समता सुख खे, थिया सामी सोआली।
लधी खाणि खुशीअ जी, कंहिं नेहींअ निराली।
ख़ावन्द रे ख़ाली, कन्नो द्रिसेकीन की ॥ ३८ ॥

सामी जी कहते हैं कि माया ने संसार के जीवों को पागल बना दिया है, अतः वे समता रूपी सुख को छोड़, भिखारी बने हुए हैं। किसी-किसी प्रेमी ने ही अनोखे आनन्द की खान ढूँढ निकाली है। अतः वे एक कण को भी परमात्मा-रहित नहीं देखते (कण-कण में परमात्मा को व्याप्त देखते हैं ॥ ३८ ॥

माया मवासी, कया जीअ जहान जा।
पाए भवनि पाणहीं, फुर्ने जी फासी।
व्रिले को गुर्मुख बचियो, उतमु अभ्यासी।
अलखु अबिनासी, सामी द्रिठो जंहिं समथी ॥ ३९ ॥

माया ने संसार के जीवों को अहंकारी बना दिया है, अतः वे ख़ुद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही प्रपंच की फाँसी लटकाकर भटक रहे हैं। सामी जी कहते हैं कि कोई विरल-श्रेष्ठ अभ्यासी गुरुमुख, जिसने सम-भाव हो कर अलख अविनाशी का दर्शन किया है, वही इस (माया के बन्धन) से बच सका है ॥ ३९ ॥

माया मवासी, कया जीअ जहान जा।
भुली भवनि पाणही, चित में चौरासी।
सामी कटी कंहिं सूर्मे, फुर्ने जी फासी।
अलखु अविनासी, जाग़ी ड्रिठो जंहिं जोति में ॥ ४० ॥

माया ने संसार के जीवों को अहम्-भाव-युक्त, बना दिया है, इसलिए उनका चित अपने (स्वरूप) को भूल कर चौरासी (चौरासी लाख योनियों) में भटक रहा है। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर, जिसने जागृत हो अलख अविनाशी ज्योति का साक्षात्कार किया है, उसने ही प्रपंच की फाँसी काटी है ॥ ४० ॥

माया मवासी, मोहे कयो मूढ़नि खे।
भुली भवन पाणही, चित में चौरासी।
सामी बचियो को साध संगि, व्रिले वेसासी।
अलखु अबिनासी, जाग़ी ड्रिठो जंहिं जोति में ॥ ४१ ॥

माया ने मूर्खों को मोहकर उन्हें अहंकारी (अहं-सत्ताधारी) बना दिया है, इसलिए उनका चित्त अपने (वास्तविक आत्म-) रूप को भूल कर चौरासी (लाख योनियों) में भटक रहा है। सामीजी कहते हैं कि कोई विरल-विश्वासी ही साधुओं के सत्संग से इस (माया के जाल) से बच सका है, और जागृत होकर अलख अविनाशी प्रकाश को देख सका है ॥ ४१ ॥

माया महा प्रब्रलु, जीती वञे न जीअ खों।
विधो जंहिं जहान में, अण हूँदो ख़ौफ़ु-ख़ललु।
उथन्दे वेहन्दे निंड्रमें, सामी छड्रे न छलु।
को गुर्मुख रहे अचलु, जंहिं जाग़ी ड्रिठो पाणखे ॥ ४२ ॥

माया महा प्रबल है जिसने विश्व को अस्तित्वहीन बुराई तथा भयानक (मायाजाल) में डाल दिया है, अतः वह (माया) जीव द्वारा जीती नहीं जाती (जीव उस पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता।) वह (माया) उठते-बैठते तथा नींद में भी कपट से बाज़ नहीं आती। पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामी जी कहते हैं कि कोई गुरुमुख जिसने जागृत हो अपने (स्वरूप) को पहचान लिया है, वह अचल रहता है ।। ४२ ।।

माया मुंझाए, मोग़ो कयो मूढ़नि खे ।
पाणु पंहिंजो पाण में, वेठा विञाए ।
सामी लधो कंहिं सूर्मे, साधूअ जे साए ।
अन्दर उज्लाए, मोण सुख स्वरूप जो ।। ४३ ।।

माया ने मूर्खों को आकर्षित कर उन्हें विमूढ़ बना दिया है, अतः वे अपने अहं में अपने (आत्म-स्वरूप) को भूल बैठे हैं। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर ही, साधुओं की कृपा से अपना अंतस (हृदय को) उज्जवल कर, अपने स्वरूप का सुख भोग रहा है ।। ४३ ।।

माया मुंझाए, विधा जीअ वहण में ।
सामी सभ खे ग़ैब जा, ग़ोता खाराए ।
को प्रेमी लंघे पारि पियो, मन खे मनाए ।
ड्रीओ जग़ाए, ड्रिठो जंहिं अन्भई ।। ४४ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया ने जीवों को उलझाकर (प्रपंच रूपी) प्रवाह में डाल दिया है, वह सब को ग़ोते खिला रही है (भटका रही है)। कोई प्रेमी जिसने मन को वश में कर, ज्ञान का दीपक जलाकर, परमात्मा को देख लिया है, वही इस (प्रवाह) से पार हो सका है ।। ४४ ।।

माया मोह मई, कंहिंखे छद्दे कीनकी ।
विझी ञारु भर्म जो, सभ विश्व वसि कई ।
सामी बचियो को सूर्मो, साधूअ सरणि पई ।
लोकु परलोकु ब्रई, लंघे चढ़ियो लख्यते ।। ४५ ।।

मोहमयी माया किसी को भी नहीं छोड़ती। वह भ्रम का जाल बिछाकर सारे विश्व को अपने वश में करती है। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर ही साधुओं का आश्रय पा कर इससे बच सका है, तथा लोक-परलोक दोनों (की लालसा) को छोड़ अपने लक्ष्य (आत्मपद-प्राप्ति) की ओर अग्रसर हुआ है ।। ४५ ।।

माया मूंहुं कारो, मोहे कयो माणुहुनि जो ।
ज्ञाणनि मति मर्म रे, मूर्ख मोचारो ।
सामी रहे को सूर्मो, नभ ज्याँ न्यारो ।
जाग़ी जग़ु सारो, लै ड्रिठो जंहिं लख्य में ।। ४६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया ने मनुष्यों को मोह कर उनका मुँह काला कर (उन्हें कलंकित कर) दिया है। अतः वे निर्लज्ज तथा बुद्धिहीन मूर्ख उस (माया) को अच्छा ही समझ रहे हैं। सामीजी कहते हैं, कोई शूरवीर जिसने जागृत होकर सारे संसार को परमात्मा में लीन (समाया हुआ) देखा है, वही नभ के समान न्यारा (निर्लिप्त) रहता है॥ ४६ ॥

माया मूंहुं कारो, केरे मोहियो माणुहुनि खे।
पाए भवनि था पाणहीं, ग्रिचीअ में ग्रारो।
सामी रहे को सूर्मो, नभ ज्याँ न्यारो।
जाग्री जग्रु सारो, लै द्रिठो जंहिं लख्य में॥ ४७ ॥

माया ने लोगों को मुग्ध कर उनका मुँह काला कर दिया है। अतः वे स्वयं ही गले में (प्रपंच रूपी) फाँसी डालकर भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं कोई बहादुर जिसने जागृत होकर सारे विश्व को परमात्मा में लीन देखा है, वही आकाश की भाँति न्यारा (निर्लिप्त) रहता है॥४७॥

माया मूंहुं कारी, कंहिंसां नेबहु कीनकी।
सभखे मारे मोचिरा, द्रेई द्रेखारी।
सामी बचियो बलाखों, को भाग्यवानु भारी।
जंहिखे पीआरी, सतिगुरु सुर्की सचजी॥ ४८ ॥

सामीजी कहते हैं कि इस काले मुँह वाली माया के साथ किसी का भी निर्वाह नहीं। यह अपने नानाप्रकार के झूठे रूपों को दिखा कर सब को जूतों से पीटती है। कोई महा भाग्यशाली ही, जिसे सद्गुरु ने सत्य-रूपी मदिरा पिलाई है, वही इस बला (की नागिन) से बच पाया है॥४८॥

माया मूंहुं कारी, मोहे मारे सभखे।
कंहिखे छद्रे कीनकी, द्रेई द्रेखारी।
रहे अलेपु आकास जाँ, को भाग्यवानु भारी।
जंहिखे सुधि सारी, सामी पेई साध-संगि॥ ४९ ।

सामी जी कहते हैं कि इस काले मुँह वाली माया ने सब को आकर्षित कर मार दिया है। वह अपनी शक्ति से किसी को भी नहीं छोड़ती। परन्तु कोई महा भाग्यशाली जिसने साधुओं के संग से पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है वही आकाश के समान (इस माया से) निर्लेप रहता है॥ ४९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया मूंहुं कारी, मोहे मारे सभखे।
कंहिखे छद्दे कीनकी, देही जनि धारी।
रहे अलेपु आकास जाँ, को व्रिले वीचारी।
सामी संभारी, जंहिं आदि अन्भय पंहिंजी ॥ ५० ॥

काले मुख वाली माया सब को आकर्षित कर मार देती है। वह किसी भी देहधारी को नहीं छोड़ती। सामीजी कहते हैं कोई विरल-विचारवान (व्यक्ति) ही, जिसने अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया है, वही आकाश की तरह (इस माया से) निर्लिप्त रहता है ॥ ५० ॥

माया मोहे गुलाम, कया जीअ जहान जा।
पुठी ड्रेई पाण खे, दरि दरि भरिन सलाम।
मस्तु रहनि महिराण में, के नेंहीं निष्काम।
जिनि खे रम्ता राम, ड्रिनी समुझ सामी चए ॥ ५१ ॥

माया ने संसार के जीवों को आकर्षित कर उन्हें ग़ुलाम बना दिया है, अतः वे अपने आप को भूल कर, द्वार-द्वार सलामी बजाते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि कुछ निष्काम प्रेमी जिन्हें रमता राम (सर्वव्यापी ब्रह्म) ने ज्ञान दिया है, वे (ही प्रेम रूपी) सागर में मस्त रहते हैं ॥ ५१ ॥

माया मोहे छलु, करे कुल जहान खे।
सामी बचे को सूर्मो, साधूअ संगि सब्रलु।
ड्रिठो जंहिं आकास जाँ, आतम पद अचलु।
मेटे सभु खललु, वर्ते वेद वीचार साँ ॥ ५२ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने सारे विश्व को छल से (अपनी ओर) आकर्षित कर रखा है, कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही बलवान साधु के संग से इस (माया) से बच पाता है और वह अचल आत्मपद को आकाश की भाँति (सर्वत्र व्याप्त) देखता है तथा सब प्रकार के भेद-भाव को मिटाकर वेदों के अनुसार आचरण करता है ॥ ५२ ॥

माया मोहै जगु, विधो सभु वहण में।
कोर्युनि मों को हिकिड़ो, बचियो पुरुष अलगु।
जंहिं उलटी पद अवाच जो, लिवं सां लधो दगु।
सामी थियो सर्वगयु, चाह मिटाए चित जी ॥ ५३ ॥

माया ने संसार को मोहित कर उसे (भ्रम-रूपी) प्रवाह में डाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया है। करोड़ों मनुष्यों में से कोई एक ही पुरुष इस (माया) से अलग रह पाया है। सामीजी कहते हैं कि जो वैराग्य वृत्ति को धारण करता, तथा चित्त से 'चाह' को मिटाकर आतमपद की राह को प्रेम से ढूंढ लेता है वही सर्वज्ञ (पूर्ण) बनता है ॥ ५३ ॥

माया मोहे मनु, मोग्गो कयो मूढ़नि जो।
भवनि भौसागर में, ज्ञाणी सति स्वपनु।
सामी माणे सेज सुखु, को जाग्गयो साधूजनु।
परमेश्वरु पूरनु, ड्रिठो जंहिं आकास जाँ ॥ ५४ ॥

माया ने मूर्खों के मन को मोह कर उन्हें मंद बना दिया है, अतः वे स्वप्न को सत्य मान कर, संसार-रूपी सागर में भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि कोई जागृत साधु जिसने पूर्ण परमेश्वर को आकाश की भाँति (सर्वव्यापक-रूप में) देखा है वास्तव में वही आतम-सुख भोग रहा है ॥५४॥

माया मोहे मनु, मोग्गो कयो मूढ़नि जो।
भवनि भौसागर में, धारे नाना तनु।
विरले कंहिं गुर्मुख लधो, उल्टी आतम धनु।
सदाईं प्रसनु, सामी रहे स्वभाव में ॥ ५५ ॥

माया ने मूर्खों के मन को मोह कर उन्हें मूढ़ बना दिया है, अतः वे नाना प्रकार के शरीर (जन्म) धारण कर भवसागर में भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि किसी विरले-गुरुभक्त ने ही (संसार से) विमुख हो कर (वैराग्य धारण कर) आतमा-रूपी धन ढूंढ़ लिया है, अतः वह सदैव अपने ही भावों में प्रसन्न रहता है ॥ ५५ ॥

माया मोहे मनु, मोग्गो कयो मूढ़नि जो।
सदा कनि सामी चए, बिना ज्ञाति गमनु।
पर्ची लधो कंहिं पंहिंजो, वेसासीअ वतनु।
मेटे जन्मु मरणु, इस्थति थियो आकास जाँ ॥ ५६ ॥

माया ने मूर्खों के मन को मोह कर उन्हें मूढ़ बना दिया है, अतः सामीजी कहते हैं कि वे (मूर्ख) बिना सोच-विचार के चलते रहते हैं। पर जिस विश्वासी ने प्रेम से अपना देश (सच्चा धाम) ढूँढ़ निकाला है वह जन्म-मरण (के दुःख) को मिटाकर आकाश की भाँति स्थित रहता है ॥ ५६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया मोहे मोर, ड्रेई ओट अन्धनि खे।
भवनि भौसागर में, हीरो जन्मु हारे।
सामी सुजाग्रा बचिया, धीर सची धारे।
बेहद ड्रीओ ब्रारे, पूरणु ड्रिठाऊं पीअ खे ।। ५७ ।।

माया ने अन्धों (अज्ञानी मनुष्यों) को आकर्षित कर (अज्ञान की) ओट (पर्दे) में रख कर, मार (नष्ट कर) दिया है, अतएव वे हीरक (रत्न) के समान (अमूल्य मानव-) जीवन को नष्ट कर भवसागर में भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि सच्चा धैर्य धारण कर (अटल विश्वास से ज्ञान का) अखण्ड-दीपक जलाकर जो जागृत (ज्ञानवान्), पूर्ण परमात्मा को देख पाये हैं वे-ही इस माया से बच सके हैं ।। ५७ ।।

माया मंझि अपर्सु, व्रिले को गुर्मुखु रहे।
कई जंहिं कल्पत खों, सामी समुझी बसि।
कड्रीं थिए कीनकी, मन इन्द्रयुनि जे वसि।
क्षिम्यां जी खसि-खसि, घोटे पीए प्रेम सां ।। ५८ ।।

सामीजी कहते हैं कि जिसने प्रपंच (की निस्सारता) को समझ कर, उससे किनारा कर लिया है, ऐसा विरला गुरुभक्त ही इस (माया) से अछूता (अप्रभावित) रह पाया है। वह कभी मन-इन्द्रियों के वशीभूत नहीं होता, बल्कि संतोष-रूपी खस-खस (Poppy Seed) घोंट कर [संतोष-रूपी अमृत] प्रेम से उसे पीता रहता है (आत्मानंद में मग्न रहता है) ।। ५८ ।।

माया मोहे मारे, सभिनी खे सामी चए।
भवनि भौसागर में, ब्रली ब्रलु हारे।
को प्रेमी लंघे पारि पियो, धीर सची धारे।
बेहदि ड्रीओ ब्रारे, देउ ड्रिठाईं देहि में ।। ५९ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया ने सब को मोह कर मार (नष्ट कर) दिया है, अतः शक्तिशाली भी अपनी शक्ति हार कर भवसागर में भटक रहे हैं। पर जिसने सच्चा धैर्य धारण कर लिया है (जिसे अटल विश्वास है) तथा अनंत-दीपक (ज्ञान-रूपी दीपक) जलाकर अपने आप में ही परमात्मा को देखा है, ऐसा कोई भगवत् प्रेमी ही इस (माया-रूपी सागर) से पार हो सका है ।। ५९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

माया करे मकरु, मोहे मारे सभखे ।
सामी बचियो को सूर्मो, निरासो निड्रु ।
मारे मनु मवासु, जर्यो जंहिं अजरु ।
भारी भौसागरु, लंघे चढ़ियो लख्यते ।। ६० ।।

सामीजी कहते हैं कि माया छल-कपट द्वारा सब को अपनी ओर आकर्षित कर मार (नष्ट कर) देती है। जिसने अपने अहंकार को मार कर अपना मन अविनाशी (परमात्मा) से जोड़ लिया है, ऐसा कोई निष्काम तथा निर्भय वीर ही इससे बच कर भारी भवसागर को पार कर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सका है ।। ६० ।।

माया मोहे जीअ, विधा वाच वहण में ।
ग़ोता खाइनि ग़ैब जा, बिना समुझ सचीअ ।
लंघे चढ़ियो लख्य ते, को प्रेमी प्रीति पकीअ ।
जंहिंखे पर्ची पीअ, सामी सावधानु कयो ।। ६१ ।।

माया ने जीवों को अपनी ओर आकर्षिक कर, उन्हें (प्रपंच के) तेज प्रवाह में डाल दिया है, अतः वे सच्ची बुद्धि से हीन हो ग़ैब [दुर्भाग्य] के गोते खा रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि कोई ऐसा दृढ़ प्रेमी जिसे प्रियतम (परमात्मा) ने प्रसन्न होकर सावधान कर दिया है वही अपने दृढ़ प्रेम के बल पर इस (माया) को पार कर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकता है ।। ६१ ।।

माया मवाली, कया जीअ जहान जा ।
पाए भवनि पाणही, सिर मथे छाली ।
उल्टी ड्रिसनि कीन की, ख़ावन्द ख़्याली ।
सामी समाली, आहे जंहिंजे आसिरे ।। ६२ ।।

माया ने संसार के जीवों को पागल बना दिया है, अतः वे सिर पर (भ्रम रूपी) राख डाले हुए (व्यर्थ ही) भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि वे उलट कर (संसार से विरक्त होकर) उस ज्ञानवान परमात्मा को, जिसके भरोसे सारा संसार स्थित है, नहीं देख पाते ।। ६२ ।।

माया मध भरी, मोहे मुंझाए मति खसे ।
सामी मोहे सभ खे, कपर करे क़हरी ।
अहिड़ी कंहिं गुर्मुख खे, पेई ख़बर खरी ।
तमां तारि तरी, चढ़ियो चेतन चिट ते ।। ६३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि मद भरी माया सब (लोगों) को आकर्षित कर उन्हें उलझन में डाल कर उनकी बुद्धि हर लेती है तथा उन्हें संकट में डाल देती है; पर जिस गुरुमुख भक्त को माया के इस वास्तविक रूप का ज्ञान हो जाता है वह कामना-रूपी सागर को पार करके (इच्छाओं से पार होकर) ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो जाता है ॥ ६३ ॥

माया मध भरी, सूरत धारे सोहिणी ।
पुठीअ लाए पंहिंजे कयाई ख़लिक चरी ।
सामी सुधर जन खे, पेई ख़बर खरी ।
विया सिध तरी, पहुता पूरण पद में ॥ ६४ ॥

मदभरी माया ने सुन्दर रूप धारण करके लोगों को अपने पीछे पागल बना दिया है । सामीजी कहते हैं कि जब प्रेमी भक्तों को (माया की धोखे-बाज़ी का) वास्तविक ज्ञान हो जाता है तब वे सिद्ध-पुरुष इस (माया) को पार कर आतम-पद प्राप्त कर लेते हैं ॥ ६४ ॥

माया महा छलु, परे रहे को सुर्मो ।
जंहिखे शौक़ सचे जो, चाढ़ियो गुरूअ अमलु ।
सुन्ह सिधि स्वरूप खों, पासे थिए न पलु ।
एन अभेद अचलु, सामी माणिनि सान्ति सुखु ॥ ६५ ॥

महाछलिनी माया से वही शूरवीर बच सकता है जिसे श्रेष्ठ गुरु ने (परमात्मा के) सच्चे स्वरूप का अनुरागी बना दिया है । सामीजी कहते हैं कि वे (परमात्मा के) सच्चे स्वरूप से एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होते बल्कि वे (सदैव) मौलिक, भेदरहित एवं अचल सुख-शान्ति भोगते रहते हैं ॥ ६५ ॥

माया माउ बणी, मोहे मुसाए सभखे ।
सामी खसे सारु धनु, खूह में विझे खणी ।
कयुसि गुमु ज्ञाति सां, कंहिं हर्जन हथुहणी ।
घर में घर धणी, ड्रिठो जंहिं अभेदु थी ॥ ६६ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया माँ बनकर सब को अपनी ओर आकर्षित कर उन्हें आपत्ति में डाल देती है एवं सार रूपी धन छीनकर उन्हें (प्रपंच रूपी) कुएं में डाल देती है । पर जब कोई संत पुरुष किसी (मनुष्य) पर कृपा का हाथ रखकर, अपने ज्ञान से उस माया को नष्ट कर देता है, तब अभेद (आतमा एवं परमात्मा में किसी भी प्रकार का भेद न समझकर)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूप से वह व्यक्ति अपने मनमंदिर में ही मनमंदिर के स्वामी परमात्मा का दर्शन पा जाता है ।। ६६ ।।

माया मिठाई, खाई जीअ ख़ोआरु थिया ।
भवनि भौसागर में, सामी सदाई ।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, अन्भय में आई ।
पंहिंजी पराई, ताति मेटे तद्रूपु थिया ।। ६७ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया रूपी मिठाई खाकर जीव व्यर्थ ही बदनाम हो रहे हैं एवं भवसागर में भटक रहे हैं । यह माया किसी विरले गुरुमुख की ही समझ में आ सकती है । ऐसा ज्ञानी गुरुभक्त अपने और पराए की भावना भूलकर (परमात्मा के साथ) तद्रूप हो जाता है ।। ६७ ।।

माया मित्रु बणी, मोहे मारे सभखे ।
रोले पंहिंजे राज्र में, सदा साणु खणी ।
सामी बचियो को सुर्मो, साधुअ जी सरणी ।
घर में घर धणी, अचलु ड्रिठो जंहिं आदिजो ।। ६८ ।।

माया मित्र बनकर सबको अपनी ओर आकर्षित कर मार (नष्ट कर) देती है, वह सभी को अपने अज्ञानरूपी राज्य में भटकाती रहती है । सामीजी कहते हैं कि जिसने अपने मनमंदिर में ही मनमंदिर के स्वामी परमात्मा को अचल रूप से विराजमान देख लिया है ऐसा कोई सच्चा शूरवीर ही सच्चे साधु की संगति से इस माया से बच सका है ।। ६८ ।।

माया मिरेई, रचिया ठाह ठगीअ जा ।
मारे मूर्खनि खे, ड्राइणि दुख ड्रेई ।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, सामी सुधि पेई ।
लोक परलोक ब्रई, लंघे चढ़ियो लख्य ते ।। ६९ ।।

माया ने सब धोखे के ही ठाट रचे हैं । वह डाइन मूर्खों (अज्ञानी मनुष्यों) को दुःख देकर उन्हें नष्ट कर देती है । सामीजी कहते हैं कि किसी विरले गुरुमुख को ही इसका भेद समझ में आसकता है जिससे वह लोक-परलोक दोनों को पार कर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है ।। ६९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया मध मातो, सामी सभु संसारु थी ।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, आतम रंगि रातो ।
मिली साध संगति सां, कंहिं साहिबु सुञातो ।
वारे खतु खातो, कढियाईं कल्पत जो ।। ७० ।।

सामीजी कहते हैं कि सारा विश्व माया के मद में मस्त है । करोड़ों में से ऐसा कोई एक ही (मनुष्य) आत्मज्ञान के रंग में रंगा हुआ है जिसने साधुओं के संग से परमात्मा को पहचान लिया है तथा माया रूपी बहीखाते को मिटा दिया है (माया से मुक्त हो बैठा है) ।। ७० ।।

माया मति मोग़ी, मोहे कई मूढ़नि जी ।
पर्छिन ज्ञाणी पाणखे, सदा फिरनि सोग़ी ।
माणे सुख स्वरूपजो, को जाग़्यो जोग़ी ।
अनन अरोग़ी, सामी रहे स्वभाव में ।। ७१ ।।

माया ने मूर्खों को मोहकर उनकी बुद्धि मन्द कर दी है, अतः वे अपने को नाशवत् समझकर सदैव दुःखी होकर भटकते रहते हैं । सामीजी कहते हैं कि कोई ज्ञानवान् योगी ही स्वरूप के सुख को भोगता है एवं ईर्ष्या के रोग से मुक्त होकर अपनी ही मस्ती में मग्न रहता है ।। ७१ ।।

माया मति मारी, लोभाए लोकनि जी ।
खंयो वतनि खुशि थी, ख़ोआरीअ जी खारी ।
सदा कनि समुझ रे, जतन ऐ जारी ।
सामी चए सारी, विया विञाए आर्ज़ा ।। ७२ ।।

माया ने लोगों को ललचाकर उनकी बुद्धि नष्ट कर दी है, अतः वे प्रसन्नतापूर्वक निंदा की पिटारी उठाये हुए घूम रहे हैं । वे सदैव बिना सोच-विचार के यत्न एवं युक्तियाँ करते रहते हैं । सामीजी कहते हैं कि इसी प्रकार वे अपनी आयु गँवाकर इस संसार से चले जाते हैं ।। ७२ ।।

माया मंझि उदासु, व्रिले को गुर्मुख रहे ।
जंहिं मिली साध संगति सां, कयो अन्तरि मुखि अभ्यासु ।
पर्चीं द्रिठाई पाण में, चेतन चिदाकासु ।
सामी ज्ञाणे नासु, जग़तु सभु जग़दीस रे ।। ७३ ।।

जिसने साधुओं के संग से अन्तरमुख हो अभ्यास किया है ऐसा कोई विरला गुरुमख भक्त ही माया से विमुख रह सकता है । सामीजी कहते हैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि उसने प्रसन्न हो अपने आप में ही चेतन चिदाकाश (परमात्मा) को देखा है तथा जगदीश्वर के सिवा सारे विश्व को नश्वर माना है ।। ७३ ।।

माया मंझि उदासु, विरले को गुर्मुख रहे ।
जंहिं मिली साध संगति सां, कयो अन्तरि मुखि अभ्यासु ।
जीँए घटनि में आकाश, तीँए साक्षी द्रिसे सभमें ।। ७४ ।।

जिसने साधुओं के संग से अन्तरमुख हो, अभ्यास किया है ऐसा कोई विरला गुरुमुख भक्त ही माया से विमुख रह सकता है । जिस प्रकार अनेक घड़ों में एक ही आकाश दिखाई देता है, उसी प्रकार वह भी सब (जीवों) में एक ही परमात्मा को देखता है ।। ७४ ।।

विशेष–आकाश एक है लेकिन उसकी परछाई अलग-अलग घड़ों में अलग-अलग रूप से पड़ती है, यदि घड़े को तोड़ दिया जाय तो भी आकाश नहीं टूटता (नष्ट होता) है । उसी प्रकार परमात्मा एक ही है लेकिन उसकी ज्योति सब जीवों में समाई हुई है; पर भ्रमवश मनुष्य उसे अलग ही मानता है । पर जो ज्ञानी है उन्हें आत्मा एवं परमात्मा में किसी भी प्रकार का भेद दिखाई नहीं देता ।

माया मंझि उदासु, विरले को गुर्मुखु रहे ।
कयो जंहिं गुर ज्ञाति सां, अन्तरि मुखि अभ्यासु ।
चढ़ी द्रिठाई चेत ते, अन्भय जो आकासु ।
सामी ज्राणे नासु, द्रष्टमानु सन्सार खे ।। ७५ ।।

सामीजी कहते हैं कोई विरला गुरुमुख ही माया से उदास रहकर गुरु के ज्ञान के सहारे, अन्तर्मुख हो अभ्यास करता है, एवं विकारों से ऊपर उठकर ज्ञानरूपी आकाश को देखता है, एवं दृश्यमान संसार को नाशवान् मानता है ।। ७५ ।।

माया मंझि उदासु, रहनि साधूजन सूर्मा ।
अची अजगैबी लगी जिनि खे प्रेम प्यास ।
सामी मिली स्वरूप सां, थिया ख़िल्वती ख़ास ।
बेहद कनि विलास, चढ़ी चेतन चिटते ।। ७६ ।।

माया से वे शूरवीर साधुजन ही उदास रहते हैं, जिन्हें अचानक ही प्रेम की अनोखी (रहस्य भरी) प्यास आ लगती है । सामीजी कहते हैं कि वे चैतन्य रूपी चट्टान पर चढ़कर पवित्र एवं एकान्तवासी होकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परमात्मा के स्वरूप से मिलकर, अनन्त परमात्मा के साथ विलास करते हैं (समाधि अवस्था में ईश्वर के साथ वार्तालाप करते हैं) ॥ ७६ ॥

माया मंझि उदासु, व्रिले को गुर्मुख रहे ।
सो द्रष्टमान सन्सार खे, निश्चे ज्ञाणे नासु ।
सामी साधसंगति जो, वठे भंवर जां वासु ।
जीए घटनि में आकासु तीए साक्षी द्रिसे सभ में ॥ ७७ ॥

माया से कोई विरला ही गुरुमुख उदास रहता है एवं इस दृश्यमान संसार को निश्चय ही नाशवान मानता है। सामीजी कहते हैं कि वह भ्रमर की तरह सत्संग का आनन्द लूटता रहता है, (जिस प्रकार भ्रमर फूलों का रस चूसता है, पर कभी भी तृप्त नहीं होता है, उसी प्रकार माया से विमुख जीव भी सत्संग से कभी तृप्त नहीं होता है।) एवं जिस प्रकार घड़ों में एक ही आकाश दिखाई देता है उसी प्रकार वह सभी जीवों में एक ही परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है ॥ ७७ ॥

माया मंझि उदासु, सामी रहनि सापुरुष ।
जीअण मरण दुःख सुख जी, मन में रखनि न आस ।
साक्षी ज्ञाणी सभ में, थिया दासनि जा दास ।
कटे अविद्या फास, चढ़िया अन्भय अछते ॥ ७८ ॥

सामीजी कहते हैं कि उत्तम पुरुष ही माया से उदास रहते हैं तथा मन में जीने-मरने एवं दुःख-सुख की आशा से रहित रहते हैं। वे सब में परमात्मा को प्रत्यक्ष समझकर सबके सेवक बने रहते हैं और अविद्या रूपी फाँसी को काटकर ज्ञान रूपी मार्ग पर अग्रसर होते हैं ॥ ७८ ॥

माया मंझि पर्सनु, मूर्ख रहनि मति रे ।
भोग्रे भोग्रे भर्म जा, खोहिनि मानुष्य तनु ।
माणे सुखु स्वरूप जो, को जाग्रयो साधू जनु ।
मेटे सभु मननु, सीतलु थियो सामी चए ॥ ७९ ॥

सामीजी कहते हैं कि बुद्धिहीन मूर्ख व्यक्ति ही माया में प्रसन्न रहते हैं एवं भ्रम के भोग भोगकर अपना मानव-शरीर व्यर्थ ही नष्ट करते हैं। कोई जागृत साधु ही चिन्तन-मनन से ऊपर उठकर शान्ति स्वरूप परमात्मा के मिलन का सुख भोगता है। (ब्रह्मानन्द को प्राप्त होता है।) ॥ ७९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया मंझि मगनु, मूर्ख रहनि मति रे।
कालु न द्रिसनि कन्ध ते, नितु तके थो तनु।
जाग्री जुर्यो पाणसां, को प्रेमी पूरनु।
जंहिंखे आत्म धनु, सामी द्रिनो सतिगुरूअ ॥ ८० ॥

माया में बुद्धिहीन मूर्ख ही मस्त रहते हैं। वे कन्धे पर सवार मृत्यु को निरन्तर अपने शरीर की ओर ताकते हुए नहीं देखते हैं। सामीजी कहते हैं कि जिसे सतगुरु ने आत्म-धन दिया है वही पूर्णप्रेमी जागृत हो अपने आप (परमात्मा) से मिल सकता है॥ ८० ॥

माया मंझि मगनु, मूर्ख रहनि मति रे।
भोग्रे भोग्रे भर्म जा, खोहिनि मानुष्य तनु।
ज्ञाणे सुखु स्वरूप जो, को जाग्रयो साधू जनु।
मेटे सभु मननु सीतलु थिए सामी चए॥ ८१ ॥

मूर्ख बुद्धिहीन होकर माया में ही मग्न रहते हैं। वे भ्रम के भोग भोगकर, अपने मानव-शरीर को नष्ट करते हैं। सामीजी कहते हैं कि कोई जागृत (ज्ञानवान्) साधु-पुरुष ही अपने स्वरूप के सुख (आत्मानन्द) को समझकर, सोच मिटाकर, शान्त हो सका है॥ ८१ ॥

माया मंझि मगनु, मूर्ख रहनि मति रे।
जुदा ज्ञाणी पाण खे, धार्नि नाना तनु।
सामी सिक वारनि खे, मिल्यो आत्म-धनु॥
अन्भय आत्म अनु, सफा कयाईं सुर्तिसाँ॥ ८२ ॥

मूर्ख (अज्ञानी) ही बुद्धिहीन होकर माया में मग्न रहते हैं। वे अपने को अलग मानकर (आत्मा और परमात्मा में भेद समझकर) नाना प्रकार के शरीर (जन्म) धारण करते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि परमात्मा से प्रेम करने वालों को ही आत्म-धन मिल सका है, क्योंकि उन्होंने ध्यान (मेडीटेशन) से आत्मज्ञान रूपी अन्न को [अज्ञान रूपी चोकर से] स्वच्छ कर दिया है। [ज्ञान मिलने के पश्चात् ध्यान एवं अभ्यास से दृढ़ बनाया है।] ॥ ८२ ॥

माया मंझि मगनु, मूर्ख रहनि मति रे।
ज्ञुदा ज्ञाणी पाण खे, धार्नि नाना तनु।
सामी माणे सेज सुखु, को प्रेमी पूरनु।
अन्भय आत्म धनु, घिरी लधो जंहिं घरमों॥ ८३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूर्ख (अज्ञानी) ही बुद्धिहीन होकर माया में मग्न रहते हैं। वे अपने को (परमात्मा से) अलग मानकर नाना प्रकार के शरीर धारण करते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि ऐसा कोई पूर्णप्रेमी, जिसने (हृदय रूपी) घर में झाँककर आत्म-ज्ञान रूपी ख़ज़ाना पा लिया है, वही परमात्मा के मिलन का आनन्द प्राप्त कर सका है ॥ ८३ ॥

माया मंझि मग़िरूरु, मूर्ख ज्ञाणनि मति रे।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, सामी सहनि सूरु।
कालु न द्रिसनि कन्ध ते, थोकरे नितु कलूरु।
राजा राउ मजूरु, मारे जंहिं मिटी कया ॥ ८४ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख एवं बुद्धिहीन (व्यक्ति) माया में मग़रूर (घमंडी) रहते हैं। वे संसार को सत्य मानकर दुःख सहते रहते हैं। जो राजाओं, महाराजाओं तथा मज़दूरों आदि सभी को मारकर मिट्टी में मिला देती है, ऐसी अपनी ज़िन्दगी के दिनों को गिनने वाली सदा अपने कंधे पर सवार मृत्यु को भी वे लोग नहीं देख पाते ॥ ८४ ॥

माया मंझि मस्तानु, मूर्ख रहनि केतिरा।
कालु न द्रिसनि कन्ध ते कशूं बीठो कानु।
वर्तनि वेद वीचारसां, के नेहीं निरअभिमानु।
भग़ति द्रिनी भग़वान, जंहिं खे पर्ची पहिंजी ॥ ८५ ॥

माया में कितने ही मूर्ख मस्त रहते हैं, वे अपने कन्धे पर तीर-तानकर खड़ी हुई मृत्यु को नहीं देखते हैं। पर जिन्हें भगवान ने प्रसन्न होकर अपनी भक्ति दी है वे निरभिमानी (अभिमान-रहित) प्रेमी ही सोच-समझ कर वेदों के अनुसार आचरण करते हैं ॥ ८५ ॥

माया मंझि मुक्ति, व्रिलो को गुर्मुख रहे।
जंहिखे द्रिनी सतिगुरूअ, सामी जोग़ जुग़ति।
सम द्रिसे जिति किति, अन्भय पुरुष अख्युनिसाँ ॥ ८६ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया से वही विरला गुरुमुख मुक्त रहता है जिसे सतगुरु ने योग-युक्ति दी है, अतएव वह अपनी आँखों से सभी जगह अन्भय पुरुष (परमात्मा) को देखता रहता है ॥ ८६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया रचाई, कूड़ी रांदि कल्पत जी ।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, अन्भय में आई ।
सामी मिली स्वरूप सां, ममत्व मिटाई ।
सम थी सदाईं, माणे मौज मुक्ति जी ।। ८७ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया ने कल्पना (भ्रम) का झूठा खेल रचा है । किसी विरले गुरुमुख को ही माया का यह (खेल) समझ में आ सका है, जिसके बाद परमात्मा के स्वरूप से मिलकर, ममत्व मिटाकर, सदैव सम होकर मुक्ति का आनन्द प्राप्त कर सका है ।। ८७ ।।

माया रचायो, कूड़ो ठाहु ठग़ीअ जो ।
सामी तंहिं में सभ खे, मोहे मुंझायो ।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, अन्भय रसु आयो ।
पंहिंजो परायो ख़्यालु छद्रे ख़ामोशु थियो ।। ८८ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया ने धोखे का झूठा ठाठ रचा है, उस (ठाट) में आकर्षित कर उसने सबको उलझन में डाल दिया है । किसी विरले गुरुमुख को ही आतमज्ञान का आनन्द प्राप्त हो पाता है जिससे वह अपने-पराये के भाव को भूलकर शान्त हो जाता है ।। ८८ ।।

माया सभि मोहे, जीअ कया वसि पंहिंजे ।
सामी सन्त अचाह खे, सघे कीन जोहे ।
विधा जंहिं खोहे, पंजई पर पक्षीअ जा ।। ८९ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया ने सब जीवों को आकर्षित कर अपने वश में कर लिया है पर ऐसे निष्काम (कामना-रहित) सन्तों की ओर, जिन्होंने (मन रूपी) पक्षी के पांचों ही पंखों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) को नष्ट कर दिया है, उनकी ओर वह (माया) अपनी दृष्टि नहीं उठा सकती ।। ८९ ।।

माया सभु मांधाणु, अणहून्दो उभो कयो ।
मूर्ख तंहिं में मति रे, हणनि पंहिंजो पाणु ।
रहे अलेपु आकास जाँ, को नेहीं निरब्राणु ।
सामी सज्ञण साणु, मिली नित मौजाँ करे ।। ९० ।।

माया ने ऐसा अस्तित्वहीन प्रपंच खड़ा कर रखा है, जिसमें मूर्ख (अज्ञानी) बुद्धिहीन होकर अपने आप को नष्ट कर रहे हैं । सामीजी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कहते हैं कि ऐसे में कोई (इच्छाओं से) मुक्त प्रेमी ही आकाश के समान निर्लिप्त होकर प्रियतम (परमात्मा) के साथ मौज (आनन्द) मना सकता है ।। ९० ।।

माया रचाई, कूड़ी रांदि कल्पत जी ।
तंहिमें मोहे मोहसाँ, सभ विश्व फासाई ।
विरले कंहिं गुर्मुख खे, अन्भय में आई ।
सामी सफ़ाई, करे चढ़ियो चंग ते ।। ९१ ।।

माया ने प्रपंच की झूठी क्रीड़ा रचाई है और उसमें सारे विश्व को मोह से आकर्षित करके फँसा रखा है । सामीजी कहते हैं कि किसी विरले गुरुमुख को ही यह समझ में आई है जिससे वह शुद्ध होकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो सका है ।। ९१ ।।

माया सभि ग़ुलाम, कया जीअ जहान जा ।
पिटिनि कारण पेट जे, वड़ा वीर वर्याम ।
सामी बचिया के सूर्मा, निरविकल्पु निष्काम ।
जिनिखे रम्ता राम, ड्रिनो दर्सनु देहिमें ।। ९२ ।।

माया ने संसार के सभी जीवों को अपना ग़ुलाम बना रखा है जिससे बड़े-बड़े दृढ़ वीर भी पेट के कारण इधर उधर भटक रहे हैं । सामीजी कहते हैं कि कुछ ऐसे निर्विकल्प एवं निष्कामी शूरवीर (व्यक्ति) ही, जिन्हें सर्वव्यापक राम (ब्रह्म) ने हृदय में ही अपना दर्शन दे दिया है, इस (माया) से बच सके हैं ।। ९२ ।।

माया सिधि कयो, अण हूंदो सन्सारु सभु ।
स्वप्न में सामी चए, जींए नाना जीउ थियो ।
पाणु भुलाए पंहिंजो, सन्से मंझि पियो ।
तड्रीं भर्मु वियो, जड्री जाग़ी जुर्यो जोति साँ ।। ९३ ।।

सामीजी कहते हैं कि जिस प्रकार जीव स्वप्न में नाना प्रकार के रूप धारण करता है, उसी प्रकार माया ने भी इस अस्तित्वहीन संसार को बनाया है (स्वप्न में देखे हुए झूठे रूपों की तरह ही यह संसार भी झूठा ही है, जिस प्रकार स्वप्न में वे झूठे रूप भी हमें सत्य प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार यह झूठा संसार भी हमें सत्य प्रतीत हो रहा है ।) अतः वह (जीव) अपने स्वरूप को भूलकर भ्रमित हो जाता है । पर जब वह जागृत होकर परमातम-ज्योति से मिल जाता है तब उसका भ्रम नष्ट हो जाता है ।। ९३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया मंझि मुंझी पिया, सभि जीअ जहान जा ।
मरनि मति मर्म रे, रात्यूं ड्रींहं रुझी ।
सामी कंहिं साधूअ जी, अविद्या आग ब्रुझी ।
जंहिखे ग्रालिह ग्रुझी, सतिगुर ड्रसी स्वरूपजी ।। ९४ ।।

संसार के सब जीव माया में उलझे हुए हैं। वे निर्लज्ज तथा बुद्धि-हीन हो दिन-रात (माया में) मस्त होकर नष्ट हो रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि उसी साधु की अविद्या रूपी अग्नि बुझ सकी है जिसे सतगुरु ने (परमात्मा के) स्वरूप की रहस्य भरी बात सुझा (समझा) दी है ।। ९४ ।।

माया मंझि मवास, मूर्ख रहनि मति रे ।
इस्थति ज्ञाणी पाणखे, ऊन्ही रखनि आस ।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, थो-सामी ग्रणे स्वास ।
लटे सभि लबास, खाधा जंहिं ख़्याल साँ ।। ९५ ।।

मूर्ख (अज्ञानी मनुष्य) बुद्धिहीन होकर माया में घंमडी बने रहते हैं, वे अपने कन्धे पर सवार उस मृत्यु को नहीं देख पाते जो उनके (मनुष्यों के) श्वांस गिन रही है तथा जिसने विचार मात्र से ही कितने ही शरीररूपी वस्त्र मिट्टी (नष्ट) कर दिये हैं ।। ९५ ।।

माया मोहु रचियो, कूड़ो कलपत काल जो ।
तंहिं में जग्रु तद्रूपु थी, नाना भांइ नचियो ।
को साधू जनु सूर्मो, बला खों बचियो ।
आत्म सुखु सचो, सामी माणे सर्वगति ।। ९६ ।।

माया ने काल तथा प्रपंच का झूठा मोह रचा है जिसमें सारा संसार भ्रमित होकर, नाना प्रकार से नाच रहा है। सामीजी कहते हैं कोई शूरवीर साधु ही इस नागिन से बचकर सच्चे शाश्वत आत्मानन्द को भोग पाता है ।। ९६ ।।

माया मोहे मति मोग्रो कयो माणुहुनि खे ।
भुली भवनि पाणहीं, खणी साणु खप्ति ।
सामी रहे सम सदा, को आशिकु इस्थति ।
जाग्री शिवु शक्ति, ड्रिठो पाण जहान में ।। ९७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया ने मनुष्यों की बुद्धि को आकर्षित कर, उन्हें मूढ़ बना दिया है, अतः वे अपने को भूलकर कष्टपूर्वक उधर-उधर भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि वह स्थिर प्रेमी ही सदैव सम रहता है जिसने जागृत होकर (ज्ञान प्राप्त कर) परमात्मा की सत्ता को संसार में प्रत्यक्ष देखा है (जिसे संसार के सभी प्राणियों में एक ही परमात्मा के दर्शन होते हैं।) ॥ ९७ ॥

माया मंडे मंडाणु, मोहे मारे सभखे।
कंहिखे छड्डे कीनकी, ख़ाली ख़ुशीअ साणु।
रहे अलेपु आकास जाँ, को सामी सन्तु सुजाणु।
पाण वराए पाणु, जाग्गी ड्रिठो जंहिं ज्योति में ॥ ९८ ॥

माया ने नाना प्रकार के ठाठ रचकर, सब को आकर्षित कर नष्ट कर रखा है। उसने सभी को वास्तविक (सच्चे) आनन्द से वंचित कर रखा है। सामी जी कहते हैं, वही सज्जन सन्त आकाश की भाँति (माया से) निर्लिप्त रह सकता है जिसने जागृत होकर, अपने अहं से हटकर, अपने स्वरूप को उस ज्योति में देखा है ॥ ९८ ॥

माया मंझि मुक्ति व्रिले को गुर्मखु रहे।
जंहिखे ड्रसी सतिगुरूअ, जुर्बे जी जुग्गति।
ड्रेई कंडि कल्प खे, चेतनु कयांई चिति।
अन्भय सुख अमिति, सामी पाए सम थियो ॥ ९९ ॥

सामीजी कहते हैं कि वही विरला गुरुमुख भक्त ही माया से मुक्त रहता है जिसे सतगुरु ने (परमात्मा से) मिलने की युक्ति बता दी है। उसने प्रपंच को ताला लगाकर (प्रपंच से मुख मोड़कर) अपने चित्त को चेतन (ज्ञानवान्) बना दिया है, तथा सम होकर अनंत आत्म-सुख की अनुभूति कर रहा है ॥ ९९ ॥

माया सभ मोही, ख़लिक़ पंहिंजे ख़्यालसाँ।
भुलाए भग्गवन्त खों, द्रोहु करे द्रोही।
सामी बचियो को साध संगि, आशिकु अद्रोही।
ब्रोध रूप बोही, खेती जंहिं ख़ामोश साँ ॥ १०० ॥

माया ने अपने आकर्षण से संसार के लोगों को आकर्षित कर उन्हें परमात्मा से अलग कर दिया है अतः वे अपराधी के समान अपराध करते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि वही दृढ़ प्रेमी साधुओं के संग से इस माया से बच सका है, जिसने शान्त होकर अपने (हृदय रूपी) खेत में बोध या

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपदेश रूपी बीज बोया है (जिसने हृदय में उपदेश का चिन्तन एवं मनन किया है।) ॥ १०० ॥

त्याग़ी वैराग़ी, माया सभि मस्तानु कया।
सामी को व्रिले बचियो, गुर्मुखु वद्भाग़ी।
द्रिठो जंहिं जाग़ी, पंहिंजे अख्यें पाण खे ॥ १०१ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने त्यागी, वैरागी आदि सबको मदमत्त बना दिया है। कोई ऐसा विरला भाग्यशाली गुरुमुख ही इससे बच सका है, जिसने जागृत होकर अपनी आँखों से अपने आप (स्वरूप) को देखा है ॥ १०१ ॥

द्राढी द्रेवाली, माया द्राइणि द्रुन्दरी।
सामी कयो जंहिं सभखे, कृपणु कंगाली।
व्रिले को गुर्मुख रहे, खलि-खलि खों ख़ाली।
लूअँ लूअँ में लाली, प्रत्क्ष द्रिठी जंहिं पीअजी ॥ १०२ ॥

सामीजी कहते हैं कि बड़े-बड़े दांतों वाली डाइन माया ने सबका दिवाला निकाल दिया है, तथा उन्हें कृपण एवं कंगाल बना दिया है। ऐसा कोई विरला गुरुमुख ही, जिसने कि रोम-रोम में (सर्वत्र) अपने प्रियतम की सत्ता को प्रत्यक्ष देखा है, इसके (माया के) झंझट से मुक्त रह सका है ॥ १०२ ॥

द्राढी द्रेवाली, माया द्राइणि द्रुन्दरी।
सामी कयो जंहिं सभखे, समुझ खसे ख़ाली।
को गुर्मुख ज्ञानी रहे, खलि-खलि खों ख़ाली।
लूअँ लूअँ में लाली, प्रत्क्षु द्रिठी जंहिं पीअजी ॥ १०३ ॥

सामीजी कहते हैं, बड़े-बड़े दाँतों वाली डाइन माया ने सबका दिवाला निकाल दिया है। उसने सबकी बुद्धि नष्ट करके उन्हें रिक्त (खोखला विचारहीन) बना दिया है। ऐसा कोई ज्ञानी गुरुमुख ही जिसने रोम-रोम में (सर्वत्र) अपने प्रियतम की सत्ता को प्रत्यक्ष देखा है, इस माया के झंझट से बच सका है ॥ १०३ ॥

द्राठी द्रेवाली, माया द्रिठी मोहिणी।
लुटे कयाईं लोक जो, ख़ज़ानो ख़ाली।
सामी को सूरो बचियो, आशिकु अब्दाली।
पूरे गुर पाली, दया जंहिंते दर्स जी ॥ १०४ ॥

मोहिनी माया सबका दिवाला निकाल देती है, उसने लोगों के (ज्ञान रूपी) खज़ाने को लूटकर उसे रिक्त कर दिया है (लोगों ने अपनी सारी आयु माया के पीछे पड़कर नष्ट कर दी है)। सामीजी कहते हैं कि दु:खों को सहन करने वाला ऐसा दृढ़ प्रेमी ही, जिस पर कि पूर्ण गुरु ने कृपा की है तथा (परमात्मा) का दर्शन कराया है, इस (माया) से बच सका है ॥ १०४ ॥

ड्राढी देवाली, माया मुठी मोहिणी।
जंहि फुरे सभि फक़ीर कया, ख़लि ख़लि साँ ख़ाली।
सामी को साबितु रह्यो, आशिकु अकाली।
पूरे गुर पाली, दया पंहिंजे सिषते ॥ १०५ ॥

मोहिनी माया ने सबको लूटकर, सबका दिवाला निकाल दिया है तथा उन्हें फ़क़ीर बना दिया है। (माया के झंझट में सभी अपना मानव-शरीर नष्ट कर बैठे हैं)। सामीजी कहते हैं कि ऐसा कोई अकाली (जिसने काल को जीत लिया है) प्रेमी शिष्य ही, जिस पर कि पूर्ण (पहुँचे हुए) गुरु ने दया की है, वही इससे बच सका है ॥ १०५ ॥

ड्रिए ड्रेखारी, माया मोहे मूढ़नि खे।
समुझ खसे सामी चए, करे दिलि कारी।
रहे अलेपु आकास जाँ, को भाग्यवानु भारी।
जंहिंखे पीआरी, सतिगुर सुर्की सार जी ॥ १०६ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने तमाशा दिखाकर मूर्खों को मोह लिया है। वह (मनुष्यों की) बुद्धि को हरकर, उनके हृदय काले कर देती है (कपट से उनका मन मलीन कर देती है।) अत: ऐसा कोई महान् भाग्यशाली ही, जिसे कि सतगुरु ने आत्मरस का घूंट पिलाया है, इस (माया) से आकाश की तरह निर्लिप्त रह सकता है ॥ १०६ ॥

ड्रिठा सभि मगनु पाणोवाणे हाल में।
मने वेठा मन में, नाना भांइ मननु।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, रहे अलेपु अननु।
जंहि जीत्यो मनु, सामी सन्तनि साँ मिली ॥ १०७ ॥

सामीजी कहते हैं कि सब (मनुष्य) अपने ही हाल में मस्त दिखाई देते हैं, वे अपने मन में नाना प्रकार के सोच लिए बैठे हैं। करोड़ों में से ऐसा कोई एक व्यक्ति ही, जिसने कि सन्तों से मिलकर, अपने मन को जीत लिया है, निर्लिप्त एवं एकरस रह सकता है ॥ १०७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्रिठा सभि दुःखी, सान्ति वराए जगत्र में ।
ज्ञानी ध्यानी ग्रहस्ती, माया पात्र मुखी ।
कंहिंखे छद्रे कीन की, चिन्ता चाह भुखी ।
थियरा सन्त सुखी, सन्से रे सामी चए ।। १०८ ।'

सामीजी कहते हैं कि संसार में सभी (मनुष्य) शान्ति के सिवा दुःखी दिखाई देते हैं। ज्ञानी, ध्यानी तथा गृहस्थ, सभी माया में फँसे रहते हैं। चिन्ता तथा इच्छा की भूखी (माया) किसी को भी नहीं छोड़ती; केवल सन्त ही भ्रम-रहित हो सुखी हो सके हैं ।। १०८ ।।

अन्धनि खे ओलो, माया द्रिनो मोह जो ।
पाए भवनि पाणहीं, चिन्ता जो चोलो ।
सामी सुजागनि खे, कोन्हे भय भोलो ।
क्षमा खटोलो, पाए सुम्हयां पद में ।। १०९ ।।

माया ने अन्धों (अज्ञानी व्यक्तियों) को मोह में फँसा रखा है अतः वे चिन्ता रूपी चोला पहनकर (चिन्ता में डूबे) भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं, पर जो जागृत (ज्ञानवान) हैं उन्हें किसी प्रकार का भय एवं भ्रम नहीं है; वे आतमपद में आनन्द की सेज पर सो रहे हैं (आतम-आनन्द में लीन हैं।) ।। १०९ ।।

करे छद्रियो छलु, माया मोहिया जीअ सभि ।
कंहिंखां थिए कीनकी, पापिणि पासो पलु ।
को नेंही व्युसि निकिरी, निराधार निर्मलु ।
जंहिंखे बेहदि ब्रलु, सामी द्रिनो सतिगुरूअ ।। ११० ।।

माया ने छल से सभी जीवों को आकर्षित कर रखा है, यह पापिन, एक क्षण के लिए भी किसी का पिंड नहीं छोड़ती। सामीजी कहते हैं कि जिसे सतगुरु ने अनन्त शक्ति दी है, वही निर्मल स्वतन्त्र प्रेमी इस माया जाल से निकल सकता है ।। ११० ।।

करे जीअ कर्म, फाहीअ फाथा पाणहीं ।
सदा रहनि सन्सार जे, विसा मंझि वहम ।
को आशिकु चढ़ियो अछते, छद्रे कूड़ा कम ।
सामी द्रिसे सम, अन्दरि ब्राहरि आतमा ।। १११ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जीवों ने कर्म कर स्वयं ही अपने आप को (कर्म रूपी) फाँसी में फँसा दिया है, वे संसार के भ्रमों में सदैव खोये हुए से रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि कोई प्रेमी ही (संसार के) झूठे कर्मों को छोड़कर, ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, एवं एक ही आत्मा को बाहर तथा भीतर समान रूप से देख पाया है ॥ १११ ॥

करे ठगाई ठठु, माया मोहिया जीअ सभि ।
भवनि नितु भवण में, रखी हैबत हठु ।
ईहा ग़ाल्हि सही करे, ग्याति गुरूअ खों वठु ।
त कढी सम्ता मठु, सामी करेई शुधि मनु ॥ ११२ ॥

माया ने बाह्याडम्बर से सब जीवों को आर्काषित कर रखा है, अतः वे आतंक और अभिमान में सदैव इस संसार में भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं (ऐ मनुष्य) यह बात जानकर तू गुरु से ज्ञान ले, वही तेरे हृदय की समस्त कालिमा मिटाकर, उसे शुद्ध करेगा ॥ ११२ ॥

करे नानां छल, माया मोहे सभखे ।
कंहिखे छद्दे कीन की, खाली बिना ख़लल ।
के नेंही व्यसि निकिरी, निरासा निर्मल ।
जिनिखे समुझ सब्रल, सामी द्रिनी सतिगुरूअ ॥ ११३ ॥

अनेक प्रकार के छल-बल दिखा करके माया सबको आर्कषित करती है। वह किसी को भी बुराई से ख़ाली नहीं छोड़ती (सबकी बुराई करती रहती है)। सामीजी कहते हैं जिन्हें सतगुरु ने तीक्ष्ण बुद्धि दी है, वही निर्मल तथा आशा-वासना-रहित प्रेमी इस (माया) से बच पाता है ॥ ११३ ॥

अण हूंदी रांदि रची, माया मोह ममत्व जी ।
तंहिं में मति मर्म रे, मूर्ख मरनि पची ।
को प्रेमी मिल्यो पीअ सां, बला खां बची ।
जंहिखे समुझ सची, सामी द्रिनी सतिगुरूअ ॥ ११४ ॥

माया ने मोह और ममता का जो अस्तित्वहीन खेल रचा है, उसमें मूर्ख बुद्धिहीन ही निर्लज्ज हो कर पचते (अर्थात् डूबते और) मरते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि जिसे सतगुरु ने सत्य को समझने की शक्ति दी है, वही प्रेमी इस माया रूपी नागिन से बच कर प्रियतम से मिल पाता है॥ ११४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अण हून्दी हर्कत, माया रचे रासि की ।
तंहिंमें लोक लुढ़ी विया, मूर्ख मन जे मत ।
आशिक चढ़िया अछ्ते, लिवँ सां हणी लत ।
कटे सभ कल्पत, सीतलु थिया सामी चए ।। ११५ ।।

माया ने अस्तित्वहीन बाज़ी (यानी खेल) रचकर तैयार किया है, जिसमें कितने ही मूर्ख मन के विचारों (मनोरथों) में पड़कर बह गये हैं । सामीजी कहते हैं पर कुछ प्रेमी भक्त ही प्रेम के वशीभूत होकर, माया को ठुकरा कर, भ्रमों को काटकर, ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होकर शान्त हो सके हैं ।। ११५ ।।

अण हूंदी रांदि रची, नारायण नानत जी ।
तंहिंमें मोआ केतिरा, मुर्ख लोक पची ।
पांदु खणी पधिरी कई, कंहिं औधूत अची ।
जंहिखे समुझ सची, सामी ड्रिनी सतिगुरूअ ।। ११६ ।।

नारायण ने भेद (वास्तव में आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं, पर ज्ञान के अभाव में यह भेद साफ़ दिखाई देता है) का अस्तित्वहीन खेल रच रखा है, जिसमें कितने ही मूर्ख (अज्ञानी मनुष्य) पचते (डूबते और) मरते हैं । सामीजी कहते हैं, जिस अवधूत (प्रेमी) को सतगुरु ने सच्ची बुद्धि (सच्चा ज्ञान) दी है वही अज्ञान के इस आवरण को हटाकर वास्तविक रहस्य का पता पा सका है ।। ११६ ।।

खिल सां मति खसे, माया वदी जीअ जी ।
दौड़े पंहिंजो पाणहीं, फाहीअ मंझि फसे ।
तंहिंखे ड्रिसे कीन की, जो हाज़ुरु हरि वसे ।
जे सतिगुरू राह ड्रसे, त सुखी थिए सामी चए ।। ११७ ।।

माया ने खेल ही खेल में जीव की बुद्धि हर ली है, जिससे वह माया-जाल में फँसकर, स्वयं ही भटक रहा है । सामीजी कहते हैं कि वह (जीव) सर्वव्यापक परमात्मा को नहीं देख पाता, पर जब उसे सतगुरु रास्ता सुझा (बता) देता है तब वह सुखी हो जाता है ।। ११७ ।।

काया ऐं माया, कूड़ी सभि कल्पत जी ।
जींए फोटो जल में, दर्ख़त जी छाया ।
जेके जगि आया, से सामी रहिया कीन की ।। ११८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि जल के बुदबुदे तथा वृक्ष की छाया की तरह काया एवं माया का प्रपंच झूठा है, क्योंकि जो भी इस संसार में आये हैं वे सदा नहीं रह पाये हैं (बुदबुदे तथा वृक्ष की परछाई की तरह सभी मनुष्य तथा वस्तुएँ अस्थिर और नाशवान हैं।) ॥ ११८ ॥

रचे मनु ख़ललु, फाहीअ फाथो पाणही ।
सामी समुझे कीनकी, मूर्खु माया छलु ।
सान्ति न पाए मृघ जाँ, ड्रिसी मृघी जलु ।
तड्रीं थिए अचलु, जड्रीं पर्ची ड्रिसे पाणखे ॥ ११९ ॥

सामीजी कहते हैं कि मन ने भ्रम रचकर उसकी फाँसी में अपने आप को फँसा रखा है, वह मूर्ख मन, माया के छल-बल को नहीं समझता है। वह मृग की तरह मृगतृष्णा में शान्ति नहीं पाता। (जिस प्रकार मृग मरुभूमि में सूर्य की किरणों में चमकती हुई रेत को पानी समझकर उसके पीछे बेचैन हो दौड़ता रहता है, पर कभी शान्ति नहीं पाता, उसी प्रकार मनुष्य भी माया के चमकते हुए रूप के पीछे भटकता रहता है पर उसे कभी शान्ति नहीं मिलती)। पर जब मनुष्य अपने भीतर झाँककर देखता है, तभी वह स्थिरता (शान्ति) प्राप्त कर पाता है ॥ ११९ ॥

रन विधो रोलो, जुदाईअ जो जग में ।
सामी कयांई सभ खे, पिनाए पोलो ।
कंहिं गुर्मख हंयुसि ज्ञान जो, ग़ैबी गुलेलो ।
अणहून्दो भोलो, मेटे वेठो मन मों ॥ १२० ॥

सामीजी कहते हैं इस छलिनी माया ने संसार में (ईश्वर और जीव के बीच) विछोह डाल दिया है, तथा सभी मनुष्यों को भटका कर खोखला बना दिया है (आत्म धन से वंचित कर दिया है)। कोई गुरुमुख ही ज्ञान के रहस्य का गुलेल चलाकर अपने मन से माया के अस्तित्वहीन भ्रम को नष्टकर सका है ॥ १२० ॥

रोलो विधो रन, जुदाईअ जो जग में ।
मारे मुंझाए सब खे, धारे नाना वन ।
सोंटो हंयुसि सम जो, कंहिं जागये साधूजन ।
समुझी वेद वचन, सामी चढ़ियो च्रिटते ॥ १२१ ॥

इस छलिनी माया ने संसार में बिछोह डाल दिया है, (आत्मा तथा परमात्मा में बिछोह करा दिया है), तथा नाना प्रकार के रूप धारण कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सबको उलझाकर नष्ट कर दिया है। कोई जागृत साधु पुरुष ही वेदों के वचनों को समझकर, समता रूपी सोंटे (डंडे) से इस माया पर प्रहार कर आत्मज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो सका है ॥ १२१ ॥

वञे थी वही, ख़लिक़ त पंहिंजे ख़्याल में ।
व्रिले कंहिं गुर्मुख कई सामी ग़ाल्हि सही ।
चढ़ियो अन्भय अछ ते, पंजई दूत दही ।
करे राज़ु रही, बेग़मपुरि शहर जो ॥ १२२ ॥

सामीजी कहते हैं कि मनुष्य अपने विचार-प्रवाह में बहते जाते हैं। कोई विरला गुरुमुख ही वास्तविक बात जानकर, पाँचों ही दूतों (काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार) को मारकर आत्मज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है तथा चिन्ताहीन देश का राज्य भोग सकता है (चिन्तामुक्त होकर आत्मानन्द में लीन रह सकता है।) ॥ १२२ ॥

वञे सभि वहन्दी, ख़लिक़ ख़ाम ख़्याल में ।
व्रिले कंहिं गुर्मुख लधी कृपा साणु कन्धी ।
चढ़ियो चेतन चिट ते, लिवं सां लकु ब्रन्धी ।
मेटे चङी मन्दी, सामी सम सीतलु थियो ॥ १२३ ॥

लोग (माया के) व्यर्थ के विचार-प्रवाहों में वह जाते हैं। कोई विरला गुरुमुख ही (परमात्मा की) कृपा से किनारा ढूँढ़ पाता है (माया रूपी सागर से पार हो पाता है।) सामीजी कहते हैं कि वह प्रेम के रास्ते से ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है तथा समता अपना कर, भलाई एवं बुराई को मिटा कर शान्ति प्राप्त करता है ॥ १२३ ॥

वञे सभि वहन्दी, ख़लिक़ सभि ख़्याल में ।
सति ज्ञाणी संसार जी, बिना नीर नन्दी ।
व्रिले कंहिं गुर्मुख लधी, कृपा साणु कन्धी ।
जंहिंखे प्रेम पन्धी, सामी द्रिनी सतिगुरूअ ॥ १२४ ॥

सब लोग माया के विचार-प्रवाह में बहते जाते हैं, वे जल-रहित (असार) संसार रूपी नदी को सत्य मान बैठे हैं। (असार संसार को सत्य मान बैठे हैं।) सामीजी कहते हैं कि जिसे सतगुरु ने प्रेम का उपदेश दिया है, वह गुरुमुख भक्त ही गुरु की कृपा से किनारा ढूँढ सका है। (माया रूपी सागर से पार हो सका है।) ॥ १२४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वञे सभि वहन्दी, ख़लिक़ ख़ाम ख़्याल में ।
सति ज्ञाणी स्वप्न जी, बिना नीर नन्दी ।
विरले कंहिं गुर्मुख लधी, कृपा साणु कन्धी ।
मेटे चङी मन्दी, सामी जुर्यो स्वरूप सां ।। १२५ ।।

सब लोग माया के व्यर्थ के विचार-प्रवाह में बहते जाते हैं। वे स्वप्न की जल-रहित (संसार रूपी) नदी को सत्य मान बैठे हैं (झूठे तथा असार संसार को सत्य मान बैठे हैं।) सामीजी कहते हैं कोई बिरला गुरुमुख ही (परमात्मा की) कृपा से (माया रूपी सागर का) किनारा पा सका है तथा भलाई एवं बुराई को मिटाकर स्व-रूप (परमात्मा) से जा मिला है ।। १२५ ।।

वञे सभि वही, ख़लिक़ त पंहिंजे ख़्याल में ।
विरले कंहिं गुर्मुख कई, सामी ग़ाल्हि सही ।
चढ़ियो अन्भय अछते, पंजई दूत दही ।
करे राज़ु रही, बेहद बेग़मपुरि जो ।। १२६ ।।

सामीजी कहते हैं कि सब लोग तो अपने-अपने विचार-प्रवाहों में बहते जाते हैं; केवल कोई विरला गुरुमुख ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकता है जिससे कि वह पाँच दूतों (काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार) को मारकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है; तथा चिन्ता रहित देश का राज्य करता है। (वह उस स्थिति को प्राप्त करता है जहाँ चिन्ता का नामो-निशान तक नहीं, केवल आनन्द ही आनन्द है और वह उस आनन्द का ही उपभोग करता रहता है) ।। १२६ ।।

वञे सभि वहन्दी, ख़लिक़ ख़ाम ख़्याल में ।
सामी लधी साध संगि, कृपा साणु कन्धी ।
पहुतो पूरणु पद में, क़ाबू कर्म ब्रन्धी ।
दया दर्दवन्दी, मुखि रखी मौजाँ करे ।। १२७ ।।

सामीजी कहते हैं कि सब लोग व्यर्थ के विचार-प्रवाहों में बहते जाते हैं। कोई विरला मनुष्य ही साधुओं के संग तथा कृपा से (माया रूपी सागर का) किनारा ढूँढ लेता है और अपने कर्मों के बन्धनों को काटकर पूर्णपद को प्राप्त करता है, तथा दयालु और करुणामय (दूसरों के दुःख को जानने वाले परमात्मा) की ओर उन्मुख होकर आनन्द प्राप्त करता है ।। १२७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विधा जीअ लुटे, माया सभि ममत्व में ।
ब्रधांई ब्याईअ जे, नोड़ीअ साणु घुटे ।
भर्म मंझि भुली करे, रात्यूं द्रींह भिटे ।
सामी तद्रीं छुटे, जद्रीं पहुंचे पूरणु पद ते ।। १२८ ।।

माया ने सब जीवों को मोह में डालकर लूट लिया है, तथा उन्हें द्वेष की रस्सी से बाँध उनकी सांसों को रोक दिया है (उन्हें बेहाल कर दिया है)। वे अपने (स्वरूप) को भूलकर दिन-रात भ्रमों में भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, वे (इन भ्रमों से) तभी मुक्ति पाते हैं जब कि पूर्णपद (आत्मपद) को प्राप्त कर लेते हैं ।। १२८ ।।

विधा जीअ लुटे, माया सभि मर्म रे ।
ब्रधांई ब्याईअ जे, नोड़ीअ साणु घुटे ।
सन्से जे सोटियुनि साँ, रात्यूं-द्रींह कुटे ।
को व्रिले जनु छुटे, जंहिंखे सामी मिल्यो सतिगुरू ।।१२९।।

माया ने सब जीवों को लूटकर निर्लज्ज बना दिया है; तथा उन्हें द्वेष की रस्सी से बाँधकर, उनकी साँसों को रोक दिया है (उन्हें बेहाल कर दिया है)। वह दिन-रात उन्हें भ्रम के डंडे से कूटती रहती है। सामीजी कहते हैं, जिस विरले-पुरुष को सद्गुरु मिल जाता है, वही इस (माया) से मुक्ति पाता है ।। १२९ ।।

विधा सभि केरे, माया जीअ महल मों ।
छद्रयाईं छल वल साँ, हिर्स मंझि हेरे ।
वेठो मूंहुं फेरे, सामी चए स्वरूप खों ।। १३० ।।

सामीजी कहते हैं कि माया ने सब जीवों को महल (आत्मपद) से गिरा दिया है (आत्मानंद से वंचित कर दिया है)। इस (माया) ने सब को छल या कपट से लालच में फँसा दिया है, अतः सभी लोग (परमात्मा के) स्वरूप से मुख मोड़ बैठे हैं ।। १३० ।।

द्रे नितु माया मार, करे ज़ेरि जीअनि खे ।
भवनि भौसागर में, रोअनि ज़ारौ ज़ार ।
कयुसि गुमु ग्याति साँ, कहिं हर्जन हुश्यार ।
जंहिंखे सुर्ति सम्भार, सामी द्रिनी सतिगुरूअ ।। १३१ ।।

माया जीवों को अपने अधीन कर, उन्हें सदैव मार देती रहती है अतः वे अश्रु बहाते हुए अन्यन्त दुःखी होकर संसार-सागर में भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं जिस हरि के प्रवीण भक्त को सद्गुरु ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज्ञान व बुद्धि दी है, वह अपने ज्ञान से उस (माया) को लुप्त कर देता है (माया से मुक्त हो जाता है) ॥ १३१ ॥

नाना रूप धरे, माया मोहे सभखे ।
भोग भोगाए भर्म जा, फुरे फक़ीरु करे ।
विलो को गुर्मुख रहे, प्रेमी पाकु परे ।
जंहिं ड्रे नज़र भरे, सामी ड्रिठो सतिगुरूअ ॥ १३२ ॥

माया नाना प्रकार के रूप धारण कर, सब (जीवों) को आकर्षित करती है तथा उन्हें भ्रमों के भोग भुगताकर, (विषय-वासनाओं में उलझा कर) और लूटकर फकीर बना देती है (आत्म-धन से वंचित कर देती है)। सामीजी कहते हैं पर पवित्र, विरला प्रेमी गुरुमुख व्यक्ति ही जिसे कि सद्गुरु ने (दया) दृष्टि से देखा है, वही इस (माया) से दूर रहता है ॥ १३२ ॥

नाना रूप धरे, माया मोहियो सभखे ।
सामी बचियो को सूर्मो, सतिगुरु सम्भारे ।
जाड्रे निहारे, ताड्रे सज्ञणु सामुहों ॥ १३३ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने नाना प्रकार के रूप धारण कर सबको आकर्षित कर लिया है, पर कोई शूरवीर (ज्ञानी) जिसे सद्गुरु ने याद किया है (जिस पर सद्गुरु की कृपा है) वह इस (माया) से बच गया है; अतः अब वह जहाँ भी दृष्टि उठाता है, वहाँ उसे सामने प्रियतम (परमात्मा) ही दिखाई देता है ॥ १३३ ॥

पर्छिन्ता पलीतु, कया जीअ जहान जा ।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, रहे अलेपु अतीतु ।
पर्ची लधो जंहिं पंहिंजो, आदी अन्भय मीतु ।
सदाई सुजींतु, सामी रहे स्वभाव में ॥ १३४ ॥

सामीजी कहते हैं कि नश्वर-मायावी प्रपंच ने संसार के जीवों को पलीत (अपवित्र) कर दिया है। करोड़ों में से कोई एक ही इस (माया) से अलग एवं निर्लिप्त रहता है। जिसने प्रेम से अपना आदि-ज्ञान रूपी मित्र ढूँढ लिया है। (जिसने आत्मज्ञान को ही अपना मित्र बना लिया है), वह सदैव जागृत होकर अपने ही भावों में (मस्त) रहता है ॥ १३४ ॥

पर्छिन्ता पलीतु, कया जीअ जहान जा ।
सामी थियो को साध संगि, प्रेमी परम पुनीतु ।
जागी जंहिं जुगति साँ, जीत्यो मनु अजीतु ।
तन में तुर्यातीतु, प्रत्क्षु ड्रिसे पाणखे ॥ १३५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि नश्वर-मायावी प्रपंच ने संसार के जीवों को पलीत (अपवित्र) कर दिया है। वह परम प्रेमी ही साधुओं के संग से इस (माया) से पवित्र (अप्रभावित) रह सका है जिसने जागृत होकर (ज्ञान की) युक्ति से अजीत मन को जीत लिया है एवं अपने शरीर (आप) में ही साक्षात् चेतन परमात्मा को प्रत्यक्ष देखा है ।। १३५ ।।

पछिन्ता पिटाए, मारे मूर्खनि खे।
पाणु पंहिंजो पाण में, वेठा विञाए।
सुत्ह सिधि स्याणनि डि्ठो, उल्टी लिवं लाए।
पूरणु पद पाए, सामी माणिनि सान्ति सुखु ।। १३६ ।।

नश्वर-मायावी प्रपंच मूर्खों (अज्ञानी लोगों) को भटका-भटका कर मार (नष्ट कर) देता है। वे अपने अहं में अपने आप (स्वरूप) को खो बैठे हैं। सामीजी कहते हैं कि बुद्धिमानों ने (संसार से) विरक्त होकर, प्रेम से अपने आप (परमात्मा) को देखा है अतएव वे पूर्ण-पद प्राप्त कर आत्म-सुख लूट रहे हैं ।। १३६ ।।

पिटीअ खों पालो, व्रिलो को गुर्मुख रहे।
जंहिंखे डि्नो सतिगुरूअ, निर्भय नवालो।
करे न कतर जेत्रो, कल्पत कशालो।
सदा सुखालो, सम वर्ते सामी चए ।। १३७ ।।

दुष्टा माया से वही विरला गुरुमुख दूर रहता है, जिसे सद्गुरु ने निर्भय बना देने वाला (ज्ञान का) उपदेश दिया है। सामीजी कहते हैं कि वह रत्ती भर भी कष्टदायिनी (माया) का कष्ट नहीं उठाता है बल्कि समता का व्यवहार कर, सदैव सुखी रहता है ।। १३७ ।।

फाहीअ विन फथो, सभुको माया मोह में।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, मूर्ख हणनि मथो।
व्रिले कंहिं गुर्मुख जो, सामी भर्मु लथो।
लोई शाल खथो, ज्ञाणे अन्भय उन जो ।। १३८ ।।

सब (जीव) माया-मोह की फन्द-रहित (झूठी) फाँसी में फँस गये हैं। (माया की झूठी एवं काल्पनिक फाँसी में फँस गये हैं)। वे मूर्ख संसार को सत्य मानकर व्यर्थ ही अपना सिर खपा रहे हैं (कष्ट उठा रहे हैं)। सामीजी कहते हैं उसी विरले-गुरुमुख का ही भ्रम दूर हुआ है जिसने कम्बल, शाल तथा कफ़न को एक ही ज्ञान रूपी ऊन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

से बना हुआ समझ लिया है। (जो सब मनुष्यों में एक ही आत्मा का दर्शन कर प्रेम करता रहता है वही आत्मज्ञानी है।) ॥ १३८ ॥

फाहीअ रे फाथी, ख़लिक़त ख़ाम ख़्याल में।
सामी मारे सभ खे, स्वप्न जो हाथी।
जाग़ी कंहिं जतन रे, ओति पोति लाथी।
सदा संग साथी, द्रिसे अन्भय आत्मा ॥ १३९ ॥

सामीजी कहते हैं कि सभी लोग विचारों की फन्द-रहित झूठी फाँसी में फँस गये हैं, स्वप्नवत् (संसार-रूपी) हाथी सब को मारता रहता है (सांसारिक बातों में ही अपना अमूल्य जीवन नष्ट करते रहते हैं)। किसी एक जागृत व्यक्ति ने ही बिना यत्न (आसानी से यह झूठा आवरण हटा दिया है। वह सदैव आत्मा को ही अपने साथी के रूप में देखता है ॥ १३९ ॥

फुरे फिकिल साणु, सभखे माया मोहिणी।
लड्डू खाराए लोभ जा, करे महबत माणु।
रहे अलेपु आकास जाँ, को साधू जनु सुज्ञाणु।
पले रख्याऊं पाणु, सामी भेद भर्म खों ॥ १४० ॥

मोहिनी माया ने सब (जीवों) को अपने फँदे में डालकर लूट लिया है। वह झूठे प्रेम से सब को लोभ के लड्डू खिलाती है। सामीजी कहते हैं, कुछ सज्जन साधु-जन ही भेद तथा भ्रम से अपने को दूर रखकर, आकाश की तरह निर्लिप्त रहते हैं ॥ १४० ॥

ब्रधनि खे ब्रोड़े, थी सामी लहर समुन्द्र जी।
तिनिखे चए कीन की, जे सन्त छद्रिया छोड़े।
वेठा मूंहुं मोड़े, जगत खों, जगदीस द्रे ॥ १४१ ॥

सामीजी कहते हैं (माया में) बँधे हुए लोगों को समुद्र की लहर (सांसारिक झंझट) डुबो देती है। पर जिन्हें, सन्तों ने (माया से) मुक्त कर दिया है, उनका वह कुछ भी नहीं बिगाड़ती है, अतः वे संसार से मुख मोड़ कर जगदीश्वर की तरफ मुख किये बैठे हैं ॥ १४१ ॥

ब्रधी कयो ब्रान्हो, माया मूर्खनि खे।
खसे ख़ाम ख़्याल साँ, खिम्या ख़ज़ानो।
सामी बचियो साध संगि, को दर्दबन्द दानो।
निर्भय निशानों, द्रिठो जंहिं अन्भई ॥ १४२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया ने मूर्खों को बाँध कर ग़ुलाम बना दिया है। वह व्यर्थ के विचारों से (उन्हें व्यर्थ के विचार प्रवाह में उलझाकर) उनका आत्मिक ख़ज़ाना छीन लेती है। सामीजी कहते हैं कि कोई बुद्धिमान् प्रेमी ही साधुओं के संग से इस (माया) से बच गया है तथा अन्तर्मुख हो कर निर्भय निशान (निर्भय बना देने वाले परमात्मा को) देख लिया है ॥ १४२ ॥

ॿधो सभु जहानु, माया फासीअ फन्द रे।
पर्ची रहनि पिण्ड साँ, भुलाए भगिवानु।
जागी कढनि कीन की, अन्दर मों अभिमानु।
को सामी पुरुष सुजानु, समुझी चढ़ियो सीर ते ॥ १४३ ॥

माया ने सारे विश्व को बिना फन्दे वाली फाँसी से बाँध लिया है अतः वे (संसार के लोग) परमात्मा को भूल कर शरीर में ही प्रसन्न रहते हैं (शरीर से ही प्रेम करते हैं)। सामीजी कहते हैं कि वे जागृत हो कर हृदय से अभिमान नहीं निकालते हैं, केवल कोई सज्जन पुरुष ही सोच समझकर परमात्मा की ओर उन्मुख होता है ॥ १४३ ॥

ॿयाईअ मंझि ॿुड़ी, मूर्ख मोआ केतिरा।
सामी को साधू लंघे, पियो कृपा साणु कुड़ी।
चाढ़ी जंहिं गुर ग्याति साँ, गगन मंझि गुड़ी।
तोड़े करे लाॾु, लुड़ी, तांभी सीतलु रहे स्वभाव में ॥ १४४ ॥

कितने ही मूर्ख द्वैत (रूपी समुद्र) में डूब कर मर गये हैं। सामीजी कहते हैं कोई साधु ही (परमात्मा की) कृपा से छलाँग मार कर पार हो गया है एवं गुरु के ज्ञान से उसने अपने प्राण दसवें द्वार† में चढ़ा दिये हैं। यद्यपि लटके वाली (माया) उससे लाड़-प्यार करती रहती है (उसे अपनी ओर आकर्षित करती है) फिर भी वह अपने ही भावों में शीतल (शान्त) रहता है ॥ १४४ ॥

---

† दसवाँ द्वार—मानव-शरीर के अन्दर नौ छिद्र हैं, जिनमें दो छिद्र नाक के हैं, दो कान के हैं, दो आँखों के हैं, एक मुंह, एक लिंग, एक गुदा का। दसवाँ द्वार ब्रह्मरन्ध्र कहलाता है। यह मस्तक के मध्य में माना जाने वाला एक छेद है, जिससे होकर प्राण निकलने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होना माना जाता है। जो साधक ब्रह्मरन्ध्र की साधना कर लेता है, वही ज्ञानी कहलाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्याईअ मंझि ब्रोड़े, माया छद्रियो मूढ़नि खे ।
मरनि मति मर्म रे, सदा सिरु फोड़े ।
को प्रेमी लंघे पारि पियो, सामी मुंहुं मोड़े ।
वेठो वंञु खोड़े, आदी अन्भई घर में ॥ १४५ ॥

माया ने मूर्खों को द्वैत (की भावना) में डुबो दिया है अतः वे निर्लज्ज एवं बुद्धिहीन हो अपना सिर फोड़कर (कष्ट उठाकर) मर रहे हैं। सामीजी कहते हैं कोई प्रेमी ही (माया से) मुख मोड़कर (द्वैत रूपी समुद्र से) पार हो गया है तथा अपने आदि ज्ञान (आत्मिक ज्ञान) रूपी घर में धूनी रमाकर बैठा है ॥ १४५ ॥

विना गप गपी, पिया सभि जीअ जहान जा ।
मरनि मति मर्म रे, खपित मंझि खपी ।
कंहिं सुजागे सूर्मे, कल्पन गंढि कपी ।
जंहिं खे ग़ाल्हि छिपी, सामी ब्रुधाई सतिगुरूअ ॥ १४६ ॥

संसार के सब जीव (माया के) झूठे कीचड़ में फँस गये हैं। वे निर्लज्ज तथा बुद्धिहीन होकर, (माया के) झंझट में अपने आप को खपा-खपा कर मार रहे हैं (नष्ट कर रहे हैं)। सामीजी कहते हैं उसी जागृत शूरवीर (ज्ञानी व्यक्ति) ने ही कल्पना की गांठ काट ली है जिसे सद्‌गुरु ने छिपी हुई बात (ज्ञान का रहस्य) बता दी है ॥ १४६ ॥

बिना गप गपी, पिया सभि जीअ जहान जा ।
मरनि मति मर्म रे, खफ्ति मंझि खपी ।
कंहिं सुजागे सूर्मे, सामी कल्प कपी ।
जंहिंखे छुटे छिपी, लख्य लखाई अन्भई ॥ १४७ ॥

संसार के सब जीव (माया के) झूठे दलदल में फँस गये हैं। वे निर्लज्ज एवं बुद्धिहीन होकर, (माया के) गोरख-धंधे में अपने को खपा-खपाकर (कष्ट उठाकर) मार रहे हैं (नष्ट कर रहे हैं)। सामीजी कहते हैं, उसी जागृत शूरवीर (ज्ञानी) ने कल्पना (प्रपंच) को काट दिया है जिसे मुक्त (माया से मुक्त सद्‌गुरु) ने अन्तर्ज्ञान का लक्ष्य (रास्ता) दिखा दिया है ॥ १४७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बिना ज्ञाति ग़ुलाम, मूर्ख माया जा थिया।
हर्दमि हथ ब्रधी करे सामी कनि सलाम।
रहनि अलेपु आकास जाँ, के नेहीं निरब्राण।
जिनिखे रम्ता राम, पाण लखायो पाण में ॥ १४८ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख ज्ञान के अभाव में माया के ग़ुलाम बन गये हैं। वे सदैव हाथ बाँधकर (गुलामों की तरह) सलाम करते रहते हैं। पर कुछ (माया से) मुक्त प्रेमी, आकाश के समान निर्लिप्त रहते हैं क्योंकि उन्हें व्यापक ब्रह्म ने अपने आप को दिखा दिया है (उन्होंने अपने भीतर ही परमात्मा का दर्शन कर लिया है) ॥ १४८ ॥

बिना ड्रर ड्ररी, मूर्ख मरनि ममत्व में।
मृघ तृष्णा जे जल जी, सघनि न सिन्धु तरी।
स्याणनि खे सामी चए, पेई ख़बर खरी।
सटे भर्म भरी, माणिनि सुखु स्वरूप जो ॥ १४९ ॥

मूर्ख (अज्ञानी लोग) ममता में पड़कर, (माया के) झूठे भय से भयभीत होकर मर रहे हैं। वे मृगतृष्णा के जल रूपी समुद्र को पार नहीं कर सकते हैं। (जिस प्रकार मरुभूमि में प्यासा मृग चमकती हुई रेत को पानी समझकर, अपनी प्यास मिटाने के लिए दौड़ता ही रहता है, पर कभी भी तृप्त नहीं होता और अन्त में अपने प्राण तक खो बैठता है, उसी प्रकार संसार के लोग चमकती हुई रेत के समान माया के पीछे पड़कर अपने आप को नष्ट कर देते हैं, पर कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं कर पाते अर्थात् माया से मुक्त नहीं होते हैं।) सामीजी कहते हैं पर बुद्धिमानों (ज्ञानवानों) को वास्तविक बात का पता लग गया है, अतः वे भ्रम रूपी गठरी को पटककर (माया से मुक्त होकर) स्व-रूप का सुख भोग रहे हैं (ब्रह्मानंद में मस्त हैं) ॥ १४९ ॥

बिना ड्रर ड्ररे, ज्ञगतु सभोई जीअ में।
नांगु ज्ञाणी नोड़ीअ खे, सघे न धीर धरे।
वह्यो वञे वीचार रे, कूड़ी कल्प करे।
जन्मे ऐ मरे, स्वप्न में सामी चए ॥ १५० ॥

सामीजी कहते हैं कि सारा संसार हृदय में झूठे भय से भयभीत हो रहा है। (भ्रम के कारण) वह रस्सी को सर्प मान कर अधीर हो उठा है तथा झूठे भ्रमों में विचारहीन होकर बह रहा है। और (इस प्रकार) स्वप्न में ही जन्म तथा मृत्यु को प्राप्त करता रहता है ॥ १५० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिना डूर डूरे, जग़तु सभोई जीअ में।
पछिन्न ज्ञाणी पाण खे, जन्मे नितु मरे।
पूरणु डि्से पीअ खे, को नेहीं नेण भरे।
जंहिते हथु धरे, सामी पूरो सतिगुरू ।। १५१ ।।

सारा संसार हृदय में झूठे भय से भयभीत हो रहा है, वह अपने को क्षणभंगुर मानकर सदैव जन्म एवं मृत्यु को प्राप्त होता रहता है (वास्तव में आत्मा न मरता है, न जन्मता है, केवल शरीर ही जन्म-मरण के चक्कर में रहता है, पर माया के कारण मनुष्य अपने को आत्मा न मानकर नश्वर-शरीर ही मान बैठता है और सदैव भयभीत होता रहता है)। सामीजी कहते हैं पर कोई प्रेमी जिस पर सद्गुरु ने अपना पूरा हाथ रखा है (दया की है) वह नेत्र भरकर (जी भर कर) पूर्ण प्रियतम को देखता रहता है ।। १५१ ।।

बिना मुख खाई, सन्सो वियो सन्सार खे।
कंहिजी चले कान का, स्याणप चतुराई।
इहा ग़ाल्हि समुझ में, कंहि गुर्मुख खे आई।
तंहिजी समाई, सामी सुर्ति स्वरूप में ।। १५२ ।।

मुख-रहित भ्रम ने संसार को निगल लिया है; उसके आगे किसी की भी विद्वत्ता तथा चतुराई नहीं चलती है। सामीजी कहते हैं पर जिस गुरुमुख ने यह (रहस्यपूर्ण) बात समझ ली है, उसकी बुद्धि (परमात्मा के) स्वरूप में समा गई है। (वह स्वरूप से तद्रूप हो गया है।) ।।१५२।।

भारी पटु पियो, अग्यों वाच अवाच जो।
साक्षीअ खे सामी चए, तंहिं जोड़े जीउ कयो।
अणहून्दे दर्याह जे, वह में वञी पियो।
जद्रीं साधूअ संगि थियो, तदीं जाग़ी जुर्यो पाण में ।। १५३ ।।

सामीजी कहते हैं कि अवाच (अकथनीय परमात्मा) के आगे माया का भारी आवरण आ पड़ा है, जिससे जीव ने साक्षात् (आत्मा) को शरीर से जोड़ लिया है (माया के कारण जीव अपने को आत्मा न मानकर नश्वर शरीर ही मान बैठा है।) वह (माया के) अस्तित्वहीन समुद्र के प्रवाह में जा पड़ा है। पर जब उसे साधुओं का संग प्राप्त हुआ, तब वह जागृत हो अपने आप (परमात्मा) से जा मिला है। ।। १५३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारी हिक बला, वेढ़े वेई सभखे।
जोड़े जीअनि खे, थी हणे रात्यू ड्रींह खला।
मोड़े मूंहुं मुठीअ खों, वेठा के व्रिला।
जिनिखे ज्ञान कला, सामी ड्रिनी सतिगुरूअ ॥ १५४ ॥

एक अत्यन्त ही बड़ी नागिन (माया) ने सबको घेर रखा है। वह जीवों को बाँधकर, दिन-रात उन्हें डंक मारती रहती है (बेचैन और दुखी बनाती है।) सामीजी कहते हैं पर जिन विरले-मनुष्यों को सद्गुरु ने ज्ञान की कला सिखाई है (उपदेश दिया है), वे इस दुष्टा से मुख मोड़ बैठे हैं। ॥ १५४ ॥

भुली सभु सन्सारु, देही मने पाणखे।
जन्मे, मरे दुःख सहे, छद्दे न अहंकारु।
व्रिले कंहिं गुर्मुख कयो, वास्तव वीचार।
ड्रिसी साक्षी सारु, सन्मुखु थियो सामी चए ॥ १५५ ॥

संसार के सब लोग (माया में) अपने (स्वरूप) को भूलकर, अपने आपको शरीर मान बैठे हैं। वे दुःख सहन कर, जन्मते एवं मरते रहते हैं पर फिर भी अहंकार नहीं छोड़ते हैं। सामीजी कहते हैं विरले-गुरुमुख ने ही वास्तविक विचार कर अपने सम्मुख साक्षात् परमात्मा को देखा है ॥ १५५ ॥

भुली हिन बन्दे, ख़ासु ख़ज़ानो गुमु कयो।
खणी विधांई पाण खे, धिके मंझि धन्धे।
ड्रीओ ब्रारे घर जो, ड्रिठो कीन अन्धे।
प्रीं पाण कन्दे, सहायता सामी चए ॥ १५६ ॥

यह बन्दा (माया में) अपने आप को भूलकर, विशेष निधि (ज्ञान का ख़ज़ाना) से हाथ धो बैठा है। इसने स्वयं ही अपने को (माया के) झंझट में धकेल दिया है। इस अन्धे (अज्ञानी) ने (हृदय रूपी) घर में (ज्ञान का) दीपक जलाकर नहीं देखा है। सामीजी (मनुष्य को उत्साहित करके) कहते हैं कि परमात्मा स्वयं आकर तेरी सहायता करेगा (यदि तू ज्ञान का दीपक जलाने की कोशिश मात्र करेगा।) ॥ १५६ ॥

महा प्रब्रल ज्ञाणु, माया महबूबनि जी।
सामी सभ कंहिं जो, जंहिं भुलायो पाणु।
साक्षी रहे साणु, सो नज़रि अचे कीन की ॥ १५७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी (मनुष्यों से) कहते हैं कि प्रियतम की माया को अत्यन्त ही प्रबल जान। इस (माया) ने सब (जीवों) को अपने स्वरूप से भुला दिया है अतः जो (परमात्मा) सदैव साथ रहता है, वह (माया के कारण) दिखाई ही नहीं देता है ॥ १५७ ॥

महा प्रब्रलु माया, तरी सघे कोन को।
जंहि सिध साधिक जोगी जती, भय में भुलाया।
मने वेठा पाणखे, कल्पत जी काया।
सतिगुर छद्राया, सामी, छुटा से दुःख खों ॥ १५८ ॥

माया अत्यन्त ही प्रबल है, इससे कोई भी पार नहीं हो सकता है। इस (माया) ने सिद्ध, साधक, योगी एवं यति, सबको भय से भ्रमित कर दिया है, अतएव वे स्वयं को झूठा (नश्वर) शरीर ही मान बैठे हैं। सामीजी कहते हैं पर जिसे सद्गुरु ने (माया से) छुड़ा दिया है, वह दुःखों से मुक्त हो गया है ॥ १५८ ॥

अण हून्दी हर्कत, माया रची ममत्व साँ।
सामी खस्याईं सभ जी, भुलाए बर्कत।
लिवं साँ हणी लत, चढ़ी वेठो चौद्रोल में ॥ १५९ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने ममता से अस्तित्वहीन (झूठा) खेल रचा है। इस (माया) ने सबको भ्रमित कर उनकी सम्पत्ति छीन ली है। केवल कुछ विरले पुरुष ही (परमात्मा) के प्रेम में मस्त होकर (माया को) लात मार कर, आतम-पद को प्राप्त कर सके हैं ॥ १५९ ॥

अण हून्दे ओले, देउ लिकायो देह में।
लधो लिव सचीअ साँ, फक़ीरनि फोले।
सामी सभि कार्य करे, द्रिसे ब्रुधे ब्रोले।
पर्च्छिन्न पटु खोले, माणिनि दौर दर्स जा ॥ १६० ॥

झूठे भ्रम ने (आत्मा रूपी) देवता को शरीर में छिपा लिया है (भ्रम के कारण जीव अपने को आत्मा न समझकर शरीर समझ रहा है), पर फकीरों (प्रेमी-भक्तों) ने उसे (आत्मा को) सच्चे प्रेम से ढूंढ कर प्राप्त कर लिया है। सामीजी कहते हैं कि आत्मा ही देखता, सुनता, बोलता तथा समस्त कार्य करता है; पर (कुछ लोग ही) (प्रच्छन्नता) का आवरण हटाकर अपने स्वरूप (परमात्मा) के दर्शन का सुख भोगते हैं ॥ १६० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्धनि ड्रे आई, माया बणी मोह्णी ।
फुरे कयाईं फोक सभि, ड्रेई वड्राई ।
सामी सुजाग्गनि खों, भग्गी भउ खाई ।
मातामी साई, करिनि गुमु ग्याति साँ ।। १६१ ।।

माया अन्धों (अज्ञानी जीवों) के सामने मनहर (सुन्दर) रूप धारण करके आई है। उसने (झूठी) प्रशंसा से सबको लूट कर खोखला बना दिया है। सामीजी कहते हैं पर जागृतों (ज्ञानी जीवों) से वह भयभीत होकर भाग गई (ज्ञानवान् व्यक्तियों पर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा)। उन्होंने अपने ज्ञान के बल पर रुलाने वाली माया को गायब कर दिया है। (माया के कारण ही मनुष्य रोते-पीटते रहते हैं) ।। १६१ ।।

अन्धा जीअ अपार, माया मोहे वसि कया ।
पर्चिछन्न ज्राणी पाण खे, मुक्ती खाइन मार ।
माणिनि सुख स्वरूप जो, सुज्रागा सचार ।
हर्दमि रहनि हुशार, सामी सम स्वभाव में ।। १६२ ।।

माया ने अनेक अन्धे जीवों (अज्ञानी जीवों) को आकर्षित कर अपने वश में कर लिया है अतएव वे अपने को नश्वर जानकर, मुक्ति से मार खाते रहते हैं (मुक्ति से हाथ धो बैठते हैं।) सामीजी कहते हैं पर जो सच्चे जागृत (ज्ञानवान्) हैं वे सदैव समता भाव में सावधान होकर (द्वैत की भावना से मुक्त होकर) स्वरूप का सुख (आत्म-सुख) भोगते रहते हैं ।। १६२ ।।

कई अणहूंदी हर्कत, माया ख़ाब ख़्याल जी ।
जंहिंमें मुठा केतिरा, मूर्ख करे ममत्व ।
ज्रमनि मरनि मति रे, भवनि इते खाँ उत ।
सामी सहनि दिकत, जाग्गी द्रिसनि न ज्योति खे ।। १६३ ।।

माया ने झूठे विचारों की अस्तित्वहीन (झूठी) बाज़ी (खेल, क्रीड़ा) रची है, जिससे ममता कर कितने ही मूर्ख नष्ट हो गये हैं। सामीजी कहते हैं कि वे बुद्धिहीन जन्म-मरण के चक्कर में पड़कर यहाँ से वहाँ भटक रहे हैं तथा कष्ट भोग रहे हैं, पर जागृत होकर आत्म-प्रकाश को नहीं देखते हैं ।। १६३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कईं ख़लिक अन्धी, माया मोहे ममत्व साँ ।
मृघ तृष्णा जे जल में, वञे सभि वहंदी ।
विरले कंहिं गुर्मुख लधी, कृपा साणु कन्धी ।
ब्राभण जंहिं ब्रन्धी, पंजई कया वसि पंहिंजे ।। १६४ ।।

माया ने लोगों को ममता से मोहित कर अन्धा (अज्ञानी) बना दिया है, अतः वे मृग-तृष्णा के जल में (मृग-तृष्णा के समान माया में) बहते जाते हैं । ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि जिस विरले, गुरुमुख ने पाँच विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार) को बाँधकर अपने वश में कर लिया है, उसने ही (परमात्मा की) कृपा से (माया रूपी समुद्र का) किनारा प्राप्त कर लिया है ।। १६४ ।।

कटे कलेजो, माया डाइणि सभजो ।
कंहिंखों करे कीन की, पापिणि परिहेज़ो ।
सामी हंयुसि सचजो, कंहिं नेहींअ नर नेज़ों ।
वरी जंहिं वेझों, डि्ठो अन्भय आत्मा ।। १६५ ।।

डाइन-माया सबका कलेजा (हृदय) काट लेती है (आत्मज्ञान से वंचित कर देती है ।) वह पापिन किसी से भी परहेज़ नहीं करती है (दूर नहीं रहती है) । सामीजी कहते हैं कि किसी स्नेही पुरुष ने उसे (माया को) सत्य का तीर मारा है एवं विरक्त होकर आत्मा को अपने ही समीप देखा है ।। १६५ ।।

करे नाचु नटी, माया मोहे सभखे ।
छडे न पीर फकीर खे, पापिणि पाड़ पटी ।
सन्तनि विधुसि समुझी, ग्रिचीअ में ग़टी ।
वेठा खेप खटी, सुञ वसवँ जे विचमें ।। १६६ ।।

माया रूपी नर्तकी अपने नृत्य से सबको आकर्षित कर देती है । (ज्ञान की) जड़ उखाड़ने वाली पापिन, पीर एवं फ़कीर को भी नहीं छोड़ती (सन्त-महात्माओं को भी अपने वश में कर लेती है) । पर कुछ सन्तों ने सोच-समझकर उस (माया) के गले में रस्सी डाल दी है (उसे अपने वश में कर लिया है) अतः अब वे एकान्त स्थल या बस्ती में रहकर भी अपनी ही मस्ती में मस्त रहते हैं ।। १६६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्रसे ग्रासे, सभ खे माया मोहिणी ।
कंहिखों थिए कीन की, पलु पापिणि पासे ।
कयुसि गुमु ग्याति साँ, कंहि नेओंअ निरासे ।
हर्दमि हिकु भासे, जंहिखे अन्दरि आतमा ।। १६७ ।।

मोहिनी माया सबको निगल लेती है (सबको अपने वश में कर नष्ट कर देती है।) यह पापिन एक क्षण के लिए भी किसी से दूर नहीं रहती है। पर जिसे (सब के) भीतर एक ही आतमा दिखाई देती है, उस आशा को जीत लेने वाले प्रेमी ने गुरु के ज्ञान द्वारा उसे (माया को) ग़ायब कर दिया है (माया से मुक्त हो बैठा है।) ।। १६७ ।।

छलु प्रब़लु आहे, माया महबूबनि जी ।
ड़िठा ब़ुधा कीन की, से वहण वहाए ।
विझी ज़ारु भर्म जो, भला भुलाए ।
पंहिजा पियो खाए, कंहिजी चले कीनकी ।। १६८ ।।

प्रियतम की (बनायी हुई) माया छल-कपट करने में अत्यन्त ही प्रबल है। वह (मनुष्य से) ऐसे ऐसे कार्य कराती हैं, जो कभी न सुने गये हैं, न देखे गये हैं। वह भ्रम का जाल फैलाकर सज्जन पुरुषों को भी (अपने स्वरूप से) भुला देती है अतएव वे अपने ही मन के लड्डू खाते रहते हैं, पर उनके सामने किसी की भी नहीं चलती है (वे मनमानी ही करते रहते हैं, और दूसरे किसी की बात नहीं सुनते हैं।) ।। १६८ ।।

छलु प्रब़लु आहे, माया महबूबनि जी ।
सामी छड़ियो सभखे, फाहीअ मंझि फाहे ।
को आशिकु चढ़ियो अछ ते, दुत्या ग़ँवाए ।
नकी को ठाहे, नकी भजे भेद भर्म साँ ।। १६९ ।।

सामीजी कहते हैं कि प्रियतम की (बनाई हुई) माया छल-कपट करने में अत्यन्त ही प्रबल है। उसने सब (जीवों) को अपने फन्दे में फँसा लिया है अतः कोई प्रेमी ही द्वैत (भाव) मिटा कर, ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है। वह न तो भेद तथा भ्रमों को बनाता है और न ही उन्हें मिटाता है। (वह अपने स्वरूप में ही लीन रहता है।) ।।१६९।।

जीअ कया सभि ज़ेरि, माया मोहे मतिसाँ ।
नचाए नाचूअ ज्याँ, पाए पर्चिछन्न छेरि ।
कोर्युनि मों को हिकिड़ो, साधू चढ़ियो सुमेरि ।
बिना दिक़त देरि, सामी ड़िसे स्वरूप खे ।। १७० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया ने चतुराई से सब जीवों को आकर्षित कर अपने अधीन कर लिया है। वह (उन्हें) परिच्छिन्नता (भेदभाव) के नूपुर पहना कर नट की तरह नचाती रहती है। सामीजी कहते हैं करोड़ों में से कोई एक साधु ही (ज्ञान के) सुमेरु (पर्वत) पर अग्रसर हुआ। उसने शीघ्र ही बिना कष्ट उठाये अपने परमात्मा को देख लिया है ॥ १७० ॥

गुड़े गुलाम करे, माया सभ संसार खे।
हणे कलपत कर्ड़ा, कंहिखों कीन टरे।
सन्तनि खों सामी चए, रहे पन्ज कोह परे।
ज्योति अखण्डु ब्रे, सदा जिनिजे घरमें ॥ १७१ ॥

माया ने सारे विश्व को फँसाकर गुलाम बना दिया है। वह किसी से भी न डर कर, सबको प्रपंच के कोड़े लगाती रहती है। पर सामीजी कहते हैं कि जिन सन्तों के (हृदय रूपी) घर में (ज्ञान की) अखण्ड ज्योति जलती रहती है, उनसे वह (माया) पाँच कोस दूर ही रहती है (माया का प्रभाव उन पर नहीं पड़ता है।) ॥ १७१ ॥

जींए मछीअ खे मेउ, मारे ज़ार कुन्ढीअ साँ।
तींए माया माणुहुनि खे, छल वल साँ द्रे छेहु।
सामी बचियो को सूर्मो, भाड़ी पाए भेउ।
दूड़हों अन्दरि द्रेहु, घिरी लधांई घरमों ॥ १७२ ॥

जिस प्रकार मछुआ जाल तथा बंसी (फ़िशिंग हुक) द्वारा मछली को (पकड़ कर) मार देता है, उसी प्रकार माया मनुष्यों को अपने छल-कपट से नष्ट कर देती है। सामीजी कहते हैं, कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही (माया के) महान् भेद (रहस्य) को जानकर इससे बच सका है। उसने दूर स्थित परमात्मा को अपने (हृदय रूपी) घर में ढूँढ लिया है ॥ १७२ ॥

विधा सभि ठगे, माया जीअ ममत्व साँ।
मन्ज़िल विधी मन खों, कंहिं औधूत अगे।
जिते तूँ माँ नाहिं का, नको लेपु लगे।
जग मग ज्योति जगे, सामी सदा अन्भई ॥ १७३ ॥

माया ने मोह से सब जीवों को ठग लिया है। किसी अवधूत ने ही मन से परे (उस जगह पर) अपनी मंज़िल बनायी है, जहाँ न तो किसी प्रकार का लेप ही लगता है और न तू-मैं की भावना ही है; अपितु जहाँ सदैव केवल ज्ञान का प्रकाश ही जगमगाता रहता है ॥ १७३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विधा जीअ वंगे, माया सभि ममत्व साँ ।
ॾाढी ॾाइणि ॾुन्दरी, कंहिंखों कीन संगे ।
को नेही व्युसि निकिरी, अटिकल साणु अॻे ।
ट्रेई लोकलंघे, सामी वेठो सम थी ।। १७४ ।।

माया ने सब जीवों को मोह में डालकर नष्ट कर दिया है। वह बड़ी दाँतों वाली डाइन (माया) किसी का भी साथ नहीं देती है। सामीजी कहते हैं कोई प्रेमी ही किसी युक्ति से इस (माया) से मुक्त हो सका है, तथा तीनों लोकों को पार कर सम-भाव अपना सका है ।। १७४ ।।

विधा जीअ वंगे, माया मोहे मकर साँ ।
को नेही व्युसि निकिरी, साधूअ जे संगे ।
सामी मिल्यो सतिगुरू, कयो पारि पॻे ।
लंघ्यो लकु लंघे, मिली महद जननि साँ ।। १७५ ।।

माया ने कपट से सब जीवों को मोह कर नष्ट कर दिया है, कोई प्रेमी ही साधु के संग से इस (मायाजाल) से निकल सका है। सामीजी कहते हैं कि जिसे सद्गुरु मिला है वह अपने ही पैरों से (संसार रूपी) पगडंडी पार कर परमात्मा से जा मिला है ।। १७५ ।।

सभ खे कानु कसे, माया हंयों मोह जो ।
विधाईं वल छल साँ, ढुब्धा मंझि दसे ।
कंहिं गुर्मुख विधुसि ज्ञाति साँ, ब्रांभण ब्रलु खसे ।
जंहिंखे राह ॾसे, सतिगुरु ॾिनी सच जी ।। १७६ ।।

माया ने सबको मोह रूपी तीर तान कर मारा है। उसने छल-बल से सबको दुविधा में फँसा (डाल) दिया है। ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं, पर जिस गुरुमुख को सद्गुरु ने सत्य का रास्ता दिखाया है, उसने उस (माया) का वल छीनकर, अपने ज्ञान से उसे मार दिया है ।। १७६ ।।

सभ खे ग्रासे, माया वेई मुख रे ।
सामी हिक हरिजन खों, रहे रन पासे ।
जंहिंखे हरि भासे, चीटीअ एं कुञ्चरमें ।। १७७ ।।

सामीजी कहते हैं कि यह मुख-हीन माया सबको निगल गई है। पर जिस हरि के भक्त को चींटी एवं हाथी में एक ही परमात्मा दिखाई देता है, उससे यह दुष्टा (माया) दूर रहती है ।। १७७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ खे कई कुच, माया पंहिंजे मोह जी।
सामी समुझीन कीनकी, अन्धा जीअ असुच।
ईएं चवनि था अन्भई, साधूजन समुच।
राम मिलण जी रुच, अन्दर जिनिजे अणमई॥ १७८॥

माया ने अपने मोह से सबको मैला (अपवित्र) बना दिया है। सामीजी कहते हैं, पर अपवित्र अन्धे (अज्ञानी) जीव उस (माया) को नहीं समझ पाते हैं। समस्त अनुभवी साधु यही कहते हैं कि जिनके भीतर राम से मिलने की अनंत (उत्कंठा) अभिलाषा है (वे ही माया के कीचड़ से मुक्त रहते हैं।)॥ १७८॥

सभखे तमां तार, लग्री माया मोह जी।
भवनि भौसागर में, पाए जन्म अपार।
सटियो पिण्डु मथे तों, कंहिं हरिजन हुशियार।
जिते जीत न हार, तिते कयाऊं तकियो॥ १७९॥

सबको माया मोह की गहरी तमन्ना लगी हुई है, अतः वे अनेक जन्म प्राप्त कर संसार-सागर में भटक रहे हैं। किसी हरि के प्रवीण भक्त ने ही सिर से (माया के) पिण्ड को पटक कर, वहाँ जाकर निवास किया है, जहाँ न हार है और न जीत। (आतम-पद को प्राप्त कर लिया है।)॥ १७९॥

सभ खे दिलासे, लाए माया मोहिणी।
फुर्ने फाहीअ में विझी, पलक न थिए पासे।
कयुसि गुमु ज्ञाति साँ, कंहिं नेहींअ निरासे।
सामी सम भासे, जंहिंखे अन्भय आत्मा॥ १८०॥

मोहिनी माया सबको (झूठे) दिलासे देकर भ्रम रूपी फन्दे में फँसा देती है; वह पल भर भी किसी से दूर नहीं रहती है। सामीजी कहते हैं कि जिस निराश प्रेमी को सब में समान (एक ही) आत्मा दिखाई देता है, उसने ही अपने ज्ञान से उस (माया) को निर्मूल कर दिया है॥ १८०॥

सभखे वसि करे, माया हणी मोचिड़ा।
ड्राढी ड्राइणि ड्रुन्दरी, कंहिंखों कीन टरे।
सन्तनि सापुरुषनि खों, रहे पाण परे।
सघे न धीर धरे, सामी ज्ञाणी सूर्मा॥ १८१॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया सबको जूते लगाकर (ज़ोर-ज़बरदस्ती से) अपने वश में कर लेती है। वह अत्यन्त बड़ी दाँतों वाली डाइन (माया) किसी से भी दूर नहीं रहती है। सामीजी कहते हैं, पर साधु-सन्तों से वह स्वयं ही दूर रहती है क्योंकि उन्हें शूरवीर (ज्ञानी) जानकर, वह (माया) धैर्य नहीं धारण कर सकती है ॥ १८१ ॥

सभु विश्व वसि कई, माया मोहे ममत्व साँ ।
कंहिखे छदे कीन की, निपटि निर्दई ।
को नेहीं व्यसि निकिरी, रंगी रस मई ।
जंहिखे ग़ाल्हि चई, सामी सतिगुरू समजी ॥ १८२ ॥

माया ने ममता से सारे विश्व को मोहित कर अपने वश में कर रखा है; वह निपट निर्दयी (क्रूर) किसी को भी नहीं छोड़ती है। सामीजी कहते हैं कि जिसे सद्‌गुरु ने समता (आत्मा एवं परमात्मा एक ही है) की बात बता दी है, वही आत्मा के रंग में रँगा प्रेमी इस (मायाजाल) से बचकर निकल गया है ॥ १८२ ॥

सभु संसार छले, माया कयो वसि पंहिंजे ।
सामी सुपिर्युनि जी, वेठो राह मले ।
ब्रली ब्रलु हारे रहिया, कंहिंजी कान चले ।
जंहिखे सचु पले, तंहिखे द्रन्डवतु द्रूरोहीं करे ॥ १८३ ॥

सामीजी कहते हैं—माया ने सारे विश्व को धोखे से अपने वश में कर लिया है, अतः वह प्रियतम (परमात्मा) की राह को बन्द कर बैठा है। (माया के आगे) बलवान् अपना बल लगाकर हार गये, पर किसी की एक भी न चली (किसी ने भी माया को वश में न किया)। पर जिसे सत्य का पता लग गया है, उसे वह (माया) दूर से ही दण्डवत (प्रणाम) करती है ॥ १८३ ॥

सभेई हैरानु, द्रिठा माया मोह में ।
व्रिलो को गुरुमुख रहे, सम सीतलु निरब्राण ।
जंहिखे आत्मज्ञानु, सामी द्रिनो सतिगुरूअ ॥ १८४ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया के मोह में सब परेशान ही दिखाई दिये। जिसे सद्‌गुरु ने आत्मज्ञान दिया है, ऐसा कोई विरला गुरुमुख व्यक्ति ही सम, शीतल और मुक्त रह पाया है ॥ १८४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभोई संसारु, माया कयो वसि पंहिंजे।
ख़ाली छद्रियाऊँ कोनको, जोआणु बृधु ऐं ब्रारु।
विझी ज्रारु भर्म जो, कयाईं ख़लिक ख़ोआरु।
को सामी पुरुष सचारु, जाग़ी छुटे जिन खों ॥ १८५ ॥

माया ने सारे विश्व को अपने वश में कर लिया है। इस (माया) ने, जवान, वृद्ध एवं बालक—किसी को भी (अपने प्रभाव से) खाली नहीं छोड़ा है। इसने भ्रम-जाल फैलाकर संसार के लोगों को बदनाम कर दिया है। सामीजी कहते हैं कोई सत्यव्रती पुरुष ही जागृत होकर इससे मुक्त हो सका है ॥ १८५ ॥

सारी ख़लिक़ ख़ोआरु, रहे माया मोह में।
उथन्दे वेहन्दे निंड् में, करे कीन क़रारु।
व्रिले को गुर्मुखु बचियो, सामी चए सचारु।
द्रिठो जंहिं दीदारु, पंहिजे अख्यें पंहिजो ॥ १८६ ॥

सब लोग माया-मोह में बदनाम होते रहते हैं। अतः उन्हें उठते-बैठते तथा नींद में भी चैन प्राप्त नहीं होता है। सामीजी कहते हैं कि वही विरला सत्यव्रती गुरुमुख इस (माया) से बच गया है, जिसने अपनी आँखों से ही अपने स्वरूप (परमात्मा) का दर्शन किया है ॥ १८६ ॥

सारी विश्व छली, माया मोहे ममत्व साँ।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, ब्रांभण बचियो ब्रली।
जंहिंखे सतिगुर समुझ जी, ग़ुझी ग़ाल्हि सली।
सो रमी रामकली, ग़ाए बेहद बाग़ में ॥ १८७ ॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि माया ने ममता से सारे विश्व को आकर्षित कर छल (ठग) लिया है; करोड़ों में से कोई एक बलवान् (ज्ञानी) ही इससे बच सका है। जिसे सद्गुरु ने ज्ञान की छिपी हुई बात बता दी है, वह अनन्त के उद्यान में बैठकर, मस्त होकर, रामकली (रागिनी का नाम) आलाप रहा है।

रामकली :—भारत के गायन विद्या के अनुसार रामकली हिंडोल राग की पाँच स्त्रियों में से एक है। इस रागिनी में योग तथा योगियों की स्तुति ही गाई जाती है। गीता में जो कुछ भी योग तथा योगियों के विषय में कहा गया है, वह सिन्ध के कवि-शिरोमणि शाह अब्दुल लतीफ ने रामकली में गाया है ॥ १८७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सारी विश्व छली, माया मोहे ममत्व साँ ।
को व्रिलो वेसासी बचियो, ब्रांभणु चए ब्रली ।
जंहिंखे द्रिनी सतिगुरूअ, बेहद मति भली ।
रमी रामकली, ग़ावन्दो वते ग़ोठ में ।। १८८ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया ने ममता से सारे विश्व को आकर्षित कर ठग लिया है, अतः कोई विरला विश्वासी गुरुमुख ही इस (माया) से बच सका है । जिसे सद्‌गुरु ने अपार सद्‌बुद्धि दी है, वह मस्त होकर अपने ही गाँव (हृदय) में रामकली गीत गाता हुआ घूम रहा है ।। १८८ ।।

सारी विश्व छली, माया मोहे ममत्व साँ ।
व्रिलो को गुर्मुख बचियो, ब्रांभणु चए ब्रली ।
जंहिंखे सुतह स्वरूप जी, सतिगुर ग़ाल्हि सली ।
ज्ञाणे सभु भली, कई कर्ता पुरुष जी ।। १८९ ।।

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि माया ने सारे संसार को ममता से मोह कर ठग लिया है । अतः कोई विरला-बलवान-गुरुमुख ही इस (माया) से बच सका है । जिसे सद्‌गुरु ने परमात्मा के स्वरूप की (रहस्यमयी) बात बता दी है, वह कर्तार पुरुष द्वारा किये हुए कामों में भलाई ही मानता है (परमात्मा के किये हुए कार्यों में ही प्रसन्न रहता है ।) ।। १८९ ।।

सारी विश्व ठग़ी, माया मोहे ममत्व साँ ।
कंहिंखे छद्रे कीन की, वते साणु लग़ी ।
सामी कंहिं सही कई, जोगेस्वर जग़ी ।
तंहिंखों उथी भग़ी, सति करे ग़र्क़ु ज्ञाति में ।। १९० ।।

माया ने ममता से सारे विश्व को मोह कर ठग लिया है । वह किसी को भी नहीं छोड़ती, सबके साथ लगी हुई है । सामीजी कहते हैं कि जिस योगीश्वर ने जागृत होकर अपने को सच्चे ज्ञान में डुबोकर इस (माया के सही रूप) को जान लिया है, उससे ही यह (माया) दूर भागी है ।। १९० ।।

सारी विश्व लुटी, माया मोहे ममत्व साँ ।
कंहिंखे छद्रे कीन की, बिना ढब्र ढुटी ।
को नेहीं व्युसि निकिरी, केरे कल्प कुटी ।
जंहिंजी ग़ण्ढि छुटी, सामी पेई साध संगि ।। १९१ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया ने ममता से सारे विश्व को आकर्षित कर लूट लिया है। यह अडियल, किसी को भी अपने वश करने के सिवा नहीं छोड़ती (सबको अपने वश में करके ही चैन लेती है)। सामीजी कहते हैं कि जिस प्रेमी की साधुओं के संग से (माया की) गाँठ खुल गई है, वह प्रपंच रूपी कुटिया को गिराकर (प्रपंच से मुक्त होकर) निकल गया है (माया से मुक्त हो गया है।) ॥ १९१ ॥

सारी विश्व वग़ी, वही वाच वहण में।
लंघे चढ़ियो लख्य ते, को ताल्बी तग़ी।
जंहिंखे साध संगति जी, रमिज़ हथि लग़ी।
अन्भय ज़्योति जग़ी, सामी द्रिठाई देहि में ॥ १९२ ॥

सारा संसार प्रपंच के तेज़ प्रवाह में बह कर थपेड़े खा रहा है। कोई (मुक्ति का) इच्छुक प्रेमी ही सब कुछ त्याग कर (ज्ञान के) लक्ष्य की ओर अग्रसर हुआ है। सामीजी कहते हैं, जिसे साधु-संगति की युक्ति हाथ लग गई है (जिसे साधु-संगति की महिमा का पता लग गया है), उसने जागृत होकर अपने शरीर में ही (आप में ही) आत्मज्ञान का प्रकाश देख लिया है ॥ १९२ ॥

सारो जग़ु अन्धो, थियो माया जे मोह में।
विझी वेठा पाणखे, बिना समुझ सन्धो।
को आशिकु चढ़ियो अछते, ज्ञाणी धूड़ि धन्धो।
वारे खपति खन्धों, सामी मिल्यो स्वरूप साँ ॥ १९३ ॥

माया के मोह में सारा संसार अन्धा हो गया है अतः वह बुद्धिहीन होकर अपने को (परमात्मा से) अलग मान बैठा है। सामीजी कहते हैं कि कोई प्रेमी ही (माया के) झूठे व्यवहार को जानकर, ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो सका है। वही (माया के) बही-खाते (हिसाब-किताब) से निपट कर, स्वरूप से जा मिला है ॥ १९३ ॥

सारो जग़ु जखे थो कुते जाँ कल्पति में।
मर्म मानुष्य देहि जो, को रहतिवानु रखे।
जो मिली साध सङ्गति साँ, अन्भय रसु चखे।
सामी सम लखे, अन्दरि ब्राहरि आतमा ॥ १९४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि सारा संसार कुत्ते की तरह (माया के) प्रपंच में भौंकता रहता है। कोई प्रेमी ही मानव-देह का महत्व समझ कर, साधुओं का संग कर, आत्म-रस चख कर, बाहर और भीतर एक ही आत्मा को देखता है ॥ १९४ ॥

सारो जगु जखे थो, मनन जे महलात में।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, आत्म रसु चखे।
जंहिते हथु रखे, सामी पूरो सतिगुरू ॥ १९५ ॥

सामीजी कहते हैं कि सारा संसार मन के महलों में (झूठी कल्पनाओं में) व्यर्थ ही शेखी बघारता रहता है। करोड़ों में से उसी एक व्यक्ति ने आत्म-रस का स्वाद लिया है, जिस पर पूर्ण सद्गुरु ने अपना हाथ रखा है (कृपा की है।) ॥ १९५ ॥

सारो जगु जखे, स्वप्न में सामी चए।
जाग्यो पंहिंजे जीअ में कल्पति कान रखे।
अन्दरि ब्राहरि नभ ज्याँ, अन्भय लालु लखे।
चेतन रसु चखे, रोम रोम में राति द्वींह ॥ १९६ ॥

सामीजी कहते हैं कि सारा संसार (माया के झूठे) स्वप्न में बड़-बड़ाता रहता है पर जागृत (व्यक्ति) अपने हृदय में (माया की) कलुषता नहीं रखता है। वह आकाश की भाँति (निर्लिप्त हो) बाहर तथा भीतर आत्म-ज्ञान रूपी रत्न को ही देखता रहता है। उसका रोम-रोम दिन-रात आत्मरस का स्वाद लेता रहता है ॥ १९६ ॥

सारो जगु जखे, स्वप्न में सामी चए।
जाग्यो पंहिंजे जीअ में, रती न मैलु रखे।
अन्दरि ब्राहरि आत्मा, पूरणु पाकु लखे।
चेतनु रसु चखे, लूअँ लूअँ लाल गुलाल थी ॥ १९७ ॥

सामीजी कहते हैं कि सारा संसार (माया के झूठे) सपने में बड़-बड़ाता रहता है। पर जागृत (ज्ञानवान्) अपने हृदय में रत्ती भर भी (माया की) मैल नहीं रखता है। उसे बाहर-भीतर पूर्ण, पवित्र आत्मा ही दिखाई देता है तथा उसका रोम-रोम गुलाल की तरह लाल होकर (आत्मानन्द के रंग में रंगकर) आत्मरस का स्वाद लेता रहता है ॥१९७॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभ साँ साणु लगी, रहे माया मोहिणी ।
सामी सदाई करे, ब्रन्धी ठाह ठगी ।
सोटी हंयसि सम जी, कंहिं जोगेस्वर जगी ।
भय खों उथी भगी, कूं कूं कन्दी कुतीअ जाँ ।। १९८ ।।

सामीजी कहते हैं कि मोहिनी माया सब के साथ लगी हुई है (सब को प्रभावित करती रहती है ।) वह सदैव लोगों को बाँधकर (अपने जाल में फँसाकर) कपट एवं धोखे का व्यवहार करती रहती है । पर जब कोई जागृत योगीश्वर उसे समता का डंडा लगाता है तब वह भयभीत होकर कुत्ते की तरह कूँ कूँ करके भाग जाती है । (जिस प्रकार कुत्ते पर डंडे का प्रहार करने से, वह दुःखी हो कूँ कूँ कर रोता है एवं भयभीत होकर भाग जाता है, उसी प्रकार समता के डंडे लगने पर माया भी भयभीत होकर भाग जाती है ।) ।। १९८ ।।

सारो जगु जले, थो बिना बाहि अन्दर में ।
व्रिलो को गुर्मुख बचे, जंहिखे सचु पले ।
सामी मिल्या स्वरूप साँ, पञ्जई दूत दले ।
कंहिखे कीन सले, अनभय सुख अन्दर जो ।। १९९ ।।

सामीजी कहते हैं कि सारा संसार भीतर की (मन की अथवा माया की) झूठी आग में जल रहा है । जिसे सत्य (परमात्मा) की प्राप्ति हुई है ऐसा कोई विरला गुरुमुख ही माया से बचकर, पाँचों ही दूतों (पाँच विकारों) को मार कर, स्वरूप से जा मिला है । वह अपने आन्तरिक आत्म-सुख का रहस्य किसी को भी नहीं बताता ।। १९९ ।।

सारो जगु झुरे, थो माया कारणि मन में ।
जंहिखे ड्राइणि ड्रेह में, फिकुर साणु फुरे ।
को नेहीं नारायण खों, दर्सनु दानु घुरे ।
पर्ची प्रेम पुरे, सामी वेठो सम थी ।। २०० ।।

सारा संसार माया के कारण मन में दुखी होता है । वह डाइन उस (मानव) को अपने फन्दे में फँसाकर लूट लेती है । सामीजी कहते हैं, कोई प्रेमी ही नारायण से उसके दर्शन का दान माँगता है तथा पूर्ण (परमात्मा) के प्रेम में ही प्रसन्न होकर, समता अपना कर, सुखी हो जाता है ।। २०० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सारो जगु नचे, मनन जे महलात में।
अठई पहर अन्दर में, थो बिना बाहि पचे।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, बला खों बचे।
जंहिखे दृष्टि अचे, सामी सूरजु सिरते ।। २०१ ।।

सारा संसार मन के महलों (झूठी कल्पनाओं) में नाच रहा है। वह आठों पहर भीतर की झूठी आग में जल रहा है। सामीजी कहते हैं कि करोड़ों में से वही एक (मनुष्य) ही इस (माया रूपी) नागिन से बच सका है, जिसे अपने सिर के ऊपर सूर्य (ज्ञान का सूर्य) दृष्टिगोचर हुआ है (जिसे आत्म-साक्षात्कार हुआ है।) ।। २०१ ।।

सारो जगु ब़ुडे, थो मृघ तृष्णा जे जल में।
सामी सूर्य खे ड़िसी, ज्ञानी कीन लुडे।
विधा जंहि गुडे, पेरनि हेठों पञ्जई ।। २०२ ।।

सामीजी कहते हैं कि सारा संसार (माया रूपी) मृग-तृष्णा के जल में डूब रहा है। पर जिसने पाँचों (विकारों) को जीतकर अपने पैरों के नीचे डाल दिया है, वह ज्ञानी (आत्मा रूपी) सूर्य को देखकर कभी विचलित नहीं होता है ।। २०२ ।।

सारो जगु वहे, थो अणहून्दे दर्याह में।
समुझ रे सामी चए, इस्थिति कीन रहे।
को गुर्मुखु पारि पए, साध संगति जे धीर साँ ।। २०३ ।।

सामीजी कहते हैं कि सारा संसार (माया के) अस्तित्वहीन (झूठे) समुद्र में बह रहा है, ज्ञान के अभाव के कारण वह स्थित नहीं रह पाता है। केवल कोई गुरुमुख ही साधु-संगत के धैर्य से (जो धैर्य धारण कर साधुओं का संग करता है) पार हो पाता है ।। २०३ ।।

कूड़ी कल्प करे, मूर्ख मुठा मति रे।
भवनि भौसागर में, नाना रूप धरे।
पर्छिन्नता पापिणि खों, को प्रेमी रहे परे।
सामी ड़िसी ठरे, पंहिंजे अख्यें पाण खे ।। २०४ ।।

सामीजी कहते हैं कि झूठे भ्रमों में कितने ही मूर्ख बुद्धिहीन हो अपने आप को नष्ट कर रहे हैं। वे नाना प्रकार के रूप धारण कर भवसागर में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भटकते रहते हैं। पर कोई प्रेमी ही पच्छंन्नता रूपी (नश्वर मायाजाल) पापिन से दूर रहता है और अपनी आँखों से (अपने को) परमात्मा को देख शीतल होता है ॥ २०४ ॥

कूड़ी वड्राई, काया माया कुल जी।
कंहिसाँ नेबहु न थिए, ड्राइणि दुःखदाई।
सामी सभ संसार में, मिठी मन भाई।
कंहि विरले विञाई, गुर्मुख गुर ज्ञाति साँ ॥ २०५ ॥

सामीजी कहते हैं कि काया, माया तथा कुल की प्रशंसा सब झूठी है। यह दुखदायी डाइन (माया) किसी से भी प्रेम नहीं निभाती है (सबको धोखा देती है।) सारे संसार में मधुर एवं मन को भानेवाली (मधुर समझी जाने वाली माया) को कोई विरला-गुरुमुख ही गुरु के ज्ञान (उपदेश) से लुप्त कर सका है ॥ २०५ ॥

कूड़ी वड्राई, काया माया कुल जी।
छड्रे थिए छल वल साँ, पल में पराई।
सामी जंहिंखे साध संगि, अन्भय में आई।
तंहिं जाग्री लिवँ लाई, पाणु वराए पाण साँ ॥ २०६ ॥

सामीजी कहते हैं कि काया, माया तथा कुल की प्रशंसा सब झूठी है यह (प्रशंसा) एक ही क्षण में छल-बल से हमें छोड़ कर, दूसरों की हो जाती है पर जिसे साधुओं के संग से आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है, वही जागृत तथा (संसार से) विरक्त होकर अपने स्वरूप (परमात्मा) से प्रेम कर पाया है ॥ २०६ ॥

कूड़ी वड्राई, काया माया कुल जी।
समुझ बिना संसार खे, मिठी मन भाई।
गुर्मुख गुर ज्ञाति साँ, ममत्व मिटाई।
सामी सदाई, पर्चो रहे पाण में ॥ २०७ ॥

सामीजी कहते हैं कि काया, माया तथा कुल की बड़ाई सब झूठी है पर विचार-रहित (बुद्धिहीन) संसार (के लोगों) को यह मधुर तथा मन को भाने वाली लग रही है। केवल गुरुमुख ही गुरु के ज्ञान से ममता मिटाकर अपने स्वरूप (परमात्मा) में सदैव प्रसन्न रहता है ॥ २०७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कूड़ी वड्राई, काया माया कुल जी ।
सहजे थे सामी चए, पल में पराई ।
जीएं सुख स्वप्न जो, रहे नाँ राई ।
तंहिसाँ लिवं लाई, मूर्ख जीअ मर्म रे ॥ २०८ ॥

सामीजी कहते हैं कि काया, माया तथा कुल की बड़ाई सब झूठी है, यह सहज ही पल भर में पराई हो जाती है (अस्थिर है) । जिस प्रकार सपने में प्राप्त सुख (जागृत होने पर) राई जितना भी नहीं रहता है, उसी प्रकार मूर्ख जीव निर्लज्ज होकर झूठे स्वप्न-सुख (माया) से प्रेम लगा कर बैठे हैं ॥ २०८ ॥

करे मति मैली, मूर्ख मुठा केतिरा ।
सामी पिया संसार जे, फाहीअ मंझि फैली ।
रहे न्यारो नभ ज्याँ, को साधूजन सैली ।
जीएं मजिनू लैली, लिवँ साँ लालु गुलालु थे ॥ २०९ ॥

सामीजी कहते हैं कि कितते ही मूर्ख (माया में) अपनी बुद्धि मैली कर नष्ट हो गये हैं । वे संसार के माया-पाश में फँस गये हैं, कोई सच्चा साधु-पुरुष ही आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है । वह लैला-मजनू की तरह (प्रियतम परमात्मा के) प्रेम में अनुरक्त रहता है । (परमात्मा के प्रेम में ही मस्त रहता है ।) ॥ २०९ ॥

फुर्ने कया फोक, फुरे जीअ जहान जा ।
भवनि भौसागर में, मिटी पाए मोक ।
को आशिकु चढ़ियो अछते, लंघे ट्रेई लोक ।
जंहिखे रमिज रोक, सामी ड्रिनी सतिगुरूअ ॥ २१० ॥

भ्रम ने संसार के जीवों को लूटकर खोखला बना दिया है (आत्म-धन से वंचित कर दिया है), अतएव वे व्यर्थ ही भवसागर में भटक रहे हैं । सामीजी कहते हैं कि जिसे सद्गुरु ने (भ्रमों को) रोकने की युक्ति बता दी है, वह प्रेमी तीनों ही लोकों को पार कर, ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो गया है ॥ २१० ॥

फुर्ने करे फ़क़ीर, कया जीअ जहान जा ।
पिटिनि कारणि पेट जे, धरे सघनि न धीर ।
सामी के साधू बचिया, ज्ञानवान गम्भीर ।
पाण लखायो पीर, जिनिखे पूरणु पाण में ॥ २११ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भ्रम ने संसार के जीवों को फ़कीर बना दिया है अतः वे अधीर होकर पेट के कारण अपने को पीट रहे हैं (दुःखी हो रहे हैं)। सामीजी कहते हैं कि वेही गम्भीर ज्ञानवान् साधु (भ्रमों से) बच पाये हैं जिन्हें पीर (सद्गुरु) ने अपने आप में ही पूर्ण परमात्मा को दिखा दिया है ॥ २११ ॥

फुर्ने करे फ़क़ीर, कया जीअ जहान जा।
भवनि भौसागर में, धरे सघनि न धीर।
को सुजाग्रो सूर्मो, सामी चढ़ियो सीर।
जंहिखे पूरे पीर, लख्य लखाई अन्भई ॥ २१२ ॥

भ्रम ने संसार के जीवों को फ़कीर बना दिया है (उन्हें आत्म-धन से वंचित कर दिया है), अतः वे अधीर होकर संसार-सागर में भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि वही जागृत शूरवीर (ज्ञानी) परमात्मा की ओर उन्मुख हुआ जिसे पूर्ण सन्त (सद्गुरु) ने आत्मज्ञान का लक्ष्य दिखाया है ॥ २१२ ॥

फुर्ने खों फार्कु, को व्रिलो वेसासी रहे।
सामी ड्रिनों सतिगुरूअ, जंहिखे तत्व तिल्कु।
अन्दरि ब्राहरि आत्मा, हर्दमि ड्रिसे हिकु।
जीएं नाणो नाज़िक, रखे सराफ संदूक में ॥ २१३ ॥

सामीजी कहते हैं कि वही विरला विश्वासी भ्रमों से मुक्त रह सका है जिसे सद्गुरु ने तत्त्वज्ञान रूपी तिलक दिया है (तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया है)। वह हरदम, बाहर तथा भीतर एक ही आत्मा को देखता है; वह सराफ़ की तरह मूल्यवान ख़ज़ाने (आत्म-धन) को (हृदय-रूपी) संदूक में सुरक्षित रखता है ॥ २१३ ॥

फुर्ने खों फार्कु, सामी रहे को सूर्मो।
जंहिखे ड्रिनों सतिगुरूअ, ऐन, अभेद अशिकु।
वेठो अन्भय तख़्त ते, लाए तत्व तिल्कु।
हर्दम ड्रिसे हिकु, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ॥ २१४ ॥

सामीजी कहते हैं कि वही शूरवीर (ज्ञानी) भ्रमों से मुक्त रहता है, जिसे सद्गुरु ने सच्चा अभेद (जो भेदा न जा सके) प्रेम दिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह तत्त्वज्ञान रूपी तिलक लगाकर आत्मज्ञान रूपी सिंहासन पर बैठा है, तथा हर पल, भीतर एवं बाहर एक ही आत्मा देखता है ॥ २१४ ॥

फुर्ने फासाए, छद्रिया जीअ जहान जा ।
भवनि भौसागर में, कोट जन्म पाए ।
तंहिंजो लेखो कोन को, जंहिंखे छुटो छद्राए ।
वेही वज़ाए, नंग़ारो निरब्राण जो ॥ २१५ ॥

भ्रमों ने संसार के जीवों को उलझा दिया है, अतः वे करोड़ों जन्म पाकर संसार-सागर में भटक रहे हैं । पर जिसे मुक्त (माया से मुक्त अर्थात् सद्गुरु) ने (माया से) छुड़ा दिया है उसकी समानता करने वाला कोई नहीं हैं । वह तो सदैव निर्वाण रूपी नगारा बजाता रहता है (निर्वाण प्राप्त कर उसी में मस्त रहता है) ॥ २१५ ॥

फुर्ने फासाए, छद्रिया जीअ जहान जा ।
भुली भवन पाण हीं, कोट जन्म पाए ।
सामी बचियो को सूर्मो, साधूअ जे साए ।
ममत्व मिटाए, सदा माणे सेज सुखु ॥ २१६ ॥

सामीजी कहते हैं कि भ्रमों ने संसार के जीवों को फँसा दिया है, अतः वे अपने (स्वरूप) को भूल कर, कोटि जन्म पाकर, भटक रहे हैं । कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही साधु के सहारे (भ्रमों से) बच सका है तथा ममत्व मिटाकर सदैव सुख-शय्या का उपभोग करता है (परमात्मा के साथ विलास करता है) ॥ २१६ ॥

फुर्ने फासाए, विधा जीअ वहण में ।
ग़ोता खाइनि ग़ैब जा, कोट जन्म पाए ।
सामी बचियो को सूर्मो, हरि साँ लिवँ लाए ।
वेठो वज़ाए, नंग़ारो निरब्राण जो ॥ २१७ ॥

भ्रमों ने जीवों को अपने प्रवाह में फँसा दिया है, अतः वे कोटि जन्म पाकर ग़ैब (रहस्यमय) के ग़ोते खा रहे हैं । सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही परमात्मा से स्नेह कर इन (भ्रमों) से बच सका है तथा निर्वाण रूपी नगारा बजा रहा है (निर्वाण प्राप्त कर उसी में मग्न रहता है) ॥ २१७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फुर्ने फुरे फोक, कया जीअ जहान जा।
पचि्छनु ज्ञाणी पाणखे, सामी सहनि सोक।
को आशिकु चढ़ियो अछते, लंघे ट्रई लोक।
मारे वेठो झोक, आदी अन्भय घर में ॥ २१८ ॥

सामीजी कहते हैं कि भ्रमों ने संसार के जीवों को लूट कर खोखला बना दिया है, अतः वे अपने को नश्वर समझकर दुःख भोग रहे हैं (अपने को शाश्वत आत्मा न मानकर नश्वर शरीर समझ रहे हैं)। कोई प्रेमी ही तीनों लोकों को पार कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है तथा दृढ़ (स्थिर) होकर आदि आत्म-ज्ञान रूपी घर में बैठा है (भ्रमों से अविचलित होकर आत्म-ज्ञान को अपना बैठा है।) ॥ २१८ ॥

फुर्ने फुरे फोक, कया जीअ जहान जा।
पिटिनि कारणि पेट जे, चित में चोद्दह लोक।
सामी वेठा सम में, के जाग्रया मारे झोक।
जिनि खे ड्रिना सतिगुरूअ, रीझी टका रोक।
लाए महबन मोक, पोख पकाऊं पंहिंजी ॥ २१९ ॥

भ्रमों ने संसार के जीवों को लूटकर खोखला बना दिया है, अतः वे पेट के कारण चित्त के द्वारा चौदहों लोकों में भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि कुछ जागृत (ज्ञानी) जिन्हें सद्गुरु ने प्रसन्न होकर छुटे पैसे (ज्ञान का उपदेश) दे दिये हैं, वे दृढ़-निश्चयी होकर समता को अपना बैठे हैं। उन्होंने प्रेम का पानी देकर (परमात्मा से प्रेम कर) अपनी (मनुष्य-जन्म रूपी) फ़सल पकाई है अर्थात् परमात्मा से प्रेम कर अपना मानव-जीवन सफल बनाया है ॥ २१९ ॥

फुर्ने फुरे फोक, कया जीअ जहान जा।
भवनि भौसागर में, पाए तमाँ तोकु।
इस्थति रहे आकास जाँ, को औधूतु असोकु।
जाग्री लोकु परलोकु, लै ड्रिठो जंहिं लख्य में ॥ २२० ॥

सामीजी कहते हैं कि भ्रमों ने संसार के जीवों को लूटकर खोखला बना दिया है; वे इच्छाओं के पीछे पड़कर, संसार रूपी सागर में भटक रहे हैं। केवल कुछ शोक-रहित अवधूत ही आकाश की भाँति स्थित (अचल) रहते हैं। उन्होंने जागृत होकर लोक तथा परलोक को आत्मा में ही देख लिया है ॥ २२० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फुर्ने मंझि फासी, पिया जीअ जहान जा ।
भुली भवनि पाणहीं, चर्या चौरासी ।
सामी कई जंहिं सूर्मे, खतु फारे खलासी ।
अलखु अविनासी, डि्ठो जंहिं अभेदु थी ।। २२१ ।।

संसार के जीव भ्रमों में फँस गये हैं । वे पागल अपने (स्वरूप) को भूल कर चौरासी (लाख योनियों) में स्वेच्छा से भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं पर जिस शूरवीर (ज्ञानी) ने (पूर्वकर्म रूपी) पत्र को फाड़कर ख़त्म कर दिया है (जो पूर्व-कर्मों को काटकर मुक्त हो बैठा है), उसने ही अभेद (द्वैत रहित अथवा आतमा एवं परमातमा को अभेद मानने वाला) होकर अलख अविनाशी को देखा है ।। २२१ ।।

फुर्ने मंझि फासी, पिया जीअ जहान जा ।
भुली भवनि पाणहीं, चर्या चौरासी ।
सामी बचियो को साध संगि, व्रिलो वेसासी ।
अलखु अविनासी, घिरी लधो जंहिं घर मों ।। २२२ ।।

संसार के जीव भ्रमों में फँस गये हैं । वे पागल, अपने (स्वरूप) को भूल कर, चौरासी (लाख योनियों) में स्वयं ही भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं, वही विरला विश्वासी साधुओं के संग से (भ्रमों से) बच गया है जिसने (हृदय रूपी) घर में झाँककर अलख अविनाशी को ढूँढ लिया है ।। २२२ ।।

फुर्ने मंझि फासी, पिया जीअ जहान जा ।
रहे अलेपु आकास जाँ, को नेहीं निरासी ।
सामी जंहिंखे सर्व गति, सम सता भासी ।
गंगा गया कासी, भवे कीन भुलनि जाँ ।। २२३ ।।

सामीजी कहते हैं कि संसार के जीव भ्रमों में फँस गये हैं । वह निराश प्रेमी ही आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है, जिसे सर्वगत एक ही सत्ता (आत्मा) समान रूप से दिखाई देती है, वह भूले हुए लोगों (अज्ञानी जीवों) की तरह गंगा, गया तथा काशी में नहीं भटकता है ।। २२३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फुर्ने मंझि फासी, पिया जीअ जहान जा ।
सदा भवनि सामी चए, मूर्ख मवासी ।
रहे अलेपु आकास जाँ, को व्रिलो वेसासी ।
अलखु अविनासी, सम द्रिठो जँहिं साध संगि ।। २२४ ।।

सामीजी कहते हैं कि संसार के जीव भ्रमों में उलझ गये हैं। वे अहंकारी मूर्ख सदैव ही (भवसागर में) भटकते रहते हैं। वही विरला विश्वासी आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है, जिसने साधुओं के संग से अलख अविनाशी (आत्मा) को समान रूप से देखा है। (जिसने एक ही आत्मा को सब में देखा है) ।। २२४ ।।

फुर्ने सभि फाहे, छद्रिया जीअ जहान जा ।
भुली भवनि पाणहीं, रूप रंग ठाहे ।
सामी सटी कँहिं सूर्मे, पर्चिछन्नता लाहे ।
नकी रुली राहें, नकी खणे खोआरु थी ।। २२५ ।।

सामीजी कहते हैं कि भ्रमों ने संसार के जीवों को उलझा दिया है, अतः वे अपने (स्वरूप) को भूलकर अपने ही द्वारा बनाये हुए रूप-रंगों में (माया में) भटक रहे हैं। किसी शूरवीर (ज्ञानी) ने ही मायावी भ्रमों को पटक कर उतार दिया है (माया से मुक्त हो बैठा है), अतः न तो वह अलग-अलग रास्तों (मत-मतान्तरों) में भटकता है और न ही (माया रूपी) बोझ को उठाकर बदनाम होता है ।। २२५ ।।

ब्रांभण ब्रधु म ठाठ, कूड़ो माया मोहजो ।
खणी हणंदइ खद्र में, ईहा द्राइणि द्राठ ।
छद्रे पोथ्यूं पाठ, जाग़ी द्रिसु जग़दीस खे ।। २२६ ।।

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि (ऐ मनुष्य) माया मोह के झूठे ठाठों को मत बाँध (झूठी माया में अपने को मत खपा) क्योंकि यह हठीली डाइन तुझे उठाकर गड्ढे में डाल देगी। अतः पोथी (धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन) तथा पूजा-पाठ को छोड़ कर जागृत होकर जगदीश्वर को देख ।। २२६ ।।

विषयुनि विञ्ञाए, विधा जीअ जहान जा ।
स्पर्श आदिक साँ मिली, जन्म थो पाए ।
सामी साधू सूर्मो, बचियो साध सङ्गति साए ।
ब्र्याई बुझाए, पाए पूरणु पदवी ।। २२७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विषयों ने संसार के जीवों को नष्ट कर दिया है; वे स्पर्श आदि से मिल कर (इन्द्रियों का सुख भोग कर) जन्म प्राप्त करते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कोई शूरवीर साधु ही सन्तों के संग तथा आश्रय से इन (विषय वासनाओं) से बच गया है। वह द्वैत मिटाकर (आत्मा तथा परमात्मा को एक समझ कर) पूर्ण-पद प्राप्त करता है ॥ २२७ ॥

वेई विश्व सारी, वही वाच वहण में।
लंघे सघे लख्य ते, को भाग्यवानु भारी।
सामी जँहिखे सतिगुरूअ, गति मति सेखारी।
समता सचारी, मुखि रखी मौजाँ करे ॥ २२८ ॥

सारा संसार (माया के) तेज़ प्रवाह में बहता जाता है; कोई महान भाग्यशाली ही इसे (माया रूपी समुद्र को) पार कर (ज्ञान-रूपी) लक्ष्य की ओर उन्मुख हो सका है। सामीजी कहते हैं कि जिसे सद्गुरु ने गति (संसार में चलने का ढंग) तथा मति (बुद्धि) सिखाई है (उपदेश दिया है) वही समता एवं सचाई को अपना कर (परमात्मा की ओर) उन्मुख होकर आनंद लूटता रहता है। (माया से विरक्त हो, आतम-साक्षात्कार में ही मग्न रहता है।) ॥ २२८ ॥

कलपत कया ख़ुआरु, सभे जीअ जहान जा।
वेही पँहिंजे घर में, करिनि कीन वीचारु।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, हर्जनु रहे हुशारु।
कयो जँहिं दीदारु, सामी सुपिर्युनि जो ॥ २२९ ॥

सामीजी कहते हैं कि (माया के) प्रपंच ने संसार के जीवों को बदनाम कर दिया है। वे (हृदय रूपी) घर में बैठ कर विचार नहीं करते हैं (आत्मा का चिंतन नहीं करते हैं)। करोड़ों में से हरि के किसी एक भक्त ने ही सावधान होकर प्रियतम का दर्शन किया है ॥ २२९ ॥

कलपत किरोधी, कया जीअ जहान जा।
सीतलु रहे स्वभाव में, ब्रह्मण को ब्रोधी।
गुर्गम जँहिं सोधी, काया पर्ची पँहिंजी ॥ २३० ॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि (माया के) प्रपंच ने संसार के जीवों को क्रोधी बना दिया है। कोई ज्ञानवान् शिष्य, जिसने सन्तुष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होकर अपनी काया (शरीर) ढूँढी है (काया में स्थित आत्मा को ढूँढ लिया है), वही अपने भावों में शीतल रहता है ॥ २३० ॥

कल्पत कुती छिती, कँहिखे छद्दे कीन की ।
सामी कयाईं सभ खे, खपाए ख़फ़िती ।
इस्थीत रहे आकास जाँ, को जोगेस्वरु जुगिती ।
गुज़र जी ग़णती, सटे विधी जँहिं साध सङ्गि ॥ २३१ ॥

सामीजी कहते हैं कि (माया का) प्रपंच पागल कुत्ते की तरह किसी को भी नहीं छोड़ता (जिस प्रकार पागल कुत्ता सबको काटता है उसी प्रकार माया भी सब को काटती रहती है) । इस (माया) ने सब को फँसाकर नष्ट कर दिया है। वही युक्तिनिपुण योगीश्वर आकाश की भाँति स्थिर रहता है, जिसने साधुओं के संग से जीवन-निर्वाह की चिन्ता त्याग दी है ॥ २३१ ॥

कल्पत कुती छिती, ड्राड़े फाड़े ड्रन्दरी ।
सामी छद्रियाईं क्षण में, ख़लिक करे ख़फ़िती ।
साबितु रहे स्वभाव में, को जोगेश्वर जुगिती ।
गुज़र जी ग़णिती, फिटी कई जँहिं फहम साँ ॥ २३२ ॥

सामीजी कहते हैं कि (माया रूपी) प्रपंच, बड़े दाँतों वाले पागल कुत्ते की तरह सब को चीरता-फाड़ता रहता है। वह एक क्षण में ही संसार के लोगों को अपने फन्दे में फँसा देता है। वही युक्तिनिपुण (विचारवान्) योगीश्वर अपने ही विचारों में सकुशल (माया से सुरक्षित) रहता है, जिसने चतुराई से जीवन-निर्वाह की चिन्ता त्याग दी है ॥ २३२ ॥

कल्पत जी कहिरी, सिन्धु वहे सामी चए ।
तँहिं में जीअ जहान जा, लुढ़िया वञनि लहरी ।
को प्रेमी लंघे पारि पियो, तौकलि साणु तरी ।
ड्रिठो जँहिं वरी, पँहिंजे अख्यें पाण खे ॥ २३३ ॥

सामीजी कहते हैं कि प्रपंच का ऐसा समुद्र बह रहा है, जिसकी लहरों में संसार के जीव बह जाते हैं। वही प्रेमी युक्ति से (मायारूपी समुद्र को) तैर कर पार हो गया है जिसने उलट कर (विरक्त होकर) अपनी आँखों से अपने आप (परमात्मा) को देख लिया है ॥ २३३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कल्पत जी कूड़ी, छोति लगी हिन जीअ खे ।
चाह रख्याईं चित में, चमाड़ी चुहुरी ।
तँहि विञायसि घरजी, निजु निर्मल मूड़ी ।
कढे करूड़ी, त सुखी थिए सामी चए ।। २३४ ।।

इस जीव को झूठी माया की ऐसी छूत लग गई है कि उसने अपने चित्त में चमड़े की बुरी चाहना रख ली है (आत्मा में आसक्त न होकर चमड़े के बने शरीर में ही आसक्त हो बैठा है)। इस इच्छा से वह (हृदय रूपी) घर की पवित्र पूँजी तक खो बैठा है (शरीर में मोह रखने के कारण वह आत्म-धन से वंचित हो गया है)। सामीजी कहते हैं जब वह (जीव) (अपने हृदय से) झूठी आशाएँ निकाल देगा, तभी सुखी होगा ।। २३४ ।।

कल्पत मुठो जीउ, वञी पियो विस्तार में ।
भर्म मंझि भुली करे, दह दिस फोले पीउ ।
तप तीर्थ साधन करे, सहे गर्मी सीउ ।
घर में पहिड़े पीउ, सामी द्रिसे कीनकी ।। २३५ ।।

माया का मारा हुआ जीव (प्रपंच के झूठे) विस्तार में जा पड़ा है। वह भ्रम में भूलकर, प्रियतम को दसों दिशाओं में ढूंढता है। वह (प्रियतम से मिलने के लिए) तप-र्तीथ आदि साधन करता है तथा शीत-उष्णता सहन करता है, पर (हृदय रूपी) घर में झाँक कर प्रियतम को नहीं देखता ।। २३५ ।।

कल्पत में काहे, मूर्ख पिया मर्म रे ।
चढ़नि चौरासीअ जे, फिरी फिरी फाहे ।
सामी सटी कँहि सूर्में, पर्च्छिन्न पिण्डु लाहे ।
नकी की ग़ाहे, नकी खणे ख़ुआरु थी ।। २३६ ।।

बुद्धिहीन मूर्ख माया में ऐसे फँस गये हैं कि वे बार-बार चौरासी (लाख योनियों के चक्कर) में फँस जाते हैं। सामीजी कहते हैं कि किसी शूरवीर (ज्ञानी) ने ही परिछिन्नता (भेदभाव) का पिण्ड (माया का बोझ) पटक दिया है। वह न तो (माया के संबंध में) विचार करता है और न ही (माया का बोझ उठाकर) अपने को बदनाम करता है। (वह माया से बिल्कुल निर्लिप्त रहता है) ।। २३६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कल्पत मंझि काहे, पिया सभि जीअ जहान जा ।
ज्रमनि मरनि मर्म रे, नानां ठाह ठाहे ।
सामी सटी कंहि सूर्मे, पर्च्छिन्न पिण्ड लाहे ।
नितु वंडे विराहे, कणिछीअ जाँ कोड़ो रहे ।। २३७ ।।

संसार के सब जीव माया में ऐसे फँसे हैं कि वे निर्लज्ज होकर, नाना प्रकार के ठाठ रचकर, जन्मते एवं मरते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि शूरवीर (ज्ञानी) ने परिछिन्नता (भेदभाव) का पिण्ड उतार कर पटक दिया है। वह कलछी की भाँति सब को बाँटकर भी स्वयं सदैव कोरे का कोरा रहता है (जिस प्रकार कलछी द्वारा सब को भोजन परस कर दिया जाता है, पर कलछी उस भोजन का उपभोग स्वयं कभी भी नहीं करती है, उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य संसार के सब कार्य करते हुए भी कलछी की तरह कोरा (निर्लिप्त) रहता है ।। २३७ ।।

कल्पत सिधि कयो, अणहून्दो सन्सारु सभु ।
स्वप्न में सामी चए, जीएं नाना रूप थियो ।
पाणु भुलाए पंहिंजो, सन्से मंझि पियो ।
तदीं भर्मु वियो, जद्दीं जाग्री जुर्यो पाण में ।। २३८ ।।

सामीजी कहते हैं कि जिस प्रकार (जीव) स्वप्न में नाना रूप धारण करता है उसी प्रकार माया ने इस अस्तित्व-हीन (झूठे) संसार को रचा है। (जिस प्रकार सपने में धारण किये हुए सभी रूप झूठे हैं, उसी प्रकार माया द्वारा रचा संसार भी झूठा ही है)। (जीव) अपने स्वरूप को भूलकर भ्रम में पड़ गया है, उसका यह भ्रम तब नष्ट होता है जब वह अपने आप (परमात्मा) से जा मिलता है ।। २३८ ।।

भर्म जी भारी, छोति लग्री हिन जीअ खे ।
चाह रख्याईं चितमें, चमाड़ी चुहुरी ।
कयसि तँहिं कल्पत साँ, सामी दिलि कारी ।
बेहद जी ब्रारी, पूरे वेठो पाणहीं ।। २३९ ।।

सामीजी कहते हैं कि इस जीव को भ्रम की भयानक छूत लग गई है, जिससे उसने अपने चित्त में चमड़े की बुरी चाह (इच्छा) रख ली है। (वह आत्मा में आसक्त न होकर चमड़े के बने शरीर में ही आसक्त हो गया है।) उस (इच्छा) ने धोखे से उसका हृदय काला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर दिया है अतः वह स्वयं ही बेहद (अनंत) की खिड़की बन्द कर बैठा है (परमात्मा से मुख मोड़ बैठा है) ।। २३९ ।।

भर्म जी भारी, भिट लग़ी हिन जीअ खे ।
चाह रख्याई चित में, चुहरी चमाड़ी ।
कयसि जँहिं कल्पत साँ, सामी दिलि कारी ।
करे न करारी, परे ज्ञाणी पिय खे ।। २४० ।।

सामीजी कहते हैं कि इस जीव को भ्रम की भयानक छूत (छूत की बीमारी) लग गई है, अतः उसने अपने चित्त में चमड़े की अपवित्र इच्छा रख ली है, जिसने धोखे से उसके हृदय को काला बना दिया है। इस कारण अपने आप (परमात्मा) को दूर समझ कर कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं कर पाता है ।। २४० ।।

भर्म भुजंगु भारी, हले चले कीन की ।
ड्रंगी जँहिं ड्रन्दनि रे, सामी विश्व सारी ।
व्रिले वीचारी, को बचियो गुर ज्ञाति साँ ।। २४१ ।।

सामीजी कहते हैं भ्रम रूपी विकराल भुजंग, चलता-फिरता नहीं है फिर भी उसने सारे विश्व को बिना दाँतों के ही डस लिया है। अतः कोई विरला विचारवान् ही गुरु के ज्ञान से इस (भुजंग) से बच पाया है ।। २४१ ।।

भर्म मँझि भिटकी, मूर्ख मोआ केतिरा ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, अन्धा पिया अटकी ।
भर्की भग़ी कँहिं भाग्यवान, ममत्व जी मटिकी ।
लटके मंझि लटिकी, सामी रह्यो स्वरूप जे ।। २४२ ।।

सामीजी कहते हैं कि कितने ही मूर्ख (अज्ञानी) भ्रम में भटक-भटक कर मर गये हैं। वे अन्धे संसार को सत्य मान कर, उसी में ही अटक गये हैं। किसी भाग्यशाली ने ही उत्तेजित होकर ममता रूपी मटकी तोड़ दी है (ममता से मुक्त होगया है)। वह परमात्मा की लटक (नख़रे) पर ही रीझ गया है (प्रसन्न हो गया है) ।। २४२ ।।

भर्म मंझि भुली, पिया सभि जीअ जहान जा ।
जन्मनि मरनि मति रे, रसनि काणि रुली ।
सामी लधो कँहिं सूर्मे, अन्भय घरु असुली ।
मेटे कल्प कुली, माणे मौज मुक्ति जी ।। २४३ ।।

सामीजी कहते हैं कि संसार के सभी जीव भ्रम में (अपने आप को) भूल गये हैं। वे बुद्धिहीन विषय-रस के पीछे भटक कर जन्मते एवं मरते रहते हैं। किसी शूरवीर (ज्ञानी) ने ही आत्मज्ञान रूपी आदि घर ढूँढ लिया है, अतएव वह समस्त प्रपंच को भुलाकर, मुक्ति का आनंद लूट रहा है ।। २४३ ।।

भर्म मंझि भुली, पिया सभे जीअ संसार में ।
जन्मनि मरनि मति रे, रसनि काणि रुली ।
सामी लधो कँहि सूर्मे, अन्भय घरु असुली ।
मेटे कल्प कुली, इस्थति थियो आकास जाँ ।। २४४ ।।

सामीजी कहते हैं कि संसार में सब जीव भ्रम में भूल गये हैं। वे बुद्धिहीन विषय-रस के पीछे भटक कर जन्मते और मरते रहते हैं। किसी शूरवीर (ज्ञानी) ने ही आत्मज्ञान आदि का घर ढूँढ लिया है, अतएव वह समस्त प्रपंच को भुलाकर, आकाश की तरह स्थित हो गया है ।। २४४ ।।

भर्म मंझि भुली, मूर्खु फोले आत्मा ।
ॿारु विञाए निंड्में, जीए दरिदरि नारि रुली ।
जाग॒ये ग॒न्ढि खुली, ॿिन्ही जी ॿालो चए ।। २४५ ।।

सामीजी कहते हैं कि जिस प्रकार नींद में नारी बालक गँवाकर उसे द्वार-द्वार ढूँढती रहती है, उसी प्रकार भ्रम में भूलकर मूर्ख, आत्मा को (अपने से बाहर) ढूँढता रहता है। पर दोनों (नारी एवं मूर्ख) की (भ्रम रूपी) गाँठ जागृत होने पर ही खुलती है। (जिस प्रकार बालक के समीप होते हुए भी नारी अज्ञान-वश उसे द्वार-द्वार ढूँढती फिरती है, जागृत होने पर उसे अपनी भूल की प्रतीति होती है, उसी प्रकार आत्मा के अत्यन्त निकट होने पर भी अज्ञान-वश मनुष्य उसे बाहर ढूँढता फिरता है, पर ज्ञान के उदय होते ही उसे अपनी भूल का अनुभव होता है) ।। २४५ ।।

भर्म मंझि भुली, मूर्ख मुठा केतिरा ।
पर्ची ड्रिसनि न पँहिंजो, अन्भय घरु असुली ।
को आशिकु चढ़ियो अछ ते, मेटे कल्प कुली ।
जँहिंजो कँवलु खुली, सामी पियो साध सङ्गि ।। २४६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भ्रम में (अपने स्वरूप को) भूल कितने ही मूर्ख नष्ट हो गये हैं। वे सन्तुष्ट होकर अपने आत्म-ज्ञान के आदि घर को नहीं देखते (आत्म-ज्ञान से वंचित रहते हैं)। सामीजी कहते हैं कि वही प्रेमी, समस्त भ्रम मिटा कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, जिसका साधुओं के संग से (हृदय रूपी) कमल विकसित हो गया है (जिसे आत्म-ज्ञान मिल गया) ॥ २४६ ॥

भर्म रे भाणो, मन्यो जँहि महबूबजो।
तिनि जो मनु मौज में, सहजे सामाणो।
ड्रेई वेहाणो, सामी सुम्हियां सेजते ॥ २४७ ॥

सामीजी कहते हैं जिन्होंने भ्रमरहित होकर, प्रियतम की इच्छा को स्वीकार कर लिया है, उनका मन सहज ही आनंद में लीन हो गया है तथा वे तकिया लगाकर (स्थिर होकर) (आत्म-पद रूपी) शय्या पर सो गये हैं ॥ २४७ ॥

भर्म मिटायो भारी, जुदाईअ जो जग में।
जन्मनि मरनि जीअ सभि, बणी देहि धारी।
सामी मिल्यो स्वरूप साँ, को उतमु अधिकारी।
नानत निवारी, जागी जँहि अन्दर जी ॥ २४८ ॥

संसार में द्वैत (जीव और परमात्मा को अलग समझने की भावना) के भयानक भ्रम ने सब को मिटा दिया है। सब जीव देह धारण कर जन्मते एवं मरते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि वही श्रेष्ठ अधिकारी स्वरूप से जा मिला है, जिसने जागृत होकर हृदय से द्वेष को निकाल दिया है ॥ २४८ ॥

भेदु भर्मु भासे, जँहिखे जीव ब्रह्मजो।
तँहिखे कालु कल्पत जो, ग्रहे ग्रासे।
साख ड्रिनी सामी चए, कँहि नेहींअ निरासे।
जँहिजो पटु पासे, समुझाए कयो सतिगुरूअ ॥ २४९ ॥

जिसे जीव तथा ब्रह्म में भेद दिखाई देता है, उसे प्रपंच रूपी काल पकड़ कर निगल जाता है (वह माया में ही उलझ जाता है)। सामीजी कहते हैं उसी निराश प्रेमी ने यह सक्षी दी है, जिसे सद्गुर ने समझाकर, उसके (अज्ञान के) आवरण को हटा दिया है ॥ २४९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भोगनि भुलाए, छद्गिया जीअ जहान जा ।
भवनि पँहिंजो पाणहीं, फाही गलि पाए ।
कालु न द्रिसनि सिर ते, वरी वाझाए ।
विया सभि विञाए, हीरो जन्मु हथनिमों ।। २५० ।।

विषय-भोगों ने संसार के जीवों को (अपने स्वरूप से) भुला दिया है अतः वे स्वयं ही गले में फाँसी डालकर भटक रहे हैं। वे उलट कर (विरक्त होकर) सिर पर खड़ी मृत्यु को अपनी ओर ताकते हुए नहीं देखते हैं। वे सब अपने हाथों से हीरे के समान (मानव) जीवन को गँवा रहे हैं ।। २५० ।।

भोगनि भुलाए, विधा जीअ जहान जा ।
धिका खाइनि धर्म जा, कोट जन्म पाए ।
सामी बचियो को सूर्मो, साधुअ जे साए ।
ममत्व मिटाए, मिल्यो शुधि स्वरूप साँ ।। २५१ ।।

विषय-भोगों ने संसार के जीवों को (अपने स्वरूप से) भुला दिया है, अतः वे कोटि-कोटि जन्म पाकर व्यर्थ के धक्के खा रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही साधुओं के सहारे, ममत्व मिटाकर, भोगों से बचकर, शुद्ध स्वरूप से जा मिला है ।। २५१ ।।

भोगनि भुलाए, विधा जीअ जहान जा ।
पाणु पँहिंजो पाण में, वेठा विञाए ।
सामी समुझनि कीन की, कोट जन्म पाए ।
छुटो छुटाए, त अचनि अन्भय पद में ।। २५२ ।।

सामीजी कहते हैं कि भोगों ने संसार के जीवों को भुला दिया है, अतः वे अपने अहं में अपने (परमात्मा अथवा स्वरूप) को खो बैठे हैं। करोड़ों जन्म पाकर भी वे यह नहीं समझते हैं पर जब कोई मुक्त (माया से मुक्त व्यक्ति अथवा सद्‌गुरु) उन्हें (माया तथा विषय भोगों से) छुड़ाता है तभी वे आत्म-पद को प्राप्त होते हैं ।। २५२ ।।

भोगनि भुलाए, विधा जीअ जहान जा ।
सामी सुम्हिया सुखि थी, पेट ग्रिचीअ पाए ।
कालु न द्रिसनि कन्ध ते, खर्ची थो खाए ।
लेखो चुकाए, अची घुटीन्दुइ ओचितो ।। २५३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भोगों ने संसार के जीवों को (अपने स्वरूप से) भुला दिया है अतः वे निश्चिन्त होकर सुख की नींद सो रहे हैं (अज्ञान में ही मस्त रहते हैं)। वे कन्धे पर सवार (आयु अथवा जीवन को) खरचने-खाने वाली मृत्यु को नहीं देखते हैं। सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं कि यह (काल) तेरा हिसाब किताब तुझे पकड़कर, अचानक ही चुका देगा ॥ २५३ ॥

भोगनि भुलाए, विधा जीअ वहण में।
गोता खाइनि ग़ैब जा, कोट जन्म पाए।
सामी बचियो को सूर्मो, साधूअ जे साए।
ममत्व मिटाए, पूरणु द्रिठो जँहिं पीअ खे ॥ २५४ ॥

भोगों ने संसार के जीवों को (प्रपंच के) प्रवाह में डाल दिया है। वे कोटि जन्म पाकर ग़ैब के ग़ोते खा रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि किसी शूरवीर (ज्ञानी) ने ही, साधुओं के सहारे ममता मिटाकर, भोगों से बचकर, पूर्ण प्रियतम को देखा है ॥ २५४ ॥

भोगनि भुलाए, विधो जीउ वहण में।
पुठी द्रेई पाणखे, गोता नितु खाए।
उल्टी द्रिसे कीनकी, मूँहुं मढ़ीअ पाए।
जाग़यो जाग़ाए, त सुखी थिए, सामी चए ॥ २५५ ॥

सामीजी कहते हैं कि भोगों ने जीव को (प्रपंच के) प्रवाह में डाल दिया है, अतः वह अपने स्वरूप से मुख मोड़कर सदैव (प्रपंच रूपी समुद्र में) गोते खा रहा है, वह पलट कर (संसार से विरक्त होकर) हृदय में नहीं देखता है। पर जब उसे जागृत (सद्गुरु) जगाता है (ज्ञान देता है) तभी वह सुखी होता है ॥ २५५ ॥

भोगनि भुलायो, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, भर्म भुलायो।
सामी सङ्गि साधूअ जे, उल्टी घरि आयो।
नकी विञायो, नकी पातो पाण रे ॥ २५६ ॥

भोगों ने प्रत्यक्ष पूर्ण आत्मा को (अपने स्वरूप से) भुला रखा है अतः वह भ्रम में भूलकर संसार को सत्य मान बैठा है। सामीजी कहते हैं कि जो (व्यक्ति) साधुओं के संग से (संसार से) विरक्त होकर (हृदय रूपी) घर में वापस लौट आया है, उसने न तो कुछ खोया है और न कुछ पाया है ॥ २५६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भोगनि भुलायो, सभ कँहिखों सुप्रीं ।
सतिगुर पँहिजे सघ साँ, जँहिखे जागायो ।
सुख दुःख जे सागर में, विझी वहायो ।
उल्टी घरि आयो, सामी चए को सूर्मो ।। २५७ ।।

सामीजी कहते हैं कि भोगों ने सब जीवों को प्रियतम से वचित कर दिया है (भोगों में पड़ कर सब प्रियतम को भूल गये हैं) तथा उन्हें सुख-दुःख के सागर में डालकर बहा दिया है (नष्ट कर दिया है) । पर जिसे सद्‌गुरु ने अपनी शक्ति से जागृत किया है वही शूरवीर (ज्ञानी) पलट कर (संसार से विरक्त होकर) अपने घर में आया है (आत्मा को पा लिया है) ।। २५७ ।।

भोगनि मंझि भुली, पिया जीअ जहान जा ।
मरनि मति मर्म रे, रात्याँ ड्रींह रुली ।
सामी लधो कँहिं सूर्मे, अन्भय घरु असुली ।
मेटे कल्प कुली, इस्थति थियो आकास जाँ ।। २५८ ।।

संसार के सब जीव भोगों में पड़कर (अपने आप को) भूल गये हैं। वे निर्लज्ज एवं बुद्धिहीन, दिन रात भटक-भटक कर मर रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही समस्त प्रपंच को मिटाकर, आत्म-ज्ञान के आदि घर को ढूँढ कर, आकाश की भाँति स्थिर हो सका है ।। २५८ ।।

भोग भोगे भारी, कूड़ा रज़नि कीन की ।
खयों वतनि सिर ते, तमा तगारी ।
सुखी रहे सामी चए, को व्रिलो वीचारी ।
बेहद जी बारी, पटे द्रिठो जँहिं पाण खे ।। २५९ ।।

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी जीव) अनेक भोग भोगकर भी सन्तुष्ट (तृप्त) नहीं होते हैं। वे सिर पर कामना रूपी तगारी (बोझ) लेकर फिरते रहते हैं। कोई विरला विचारवान् ही अनंत की खिड़की खोलकर, अपने स्वरूप को देखकर, सुखी हुआ है ।। २५९ ।।

भोग भोगे भोगी, रज़नि न रतीअ जेत्रो ।
जिनिजी माया मोह साँ, मति कई मोगी ।
माणे सुखु स्वरूप जो, को जागायो जोगी ।
सदा निरोगी सामी रहे स्वभाव में ।। २६० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि वह भोगी जिसकी माया ने मोह से बुद्धि मन्द कर दी है, अनेक भोग भोगकर भी रत्ती मात्र भी तृप्त नहीं होता। पर जागृत योगी सदैव ही निरोगी (भोग रूपी रोग से मुक्त) होकर, स्वरूप के सुख का उपभोग करता है एवं अपने ही भावों में मस्त रहता है।। २६० ।।

भोले भुलाए, सभखे माया मोहिणी।
मति खसे मोग़ो करे, वह में वहाए।
सामी बचियो को सूर्मो, साधूअ जे साए।
वेठो वज़ाए, नंगारो निरब्राण जो ।। २६१ ।।

मोहिनी माया सब को भ्रम में भुला देती है, वह (माया) सब की बुद्धि छीन कर, मन्द बनाकर (प्रपंच के) प्रवाह में बहा देती है। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही साधुओं के सहारे से (माया से) बच सका है एवं बैठकर निर्वाण रूपी नगाड़ा बजा रहा है (माया से मुक्त हो आत्मानंद प्राप्त कर रहा है) ।। २६१ ।।

भोले भुलायो, अणहून्दे अज्ञान जे।
पुठी ड्रेई पाणखे, दह दिसां धायो।
स्वप्न में सामी चाए, सभु रंगु रचायो।
अखि खुल्ये आयो, ऐनु अभेद आकास में ।। २६२ ।।

सामीजी कहते हैं (मनुष्य को) अस्तित्व-हीन (झूठे) अज्ञान के भ्रम ने भुला दिया है, अतः वह अपने से मुख मोड़कर (अपने स्वरूप को न पहचानकर) दसों दिशाओं में भटक रहा है। स्वप्नवत् (संसार में) उसने अनेक (प्रपंच के) रंग रच दिये हैं, पर आँख खुलने पर ही (ज्ञान प्राप्त होते ही) उसे अनंत में अभेद, चेतन आत्मा दिखाई देती है ।। २६२ ।।

भोलो पियो भारी, जुदाईअ जो जग में।
तपी तँहिंजे ताव साँ, नचनि नर नारी।
सामी वेठो सम थी, को व्रिलो वीचारी।
बेहद जी ब्रारी, पटे द्रिठो जँहिं पाणखे ।। २६३ ।।

सामीजी कहते हैं कि संसार में द्वैत का ऐसा भारी भ्रम फैल गया है, जिसके ताप से तपकर (प्रभावित होकर) समस्त नर-नारी नाच रहे हैं। वही विरला विचारवान् सम होकर (दुख-सुख में समभाव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होकर) बैठा है, जिसने अनंत की खिड़की खोलकर अपने स्वरूप को देख लिया है ।। २६३ ।।

मनन जी माखी, चटे जीअ चर्या थिया ।
काया माया कुल में, कल्पत नितु कांखी ।
कँहिं सुजागे सही कई, सामी थी साक्षी ।
छद्दे हलाखी, जुर्यो रहे जगदीस साँ ।। २६४ ।।

सामीजी कहते हैं कि मन का शहद चाट कर जीव पागल से हो गये हैं (मन के संकल्प-विकल्प में जीव अपने आप को खो बैठे हैं) । वे सदैव काया, माया तथा कुल के प्रपंच के ही इच्छुक रहते हैं । कोई (ज्ञानी) ही दुखदायी (माया) के सही रूप को जानकर, साक्षात् जगदीश्वर से जा जुड़ा (मिला) है ।। २६४ ।।

मनन मंझि मुठा, ज्ञानी ध्यानी गृहस्ती ।
सूधी राह छद्दे करे, पाइनि पेर पुठा ।
वारौ वार समुझ रे, कल्पत काल कुठा ।
मूर्ख रहनि रूठा, सामी शुधि स्वरूप खों ।। २६५ ।।

सामीजी कहते हैं कि ज्ञानी, ध्यानी तथा गृहस्थी मन के संकल्प-विकल्प में नष्ट हो गये हैं; वे सीधी राह छोड़कर, उल्टी राह पर पैर रख रहे हैं (उल्टी राह अपना रहे हैं) । वे बुद्धिहीन होकर बारबार जन्म-मृत्यु के चक्कर में भटक रहे हैं । ये मूर्ख शुद्ध स्वरूप (परमात्मा) से सदैव रूठे रहते हैं (दूर रहते हैं) ।। २६५ ।।

रङ्ग अपारु रचियो, माया मोह ममत्व जो ।
तँहिंमें जगु तद्रूपु थी, नाना भाइं नचियो ।
को साधू जन सूर्मो, बला खों बचियो ।
आतम शुधि सचो, सामी माणे सर्वगति ।। २६६ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया ने मोह तथा ममता का असीम प्रपंच रचा है, जिसमें संसार तद्रूप होकर, नाना भाँति से नाच रहा है । कोई शूरवीर (ज्ञानी) साधु ही (माया रूपी) नागिन से बच पाया है एवं शुद्ध तथा शाश्वत आत्म-सुख का उपभोग कर रहा है ।। २६६ ।।

लाहे जँहिं धरी, ममत्व पिण्डु मथेतों ।
सामी तँहिं सापुरुष जी, लूअँ लूअँ सभुठरी ।
मँझों तारि तरी, पहुतो पारि प्रियनि साँ ।। २६७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि जिस महान् पुरुष ने सिर से ममता का पिण्ड उतार कर रख दिया है, उसका रोम-रोम शीतल हो गया है। वह (संसार रूपी) समुद्र को तैर कर, उस पार प्रियतम से जा मिला है ॥ २६७ ॥

लाहे जँहिं भरी, बिधी माया ममत्व जी।
सामी तँहिं सापुरुष जी, लूअँ लूअँ पई ठरी।
मोटी द्रिसे कीन की, माया मंझि अरी।
वञे पाण मरी, जीअन्दे हिन जहान मों ॥ २६८ ॥

सामीजी कहते हैं कि जिस श्रेष्ठ पुरुष ने माया-ममता की गठरी उतार कर रख दी है, उसका रोम-रोम शीतल हो गया है। वह माया में दुबारा नहीं फँसता (एक बार माया से मुक्त होने पर, वह दुबारा उसमें नहीं फँसता है)। वह इस संसार से जीवनमुक्त हो जाता है ॥ २६८ ॥

सन्से जग्रु सारो, मुंझाए मोगो कयो।
कँहिंजी हले कीनकी, चतुराई चारो।
व्रिलो को गुर्मुखु रहे, निर्पक्षु न्यारो।
अन्भय उज्यारो, सामी द्रठो जँहिं सम थी ॥ २६९ ॥

सामीजी कहते हैं कि भ्रम ने सारे संसार को उलझन में डाल कर मन्द वना दिया है। इस (भ्रम) के आगे किसी की कोई युक्ति तथा चतुराई नहीं चलती है। वही विरला-गुरुमुख निष्पक्ष तथा न्यारा रहता है जिसने सम होकर आत्मज्ञान का प्रकाश देखा है ॥ २६९ ॥

सन्से सभु सन्सार, लोड़े लावारो कयो।
लही सघे न लख्य रे, पर्चिछन्नता जो पारु।
साख द्रिए सामी चए, साधूजनु सच्यारु।
करे जँहिं करारु, पूरणु द्रिठो पीअ खे ॥ २७० ॥

भ्रम ने सारे संसार को (अपने प्रवाह में) बहाकर नष्ट कर दिया है। आत्मज्ञान के सिवा वह परिच्छिन्नता (आत्मा-परमात्मा के अलग भाव का रहस्य) का अन्त भी नहीं पा सकता है। सामीजी कहते हैं कि सत्यव्रती साधु पुरुषों ने यही साक्षी दी है कि वही (मनुष्य) चैन से रहता है, जिसने पूर्ण प्रियतम (परमात्मा) को देख लिया है ॥ २७० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सन्से सभेई, ड्रङ्गे जीअ दुःखी कया।
अणहून्दी अविद्या जी, ज़हरु चढ़ी वेई।
सामी सुधि पेई, ईहा जाग्रये जन खे ॥ २७१ ॥

भ्रम ने सब जीवों को अपने डंक से दुखी कर दिया है; अस्तित्वहीन अविद्या का ज़हर उन (जीवों) में व्याप (फैल) गया है। (जिस प्रकार सर्प के डंक से सारे शरीर में उसका ज़हर फैल जाता है उसी प्रकार भ्रम रूपी सर्प के डंक से अज्ञान रूपी ज़हर सारे शरीर में व्याप्त हो गया है।) सामीजी कहते हैं कि जागृत (ज्ञानी) को ही इस बात का ज्ञान होता है ॥ २७१ ॥

सन्से सर्प ड्रङ्गे, मोग़ो कयो माणुहुनि खे।
अठई पहर अन्दर में, सभिको पियो सङ्गे।
को आशिकु चढ़ियो अछ ते, लोकाँ लोक लंघे।
जँहिखे रङ्गि रङ्गे, सामी छद्रियो सतिगुरूअ ॥ २७२ ॥

भ्रम रूपी सर्प ने मनुष्यों को डंक मार कर, उन्हें बुद्धिहीन बना दिया है, अतः आठों पहर सब उस भ्रम में ही भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि वही प्रेमी संसार को पार कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, जिसे सद्गुरु ने (आतम) रंग से रंग दिया है ॥ २७२ ॥

सन्से सर्प ड्रङ्गे, सामी विधा जीअ सभि।
चिन्ता चाह रसीअ साँ, वेठा पाणु वङ्गे।
सघे कोन लंघे, मृघतृष्णा जे जल खों ॥ २७३ ॥

सामीजी कहते हैं कि भ्रम रूपी सर्प ने सब जीवों को डस लिया है। वे चिन्ता तथा चाह रूपी रस्सी से अपने आप को बाँध बैठे हैं, अतः वे मृगतृष्णा के जल (माया) से पार नहीं हो सकते हैं ॥ २७३ ॥

सन्से सर्प ड्रङ्गे, सारो ड्रेहु दुखी कयो।
सामी वियो को सूर्मो, परिपकु पारि लंघे।
जँहिखे छद्रियो सतिगुरूअ, आतम रङ्गि रङ्गे।
कँहिखों कोन मङ्गे, माणे मौज मुक्ति जी ॥ २७४ ॥

सामीजी कहते हैं कि भ्रम रूपी सर्प ने सारे विश्व को डस कर दुखी बना दिया है। कोई परिपक्व (अनुभवी) शूरवीर ही इस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(भ्रम) से पार हो सका है। जिसे सद्‌गुरु ने आतम-रंग में रंग दिया है वह किसी से कुछ न माँगकर मुक्तावस्था का ही आनंद लूटता है॥ २७४॥

सभखे फर्कु फिकिलि, माया लाथो मोह साँ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, सामी हणनि सिरु।
कँहिं सुजागे सुर्मे, साधूअ कयो सबुरु।
जाग़ी जँहिं ज़ाहिरू, ज्योति डि्ठी ज़िन्दपीर जी॥ २७५॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने मोह से सब को भेद तथा भ्रम में डाल दिया है, अतः वे संसार को सत्य मानकर अपना सिर खपा रहे हैं (कष्ट उठा रहे हैं)। पर जागृत शूरवीर साधु ने धैर्य से काम लिया क्योंकि उसने जागृत होकर (ज्ञान प्राप्त कर) ज़िन्दपीर (परमात्मा) की ज्योति को प्रत्यक्ष देखा॥ २७५॥

सभखे भउ भारो, लायो भूत भर्म जो।
कँहिंजी चले कीनकी, चतुराई चारो।
सामी रहे को सूर्मो, नभ जाँ न्यारो।
जाग़ी जगु सारो, लै डि्ठो जँहिं लख्य में॥ २७६॥

भ्रम रूपी भूत का भारी भय सब (जीवों) को लगा हुआ है। उसके (भ्रम के) आगे किसी की चतुराई एवं विद्वत्ता नहीं चलती है। सामीजी कहते हैं कि जिस शूरवीर (ज्ञानी) ने जागृत होकर, सारे विश्व को परमात्मा में लय होते देखा है, वही आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है॥ २७६॥

सभखे मन करे, छडि्यो ग़र्टु ग़िचीअ में।
भवनि नितु भुलनि जाँ, ज्ञाणी पीअ परे।
कँहिं आशिक हंयुसि अन्भई, बेहद ब्राणु भरे।
सामी डि्सी ठरे, पँहिंजे अख्यें पाण खे॥ २७७॥

सामीजी कहते हैं कि मन ने सब के गले में (माया की) फाँसी डाल दी है, अतः वे प्रियतम को (अपने से) दूर जान कर भूले हुए लोगों की तरह सदैव भटक रहे हैं। पर कोई अन्तर्मुख प्रेमी जिसने (मन को) अनंत (ज्ञान का) तीर भर कर मारा है, वह अपने ही नेत्रों से अपने स्वरूप को देखकर शीतल हो गया है॥ २७७॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभखे मन मारे, मोग़ो कयो मुकुनि साँ।
सुद्रिकनि स्याणा सूर्मा, ब्रांभणु ब्रलु हारे।
कँहिं निरविकल्प नेहींअ छद्रियो, तूहनि जाँ तारे।
द्रिठो जँहिं ब्रारे, द्रीओ पँहिंजे द्रील में ॥ २७८ ॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि मन ने सब को घूँसों से मार कर, मन्द बना दिया है। बुद्धिमान तथा शूरवीर भी मन के सामने बल हारकर रो रहे हैं; मन पर उनका कोई वश नहीं चलता है। पर जिस निर्विकल्प प्रेमी ने शरीर में ही (ज्ञान का) दीपक जला कर देखा है, उसने माया को अनाज के छिलकों (Husk) की तरह आसानी से बाहर निकाल दिया है। (जिस प्रकार छिलके वाले अनाज को पानी में डालने से छिलके पानी के ऊपर-ऊपर तैरते है और फिर उन्हें आसानी से निकाला जा सकता है, उसी प्रकार प्रेमियों ने आत्मज्ञान द्वारा माया को सरलता से अलग कर दिया है) ॥ २७८ ॥

सभ खे मन मुठो, द्रेई ग़र्टु ग़िचीअ में।
जीएं दसे ब्रकिरीअ खे, कासाईअ कुठो।
सामी बचियो को सूर्मो, जँहिं ते सन्तु तुठो।
उठे बुहिं चुठो, करे मिल्यो महबूब साँ ॥ २७९ ॥

सामीजी कहते हैं कि जिस प्रकार कसाई बकरी को फँसा कर मार देता है उसी प्रकार (निर्दयी) मन ने सब के गले में (माया रूपी) फाँसी डालकर उन्हें मार दिया है। पर जिस शूरवीर (ज्ञानी) पर सन्त प्रसन्न हुआ है (जिस पर सन्तों की कृपा है), वह सांसारिक अग्नि से शुद्ध होकर महबूब (परमात्मा) से जा मिला है ॥ २७९ ॥

सभ खे मन मुठो, द्रेई ग़र्टु ग़िचीअ में।
सूधी राह छद्रे करे, पाइनि पेरु पुठो।
सामी मन मवास खे, कँहिं कामिल कुठो।
उठो बुहिं चुठो, कयो जँहिं कारी कढी ॥ २८० ॥

मन ने सब के गले में (माया की) फाँसी डालकर उन्हें मार दिया है। वे सीधा मार्ग छोड़कर, उल्टे रास्ते पर पैर रख रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि जिस उत्तम पुरुष ने कालिमा (इच्छा, वासना आदि) निकाल कर अपने अहंकारी मन को मार दिया है (वश में कर लिया है), वही सांसारिक अग्नि से शुद्ध हुआ है ॥ २८० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभखे मुठो मन, ड्रेई ग॒र्टु ग॒िचीअ में ।
नाना भांइ भर्म जा, भुली पाइनि तन ।
सामी बचियो को सूर्मो, जाग॒ी बिना जतन ।
ब्रुधा जँहिं वचन, ऐतु अभेदु अन्भई ।। २८१ ।।

मन ने सब के गले में (माया रूपी) फाँसी डालकर, उन्हें मार दिया है (नष्ट कर दिया है), अतः वे भ्रम में भूले हुए लोगों की तरह नाना प्रकार के शरीर धारण कर भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि जिस शूरवीर ने शुद्ध एवं अभेद आत्मज्ञान के वचन (उपदेश) सुने हैं, वह बिना यत्न के जागृत होकर (मन के संकल्प-विकल्प से) बच गया है ।। २८१ ।।

सभ खे मुठो मन, विझी ग॒र्टु ग॒िचीअ में ।
पछिन ज्ञाणी पाणखे, कूड़ा कनि जतन ।
ईएं चवनि था अन्भई, सामी साधू जन ।
कोट अख्यूं एं कन, लिंव लिंव जिनिखे लख्यजी ।। २८२ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्तर्मुख साधु जिन्हें कोटिनेत्र एवं कान प्राप्त हैं, तथा जिनके रोम-रोम में परमात्मा (बस रहा) है, वे कहते हैं कि मन ने सब के गले में (माया रूपी) फाँसी डालकर उन्हें मार दिया है, अतः वे अपने को नाशवान् मानकर झूठे यत्न करते हैं ।। २८२ ।।

सभखे रोआरे, मोहे माया मोहिणी ।
भंवाए भव सिन्धु में नाना रूप धारे ।
सामी बचियो को सूर्मो, सतिगुर सम्भारे ।
बेहद ड्रियो ब्रारे, पूरणु ड्रिठो जँहिं पाण खे ।। २८३ ।।

मोहिनी माया सब को आकर्षित कर रुलाती रहती है। वह नाना प्रकार के रूप धारण कर उन्हें संसार रूपी सागर में भटकाती रहती है। सामीजी कहते हैं कि जिस शूरवीर (ज्ञानी) को सद्गुरु ने याद किया है (कृपा की है), वही (माया से) बच गया है, तथा उसने अनन्त (ज्ञान रूपी) दीपक जलाकर पूर्ण परमात्मा को देख लिया है ।। २८३ ।।

सभेई थी आतुरु, पिटिनि कारणि पेटजे ।
पाए भवनि पाणही भर्म खे भाकुरु ।
सामी सुजाग॒नि ड्रिठो, हरि हाज़ुरु नाज़ुरु ।
करे मनु अफुरु, माणिनि मौज मुक्ति जी ।। २८४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सब पेट के कारण दुखी होकर (अपने को) पीट रहे हैं तथा भ्रम को स्वयं ही गले से लगाकर भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि जागृत लोगों ने मन को स्थिर कर, परमात्मा को सब स्थानों पर व्याप्त देखा है, अतः वे मुक्ति का (आत्मा की मुक्तावस्था का) आनंद लूट रहे हैं ॥ २८४ ॥

सामी विश्व सारी, माया मोहे वसि कई ।
कँहिखे छद्रे कीन की, ड्रेई ड्रेखारी ।
को नेहीं व्युसि निकिरी, भाग्यवानु भारी ।
जँहिखे पीआरी, सतिगुरु सुर्की सार जी ॥ २८५ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने सारे विश्व को झूठे ठाठों द्वारा आकर्षित कर अपने वश में कर लिया है, वह (झूठे) ठाठ दिखाकर किसी को भी नहीं छोड़ती है। (सब को वश में करती है)। कोई महान् भाग्यशाली प्रेमी जिसे सद्गुरु ने ज्ञान का घूँट पिलाया है, वही इस (माया) से मुक्त हो पाया है ॥ २८५ ॥

सामी सभेई, भुला जीअ भर्म में ।
वठनि कचु ख़शीअ साँ, था आतम धनु ड्रेई ।
ड्रीओ ब्रारे घर में, दिसनि कीन पेही ।
व्रिला जन केई, सुर्झा रहनि स्वभाव में ॥ २८६ ॥

सामीजी कहते हैं कि सब जीव भ्रम में (अपने स्वरूप को) भूल गये हैं अतः वे आत्मारूपी धन देकर ख़ुशी से (विषय-वासनाओं रूपी) कीचड़ को ले रहे हैं। वे अपने (हृदय रूपी) घर में (ज्ञान का) दीपक जलाकर, भीतर पैठकर (झाँक कर) नहीं देखते, केवल कुछ विरले-लोग ही अपने भावों में सचेत रहते हैं ॥ २८६ ॥

हर हर कनि हर्कत, माया ख़ाब ख़्याल साँ ।
जँहिं में मुठा केतिरा, मूर्ख करे ममत्व ।
ज्ञमनि मरनि मति रे, भंवनि बिना कँहि मत ।
सामी सहनि दिकत, जाग्री ड्रिसनि न जीअ में ॥ २८७ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया के झूठे ख़्यालों में फँसकर लोग बार-बार (बुरा व्यवहार करते हैं)। कितने ही मूर्ख उस (व्यवहार) से ममता कर अपने को नष्ट करते रहते हैं। वे बुद्धिहीन होकर जन्मते तथा मरते रहते हैं और सिद्धान्त-हीन होकर भटकते रहते हैं। वे कष्ट सहन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करते हैं पर जागृत होकर हृदय में (स्थित परमात्मा को) नहीं देखते ।। २८७ ।।

हैरत ऐं हासी, अचे हिक अचिरज ते ।
ख़ावन्दु पँहिजे ख़्याल में, पियो फाहीअ रे फासी ।
भवे नितु भुलनि ज्याँ, गंगा गया कासी ।
खुदि रे खलासी, ब्रियो करे सघे कोन को ।। २८८ ।।

सामीजी कहते हैं कि मुझे इस बात पर हँसी आ रही है तथा आश्चर्य भी हो रहा है कि जीव (जो स्वयं परमात्मा का अंश है अर्थात् जो ख़ुद परमात्मा है), अपने ही विचारों में बिना फन्दे की फाँसी में फँस गया है। (माया परमात्मा द्वारा बनाई गई है, जीव परमात्मा का अंश है, पर अपनी ही बनाई माया में वह अपने सच्चे स्वरूप को भूल जाता है और माया को सत्य मान कर उसी में ही फँसा रहता है।) अतः वह भूले हुए की तरह गंगा, गया एवं काशी में (परमात्मा को पाने के लिए) भटकता रहता है, वह यह नहीं जान पाता कि उसके सिवा दूसरा कोई उसके (माया रूपी) बन्धन को नहीं काट सकता है। (माया के बन्धनों से मनुष्य स्वयं ही जागृत होकर अपने को बचा सकता है, दूसरे किसी की सहायता से ये बन्धन नहीं कट सकते।) ।। २८८ ।।

हैरत ऐं हासी, अचे हिक अचिरज ते ।
ख़ावन्दु पँहिजे ख़्याल में, पियो फाही अरे फासी ।
भवें नितु भुलनि ज्याँ, गंगा गया कासी ।
खुदि रे खलासी, केरु करे कर्तार जी ।। २८९ ।।

सामीजी कहते हैं कि मुझे इस आश्चर्यपूर्ण बात पर हँसी आ रही है एवं विस्मय भी हो रहा है कि जीव (जो परत्मामा का अंश होने के कारण ख़ुद परमात्मा ही है वह) अपने ही विचारों में (माया की) बिना फन्दे वाली फाँसी में फँस गया है, अतः भूले हुए की तरह (अपने परमात्मा को पाने के लिए) गंगा, गया तथा काशी में भटकता रहता है। भला परमात्मा के बन्धनों को उसके सिवा दूसरा कौन नष्ट कर सकता है? (परमात्मा का अंश जीव ही माया के इन बन्धनों को स्वयं काट सकता है, दूसरा कोई भी इसे काटने में असमर्थ है) ।। २८९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हैरत ऐं हासी, अचे हिक अचिरज ते ।
मञे वेठो पाण खे, अविनासी नासी ।
सदा भवे सामी चए, चित में चोरासी ।
खुदि रे खलासी, केरु करे कर्तार जी ।। २९० ।।

सामीजी कहते हैं कि मुझे इस बात पर हँसी भी आ रही है तथा विस्मय भी हो रहा है कि अविनाशी (आत्मा) अपने को नश्वर मान बैठा हैं । (आत्मा परमात्मा का अंश होने के कारण शाश्वत है परन्तु जीव जिसमें आत्मा का निवास है, वह अपने को आत्मा न मान-कर नश्वर शरीर ही मान बैठा है) । अतः वह चित्त द्वारा सदैव चौरासी (लाख योनियों) में भटकता रहता है, पर परमात्मा के बनाये हुए माया के बन्धनों को स्वयं उसके सिवा कौन नष्ट कर सकता है ? कोई नहीं ।। २९० ।।

हैरत ऐं हासी, अचे हिक अचिरज ते ।
साई फोले आतमा, खन्डु के पतासो ।
ग्रहणो ढून्ढे सोन खे, मिटीअ खे कासो ।
पाणी प्यासो, सामी रहे नितु नीर जो ।। २९१ ।।

सामीजी कहते हैं कि मुझे इस आश्चर्य पर हँसी भी आ रही है एवं विस्मय भी हो रहा है कि जीव स्वयं परमात्मा का अंश होते हुए भी उसे उसी प्रकार ढूँढता है, जिस प्रकार शक्कर का बना हुआ बताशा शक्कर को, सोने के बने हुए आभूषण सोने को, तथा मैल मिट्टी को ढूँढती रहती है । (वास्तव में सोने तथा सोने के आभूषणों में, शक्कर तथा बताशे में, मैल एवं मिट्टी में किसी प्रकार का भेद नहीं है; उनका केवल रूप ही अलग है । उसी प्रकार जीव तथा परमात्मा में भी कोई भेद नहीं है, पर अज्ञानवश जीव अपने को अलग मान बैठा है) । पानी में रहकर भी (आत्मा के अत्यन्त समीप होते हुए भी) जीव प्यासे का प्यासा रहता है ।। २९१ ।।

हैरत ऐं हासी, अचे हिक अचिरज ते ।
सामी जाणे पाण खे, अविनासी नासी ।
कुपिड़ीअ में आकासु पियो, फाहीअ रे फासी ।
पाणीअ में प्यासी, मरे पपोटो मति रे ।। २९२ ।।

सामीजी कहते हैं कि मुझे इस आश्चर्य पर हँसी भी आ रही है तथा विस्मय भी हो रहा है कि अविनाशी आत्मा (जीव) अपने को नश्वर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मान बैठा है। अनन्त आकाश को छोटे घड़े में देखकर जीव बिना फन्दे की फाँसी में फँस गया है। (आकाश अनन्त है; पर जब उसकी परछाई घट में पड़ती है जो घटाकाश कहलाती है। वास्तव में घटाकाश तथा आकाश में कोई अन्तर नहीं है; भेद केवल घड़े के कारण ही उत्पन्न हुआ है। उसी प्रकार जीव परमात्मा का अंश होने पर भी अपने को उससे अलग मानता है।) जिस प्रकार जल का बुदबुदा पानी में रहकर भी उससे न्यारा दिखाई देता है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव परमात्मा के अत्यन्त समीप होते हुए भी अपने को उससे अलग मानता है ॥ २९२ ॥

हैरत एें हासी, अचे हिक अचिरज ते।
सामी रहनि सरीर में, मूर्ख मवासी।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, जो खंयो फिरे फासी।
क्षण में खलासी, मारे कई जँहिं मुल्क जी ॥ २९३ ॥

सामीजी कहते हैं कि मुझे इस आश्चर्यपूर्ण बात पर हँसी भी आ रही है तथा विस्मय भी हो रहा है कि अहंकारी मूर्ख अपने शरीर में ही मस्त रहते हैं (आत्मा के विषय में न सोच कर शरीर के लिए ही सोच-विचार करते रहते हैं)। वे फाँसी को लेकर अपने कन्धे पर सवार उस मृत्यु को नहीं देख पाते जिसने एक ही पल में सारे देश (संसार) को मार कर नष्ट कर दिया है ॥ २९३ ॥

सभजी मति खसे, माया वदी मोह साँ।
सामी रम्ता राम जो, देरो डूरु ड्रसे।
कढियुसि ग॒र्टु ग॒िचीअ मों, कँहिं दानाह दसे।
हर्दमि ड्रिसी हसे, पाणु वराए पाण खे ॥ २९४ ॥

माया ने मोह से सब की बुद्धि छीन ली है, अतः (जीव को) सर्व-व्यापक ब्रह्म का निवास-स्थान दूर ही दिखाई देता है। सामीजी कहते हैं किसी बुद्धिमान ने ही अपने गले से (माया की) फाँसी को निकाल दिया है। (मायापाश से मुक्त हो बैठा है।) वह सदैव अपने अहं से मुख मोड़कर, अपने स्वरूप (परमात्मा) को देखकर हँसता रहता है ॥ २९४ ॥

माया करे मजाक, मोहे मारे सभखे।
रहनि अलेपु आकास जाँ, ताल्हमन्द तराक।
समुझा जिनि सामी चए, मरी महावाक्य।
तमाँ खे तलाकु, ड्रेई कढियाऊं देहिमों ॥ २९५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि माया ने सब को आकर्षित कर अपने वश में कर लिया है। पर आध्यात्मिक रास्ते पर चलने वाले वे भाग्यशाली, जिन्होंने महावाक्य समझकर अपने अहंकार को मार दिया है, आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते हैं। (सभी धर्मों तथा धार्मिक ग्रन्थों में कहा गया है कि इच्छाओं को मारने से ही परमात्मा की प्राप्ति होती है, अतः सच्चे सन्तों ने इस महावाक्य को समझकर अपनी इच्छाओं को मार दिया है)। उन्होंने अपने हृदय से कामनाओं को निकाल दिया है ॥ २९५ ॥

माया मति मोॻी, मोहे कई माणुहुनि जी।
भवनि काणि भोॻनि जे, ब्रधा ब्र्योॻी।
माणे सुख स्वरूप जो, को जाॻयो जोॻी।
अननु अरोॻी, सामी रहे स्वभाव में ॥ २९६ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने लोगों को आकर्षित कर, उनकी बुद्धि मन्द कर दी है, अतः वे दोनों में बन्धे हुए हैं (एक ओर वे परमात्मा को पाना चाहते है, तो दूसरी ओर संसार के सुखों को भोगना चाहते हैं, पर जैसा कि कहा गया है कि 'दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम', उसी प्रकार ये न तो परमात्मा को ही प्राप्त कर सकते हैं और न संसार के सुखों का ही उपभोग कर सकते हैं)। वे भोगों के पीछे भटकते रहते हैं, परन्तु जागृत तथा द्वैत रोग से मुक्त योगी, स्वरूप सुख का आनन्द लूटता रहता है तथा अपने ही भावों में मस्त रहता है ॥ २९६ ॥

माया मुँझाए, माॻो कयो माणुहुनि खे।
पाणु पँहिंजो पाण में, वेठो विञाए।
सामी लधो कँहिं सूर्में, साधुअ जे साए।
वदो सो पाए, जो असुलु हुयो आदीजो ॥ २९७ ॥

माया ने लोगों को उलझन में डाल कर उन्हें मन्द बना दिया है, अतः वे अपने आप को खो बैठे हैं (अपने सच्चे स्वरूप को भुला बैठे हैं)। सामीजी कहते हैं किसी शूरवीर ने ही साधु के आश्रय से वास्तविक आदिज्ञान ढूँढकर प्राप्त कर लिया है ॥ २९७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माया मंझि मग़रूरु, मूर्ख रहनि मति रे।
कालु न डि़सनि कन्ध ते, कन्दो चकिनाचूर।
सामी हलनि हलीम थी, भाग्यवान भर्पूरि।
त्रिकी ताजा तूरु, कूड़ी ज्ञाणनि कल्पना ।। २९८ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया में मूर्ख बुद्धिहीन होकर घमंड करते रहते हैं। वे चकनाचूर करने वाले काल को अपने कन्धे पर सवार होते नहीं देखते हैं। पर महान् भाग्यशाली विनम्रता का बर्ताव करते हैं। वे अभी-अभी तूर नामक पर्वत से फिसल कर आये हैं, अतः वे सारे प्रपंच को झूठा मानते हैं। (ईश्वरीय ज्योति के देखने के पश्चात् वे सारे प्रपंच को झूठा मानते हैं)। तूर—यह एक पर्वत का नाम है। कहा जाता है कि हज़रत मूसा इसी पर्वत पर पश्चिम की ओर मुख कर जब प्रार्थना करते थे तब उन्हें वहाँ ईश्वरीय ज्योति दिखाई देती थी; अतः जिन्हें ईश्वरीय प्रकाश का दर्शन होता है उनके लिए कहा जाता है कि ये तूर पर्वत से आये हुए हैं।। २९८ ।।

माया रंग रचो, भारी भेद मर्म जो।
मोहे मारे सभखे, करे कालु कचो।
को सुजाग़ो सूर्मो, बला खों बचो।
सामी सुखु सचो, ग़ोल्हे लधाईं साधसंगि ।। २९९ ।।

माया ने भारी भेद तथा भ्रम का खेल रचा है। वह सबको आकिषत कर, चकनाचूर कर मार देती है। सामीजी कहते हैं कि वही जागृत शूरवीर (ज्ञानी) इस नागिन से बच पाया है जिसने साधुओं के संग से सच्चा सुख (आत्मज्ञान) ढूँढ कर प्राप्त कर लिया है।। २९९ ।।

परे खों परे, माया महबूबनि जी।
कहीं पातो कीन की, अन्तु उथानु करे।
गुमु कयुसि कँहिं ज्ञाति साँ, ज्ञानवानु गहरे।
सामी डि़सी ठरे, पँहिंजे अख्यें पाणखे ।। ३०० ।।

सामीजी कहते हैं कि प्रियतम की माया अगम है, कोई भी (व्यक्ति) इसका अन्त नहीं पा सका है। (माया का अन्त पाना अत्यन्त ही कठिन है।) पर किसी गंभीर ज्ञानवान ने इसे अपने ज्ञान के बल पर नष्ट कर दिया है, अतः वह अपने ही नेत्रों से अपने (स्वरूप) को देख कर शीतलता का अनुभव कर रहा है।। ३०० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिर्स हलाखु कयो, भेष गृहस्ती लोक सभि।
भुली सार स्वरूप खों, सन्से मंझि पिया।
स्वप्न में सामी चए, नाना रूप थिया।
जाग्ये दु:ख विया, अण हून्दा अविद्या जा ।। ३०१ ।।

सामीजी कहते हैं कि सांसारिक सुख भोगने की इच्छा ने गृहस्थी एवं वेश धारण करने वाले सभी लोगों को परेशान कर रखा है, अत: वे सच्चे स्वरूप को भूलकर भ्रम में पड़ गये हैं। वे इस स्वप्नवत् संसार में नाना प्रकार के रूप धारण करते रहते हैं। पर जागृत होने पर ही अस्तित्वहीन अविद्या के ये दु:ख समाप्त होते हैं ।। ३०१ ।।

हिर्स हलाखु कयो, सामी सभ सन्सार खे।
काया माया कुल जे, वह में वही वियो।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, पँहिजीअ मंझि पियो।
तँहिखे सङ्गु थियो, सन्तनि सापुरुषनि जो ।। ३०२ ।।

सामीजी कहते हैं कि सांसारिक सुख भोगने की इच्छा ने सारे विश्व को परेशान कर रखा है। वह काया, माया तथा कुल के प्रवाह में वह गया है। करोड़ों में से किसी एक को ही सन्तों तथा महान् पुरुषों का संग प्राप्त हुआ है, अत: वह (सांसारिक सुखों से मुख मोड़कर) अपने स्वरूप में ही जा पड़ा है (अपने आतम-सुख में ही मस्त है) ।। ३०२ ।।

हिर्स हलाखु कयो, सामी सभ सन्सार खे।
काया माया कुल जे, वह में वही वियो।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, पँहिजीअ मंझि पियो।
जँहिखे सङ्गु थियो, साध सङ्गत महाजन जो ।। ३०३ ।।

सामीजी कहते हैं कि सांसारिक सुख भोगने की इच्छा ने सारे विश्व को परेशान कर रखा है। वह काया, माया तथा कुल के प्रवाह में वह गया है। करोड़ों में से वही एक अपने आप (स्वरूप) में जा पड़ा है, जिसे साधुओं तथा महापुरुषों का संग मिला है ।। ३०३ ।।

हिर्स एं हफ़्रत, जोड़े ब्रधा जीअ सभि।
मञे वेठा मन में, सामी नाना मत।
व्रिले कँहिं गुर्मुखु कढी, अण हून्दी कल्पत।
लंघे पंजई तत, चढ़ियो अन्भय अछ ते ।। ३०४ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि सांसारिक सुख भोगने की इच्छा तथा धोखे ने सभी जीवों को बाँध रखा है, अतः वे मन में नाना प्रकार के मत-मतान्तरों को मान बैठे हैं। कोई विरला गुरुभक्त ही अस्तित्वहीन (झूठे) प्रपंच को (हृदय से) निकाल पाया है, एवं पाँच तत्वों को पारकर (पाँच तत्वों के बने हुए शरीर को पार कर) ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है ॥ ३०४ ॥

अज्ञान

अग्रियाँ आई ओट, अन्धनि खे अज्ञान जी ।
पांण भवनि पांणही, कल्पत जन्म कोट ।
सुजाग्रनि सटे विधी, पोली पछिन्न पोट ।
चेतन उते चोट, सामी लाइनि सम थी ॥ ३०५ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धों (अज्ञानी जीवों) के आगे अज्ञान का पर्दा आ गया है अतः वे स्वयं ही करोड़ों जन्म पाकर प्रपंच में भटक रहे हैं। पर जागृतों (ज्ञानी जीवों) ने (माया अथवा प्रपंच की) खोखली एवं नश्वर पोटली को पटक दिया है तथा वे समभाव होकर, चेतन (परमात्मा) को ही अपनी उपासना का लक्ष्य बना रहे हैं (परमात्मा को पाने का ही प्रयत्न करते रहते हैं) ॥ ३०५ ॥

अठई पहर मरे, थो मूर्खु जीउ मनन में ।
ज्ञाणी सति सन्सार खे, नाना आस धरे ।
काया माया कुल जो, गर्बु गुमान करे ।
सामी द्रिसी ठरे, मृघतृष्णा जे जल खे ॥ ३०६ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख जीव आठों याम मन के संकल्प-विकल्पों में भटकता रहता है, वह संसार को सत्य मानकर नाना प्रकार की आशाएँ धारण करता रहता है, काया, माया एवं कुल का व्यर्थ अभिमान करता रहता है और मृगतृष्णा के जल (माया के बाह्य आडम्बर) से शीतल होना चाहता है ॥ ३०६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अठई पहर वञनि, था भुली जीअ भर्म में।
पुठी ड्रेई पाणखे, था नाना दुःख सहनि।
मानुष्य देहि अमूल्य जो, मर्मु न रखनि मनि।
के लखाया लहनि, सामी सुख स्वरूप खे।। ३०७।।

सामीजी कहते हैं कि सभी जीव आठों याम भ्रम में भूले हुए हैं। वे अपने (स्वरूप) से मुख मोड़कर नाना प्रकार के दुःख सहन करते रहते हैं। वे अपने हृदय में अमूल्य मानुष-शरीर की भी क़दर नहीं करते हैं, केवल कुछ अनुभवी (ज्ञानी) ही स्वरूप-सुख का उपभोग करते हैं।। ३०७।।

अणहूंदे अज्ञान, ड्रिनी ओट अन्धनि खे।
सुत्ह सिधि स्वरूप जी, सुद्धि ब्रुद्धि रखनि कान।
करनि अदालत अन्भई सुजाग्रा सुल्तान।
रहनि मंझि जहान, सदा अलेपु आकास जाँ।। ३०८।।

झूठे अज्ञान ने अन्धों के आगे (अज्ञान का) पर्दा डाल दिया है अतः वे साक्षात् परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान नहीं रखते हैं। पर अन्तर्मुख जागृत सुलतान (आत्मज्ञानी) अदालत करते रहते हैं (न्याय देते रहते हैं) वे संसार में रहकर भी आकाश के समान निर्लिप्त रहते हैं।। ३०८।।

अणहून्दे अज्ञान, रची रांदि रंग भरी।
सति ज्ञाणी सामी चए, नृति कनि नादान।
मुशिकनि कुशिकनि कीनकी, ड्रिसी सन्त सुजान।
रहनि मंझि जहान, सदा अलेपु आकास जाँ।। ३०९।।

सामीजी कहते हैं कि झूठे अज्ञान ने रंगमयी क्रीड़ा रची है, अतः नादान (जीव) उसे सत्य मानकर नृत्य करते रहते हैं। पर सज्जन सन्त उसे (क्रीड़ा को) देखकर न तो हँसते (गदगद होते) हैं न दुखी होते हैं। वे संसार में रहकर भी सदैव आकाश की तरह निर्लिप्त रहते हैं।। ३०९।।

अणहून्दे अज्ञान, विधा जीअ वहण में।
गोता खाइनि ग़ैब जा, कोट करे उन्मान।
लंघे चढ़िया लखते, साधूजन सुजान।
सदा सावधान, सामी रहनि स्वभाव में।। ३१०।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि झूठे अज्ञान ने जीवों को (माया के) प्रवाह में डाल दिया है अतः वे करोड़ों (प्रकार के) अनुमान करते हुए रहस्य में गोते खा रहे हैं। पर सज्जन साधु पुरुष (माया को) पार कर (ज्ञान के) लक्ष्य पर अग्रसर रहते हैं तथा सदैव अपने (स्वरूप के) भावों में सचेत रहते हैं ॥ ३१० ॥

अणहून्दे ओले, सामी लिको सुप्रीं।
अन्धा ॾिसनि कीनकी, जो ॿुधे ऐ ॿोले।
कँहिं सुजाॻे सही कयो, घटु घूंघटु खोले।
वेही विचोले, पलि पलि पीए प्रेम रसु ॥ ३११ ॥

सामीजी कहते हैं कि प्रियतम (परमात्मा) झूठे भ्रम में छिप गया है, अतः अन्धे (अज्ञानी जीव) उस सुनने तथा बोलने वाले (आत्मा) को नहीं देखते हैं (परमात्मा के अंश आत्मा के हृदय में स्थित होने पर ही मनुष्य बोलता तथा सुनता है, पर फिर भी वह उसे देख नहीं पाता है)। किसी जागृत ने हा हृदय के घूंघट को खोल (अज्ञान के पर्दे को हटाकर) उसे (परमात्मा को) जान लिया है, अतः वह बीच में बैठकर, पल-पल प्रेम रस का पान कर रहा है ॥ ३११ ॥

अणहून्दे ओले, सामी लिको सुप्रीं।
लधो पँहिंजे घर मों, फ़कीरनि फोले।
जिनिखे अशिक़ु अगम जी, चिड़िग लगी चोले।
पटु पर्दो खोले, माणिनि दौर दर्संजा ॥ ३१२ ॥

सामीजी कहते हैं कि प्रियतम (परमात्मा) झूठे भ्रम में छिप गया है पर फ़क़ीरों (प्रेमियों) ने उसे अपने (हृदय रूपी) घर में ही ढूँढ लिया है। जिनके (शरीर रूपी) चोले में अगम प्रेम की चिनगारी लग गई है (जिनके हृदय में प्रेम की आग भड़क उठी है), वे अज्ञान के पर्दे को भस्म करके (प्रियतम के) दर्शन का आनन्द लूट रहे हैं ॥ ३१२ ॥

अणहून्दे ओले, सामी लिको सुप्रीं।
लधो सिक सचीअ साँ, फ़कीरनि फोले।
वेही विचोले, पल पल पीअनि प्रेम रसु ॥ ३१३ ॥

सामीजी कहते हैं कि प्रियतम (परमात्मा) झूठे भ्रम में छिप गया है पर फ़क़ीरों (प्रेमी भक्तों) ने उसे अपने सच्चे प्रेम से ढूँढ लिया है, अतः वे (आत्मा के) मध्य बैठकर, पल-पल प्रेम रस का पान कर रहे हैं ॥ ३१३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अणहून्दे ओले, सामी लिको सुप्रीं ।
लधो संगि साधूअ जे, फ़क़ीरनि फोले ।
जिनिखे अशिकु अगम जी, चिणिग पई चोले ।
प्रियनि पटु खोले, डि्ठाऊं डे्हीअ में ।। ३१४ ।।

सामीजी कहते हैं कि प्रियतम झूठे भ्रम में छिप गया है पर फ़क़ीरों (प्रेमी भक्तों) ने साधुओं के संग से उसे ढूँढ लिया है। जिनके (शरीर रूपी) चोले में अनन्त प्रेम की चिनगारी लग गई है (जिनके हृदय में अनन्त प्रेम की आग भड़क उठी है), उन्होंने (अज्ञान रूपी) पर्दे को भस्म करके देह में ही प्रियतम को देख लिया है ।। ३१४ ।।

अणहून्दे ठग ठगे, कोड़े विधा केतिरा ।
जीएं पाछाओ पँहिंजो, थी भारी भूतु लगे ।
लताड़े लतनि साँ, के आशिक लंघ्या अगे ।
अन्भय ज्योति जगे, सामी जिनिजे घर में ।। ३१५ ।।

सामीजी कहते हैं कि जिस प्रकार अपनी ही परछाईं भयंकर भूत की तरह लगती (डराती रहती) है उसी प्रकार झूठे (अज्ञान रूपी) ठग ने कितने ही (जीवों) को ठग कर नष्ट कर दिया है। (वास्तव में परछाईं की तरह अज्ञान भी अस्तित्वहीन है)। पर जिन प्रेमियों के (हृदय रूपी) घर में आत्मज्ञान की ज्योति जग रही है, वे इसे (अज्ञान रूपी ठग को) लातों से रौंद कर ज्ञान की ओर अग्रसर हुए हैं।। ३१५ ।।

अणहून्दे भोले, विधो जीउ भर्म में ।
जीएं खस्तूरी मृघ में, मृघु ब्राहरि फोले ।
अविद्या पटु खोले, सामी डि्से कीनकी ।। ३१६ ।।

सामीजी कहते हैं यद्यपि कस्तूरी मृग के भीतर होती है पर फिर भी वह (अज्ञान वश) उसे बाहर ढूँढता रहता है। उसी प्रकार झूठे अज्ञान ने जीव को भ्रम में डाल दिया है। (कस्तूरीमृग की तरह वह भीतर स्थित आतमा को बाह्य उपकरणों में ढूँढता है।) अतएव वह अविद्या रूपी आवरण को हटाकर नहीं देख पाता ।। ३१६ ।।

अणहून्दे भोले, विधो जीउ भर्म में ।
पुठी डे्ई पाण खे, थो दह दसाँ फोले ।
तँहिंखे डि्से कीनकी, जो बुधे ऐ ब्रोले ।
सतिगुर गंढि खोले, त सुखी थे सामी चए ।। ३१७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

झूठे अज्ञान ने जीव को भ्रम में डाल दिया है अतएव वह अपने स्वरूप से मुख मोड़कर, उसे (परमात्मा को) दसों दिशाओं में ढूँढ रहा है। सामीजी कहते हैं कि जिस आत्मा के कारण ही जीव सुनता एवं बोलता है, उसे वह नहीं देख पाता है, पर जब सद्गुरु (अज्ञान रूपी) गाँठ खोल देता है तब वह (जीव) सुखी होता है ।। ३१७ ।।

अणहून्दो भोलु भर्म, मूर्ख मन्यो मति रे ।
न कँहि ज़ोरु ज़ुल्मु कयो, न कँहि लज्ञ शर्मु ।
नितु खला खाए सिर ते, रखे न मनि मर्मु ।
जे कर्ता करे कर्मु, त सामी का सुधि पए ।। ३१८ ।।

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख (जीव) ने बुद्धिहीन हो, झूठे अज्ञान तथा भ्रम को (सत्य) मान लिया है। उसे (इस भ्रम को सत्य मानने के लिए) न तो किसी ने ज़ोर-ज़ुल्म किया है, न ही किसी ने उसे लज्जित किया है (वह अपने आप अज्ञान को ही सत्य मान बैठा है)। वह निलज्ज होकर सदैव सिर पर (प्रपंच की) गठरी उठाता है, पर जब कर्ता (परमात्मा) उस पर अनुकम्पा करता है, तव उसे अपनी भूल प्रतीत होती है ।। ३१८ ।।

अणहून्दो भोलो, पियो मालिक जे मन में ।
सामी शाहु स्वप्न जो, थियो ग़ोलनि जो ग़ोलो ।
पहिरे वेठो पांण ही, चिन्ता जो चोलो ।
केरु कढे रोलो, बिना जागिये पँहिंजे ।। ३१९ ।।

सामीजी कहते हैं जिस प्रकार शाह (राजा) सपने में दासों का भी दास बन जाता है (जागृत होने पर ही उसे अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान होता है), उसी प्रकार जीव के मन में झूठा अज्ञान इस प्रकार समा गया है (कि वह अपने आत्म-स्वरूप को भूल बैठा है)। उसने स्वयं ही चिन्ता का चोला धारण कर लिया है (चिन्ता को अपना लिया है)। जागृत होने के सिवा भला यह बाधा कौन दूर कर सकता है? (ज्ञान प्राप्त करने के सिवा अपने स्वरूप को समझना असंभव है) ।। ३१९ ।।

अन्धनि खे अटिकल, कान्हे ताड़ि तरण जी ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, भवनि मंझि भवजल ।
लहजे मंझि लंघे पिया, के सुजाग़ा सबल ।
सामी सभ महल, हाज़ुर ड्रिसनि हज़ूर खे ।। ३२० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी तथा मायारूपी) समुद्र को पार करने की युक्ति से अनभिज्ञ हैं। वे संसार को सत्य मान कर भव-सागर में भटकते रहते हैं। पर जागृत-बलवान् (ज्ञानवान्) एक क्षण में ही इस (माया के समुद्र) से पार हो जाते हैं तथा हर समय परमात्मा को ही अपने सामने उपस्थित देखते हैं ॥ ३२० ॥

अन्धनि खे अभिलाष, मिटे न माया मोह जी।
भवनि भवसागर में, खणी, तमअ जा तवाख।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, के साधूजन सुजाख।
सामी सची साख, वेदनि द्रिनी विधि साँ ॥ ३२१ ॥

अन्धों की माया और मोह की इच्छा नहीं मिटती है (माया-मोह की इच्छा बनी हुई रहती है)। वे इच्छाओं के थाल लेकर भवसागर में भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि वेदों ने विधि से यह साक्षी दी है कि कुछ जागृत (ज्ञानी) साधु पुरुष ही स्वरूप-सुख भोगते हैं ॥ ३२१ ॥

अन्धनि खे आई, अग्यों ओट अज्ञान जी।
पर्च्छिन्न ज्ञाणी पाण खे, छाणिनि नितु छाई।
सामी सुजागनि खे, समता सदाई।
लूअँ लूअँ लालाई, प्रत्क्षु द्रिसनि पीव जी ॥ ३२२ ॥

अन्धों के आगे अज्ञान का पर्दा आ गया है अतः वे अपने को नश्वर समझकर सदैव धूल डालते रहते हैं, (अपने को धोखा देते रहते हैं)। सामीजी कहते हैं परन्तु जागृत (ज्ञानी) सदैव सम-भाव में रहते हैं तथा प्रियतम (परमात्मा) की लालिमा (झलक) रोम-रोम में प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ ३२२ ॥

अन्धनि खे आई, अग्यों ओट अज्ञान जी।
पाए भवनि पाणहीं, छज्ज भरे छाई।
सामी सुजागनि खे, समता सदाई।
लूअँ लूअँ लालाई, प्रत्क्षु द्रिसनि पीअ जी ॥ ३२३ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धों (अज्ञानी जीवों) के आगे अज्ञान का पर्दा आ गया है, अतः वे धूल के सूप (winnowing basket) भर कर (व्यर्थही) अपने आप भटकते रहते हैं। पर जागृत (ज्ञानी) सदैव समभाव रहते हैं, वे रोम-रोम में प्रियतम (परमात्मा) की लालिमा (झलक) प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ ३२३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्धनि खे आहे, अन्धेरी अख्युनि में ।
पविन पँहिंजो पाणहीं, कन्डनि में काहे ।
सामी सुजागनि खे, फुर्णो न फाहे ।
पटु पर्दो लाहे, पूरणु डिसनि पीअखे ।। ३२४ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धों (अज्ञानी) की आँखों में अंधकार ही रहता, है अतः वे स्वयं ही अपने को (अज्ञान रूपी) काँटों में डाल देते हैं। पर जागृतों (ज्ञानवानों) को भ्रम नहीं फँसाते हैं (ज्ञानवान् भ्रमों से मुक्त रहते हैं)। वे अज्ञान के आवरण को हटाकर पूर्ण प्रियतम (परमत्मा) को ही देखते हैं ।। ३२४ ।।

अन्धनि खे इत्बारु, अचे न आत्म राम ते ।
आहे जँहिंजे आसरे, सामी सभु सन्सारु ।
कँहिं सुजागे सूर्मे, दिलि में कयो दीदारु ।
जँहिंखे सन्तु सचारु, अची मिल्यो अन्भई ।। ३२५ ।।

सामीजी कहते हैं कि परमात्मा जिसके आसरे ही सारा संसार है, उसपर अन्धों (अज्ञानी जीवों) को विश्वास नहीं आता है, पर जागृत शूरवीर (ज्ञानी) जिसे सच्चा आत्मज्ञानी सन्त मिल गया है, उसने (परमात्मा का) अपने हृदय में ही दर्शन कर लिया है ।। ३२५ ।।

अन्धनि खे इत्बारु, अचे न आत्म राम ते ।
पुठी डेई पाण खे, खपी थियनि खुआरु ।
सदा सुजागनि खे, दिलि अन्दरि दीदारु ।
सामी करे क़रारु, सुम्हिया सुषोप्ति सेज ते ।। ३२६ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धों को सर्वव्यापक परमात्मा पर विश्वास नहीं आता है। वे अपने (स्वरूप) से मुख मोड़कर, अपने को खपा-खपाकर बदनाम हो रहे हैं। पर जागृत (ज्ञानी) सदैव हृदय में ही (परमात्मा का) दीदार करता है। वह सुषुप्ति रूपी सेज पर सो कर आराम करता है। (आत्मानन्द में मस्त रहता है) ।। ३२६ ।।

अन्धनि खे इत्बारु, अचे न आत्म राम ते ।
वेठा कनि वेसाह रे, वाणीअ जो वीचारु ।
सामी सुजागनि खे, द्वैत बिना दीदारु ।
ज्ञाणनि सभु सन्सारु, चिमत्कारु चेतन जो ।। ३२७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि अन्धों को सर्वव्यापक परमात्मा पर विश्वास ही नहीं आता है, वे विश्वास के सिवा (विश्वास-हीन) वाणी पर विचार करते हैं। पर द्वैत रहित जागृत (सब में एक ही आत्मा के देखने वाले ज्ञानी पुरुष), उसका (परमात्मा का) दीदार करते हैं। वे सारे विश्व को चेतन (परमात्मा) का ही चमत्कार मानते हैं ।। ३२७ ।।

अन्धनि ड्रिनी आङुरि, पर्छिन्नता जी पाण खे ।
ऊंचा सद्द अलाह खे, उथी कनि असुरि ।
सामी सुजाग्रा विया, धीरजु धारे घरि ।
पर्ची पीअनि पुरि, प्याकु प्यालो प्रेम जो ।। ३२८ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धों (अज्ञानी जीवों) ने स्वयं ही (अपनी आँखों में) परिच्छिन्नता (भेदभाव) की ऊँगली डाली है (अपने को मायावी भुलावे में भुला दिया है)। वे प्रातःकाल को शीघ्र ही उठकर परमात्मा को जोर से पुकारते हैं (वास्तव में आत्मा परमात्मा का ही अंश है, उसका निवास हमारे भीतर ही है पर फिर भी अज्ञानवश जीव उसे बाहर ढूँढता एवं पुकारता है)। पर जागृत (ज्ञानी) धैर्य धारण कर (हृदय रूपी) घर में ही बैठे हैं (हृदय में ही आत्मा का दर्शन करते हैं)। वे प्रसन्न हो प्रेम का पवित्र प्याला लबालब भरकर पी रहे हैं ।। ३२८ ।।

अन्धनि ड्रिनी ओट, अग्यों भेद भर्म जी ।
पाए भवनि पाणही, कल्पत जन्म कोट ।
सामी सुजाग्रनि जी, सम चेतन ते चोट ।
सटे पर्छिन्न पोट, इस्थति थिया आकास में ।। ३२९ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धों ने अपनें आगे भेद एवं भ्रम की ओट खड़ी करली है। वे स्वयं ही करोड़ों कल्पित जन्म पाकर भटक रहे हैं। पर जागृत (ज्ञानी) सदैव समान रहनेवाले चैतन्य (आत्मा) को ही अपना लक्ष्य बनाते हैं (चैतन्य आत्मा के विषय में ही सोचते रहते हैं)। वे परिच्छिन्नता (भेदभाव) की पोटली पटक कर (मायावी भुलावे से रहित होकर) आकाश में स्थित हो बैठे हैं ।। ३२९ ।।

अन्धनि ड्रिनी ओट, पँहिंजे अग्यों पाणहीं ।
मारी फाइनि मति रे, जन्म जन्मी कोट ।
सामी ग्रालिह सही कई, कँहि घूंघट खोले घोट ।
सटे पर्छिन्न पोट, इस्थति थियो आकास जाँ ।। ३३० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि अन्धों ने स्वयं ही अपने आगे (अज्ञान का) आरवण डाल लिया है। वे बुद्धिहीन होकर करोड़ों जन्म पाकर संसार में भटक रहे हैं। पर किसी दूल्हे (प्रेमी भक्त) ने (अज्ञान का) घूँघट हटाकर (ईश्वर का) वास्तविक रूप जान लिया है, अतः उसने परिच्छिन्नता (भेदभाव) रूपी पोटली को पटक दिया है (माया से मुक्त हो गया है); अब वह आकाश की तरह स्थिर हो गया है ॥ ३३० ॥

अन्धनि ॾिनी ओट, रखी आश अज्ञान जी ।
जा पाए भवनि पाणहीं, कलपत जन्म कोट ।
सामी सुजाॻनि ते, कँहिंजी चले न चोट ।
सटे पर्च्छिन्न पोट, माणिनि सुखु स्वरूप जो ॥ ३३१ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धों ने अज्ञान की ओट लेली है। वे अज्ञान-वश आशा रखकर, करोड़ों जन्म पाकर, प्रपंच में स्वयं ही भटक रहे हैं। पर जागृतों (ज्ञानवानों) पर किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ता है, वे परिच्छिन्नता (भेदभाव) रूपी पोटली को पटक कर (माया से मुक्त होकर) स्व-रूप का सुख भोगते रहते हैं (आत्मानंद में लीन रहते हैं) ॥ ३३१ ॥

अन्धनि ॾिनो ओलो, अग्यां पाण अज्ञान जो ।
भवनि भौसागर में, थी ढावाँढोलो ।
सामी सुजाॻनि खे, कोन्हे भउ भोलो ।
क्षिम्यां खटालो, पाए सुम्हियां पदमें ॥ ३३२ ॥

अन्धों ने अपने आगे अज्ञान रूपी आवरण डाल रखा है, अतः वे डाँवाडोल (विचलित) होकर संसार रूपी सागर में भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं पर जागृतों (ज्ञानवानों) को किसी भी प्रकार का भय तथा भ्रम नहीं है, वे संतोष रूपी सेज बिछाकर आतमपद में सोये हुए हैं ॥ ३३२ ॥

अन्धनि राह अन्धी, वदी मति मशाल रे ।
भवनि भौसागर में, लहनि कीन कन्धी ।
सामी सुजाॻनि जी, मति सुजाॻी सुॻन्धी ।
वेठा ॻंढि ब्रन्धी, अन्भय लालु अण-मुल्हो ॥ ३३३ ॥

अन्धों (अज्ञानी जीवों) ने बुद्धि रूपी मशाल-रहित, अन्धकारमय रास्ता अपना लिया है। वे संसार रूपी सागर में भटकते रहते हैं पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किनारा नहीं ढूँढ पाते हैं। सामीजी कहते हैं कि जागृतों (ज्ञानवानों) की बुद्धि सचेत एवं (ज्ञान रूपी सुगन्ध से पूर्ण) सुगन्धित रहती है। उन्होंने अमूल्य आत्म-ज्ञान रूपी मणि को (हृदय में) गांठ बाँधकर रख लिया है (वे सदैव आत्मा का ही चिन्तन करते रहते हैं) ॥ ३३३ ॥

अन्धा अज्ञानी, सचु सुञाणनि कीन की।
खोहे मानुष देहि खे, भवनि वैरानी।
सामी सुजाग्रनि द्रिठो, दिलि में दिलि जानी।
मुशिकुलु आसानी, समुझाए कनि सिषजी ॥ ३३४ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे अज्ञानी लोग सत्य को नहीं पहचानते हैं, वे मानव-शरीर को व्यर्थ ही नष्ट कर, निर्धन बनकर (आत्म-धन गँवाकर) भटकते रहते हैं। परन्तु जागृतों (ज्ञानवानों) ने हृदय में प्राणप्यारे प्रियतम को देख लिया है, क्योंकि गुरु ने अपने शिष्य की प्रत्येक कठिनता को सरल बना दिया है ॥ ३३४ ॥

अन्धा अज्ञानी, सचु सुञाणनि कीन की।
ग़ल्हियूं कनि आकास जूँ, जोड़े ज़बानी।
सामी जुर्यो स्वरूप साँ, को हर्जनु हकानी।
निउड़ी नीशानी, सही कई जँहि सम थी ॥ ३३५ ॥

अज्ञानी अन्धे सत्य को नहीं पहचानते हैं, वे मुख से आकाश की बातें (ज्ञानचर्चा) जोड़-जोड़ कर कहते हैं। सामीजी कहते हैं किन्तु वही एक आत्मज्ञानी हरिभक्त स्व-रूप से जा मिला है, जिसने नीचे झुककर (नम्रता से) समता अपना कर अपने लक्ष्य को जान लिया है। (आत्मा को पहचान लिया है) ॥ ३३५ ॥

अन्धा अज्ञानी, सचु सुञाणनि कीनकी।
ज्ञमनि मरनि मति रे, बणी अभिमानी।
सामी सुजाग्रनि द्रिठो, दिलि में दिलि जानी।
हर्दमि हकानी, माणिनि मौज मुक्ति जी ॥ ३३६ ॥

अज्ञानी अन्धे सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे बुद्धिहीन अभिमानी बनकर जन्मते एवं मरते रहते हैं। सामीजी कहते हैं किन्तु जागृतों ने हृदय में ही प्राणप्यारे (परमात्मा) को देख लिया है। वे आत्म-ज्ञानी सदैव ही मुक्ति का आनन्द मनाते रहते हैं ॥ ३३६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्धा अति अनीति, भुली कनि भर्म में।
पुठी द्रेई पाणखे, भोगिनि था भयभीति।
सामी सुजाग़नि जी, सभि सुजाग़ी रीति।
करे प्रेम प्रतीति, पूर्ण द्रिसनि पीअ खे ।। ३३७ ।।

अन्धे (अज्ञानी) भ्रमों में (अपने सच्चे स्वरूप को) भूलकर महान् अनीति करते रहते हैं। वे अपने (स्वरूप) से मुख मोड़ कर, भयभीत होकर (सांसारिक सुख) भोगते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, परन्तु जागृत (ज्ञानी) सब कुछ सावधानी से ही करते हैं। वे पूर्ण प्रियतम (परमात्मा) को प्रेम तथा विश्वास से देखते रहते हैं ।। ३३७ ।।

अन्धा अन्धी राति, द्रिसनि मति मशाल रे।
पुठी द्रेई पाण खे, कनि पराई ताति।
सामी सुजाग़नि खे, सदाई प्रभाति।
पाए आत्म ज्ञाति, इस्थति थिया आकास जाँ ।। ३३८ ।।

अन्धा (अज्ञानी) ज्ञान रूपी मशाल का प्रकाश न पाकर सदा अन्धकारमयी रात्रि को ही देखता है। वह अपने स्वरूप से मुख मोड़कर दूसरों की चिन्ता करता रहता है। सामीजी कहते हैं परन्तु जागृतों के लिए सदैव ही (ज्ञान रूपी) प्रभात बना रहता है, अतः वे आत्मज्ञान प्राप्त कर आकाश की भाँति स्थित हो गये हैं ।। ३३८ ।।

अन्धा अन्धगुबारु, द्रिसनि मति मर्म रे।
भवनि भौ-सागर में, करिनि कीन क़रारु।
सामी सुजाग़नि जो, सुजाग़ो वंहिवारु।
अन्दरि ब्राहरि यारु, पूरणु ज्ञाणनि पंहिंजो ।। ३३९ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी जीव) निर्लज्ज तथा बुद्धिहीन होकर अज्ञान को ही देखते रहते हैं। वे कभी भी चैन नहीं पाते हैं, सदैव भवसागर में भटकते ही रहते हैं। किन्तु जागृतों (ज्ञानी जीवों) का व्यवहार जागृत (ज्ञान पूर्ण) ही होता है। वे भीतर तथा बाहर अपने पूर्ण मित्र (परमात्मा) को ही देखते हैं ।। ३३९ ।।

अन्धा अन्धेरी, द्रिसनि मति मशाल रे।
गर्भ जूणि जें ग़ार में, पाइनि नितु फेरी।
सामी सुजाग़नि जी, सुजाग़ी सेरी।
मेटे मैं मेरी, इस्थति थिया आकास जाँ ।। ३४० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि कि अन्धों को बुद्धि (ज्ञान) रूपी मशाल के अभाव में सदा अन्धकार ही दिखाई देता है। वे सदैव गर्भ रूपी गुफ़ा में चक्कर काटते रहते हैं; किन्तु जागृतों (ज्ञानवानों) की रक्षा जागृति (ज्ञान) करती रहती है। वे 'मैं' तथा 'मेरी' की भावना मिटाकर आकाश की भाँति स्थित हो गये हैं ॥ ३४० ॥

अन्धा अन्धो न्याउ, भुली कनि भर्म साँ।
रखनि न रतीअ जेतिरी, सामी सुधि समाउ।
स्याणनि सुजाग्रनि जो, सुजाग्रो स्वभाउ।
लूअं लूअं मंझि लखाउ, प्रत्क्ष द्रिसनि पीअ खे ॥ ३४१ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) भ्रम में भूलकर अन्धा न्याय करते हैं (अन्याय करते हैं)। वे रत्ती भर भी होश तथा पहचान नहीं रखते हैं। परन्तु जागृतों (ज्ञानवालों) का स्वभाव जाग्रत (ज्ञान पूर्ण) ही होता है। वे रोम-रोम में प्रियतम की झलक प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ ३४१ ॥

अन्धा अनाड़ी, सचु सुञाणनि कीन की।
लाए वेहनि लोक में, तमां जी ताड़ी।
सामी सुजाग्रनि जी, सम सुञाण वाड़ी।
सम थी सपाड़ी, कटे छद्रियाऊं कल्पना ॥ ३४२ ॥

अनाड़ी अन्धे (ज्ञान से अनजान) सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे संसार में इच्छाओं की कड़ी बाँध कर बैठे हैं। (एक इच्छा पूरी होते ही दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जाती है)। सामीजी कहते हैं, किन्तु जागृतों (ज्ञानवानों) को समता की पहचान रहती है, अतः समता को अपना कर उन्होंने प्रपंच को जड़ सहित काट दिया है ॥ ३४२ ॥

अन्धा अनीतो, हलनि मति मर्म रे।
पाए भवनि पाणहीं, कये जो कीतो।
सुजाग्रनि सामी चए, जाग्री मन जीतो।
पर्ची पुरि पीतो, प्यालो प्रेम अगम जो ॥ ३४३ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी जीव) निर्लज्ज तथा बुद्धि (ज्ञान) हीन होकर अनीति करते रहते हैं। वे स्वयं ही अपने (बुरे) कर्मों का फल पाकर भटक रहे हैं। परन्तु जागृतों ने जागृत होकर (आत्मज्ञान प्राप्त कर) अपने मन को जीत लिया है, अतः वे प्रसन्न होकर अनन्त प्रेम का प्याला लबालब भर कर पी रहे हैं ॥ ३४३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्धा अनुमानी, सचु सुञाणनि कीन की ।
करिनि पंहिजी पाणहीं, हैबत हकानी ।
सामी सुजाग़नि खे, दिलि में दिलि-जानी ।
निर्भय निशानी, ड्रियनि ड्रेह अगम जी ।। ३४४ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे सत्य को नहीं पहचानते हैं, वे केवल (सत्य के विषय में) अनुमान ही करते रहते हैं वे स्वयं ही अपने को मुसीबतों का अधिकारी बनाते हैं (अज्ञान के कारण स्वयं ही मुसीबतों को मोल लेते हैं।) परन्तु जागृतों (ज्ञानवानों) के हृदय में प्राणप्यारे (परमात्मा) का निवास है, अतः वे निर्भय होकर अमरपुरी (परमात्मा के निवास-स्थान) की प्राप्ति को ही अपना लक्ष्य बनाते हैं (परमात्मा को पाने की राह पर चलते हैं) ।। ३४४ ।।

अन्धा अनुमानी, सचु सुञाणनि कीन की ।
ग़ाल्हियूं कनि बुधी सुधी, जोड़े जबानी ।
सामी सुजाग़नि ड्रिठो, दिलि में दिलिजानी ।
सदा सैलानी, खेलिनि पंहिजे ख़याल में ।। ३४५ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) सत्य को नहीं पहचानते हैं, वे (सत्य के विषय में) केवल अनुमान ही करते रहते हैं तथा (सत्य अथवा परमात्मा के विषय में) सुनी हुई बातों में अपनी ओर से कुछ जोड़ कर बकते रहते हैं, किन्तु जागृतों (ज्ञानियों) ने प्राणप्यारे (परमात्मा) को हृदय में देख लिया है, अतः वे सैलानी सदैव अपने ही विचारों में खेलते रहते हैं (मस्त रहते हैं) ।। ३४५ ।।

अन्धा अनुमानी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
ग़ाल्हियूं कनि गुणनि जूं, जोड़े जबानी ।
सामी सुजाग़नि ड्रिठो, दिलि में दिलिजानी ।
सदा सैलानी, रहनि रहति सचीअ साँ ।। ३४६ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे, सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे (उसके विषय में) केवल अनुमान ही करते रहते हैं तथा (परमात्मा के) गुणों का बखान, अपने ही मुख से बनाई हुई बातों द्वारा करते रहते हैं। परन्तु जागृतों ने प्राणप्यारे (परमात्मा) को अपने हृदय में ही देख लिया है। वे सैलानी (सैर करनेवाले) सदैव सत्य (परमात्मा) से ही प्रसन्न रहते हैं ।। ३४६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्धा अनुमानी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
दरि दरि देवाननि जाँ, कनि कूड़ी कहानी ।
सामी सुजाग्रनि ड्रिठो, दिलि में दिलिजानी ।
सदा सैलानी, पीअनि प्यालो प्रेम जो ॥ ३४७ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (आज्ञानीजीव) सत्य को नहीं पहचानते हैं, वे (उसके विषय में) केवल अनुमान ही कहते रहते हैं। वे पागलों की तरह द्वार-द्वार जाकर झूठी कहानियाँ ही कहते रहते हैं, किन्तु जागृतों ने प्राणप्यारे (परमात्मा) को हृदय में ही देख लिया है, अतः वे सैलानी, सदैव ही प्रेम का प्याला पीते रहते हैं (परमात्मा के प्रेम में मस्त रहते हैं) ॥ ३४७ ॥

अन्धा अभिमानी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
खंयो वतनि पाण साँ, भर्म जी भानी ।
इस्थति रहे आकास जाँ, को व्रिलो विज्ञानी ।
दिलि में दिलिजानी, सामी ड्रिठो जंहि सम थी ॥ ३४८ ॥

सामीजी कहते हैं कि अभिमानी अन्धे (अज्ञानी) सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे अपने साथ भ्रम रूपी पोटली उठाकर घूमते रहते हैं; पर जिस विरले विज्ञानी ने सम होकर प्राणप्यारे (परमात्मा) को हृदय में ही देख लिया है, वह आकाश की भाँति स्थिर हो जाता है ॥ ३४८ ॥

अन्धा अहंकारी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
खंयो वतनि पाण साँ, खुआरीअ जी खारी ।
सामी सुजाग्रनि सटी, सिर तों पिण्ड सारी ।
वेहदि जी ब्रारी, पटे वेठा पाकु थी ॥ ३४९ ॥

सामीजी कहते हैं कि अहंकारी अन्धे (अज्ञानी) सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे निन्दा की पिटारी अपने साथ लेकर घूमते रहते हैं (अज्ञान में अपने को व्यर्थ ही नष्ट करते रहते हैं)। लेकिन जागृतों ने अपने सिर से (अज्ञान के) सारे पिण्ड को पटक दिया है तथा पवित्र होकर अनंत की खिड़की खोले बैठे हैं। (अनंत परमात्मा में लीन हो गये हैं) ॥ ३४९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्धा इशारत, समुझनि कीन सञ्ञण जी ।
देही ञाणी पाणखे, भञिनि नाना मत ।
सुजागा सही थिया, कटे सभि कल्पत ।
सदा सनाख़त, सामी रखनि स्वरूप जी ।। ३५० ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी जीव) सज्जन पुरुष (ज्ञानी) के इशारों को नहीं समझते हैं । वे अपने को शरीर मानकर नाना प्रकार के पंथों को अपनाते रहते हैं; लेकिन जागृतों ने समस्त प्रपंच को त्याग कर, सत्य को जान लिया है, अतः वे सदैव स्व-रूप की पहचान रखते हैं ।। ३५० ।।

अन्धा उपाधी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
खणनि पंहिजी पाण हीं, रोई पिटे राधी ।
सुजागनि सही करे, समता मति साधी ।
सदा समाधी, सामी रहनि स्वभाव में ।। ३५१ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) भ्रमों में ही प्रसन्न रहते हैं। वे सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे स्वयं ही अपनी पकाई हुई चीज़ें अर्थात् अपने किये हुए बुरे कर्मों का फल रो-धोकर उठा रहे हैं (भोग रहे हैं) । किन्तु जागृतों ने सत्य को पहचानकर समता का रास्ता अपना लिया है, अतः वे अपने ही भावों में समाधि लगाये बैठे हैं ।। ३५१ ।।

अन्धा उपाधी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
देही ञाणी पाणखे, रोई खणनि राधी ।
सुजागा रहनि सामी चए, सदा समाधी ।
ऊन्हो अगाधी, ड्रिसनि अन्भय आतमा ।। ३५२ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) भ्रमों में ही प्रसन्न रहते हैं, वे सत्य को नहीं पहचानते हैं तथा अपने को शरीर मानकर अपनी पकाई हुई चीज़ें अर्थात् अपने किये हुए कर्मो के फल को रो-धोकर भोग रहे हैं (अपने बुरे कर्मों का फल भोगकर दुःखी हो रहे हैं) । परन्तु जागृत सदैव ही समाधि में स्थित रहते हैं। उन्होंने गहरे पैठकर (अन्तर्मुख होकर) आत्मा को देख लिया है ।। ३५२ ।।

अन्धा उपाधी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
सुजागनि सन्तोष सां, सुर्ति निर्ति साधी ।
सदा समाधी, सामी रहनि स्वभाव में ।। ३५३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) भ्रमों में ही मस्त रहते हैं, वे सत्य को नहीं पहचानते हैं, किन्तु जागृतों (ज्ञानवानों) ने संतोष से ज्ञान का रास्ता अपनाया है, अतः वे अपने ही भावों में समाधि लगाये बैठे हैं ।। ३५३ ।।

अन्धा ओट द्रेई, दरि-दरि फोलिनि दोस खे ।
करे बीठा कल्प सां, साधन सभेई ।
सहजे सुजाग्रनि खे सामी सुधि पेई ।
शिव शक्ती ब्रई, द्रिसनि पंहिंजे द्रील में ।। ३५४ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अपने आगे) अज्ञान का आवरण डाले हुए, प्रियतम को द्वार-द्वार ढूँढते रहते हैं, उन्होंने भ्रम में रहकर (परमात्मा को प्राप्त करने के) सभी प्रकार के साधन किये हैं (हृदय में अज्ञान होने के कारण, सभी प्रकार के साधन करने पर भी परमात्सा की प्राप्ति नहीं कर पाते है); किन्तु जागृतों को सही बात का पता सहज ही लग गया है, अतः वे शिव एवं शक्ति दोनों को ही अपने हृदय में देखते हैं ।। ३५४ ।।

अन्धा कनि अकसु, सभ कंहिं सां सखिणो ।
पुठी द्रेई पाण खे, भुली पाइनि भसु ।
सुजाग्रा साईंअ रे, खाली खणनि न खसु ।
जिनिखे आयो रसु, सामी सफ़ाईअ जो ।। ३५५ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) सब से खोखला (झूठा अथवा सारहीन) विरोध करते रहते हैं (परमात्मा के संबंध में सारहीन बातें बकते रहते हैं)। वे अपने से मुख मोड़कर तथा अपने (स्वरूप) को भूलकर धूल प्राप्त कर रहे हैं। किन्तु उन जागृतों को जिन्हें पवित्रता (आत्मज्ञान) का रस मिल गया है, वे परमात्मा के सिवा (अज्ञानरूपी) घास को नहीं ग्रहण करते हैं (माया एवं अज्ञान से मुक्त हो परमात्मा में ही मस्त रहते हैं) ।। ३५५ ।।

अन्धा कनि अनुमान, कल्पी कर्ता पुरुष जो ।
जंहिंजे अखि फ़र्क में, थे उत्पति लै जहानु ।
मनु बुधि पहुचे कीन की, ज्ञानु ध्यानु ग़ल्तानु ।
नानत खों निरबाण, को सामी सुजाग्रो द्रिसे ।। ३५६ ।।

सामीजी कहते हैं कि कर्ता पुरुष (परमात्मा) जिसके पलक झपकने से ही सारा संसार उत्पन्न एवं लय हो जाता है, उसके विषय में अन्धे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(अज्ञानी जीव) केवल कल्पना तथा अनुमान ही करते रहते हैं। यद्यपि वे ज्ञान तथा ध्यान में व्यस्त रहते हैं फिर भी (द्वैत के कारण) उनका मन और बुद्धि वहाँ (परमात्मा) तक नहीं पहुँच पाती है। केवल द्वैतहीन जागृत (आत्मा एवं परमात्मा में किसी भी प्रकार का भेद न देखनेवाला ज्ञानी) पुरुष ही उसे (परमात्मा को) देख पाता है ॥ ३५६ ॥

अन्धा कनि अनुमानु, सुत्हसिधि स्वरूप जो ।
ड्रिसनि कीन अख्युनि रे, अग्यों अन्भय भानु ।
सामी सुजाग्गनि खे, अस्तामलु आसानु ।
जाग्गी सभु जहानु, लै ड्रिठाऊं लख में ।। ३५७ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) साक्षात् परमात्मा के स्वरूप के विषय में अनुमान ही करते हैं। वे (ज्ञान रूपी) आँखो के न होने के कारण, अपने आगे प्रकाशित आत्मारूपी सूर्य को नहीं देख पाते हैं। किन्तु जागृतों (ज्ञानवानों) के लिए (परमात्मा के विषय में) सब कुछ जानना आसान है, क्योंकि उन्होंने जागृत होकर (अज्ञान को त्यागकर) सारे संसार को आत्मज्ञान के प्रकाश में देख लिया है ॥ ३५७ ॥

अन्धा कनि अभिमानु, काया माया कुल जो ।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, कशूं बीठो कानु ।
व्रिलो को गुर्मुखु रहे, सामी सावधानु ।
जंहि खे आतम ज्ञानु, सुत्ह ड्रिनो सतिगुरुअ ।। ३५८ ।।

अन्धे (अज्ञानी जीव) काया, माया एवं कुल पर अभिमान करते रहते हैं। वे अपने कन्धे पर तीर तानकर खड़ी हुई मृत्यु को नहीं देख पाते हैं। सामीजी कहते हैं कि वही विरला गुरुभक्त सावधान रह पाता है, जिसे सद्गुरु ने स्वयं ही आत्मज्ञान दिया है ॥ ३५८ ॥

अन्धा कनि इत्बारु, काया माया कुल जो ।
उल्टी ड्रिसनि कीन की, कन्ध ते कालु कहारु ।
मारे जंहि मिटी कयो, सामी सभु सन्सारु ।
सिधु साधिकु अवतारु, हल्यो वञे हेकिलो ।। ३५९ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) काया, माया एवं कुल पर विश्वास करते हैं। वे (संसार से) विरक्त होकर उस विकराल मृत्यु को कन्धे पर सवार नहीं देख पाते हैं, जिस (मृत्यु) ने सारे संसार को मिटा दिया है। इसी मृत्यु के कारण सिद्ध, साधक तथा अवतारी मनुष्य (महान् आत्माएँ) अकेले ही चले जाते हैं ॥ ३५९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्धा कनि इत्बारु, काया माया कुल ते ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, खपी थियनि ख़ुआरु ।
रहे अलेपु आकास जाँ, को साधूजनु सचारु ।
जंहिखे सुखु करारु, सामी ड्रिनो सतिगुरुअ ।। ३६० ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी जीव) काया, माया तथा कुल पर विश्वास करते रहते हैं । वे संसार को सत्य मानकर, अपने को खपा-कर बदनाम होते हैं । किन्तु जिसे सद्गुरु ने सुख-शान्ति दी है, वही सत्यवादी साधु पुरुष, आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है ।। ३६० ।।

अन्धा कनि इत्बारु, काया माया कुल ते ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, खपी थियनि ख़ुआरु ।
रहे अलेपु आकास जाँ, को सुजाग्गो सचारु ।
जंहि आदी अन्भय यारु, प्रत्क्षु ड्रिठो पंहिंजो ।। ३६१ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) काया, माया तथा कुल का विश्वास करते रहते हैं । वे संसार को सत्य मानकर, अपने को खपाकर बदनाम होते रहते हैं, लेकिन जिसने आदिज्ञान-रूपी मित्र को साक्षात् देखा है, वही सच्चा जागृत (ज्ञानी) आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है ।। ३६१ ।।

अन्धा कनि इत्बारु, काया माया कुल ते ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, खपी थियनि ख़ुआरु ।
रहे अलेपु आकास जाँ, को साधूजनु सचारु ।
माणे मौज अपारु, सामी मिली स्वरूप साँ ।। ३६२ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) काया, माया एवं कुल पर विश्वास करते रहते हैं । वे संसार को सत्य मानकर, अपने को खपाकर बदनाम होते रहते हैं । परन्तु जो स्व-रूप से मिलकर अनन्त आनंद मनाता रहता है, वही सच्चा साधु आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है ।। ३६२ ।।

अन्धा कनि इत्बारु, काया माया कुल ते ।
स्वप्न जे सन्सार में, खपी थियनि ख़ुआरु ।
सामी बचियो को सूर्मो, सुजाग्गो सचारु ।
दोस्त जो दीदार, ड्रिठो जंहिं अभेदु थी ।। ३६३ ।।

अन्धे (अज्ञानी जीव) काया, माया एवं कुल पर विश्वास करते रहते हैं । वे स्वप्नवत् संसार में अपने को खपाकर बदनाम होते रहते हैं ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं, किन्तु जिसने अपने दोस्त (परमात्मा) का दीदार अभेद (भेद-रहित) होकर किया है, वही सच्चा जागृत शूरवीर (बदनामी) से बच पाता है ।। ३६३ ।।

अन्धा कनि उपाउ, पसण काणि प्रियनि जे ।
आदी अन्भय घर जो, रखनि न सुधि समाउ ।
सामी सुजाग़नि जे, लूअं लूअं मंझि लखाउ ।
मेटे दुत्या भाउ, इस्थति थिया आकास जाँ ।। ३६४ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) प्रियतम (परमात्मा) को देखने के लिए अनेक उपाय (साधन) करते हैं, किन्तु वे आदि आत्मिक घर का ज्ञान नहीं रखते हैं (आत्मज्ञान से अनजान रहते हैं) । लेकिन जागृतों के रोम-रोम में (ईश्वरीय) ज्योति समायी हुई रहती है, अतः वे द्वैत भाव को मिटाकर आकाश की भाँति स्थिर हो गये हैं ।। ३६४ ।।

अन्धा करे अज्ञानु, खोहिनि मानुष देहि खे ।
भोग़िनि भोग भर्म जा, रखी कनि अभिमानु ।
सुजाग़नि सोधे लधो, भगति भाउ भग़िवानु ।
सदा सावधानु, सामी रहनि स्वभाव में ।। ३६५ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे जीव अज्ञानवश मानव शरीर को नष्ट करते हैं । वे अभिमानी बनकर भ्रमों के भोग भोगते हैं लेकिन जागृतों (ज्ञानवानों) ने भक्ति भाव से परमात्मा को ढूँढ लिया है, अतः वे सदैव सचेत होकर अपने ही भावों में मस्त रहते हैं ।। ३६५ ।।

अन्धा कीन ड्रिसनि, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ।
दर दर देवाननि जाँ, कूड़ा किसा कनि ।
सुत्ह सिधि सही कयो, सामी सुजाग़नि ।
महबत जिनिजे मनि, हुई अभेदु अणमई ।। ३६६ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी जीव) भीतर तथा बाहर आत्मा को (स्थित) नहीं देखते हैं, अतः वे पागलों की तरह द्वार-द्वार पर जाकर झूठी कहानियाँ कहते रहते हैं, परन्तु जिन जागृतों (ज्ञानवानों) के हृदय में (परमात्मा के प्रति) अपार प्रेम है, तथा जो द्वैत से रहित हैं, उन्होंने परमात्मा के सच्चे स्वरूप को पहचान लिया है ।। ३६६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्धा कीन द्रिसनि, प्रत्क्षु परमेश्वर खे।
भर्म मंझि भुली करे, भौदूअ जाँ भिटिकनि।
सुत्ह सिधि सही कयो, सामी सुजागनि।
रता रंगि रहनि द्वेत वराए दिलि मों ॥ ३६७ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) प्रत्यक्ष परमेश्वर को नहीं देख पाते हैं। वे बेवकूफ़ों की तरह भ्रमों से (अपने स्वरूप को) भूलकर भटकते रहते हैं। किन्तु जागृतों (ज्ञानियों) ने परमात्मा के स्वरूप को पहचान लिया है, अत: वे हृदय से द्वैत निकाल कर, आत्म-रंग में रंगे हुए हैं (आतमानंद में लीन रहते हैं) ॥ ३६७ ॥

अन्धा जीअ अज्ञाण, सचु सुञाणनि कीनकी।
करे कर्म भला बुरा, भवनि भोगिनि पाण।
सुजागा स्वरूप जी, रखनि प्रीति पछाण।
सदाई निरबाण, सामी रहनि स्वभाव में ॥ ३६८ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे जीव अनजान रहते हैं। वे सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे भले-बुरे कर्म करते रहते हैं तथा सांसारिक भोगों के पीछे भटकते रहते हैं, किन्तु जागृत (ज्ञानी) स्व-रूप से प्रेम करते हैं एवं उसकी पहचान रखते हैं, अत: वे सदैव अपने भावों में स्थित रहकर मुक्तावस्था का आनंद लूटते हैं ॥ ३६८ ॥

अन्धा जीअ अज्ञाण, सचु सुञाणनि कीनकी।
भुली भवसागर में, पवनि पंहिंजो पाण।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, के नेही निरबाण।
प्रत्क्षु जिनि प्रमाण, सामी समुझो सभ में ॥ ३६९ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) जीव अनजान रहते हैं, वे सत्य को नहीं पहचानते हैं, वे स्वयं ही संसार रूपी सागर में पड़कर अपने स्व-रूप को भूल बैठे हैं। किन्तु (अज्ञान से) जिन्होंने सब में प्रत्यक्ष प्रमाण (एक ही आत्मा को) देख लिया है, वे मुक्त प्रेमी स्व-रूप सुख का ही उपभोग करते रहते हैं ॥ ३६९ ॥

अन्धा जीअ अज्ञाण, सचु सुञाणनि कीनकी।
माया मोह असार में, सदा रहनि ग़ल्तान।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, नेही निराभिमान।
सम सीतलु सावधान, सामी रहनि स्वभाव में ॥ ३७० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) जीव अनजान रहते हैं। वे सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे सदैव असार माया एवं मोह में डूबे रहते हैं। किन्तु अभिमान-रहित प्रेमी अपने ही भावों में सम, शीतल एवं सचेत रहते हैं, तथा स्व-रूप सुख का उपभोग करते रहते हैं ॥ ३७० ॥

अन्धा जीअ अड़ी, पिया सभि माया मोह में।
मरनि मति मर्म रे, रात्यूं ड्डींह अड़ी।
कंहिं सुजाग़े सूर्मे, भग़ी भर्म भड़ी।
चेतन चिट चढ़ी, सैल करे सामी चए ॥ ३७१ ॥

सामीजी कहते हैं कि सब अन्धे जीव (अज्ञानी) मोह तथा माया में अटके पड़े हैं। वे निर्लज्ज एवं ज्ञानहीन हठ कर दिन रात (माया में) मर रहे हैं (जानबूझ कर वे भ्रमों में फँस रहे हैं)। किन्तु जागृत शूरवीर (ज्ञानी) ने भ्रम रूपी गाँठ तोड़ (खोल) दी है अतः वह चेतन (ज्ञान के) मार्ग पर विचरण कर रहा है ॥ ३७१ ॥

अन्धा जीअ अड़ी, पिया भर्म माया मोह में।
मरनि मति मर्म रे, रात्यूं ड्डींह रड़ी।
सामी सुजाग़ा विया, चेतन चिट चढ़ी।
भग़ी भर्म घड़ी, माणिनि सुखु स्वरूप जो ॥ ३७२ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) जीव माया मोह एवं भ्रमों में अटके हुए हैं। वे निर्लज्ज तथा ज्ञानहीन दिन रात रो-रो कर मर रहे हैं। परन्तु जागृत (ज्ञानी) चेतन मार्ग पर अग्रसर होते रहते हैं। उन्होंने भ्रम-रूपी घड़े को तोड़ दिया है, (भ्रमों से मुक्त हो गये है), अतः वे स्वरूप सुख का आनन्द भोग रहे हैं ॥ ३७२ ॥

अन्धा जीअ अहमक, सचु सुञाणनि कीन कीं।
पुठी ड्डेई पाण खे, दरि दरि बकनि बक।
सामी जुर्या स्वरूप साँ, के प्रेमी परिपक।
पलक मंझि झलक, ड्रिठी जिनि अन्भई ॥ ३७३ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) जीव मूर्ख हैं, क्योंकि वे सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे अपने (स्व-रूप) से मुख मोड़ कर द्वार-द्वार बकबक करते रहते हैं। किन्तु जिसने पलक में भीतर स्थित आत्मा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की झलक देख ली है, वही पक्का प्रेमी अपने स्वरूप में स्थित रहता है ।। ३७३ ।।

अन्धा थी उत्पति, सचु सुञाणनि कीनकी ।
रोलिनि मानुष्य देहिखे, करे कूड़ कुसति ।
सुजाग्रनि कई साध संगि, भाग्रवती भग्रति ।
मेटे ममत्व मति, सामी जुर्या स्वरूप साँ ।। ३७४ ।।

अन्धे (अज्ञानी) सत्य को नहीं पहचानते हैं, अतः वे बेचैन रहते हैं । वे झूठे एवं बुरे कार्य कर अपने मानव जीवन को भटकाते रहते हैं, (बुरे कर्मों के कारण नीच योनियों में भटकते रहते हैं) । सामीजी कहते हैं किन्तु जागृतों (ज्ञानवानों) ने साधुओं के संग से प्रेमपूर्ण भक्ति की है, अतः वे ममत्व-बुद्धि मिटाकर स्वरूप से जा जुड़े हैं ।। ३७४ ।।

अन्धा पिया उर्झी, काया माया कुल में ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, फोक विया फुर्जी ।
सामी द्रिठो स्वरूप खे, कंहि सुजाग्रे सुर्जी ।
पीताईं पर्ची प्यालो प्रेम अगम जो ।। ३७५ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) काया माया एवं कुल में ही फँस गये हैं । वे संसार को सत्य मानकर (माया द्वारा) व्यर्थ ही ठग लिए गये हैं । किन्तु जिस जागृत ने सचेत होकर अगम (परमातमा) के प्रेम रूपी प्याले को प्रसन्नता से पी लिया है, उसने स्वरूप का दीदार भी कर लिया है ।। ३७५ ।।

अन्धे अभाग्रे घोटु न लधो घर जो ।
भवे भेद भर्म साँ, दहदिस दिलि दाग्रे ।
पूरणु द्रिठो पीअ खे, कंहि साधुअ सुजाग्रे ।
तमां सभि त्याग्रे, सामी माणे सेज सुखु ।। ३७६ ।।

सामीजी कहते हैं कि भाग्यहीन अन्धे को घर का स्वामी नहीं मिला है, (अज्ञानी जीव को हृदय में स्थित प्रियतम दिखाई नहीं देता है) अतः वह दुःखी हृदय लेकर, भेद तथा भ्रमवश होकर दसों दिशाओं में भटक रहा है । लेकिन जिस जागृत साधु ने पूर्ण प्रियतम को देख लिया है वह सभी कामनाओं को त्याग कर शय्या-सुख भोग रहा है, (परमात्मा के साथ विलास कर रहा है) ।। ३७६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्धे ऐ सजे, चर्चा कई चेतन जी ।
हू ड्रिसे अपरोक्षु अख्युनि साँ, हू दमि दमि दूरि भजे ।
ब्रिन्हीं जो बांभणु चए, खललु कीन खजे ।
जो प्रीं पाण कजे, त अख्यूं ड्रे अन्धे खे ।। ३७७ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे और नेत्रवाले (अज्ञानी और ज्ञानी) ने चेतन (परमात्मा) की चर्चा की। वह (नेत्रवाला ज्ञानी) परमात्मा को अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) आँखों से देखता है, किन्तु अन्धा अज्ञानी पल-पल उससे (परमात्मा से) दूर भागता रहता है। अतः दोनों के बीच जो वाद-विवाद हो रहा है, उसका अन्त ही नहीं हो पाता है। यदि प्रियतम (परमात्मा) प्रसन्न होकर अन्धे को आँखें दे दे (ज्ञान दे) (तब ही दोनों के बीच का झगड़ा समाप्त हो) ।। ३७७ ।।

अन्धे खे आई, अग्यो ओट अज्ञान जी ।
जुदा ज्ञाणी पाणखे, रोले विधाई ।
सामी सुजाग्रनि कई सुत्ह सफ़ाई ।
सभि घट लालाई, प्रत्क्षु ड्रिसनि पीअ जी ।। ३७८ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धों के आगे अज्ञान का पर्दा आ गया है, अतः वे अपने को परमात्मा से अलग मान कर भटक रहे हैं, किन्तु जागृतों ने अपने हृदय को साफ़ कर लिया है (अज्ञान को हृदय से निकाल दिया है) इस लिए वे घर-घर में (सब जगह) प्रियतम की लालिमा (झलक) प्रत्यक्ष देखते हैं ।। ३७८ ।।

अन्धे वटि आयो, सुजाग्रो स्वभाव साँ ।
तंहि ड्रेई हथ हिमथ जा, राह सचीअ लायो ।
घरि पहुँचाए पंहिजे, सन्सो मिटायो ।
सामी समायो, जल पपोटो जल में ।। ३७९ ।।

सामीजी कहते हैं कि जब अन्धे (अज्ञानी) के पास (ईश्वरीय सत्ता को जानने वाला) जागृत (ज्ञानी) सहज ही आ जाता है तब वह उसे (अज्ञानी जीव को) हिम्मत के हाथ देकर (अपनी ज्ञान शक्ति के सहारे) सत्य के रास्ते पर लगा देता है, तथा भ्रम को मिटाकर, उसे उसके ही घर पर पहुँचा देता है (हृदय रूपी घर में आत्मा का दर्शन कराता है अथवा उसे अन्तर्मुख बनाता है); जिससे वह पानी के बुदबुदे की तरह पानी में समा जाता है। (परमात्मा में लीन हो जाता है) ।। ३७९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्धो अभाग़ो, सचु सुञाणे कीन की ।
भुली भरे सभ जो लोभी थी लाग़ो ।
माणे सुखु स्वरूप जो, को साधू सुजाग़ो ।
सदा अनुराग़ो, सामी रहे स्वभाव में ।। ३८० ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धा (अज्ञानी) भाग्यहीन है; क्योंकि वह सत्य को नहीं पहचानता है । वह अपने (स्वरूप) को भूलकर, लालच-वश लेन-देन के फेर में पड़ जाता है (कुछ प्राप्त करने की अपेक्षा सब कुछ गँवा बैठता है) । लेकिन जागृत साधु पुरुष सदैव अपने ही भावों में अनुरक्त हो, स्वरूप-सुख का उपभोग करता रहता है ।। ३८० ।।

अन्धो जीउ अहमकु, सचु सुञाणे कीन की ।
देही ज़ाणी पाणखे, भोग़े नितु नर्कु ।
व्रिलो को गुर्मुखु रहे, फुर्ने खों फार्कु ।
ब्रांभण थी ब्रालकु, वर्ते सभ वंहिवार में ।। ३८१ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धा जीव (अज्ञानी जीव) बेवकूफ है क्योंकि वह सत्य को नहीं पहचानता है । वह स्वयं को शरीर समझकर, सदैव नरक (के दु:खों को) भोगता है । कोई विरला गुरुभक्त ही भ्रमों से मुक्त रहता है एवं सब प्रकार के व्यवहार में बालकों की तरह (निर्दोष होकर) बर्ताव करता है ।। ३८१ ।।

अहंकारी अहमक, सचु सुञाणनि कीन की ।
ब्रुधी वाक्य वेदान्त जा, दरि दरि बकनि बक ।
इस्थति रहनि आकास ज्याँ, के प्रेमी प्रपक ।
लूअं लूअं साणु लटक, सामी लाए लालु थिया ।। ३८२ ।।

अहंकारी नादान (जीव) सत्य को नहीं पहचानते हैं । वे वेदान्त के वाक्य सुनकर (बिना उन पर आचरण किए) उन्हें द्वार-द्वार बकते रहते हैं । सामीजी कहते हैं किन्तु पक्के प्रेमी पुरुष आकाश की भाँति स्थिर रहते हैं । उनका रोम-रोम परमात्मा के प्रेम-रूपी रंग में रंगकर लाल हो गया है ।। ३८२ ।।

कर्म करिनि कूड़ा, पाए सघनि न पीअ खे ।
भुली भवनि पाणहीं, ममत्व में मूढ़ा ।
माणिनि दौर दर्संजा, सम थी सचूड़ा ।
सदा ग़उड़ा ग़ूड़ा, सामी रहनि स्वभाव में ।। ३८३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि मूढ़ (जीव) झूठे कर्म करते रहते हैं, अतः प्रियतम को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। वे ममता में पड़कर अपने (स्वरूप) को भूलकर स्वयं ही भटक रहे हैं। किन्तु सन्त पुरुष, समभाव होकर प्रियतम के दर्शन का आनंद लूटते हैं तथा अपने ही भावों में सदैव गहराई से डूबे रहते हैं। (जिस प्रकार भारी वस्तु एक ही जगह पर स्थिर रहती है उसी प्रकार आत्मा के गूढ़ ज्ञान को प्राप्त करनेवाले अधजल गगरी की भाँति छलकते नहीं हैं, बल्कि अपनी ही जगह पर स्थिर एवं गंभीर रहते हैं) ॥३८३॥

करे हठु हठी, खोहिनि मानुष्य देहखे।
खेप खटी विया प्रीतिवान, नेही वाट वठी।
कसौटी कामिल जी, सामी जिनि सठी।
कल्पत पिण्ड पठी, सटे मिल्या स्वरूप साँ॥ ३८४॥

हठी (अज्ञानी) हठ कर मानव-शरीर को व्यर्थ ही नष्ट करते हैं, किन्तु प्रेमी प्रेम का रास्ता अपनाकर विजयी बने बैठे हैं (आत्मज्ञान प्राप्त कर मानव-जीवन को सफल कर बैठे हैं)। सामीजी कहते हैं कि जिन्होंने पहुँचे हुए सद्गुरु द्वारा ली गई कसौटी के दुःख सहन किये हैं (गुरू द्वारा ली गई परीक्षा में सफल हुए हैं), वे प्रपंच रूपी पिण्ड को पटककर स्वरूप से जा मिले हैं॥ ३८४॥

कंहिखे पवे न कल, अणहून्दे आड़ाह जी।
लुढ़ी लहवारा थिया, सूरवीर सबल।
लंघे चढ़िया लख्य ते, के नेही निर्मल।
अठई पहर अचल, सामी रहनि स्वभाव में॥ ३८५॥

सामीजी कहते हैं कि इस मिथ्या (संसार रूपी) समुद्र की पहचान किसी को भी नहीं है, अतः सबल तथा शूरवीर भी (अज्ञान-वश) इसके प्रवाह में नष्ट हो गये हैं। किन्तु कुछ पवित्र प्रेमी अज्ञान को मिटाकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुए हैं। वे आठों ही याम अपने ही भावों (आत्मा संबंधी भावों) में अचल रहते हैं॥ ३८५॥

किसा करे कूड़ा, ॿुधाइनि ॿियनि खे।
पाणु पछाणनि कीनकी, मूढ़ा मति मूढ़ा।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, साधू जन सूड़ा।
सदा ग़ोरा ग़ूड़ा, सामी रहनि स्वभाव में॥ ३८६॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि मन्द बुद्धि मूर्ख (अत्यन्त ही अज्ञानी जीव) अपने (स्वरूप) को तो पहचानते नहीं हैं परन्तु दूसरों को (आत्मा-संबंधी) झूठी कहानियाँ सुनाते रहते हैं। किन्तु पूर्ण साधु पुरुष स्वरूप-सुख का उपभोग करते रहते हैं, फिर भी सदैव अपने ही भावों में (आत्म-संबंधी विचारों में) भारी एवं गंभीर बने हुए रहते हैं। (अज्ञानी जीव अधजल गगरी की भाँति छलकते रहते हैं किन्तु ज्ञानवान सदैव गंभीर रहते हैं) ॥ ३८६ ॥

की ज्ञाताईं पाणु ? प्रीं ज्ञातांई की ब्रियो ?
सामी तंहिखे सन्तजन, ज्ञाणनि अति अज्ञाणु।
पर्ची करे न पाणखे, नानत खों निरब्राणु।
सदा सन्से साणु, भवे भौसागर में ॥ ३८७ ॥

सामीजी कहते हैं कि सन्त-जन उन लोगों को अनभिज्ञ (अज्ञानी) मानते हैं, जो स्वयं को पहचान कर (पहचानने का दावा कर) भी प्रियतम को अपने से अलग मानते हैं (जिनके हृदय में द्वैत की भावना है, जो आत्मा एवं परमात्मा में भेद मानते हैं वे वास्तव में अज्ञानी ही हैं)। ऐसे (अज्ञानी) लोग स्वयं को द्वेष से मुक्त नहीं कर पाते बल्कि भ्रमित होकर सदैव संसार रूपी सागर में भटकते रहते हैं ॥ ३८७ ॥

कूड़नि कूड़ी तार, लाथी माया मोह जी।
भवनि भौसागर में, पाए जन्म अपार।
सामी सचारनि जी, सची समुझ सम्भार।
घर धणीअ खाँ धार, कड्हिं थियनि कीन की ॥ ३८८ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोगों (अज्ञानियों) ने माया तथा मोह से झूठी प्रीति की है, अतः वे अनेक जन्म पाकर संसार रूपी सागर में भटक रहे हैं। किन्तु सच्चे (ज्ञानी) सत्य (ज्ञान) से परिचित हैं अतः वे (हृदय-रूपी) घर के मालिक (ईश्वर) से कदापि अलग नहीं होते हैं ॥ ३८८ ॥

कूड़नि खे कदुरु, कोन्हे मानुष देहि जो।
भवनि भौसागर में, थी अधीनु आतुरु।
सचारनि सोधे लधो, ठिकर मों ठाकुरु।
ऐन अभेद अफुरु, सामी रहनि स्वभाव में ॥ ३८९ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे (अज्ञानी जीव) मानव शरीर की क़द्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नहीं करते हैं। वे अधीन एवं आतुर होकर सदैव संसार-सागर में भटकते रहते हैं। किन्तु सत्य को जाननेवालों (ज्ञानी जीवों) ने पत्थर में भी परमात्मा को ढूंढ लिया है, अतः वे पवित्र, अभेद तथा अविचलित रहकर अपने ही भावों में (मस्त) रहते हैं ॥ ३८९ ॥

कूड़नि खे कर्तव्य, वेदनि चयो विधि साँ।
सामी सचारनि जो, सुत्ह पाकु पलउ।
पूरणु द्रिसनि पीअखे, मेटे भोलो भउ।
सोनार्को सउ, लोहार्को धकु हिकिड़ो ॥ ३९० ॥

सामीजी कहते हैं कि वेदों ने झूठे लोगों (अज्ञानी जीवों) को कर्तव्य की विधि बता दी है (परमात्मा को पाने के साधन बता दिये हैं)। किन्तु सच्चे (ज्ञानी जीवों) का आँचल सदैव पाक व पवित्र रहता है। वे भय तथा भ्रम मिटाकर पूर्ण प्रियतम को देखते रहते हैं। जिस प्रकार सुनार के सौ प्रहार लुहार के एक प्रहार के बराबर है उसी प्रकार अज्ञानी जीव सुनार की तरह बार-बार परमात्मा को पाने के प्रयत्न करते रहते हैं, परन्तु ज्ञानी जीव लुहार की तरह एक ही प्रयत्न से परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३९० ॥

कूड़नि खे कर्तारु, पाणु पसाए कीनकी।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, खपी थियनि खुआरु।
माणे दौर दर्स जो, को साधू जन सचारु।
बणीअ ते हुशियारु, सदा रहे सामी चए ॥ ३९१ ॥

सामीजी कहते हैं झूठे (अज्ञानी जीवों) को कर्तार अपने आप को नहीं दर्शाते हैं (अज्ञानी जीव परमात्मा को देख नहीं पाते हैं), अतः वे संसार को सत्य मानकर, अपने को खपाकर, बदनाम होते रहते हैं, किन्तु सत्य को जानने वाला साधु चतुर बनकर परमात्मा के दर्शन का आनन्द भोगता है ॥ ३९१ ॥

कूड़नि ग्राल्हि कची, मञी कूड़ कल्पत जी।
मरनि माया मोह में, पंहिजो पाण पची।
सचारनि सामी चए, समुझी लख सची।
रह्या रंग रची, सुत्ह सिधि स्वरूप में ॥ ३९२ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे (अज्ञानी) लोगों ने झूठे प्रपंच को सत्य मान लिया है, अतः वे स्वयं ही मोह तथा माया में पच-पच कर मर रहे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। किन्तु सत्य को जाननेवालों ने सत्य को पहचान लिया है (आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है) अतः वे साक्षात् परमात्मा के रूप में रंगे हुए रहते हैं ॥ ३९२ ॥

कूड़नि जी कहिणी, कूड़ी कथ रहणीअ रे।
भवनि भौसागर में, करे पाणु पिणी।
सामी सुजाग्ननि ड्रिठो, घर में घर धणी।
पिननि पंज कणी, तांभी राजा रांवल देसजा ॥ ३९३ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोगों की कहनी (कथित बातें) आचरण-हीन होने के कारण झूठी है (झूठे लोग दूसरों को तो सत्य का उपदेश देते हैं पर ख़ुद उस पर आचरण नहीं करते हैं। वे स्वयं ही अपने को बदनाम कर संसार-सागर में भटकते रहते हैं। किन्तु जागृतों (ज्ञानी लोगों) ने (हृदय-रूपी) घर में घर के मालिक (परमात्मा) को देख लिया है, अतः यद्यपि वे (पेट के कारण) अन्न के पांच-कण की भीख भी मांग रहे हैं, फिर भी वे संसार के सम्राट् हैं ॥ ३९३ ॥

कूड़नि जो कर्तौं, कूड़ो सभु कल्पत जो।
भवनि भोग्निनि पाणहीं, रखी कूड़ो तौ।
सामी सचारानि जे, मन वसे माधौ।
मेटे भोलो भौ, इस्थति थिया आकास जाँ ॥ ३९४ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोगों (अज्ञानी जीवों) का समस्त व्यवहार झूठा एवं प्रपंच-युक्त है। वे झूठ का सहारा लेकर (अज्ञान-वश) स्वयं ही दुःखों को भोग-भोग कर भटक रहे हैं, किन्तु सत्य को जाननेवालों (ज्ञानी जीवों) के हृदय में माधव (परमात्मा) का निवास है। वे भ्रम तथा भय मिटाकर आकाश की भाँति स्थित हो गये हैं ॥ ३९४ ॥

कूड़नि जो कल्याणु, थिए न समता सच रे।
तोड़े सभि साधन करे, मारिनि पंहिंजो पाणु।
सदा सचारनि जे, सञ्णु रहे साणु।
पाए पदु निरब्राणु, सामी माणिनि सेज सुखु ॥ ३९५ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) यद्यपि अपने (मन) को मारकर (परमात्मा को प्राप्त करने के लिए) सब प्रकार के साधन करते रहते हैं, फिर भी समता-सत्य को (शाश्वत आत्मा को सब में समान रूप से देखने के सिवा) अपनाये बिना उनका कल्याण नहीं होता है। लेकिन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सत्य को जाननेवालों के साथ सदैव प्रियतम (परमात्मा) रहता है। वे निर्वाण पद प्राप्त कर, शय्या-सुख लूटते हैं (परमात्मा के साथ विलास करते हैं) ॥ ३९५ ॥

कूड़नि जो कोई, थाइं न पवे जोगु जपु ।
भोगिनि भोग नर्क जा, रहित बिना रोई ।
सामी सचारनि जो सम सचो सोई ।
जीएं रंग रती लोई, तीएं रता रहनि रंग में ॥ ३९६ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोगों (अज्ञानियों) को योग और जप करने से भी कुछ प्राप्त नहीं होता है। वे करनी के बिना नरक के दुःख रो-रो कर भोगते रहते हैं, किन्तु सत्य को जाननेवाले (ज्ञानी) उस (आत्मा) को ही सत्य और सम मानते हैं, अतः वे उसके (आत्मा के) रंग में उसी प्रकार रंगे हुए रहते हैं, जिस प्रकार कम्बल अपने रंग में रंगा हुआ रहता है ॥ ३९६ ॥

कूड़नि लिवं लाई, कूड़ीअ माया मोह साँ ।
सति ज्ञाणी संसार खे, छाणिनि था छाई ।
सामी सचारनि खे, समुझ सची आई ।
सम थी सदाई, माणिनि सुखु स्वरूप जो ॥ ३९७ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोगों (अज्ञानी जीवों) ने झूठी मोह-माया से प्रीति की है। वे संसार को सत्य मानकर, राख छान रहे हैं (अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं)। किन्तु सत्य को जाननेवालों को सच्ची बुद्धि (ज्ञान) प्राप्त हो गयी है अतः वे सदैव सम-भाव होकर स्वरूप-सुख का उपभोग करते रहते हैं ॥ ३९७ ॥

कूड़ा ऐं कुमती, साड़ न ज्ञाणनि सम जो ।
खोहिनि मानुष देह खे, करे मन मती ।
सामी सचारनि जी, लिवं लिवं रंग रती ।
पाए प्राण पती, इस्थति थिया आकास जाँ ॥ ३९८ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे एवं कुमति-जीव (अज्ञानी और कुमार्गी) समता के महत्व को नहीं जानते हैं। वे मन के अधीन होकर (अमूल्य) मानव-शरीर को व्यर्थ ही गँवाते हैं। लेकिन सत्य को जाननेवालों का रोम-रोम (परमात्मा के प्रेमरूपी) रंग में रंगा हुआ रहता है। वे प्राण-पति (परमात्मा) को प्राप्त कर आकाश की भाँति स्थिर रहते हैं ॥ ३९८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कूड़ा कथे कथ, ब्रुधाइनि ब्रियनि खे।
वहनि पाण वह में, हारे सभि हिमथ।
पूरणु ज्ञाणनि पीअ खे, सूर्मा समिरथ।
जिनिखे ड्रेई हथ, सामी रख्यो सतिगुरुअ ॥ ३९९ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे जीव (अज्ञानी) दूसरों को झूठे कथन सुनाते रहते हैं, परन्तु स्वयं समस्त हिम्मत हारकर (प्रपंच रूपी) प्रवाह में बहते रहते हैं। किन्तु जिन्हें सदगुरु ने अपने हाथों का सहारा दिया है (ज्ञान का उपदेश दिया है), वे समर्थ शूरवीर (ज्ञानी) पूर्ण प्रियतम (परमात्मा) को जानते हैं ॥ ३९९ ॥

कूड़ा कपटी कोर, सचु सुञाणनि कीनकी।
मरी पाइनि मति रे, जन्म अनेक अघोर।
को सुजागो सूर्मो, माणे दर्सन दौर।
सामी चए जंहिं चोर, भञी कया वसि पंहिंजे ॥ ४०० ॥

झूठे, कपटी तथा मूढ़ लोग सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे बुद्धि-हीन मर-मर कर अनेक अघोर (अशुभ) जन्म प्राप्त करते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, किन्तु जिसने (काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार रूपी) चोरों को मार कर अपने वश में कर लिया है, वह जागृत शूरवीर (परमात्मा के) दर्शन के आनन्द का उपभोग करता है ॥ ४०० ॥

कूड़ा कमाई, कूड़ी कनि कलपत जी।
सभुकी सहनि सिरते, ज्ञाणी वड्डाई।
सचा माणिनि सान्ति सुखु, सामी सदाई।
पकी पकाई, रोटी खाइनि रस भरी ॥ ४०१ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) प्रपंच की झूठी कमाई करते हैं (संसार के प्रपंच में फँसे हुए रहते हैं)। वे (प्रपंच के) दुःखों को सहन करने में ही अपना बड़प्पन मानते हैं, किन्तु सच्चे (ज्ञानी) सदैव पकी-पकाई, रस-भरी रोटी खाकर (हृदय में ही स्थित आत्मा का ध्यान कर) शान्ति तथा सुख का उपभोग करते हैं ॥ ४०१ ॥

कूड़ा करे कर्तबु, ड्रेखारिनि सभु ड्रेह खे।
अग्यों अजीबनि जे, छुपे कीन कसबु।
सामी सचारनि खे, कोन्हे लालच लबु।
रात्यूं ड्रींहा रबु, ड्रिसनि पंहिंजे ड्रील में ॥ ४०२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) संसार को अपनी (झूठी) चतुराई दिखाते रहते हैं, किन्तु परमात्मा के आगे उनके (झूठे) करतब नहीं छिपते हैं (परमात्मा से अपने बुरे कार्यों को नहीं छिपा सकते हैं)। किन्तु सत्य को जाननेवालों (ज्ञानियों) को किसी प्रकार की लालच और चाह नहीं रहती है, वे दिन रात अपने ही शरीर (हृदय) में परमात्मा को देखते रहते हैं ॥ ४०२ ॥

कूड़ा कहाणी, कूड़ी कनि कल्पत जी ।
सति ज्राणी सन्सार खे, विलोरिनि पाणी ।
सामी सचारनि जी, सची बुधी ब्राणी ।
सभ घट समाणी, ज्योति डि्सनि जगदीस जी ॥ ४०३ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) प्रपंच की झूठी कहानी कहते रहते हैं। वे संसार को सत्य मानकर पानी को मथते रहते हैं (व्यर्थ परिश्रम करते रहते हैं। जिस प्रकार पानी को मथने से मक्खन नहीं निकलता है, उसी प्रकार कठोर से कठोर परिश्रम करने पर भी नश्वर संसार में शाश्वत परमात्मा को नहीं पाया जा सकता है)। किन्तु सत्य-वादी लोगों की वाणी एवं बुद्धि सच्ची ही रहती है। वे घर-घर में जगदीश्वर की ज्योति समाई हुई देखते हैं ॥ ४०३ ॥

कूड़ा कारि कची, कूड़ी कनि कल्पत जी ।
मरनि मति मर्म रे, पंहिंजो पाण पची ।
सामी सचारनि जी, सदा मति सची ।
रह्या रंग रची, सुत्ह सिधि स्वरूप जे ॥ ४०४ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) प्रपंच के झूठे कार्य बिना सोचे-समझे करते रहते हैं। वे निर्लज्ज तथा बुद्धिहीन स्वयं ही पच-पच कर मर रहे हैं, किन्तु सत्यवादी लोग सदैव सच्ची बुद्धि (आत्मज्ञान) रखकर, परमात्मा के स्वरूप-रंग में रंगे हुए रहते हैं (सदैव परमात्मा का ही चिन्तन करते रहते हैं) ॥ ४०४ ॥

कूड़ा कुरीतो, हलनि हर्फ हिसाब रे ।
मरी पाइनि पाणहीं, किये जो कीतो ।
सामी सचारनि सचो, प्यालो पुरि पीतो ।
जाग्री जंहिं जीत्यो, पूरणु ज्ञाणी पीअखे ॥ ४०५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) सोच-विचार-हीन होकर बुरा व्यवहार करते रहते हैं। वे अपने किये का फल मर कर (नष्ट होकर) स्वयं ही पा लेते हैं। किन्तु सत्यवादी लोगों ने जागृत होकर, अपने आप को जीत लिया है (मन को वश में कर लिया है) तथा प्रियतम (परमात्मा) को पूर्ण जानकर (प्रेम रूपी) प्याले को लबालब भरकर पी लिया है ॥ ४०५ ॥

कूड़ा कूड़ करे फाहे फासनि पाणहीं।
भोगिनि भोग नर्क जा, रोअनि रतु भरे।
सचारनि सटे विधो, पर्च्छिन्नु पिण्डु परे।
सामी ध्यानु धरे, माणिनि मौज मुक्ति जी ॥ ४०६ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) झूठे कार्य कर, स्वयं ही अपने को (प्रपंच रूपी) फाँसी में फँसा देते हैं। वे ख़ून के आँसू बहाते हुए (अति दुखी होकर) नरक के दुःख भोगते रहते हैं, किन्तु सत्य को जाननेवालों ने परिच्छिन्नता (भेदभाव) के पिण्ड को पटक दिया है और (परमात्मा का) ध्यान कर, मुक्ति का आनंद मनाते रहते हैं ॥ ४०६ ॥

कूड़ा कूड़ाई, छड़िनि कीन क्षण पलु हिकु।
पाए भवनि पाणही, छज्ञ भरे छाई।
सामी सचारनि कई, समुझी सफाई।
सम थी सदाई, माणिनि सुखु स्वरूप जो ॥ ४०७ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) एक क्षण भी झूठ से बाज नहीं आते हैं (सदैव झूठ ही बोलते रहते हैं) वे राख के सूप (Winnowing Basket) भरकर (अपना जीवन नष्ट कर) स्वयं ही भटक रहे हैं। लेकिन सत्य-पुरुषों ने सोच-समझकर अपने हृदय को साफ कर लिया है (अज्ञान से किनारा कर लिया है)। वे सदैव सम-भाव होकर (परमात्मा के) स्वरूप का आनंद भोगते रहते हैं ॥ ४०७ ॥

कूड़ा कूड़ाई, सोधी, रखनि साहखों।
पाए भवनि पाणहीं, छल वल जी छाई।
सामी सचारनि कई, सची कमाई।
पंहिंजी पराई, ताति मेटे तद्रूप थिया ॥ ४०८ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) झूठ को प्राणों से भी ज़्यादा सुरक्षित रखते हैं। वे स्वयं ही छल-बल रूपी राख डालकर (अपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को धोखा देकर) भटकते रहते हैं। लेकिन सत्यवादियों (ज्ञानियों) ने सत्य की कमाई की है अतः वे अपने-पराये की भावना मिटाकर (परमात्मा के साथ) तद्रूप हो गये हैं ॥ ४०८ ॥

कूड़ा कूड़ी लार, लग्ग़ा माया मोह जे।
खोहे मानुष देहि खे, रोअनि ज़ारौ-ज़ारु।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, सामी सन्त सचार।
जिते जीत न हार, तिते कयाऊं तक्यो ॥ ४०९ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोगों (अज्ञानियों) ने माया-मोह से झूठी प्रीति कर ली है। वे (माया-मोह में) मानव शरीर नष्ट कर अश्रुधारा बहा रहे हैं। किन्तु सच्चे सन्त लोग स्वरूप-सुख का उपभोग करते रहते हैं। उन्होंने वहाँ जाकर निवास किया है जहाँ न जीत है, न हार है ॥ ४०९ ॥

कूड़ा कूड़ करे, फाहीअ फासनि पाणहीं।
भवनि भौसागर में, नाना रूप धरे।
सामी सचारनि खों, पीउ न रहे परे।
पीअनि पाकु भरे, प्यालो प्रेम अगम जो ॥ ४१० ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे (अज्ञानी) लोग झूठे (कार्य) कर स्वयं ही अपने को (प्रपंच रूपी) फाँसी में फँसाते हैं। वे नाना प्रकार के रूप धारण कर संसार-सागर में भटकते रहते हैं। लेकिन सत्यवादियों से प्रियतम (परमात्मा) दूर नहीं रहता है। वे अगम (परमात्मा) के पवित्र प्रेम-रूपी प्याले को भरकर पीते रहते हैं ॥ ४१० ॥

कूड़ा कूड़ करे, फाहे फासनि पाणहीं।
भवनि भौसागर में, नाना रूप धरे।
सामी सचारनि सटियो, पर्च्छिन्न पिण्डु परे।
द्रिसनि नेण भरे, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा ॥ ४११ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) झूठे (कार्य) कर स्वयं ही अपने को उलझाकर नष्ट कर देते हैं। वे नाना प्रकार के रूप धारण कर संसार-सागर में भटकते रहते हैं। परन्तु सत्य-पुरुषों (ज्ञानवानों) ने परिच्छिन्नता (भेदभाव) के पिण्ड को पटक दिया है, अतः वे प्रत्यक्ष पूर्ण आत्मा को जी भरकर देखते रहते हैं ॥ ४११ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कूड़ा कूड़ करे, ब्रेड़ी ब्रोड़िनि पंहिंजी।
भवनि भौसागर में, नाना रूप धरे।
सामी सचारनि जो, सदा जहाजु तरे।
पति सां पूर भरे, पारि लंघाइनि पातिणी ॥ ४१२ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) झूठे (कार्य) कर अपनी (जीवन-रूपी) नाव स्वयं ही डुबोते हैं। वे नाना प्रकार के रूप धारण कर भव-सागर में भटकते रहते हैं। लेकिन सत्य-पुरुषों का (जीवन-रूपी) जहाज़ सदैव तैरता रहता है, (तैर कर पार लगता है)। उसे (जहाज़ को) नाविक (सद्गुरु) विश्वास से खचाखच भरकर (अपने ज्ञान से परमात्मा के प्रति अटूट विश्वास उत्पन्न कर) पार लगा देता है ॥ ४१२ ॥

कूड़ा कूड़ु कुसति, ब्रोलिनि मति मर्म रे।
लाल विञाए अण-मुल्हा, खोहिनि पंहिंजी पति।
सामी सचारनि जी, सची सभि संगति।
मेटे ममत्व मति, जुर्या ज्योति स्वरूप सां ॥ ४१३ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) बुद्धि हीन और निर्लज्ज होकर झूठ एवं असत्य ही बोलते रहते हैं। वे (ईश्वर-रूपी) अमूल्य रत्न खोकर, अपनी मान-मर्यादा नष्ट कर रहे हैं। लेकिन सच्चे-पुरुष (ज्ञानी) सदैव सत्य (ज्ञान) का संग करते हैं। वे ममत्व-बुद्धि मिटाकर, परमात्मा की ज्योति से ही जुड़े हुए रहते हैं ॥ ४१३ ॥

कूड़ा कूड़ु सति, करे कल्पनि पाणहीं।
मरी पाइनि मति रे, दुबारी दुर्गति।
सन्तनि सचारनि जो, सचो सारु सुमति।
रात्यूं डींहां रति, सामी रखनि स्वरूप सां ॥ ४१४ ॥

झूठे (अज्ञानी) लोग झूठे-सच्चे (कार्य) कर स्वयं ही दुखी होते हैं। वे बुद्धिहीन (अज्ञानी) मर कर दुबारा दुर्गति पाते हैं। (अज्ञान के कारण उनका यह जन्म तो दुःखमय है ही, अज्ञानवश बुरे कार्यों को करने के कारण उनका अगला जन्म भी दुःखमय हो जाता है)। सामीजी कहते हैं कि सच्चे सन्तों के पास सुमति तथा सच्चा सत्य (ज्ञान) रहता है। वे दिन रात (परमात्मा के) स्वरूप से ही प्रीति लगाये हुए रहते हैं ॥ ४१४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कूड़ा कूड़ो माणु, कररिनि मति मर्म रे।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, भर्यो बीठो ब्राणु।
सचा माणिनि सर्व सुखु, सचीअ समुझ साणु।
छद्रे पर्च्छिन्न पाणु, पूरणु ज्ञाणनि पाणखे ॥ ४१५ ॥

झूठे (अज्ञानी) लोग निर्लज्ज एवं बुद्धिहीन (ज्ञानहीन) होकर झूठी बड़ाई करते रहते हैं। वे अपने कन्धे पर तीर ताने खड़े हुए काल को नहीं देख पाते हैं, किन्तु सच्चे (ज्ञानी) लोग सच्चे ज्ञान से सर्वत्र सुख का ही उपभोग करते हैं। वे नश्वर शरीर को छोड़कर आत्मा को ही पूर्ण मानते हैं ॥ ४१५ ॥

कूड़ा जीअ कर्म, कर्नि कल्पत कूड़ जा।
पाए भवनि पाणहीं, नाना जूणि जन्म।
सामी सचारनि जा, सचा कम कदम।
सभ में ड्रिसनि सम, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ॥ ४१६ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे (अज्ञानी) जीव प्रपंच के झूठे कर्म ही करते रहते हैं। वे स्वयं ही नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेकर भटकते रहते हैं, लेकिन सत्य को जाननेवालों (ज्ञानी लोगों के) के कार्य तथा क़दम सच्चे ही होते हैं (ज्ञानी सदैव सत्य के रास्ते पर ही चलते हैं)। वे सब में, भीतर तथा बाहर एक ही आत्मा को समान रूप से व्यापक देखते हैं ॥ ४१६ ॥

कूड़ी कथ कथे, सामी लख लुढ़ी विया।
मखणु कढियो मन मों, कंहि महबतीअ मथे।
लेखे लथे पथे, सेषु ड्रिठाई सुप्री ॥ ४१७ ॥

सामीजी कहते हैं कि लाखों (लोग) झूठे कथन कह कर (अज्ञान-रूपी) प्रवाह में बह गये, केवल किसी प्रेमी ने ही हृदय को मथ कर उससे (आत्मा-रूपी) मक्खन निकाला है (हृदय में ही आत्मा का दर्शन किया है)। तथा सब प्रकार के लेखे (हिसाब-किताब) निपटाकर, प्रियतम को ही शेष देखा है। (सब प्रकार के नाते तोड़कर, प्रियतम से नाता जोड़ लिया है) ॥ ४१७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कूड़ी पोषा पोष, मूर्ख कनि मर्म रे।
रहनि माया मध में, सदाई बेहोश।
सामी माणिनि सान्ति सुखु, के नेहीं निर्दोष।
लंघे पंजई कोश, चढ़िया चेतन चिटते ॥ ४१८ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख (अज्ञानी जीव) निर्लज्ज होकर झूठी (अज्ञान की) पोशाक ओढ़ते हैं (झूठे अज्ञान की ओट लेते हैं)। वे सदैव माया के नशे में बेहोश रहते हैं, लेकिन कुछ निर्दोष प्रेमी शान्ति-सुख का उपभोग करते हैं। वे पाँच कोस (का रास्ता) पार कर (पाँच विकारों से मुक्त होकर), ज्ञान के रास्ते पर अग्रसर होते हैं ॥ ४१८ ॥

कूड़ी बक बकी, लखें लोक लुढ़ी विया।
कंहिं सुजागे सूर्मे, लधो थाउं थकी।
जंहिंखे ड्रिनी सतिगुरुअ, सामी प्रीति पकी।
ममत्व जी मटिकी, सटे विधांई सिर तों ॥ ४१९ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठी (अज्ञान पूर्ण) बकवास कर लाखों लोग (अज्ञान के) प्रवाह में बह गये हैं, केवल उस जागृत शूरवीर (ज्ञानी) ने थक कर (परिश्रम कर) ठिकाना ढूँढ लिया है (परमात्मा का निवास स्थान ढूँढ लिया है), जिसे सद्‌गुरु ने (परमात्मा के प्रति) सच्चा प्रेम दिया है। अतः उसने ममता-रूपी मटकी को सिर से पटक दिया है (अज्ञान एवं प्रपंच से मुख मोड़ कर हृदय में स्थित आत्मा को देख लिया है) ॥ ४१९ ॥

कूड़े खे को थाउं, ड्रिए न वाट वेहण जो।
कंहिंखे भावे कीन की, जीएं कारो काउं।
सचे खे सामी चए, सड्रे सभु गाउं।
नारायण जो नाउं मुखि रखी मौजां करे ॥ ४२० ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे (अज्ञानी जीव) को कोई बैठने के लिए जगह तक नहीं देता है, वह काले कौए की तरह किसी को भी नहीं भाता है; किन्तु सच्चे (ज्ञानी) को सारा गाँव अपने पास बुलाता है (सभी उसे आदर देते हैं) वह नारायण का नाम लेकर तथा उसकी ओर अपना मुख कर आनन्द मनाता रहता है ॥ ४२० ॥

कूड़ो करे करारु, कड्रहिं विहे कीन की।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, खपी थिए खोआरु।
इस्थति रहे आकास जाँ, सामी सन्तु सचारु।
अन्दरि ब्राहरि यारु, प्रत्क्षु ड्रिसे पंहिंजो ॥ ४२१ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि झूठा (अज्ञानी जीव) कभी भी शान्त होकर नही बैठता है। वह संसार को सत्य मान कर, उसमें ही अपने को खपाकर, बदनाम होता है। किन्तु सच्चा सन्त आकाश की भाँति स्थिर रहता है एवं अपने मित्र (परमात्मा) को बाहर तथा भीतर प्रत्यक्ष देखता है ॥ ४२१ ॥

कूड़ो कमीनो, सचु सुञाणे कीन की।
खाए नितु ख़ोआरीअ साँ, रुले रोज़ीनो।
सामी मिल्यो स्वरूप साँ, को प्रेमी प्रबीनो।
कटे किबरु कीनो, माणे मौज मुक्ति जी ॥ ४२२ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठा (अज्ञानी जीव) नीच स्वभाववाला है, क्योंकि वह सत्य को नहीं पहचानता है। वह सदैव भटक कर एवं बदनाम होकर एक समय का भोजन प्राप्त करके खाता है; किन्तु प्रवीण प्रेमी अहंकार और कलुषता मिटाकर, स्वरूप से मिलकर, मुक्ति का आनंद लूटता है ॥ ४२२ ॥

कोट जन्म कपटी, पाण मिलनि न पीअ साँ।
सामी सचारनि जी, सहजे ममत्व मिटी।
पंहिंजे अख्यें पाण खे, द्रिठाऊँ उल्टी।
करे फोल फिटी, इस्थति थिया आकास जाँ ॥ ४२३ ॥

सामीजी कहते हैं कि कपटी (अज्ञानी जीव) करोड़ों जन्म पाकर भी प्रियतम से नहीं मिल पाते हैं, किन्तु सच्चे लोगों (ज्ञानी जीवों) की ममता सहज ही मिट जाती है। वे (संसार से) विरक्त होकर, दर-दर भटकना छोड़ कर, अपनी ही आँखों से परमात्मा का दर्शन पा जाते हैं अतः वे आकाश की भाँति स्थिर हो जाते हैं ॥ ४२३ ॥

कोट जन्म कूड़ो, पाए मिले न पीअ साँ।
सदा रहे सामी चए, माया में मूड़ो।
चढ़ियो चेतन चिट ते, को ग़ौरो ऐं गूड़ो।
ब्रन्धी जंहि ब्रूड़ो, मनु मुनायो पंहिंजो ॥ ४२४ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठा (अज्ञानी जीव) करोड़ों जन्म पाकर भी प्रियतम से नहीं मिल पाता है क्योंकि वह सदैव माया में ही खोया हुआ (भटका) रहता है। केवल वही गंभीर एवं (ज्ञान के बोझ से) भारी (ज्ञानवान) व्यक्ति ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो पाता है, जो (अज्ञान-रूपी) भूसे को हटा कर अपने हृदय को साफ़ कर लेता है ॥ ४२४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अज्ञान

टोहिंदे लखु लानत, विज्ञानि सुजाण्या सन्त जन ।
जो सामी सचु छडे डे, करे कूड़ी कहुबत ।
छोहे मानुष्य देहिंदे, लुड़ में डुबे लत ।
छडे मोहु ममत्व, सूर्य डिसे न सभ में ॥ ४२१ ॥

स्वामीजी कहते हैं कि जागृत (ज्ञानी) सन्तजन उन (अज्ञानी) लोगों को लाख-लाख लानत देते हैं (बहुत ही फटकारते एवं धिक्कारते हैं), जो सत्य को छोड़कर झूठा वादविवाद करते रहते एवं (संसार रूपी) प्रवाह में फँसकर अपना मानव शरीर नष्ट कर देते हैं, तथा जो मोह-ममता को छोड़कर (परमात्मा-रूपी) सूर्य को सब में नहीं देखते हैं ॥ ४२१ ॥

टोहिंदे लखु लानत, सन्त विज्ञानि सामी चए ।
जो समझु ज्ञानी पाण खे, रखे हिर्स हुज्जत ।
छोहे मानुष्य देहि दिव्य, लुड़ में डुबे लत ।
करे मनु उपरत्तु, सूर्य डिसे न सभ में ॥ ४२२ ॥

स्वामीजी कहते हैं कि सन्त पुरुष उस (अज्ञानी) जीव को लाख लानतें देते हैं (धिक्कारते एवं फटकारते हैं), जो अपने आप को विद्वान् मान कर भी इच्छाओं तथा तमन्नाओं को धारण करता है तथा (संसार-रूपी) प्रवाह में फँसकर अपने दिव्य मानव-शरीर को डुबो देता है और अपने मन को (मोह माया से) मुक्त कर (परमात्मा रूपी) सूर्य को सब में नहीं देखता है ॥ ४२२ ॥

द्वैत कीआ दुखी, कया जीअ जहान जा ।
शाह फकीर, अमीर पीर, महाजन दुखी ।
सदा रहनि सामी चए, समतावान सुखी ।
जिना रम रखी, कढ़ी दोलिनि कीन की ॥ ४२३ ॥

स्वामीजी कहते हैं कि द्वैत (अज्ञान के कारण आत्मा एवं परमात्मा को अलग-अलग समझने की भावना) ने संसार के सभी राजाओं, मंत्रियों, धनवानों, सन्तों, महाजनों तथा मुखिया लोगों को दुखी बना दिया है, किन्तु समतावान (आत्मा एवं परमात्मा को एक समझनेवाले) सदैव सुखी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रहते हैं। वे कभी भी नीरस एवं शुष्क (अज्ञान की) बातें नहीं करते हैं ॥ ४२७ ॥

द्वैत सभि दुःखी, कया जीअ जहान जा।
शाह वज़ीर अमीर पीर, महाजन मुखी।
सदा रहनि सामी चए, सम्तावान सुखी।
बिना रस रुखी, ग़ाल्हि न करिनि ग़ुझजी ॥ ४२८ ॥

सामीजी कहते हैं कि द्वैत ने संसार के सभी राजाओं, मंत्रियों, धनवानों, सन्तों, महाजनों तथा मुखिया लोगों को दुखी बना दिया है, परन्तु समतावान् सदैव सुखी रहते हैं। वे रहस्यमय (परमात्मा से संबंधित) के विषय में कभी भी नीरस तथा शुष्क (अज्ञानपूर्ण) बातें नहीं करते हैं ॥ ४२८ ॥

देवियूं ऐ देवा, मूर्ख पूज़िनि मति रे।
लाइनि भोग भ्रांत जा, खीर खंडूं मेवा।
विरले को साधू करे, सामी शुधु सेवा।
अलखु अभेवा, पूरणु द्रिसे प्रेम साँ ॥ ४२९ ॥

मूर्ख (अज्ञानी जीव) बुद्धिहीन होकर देवी-देवताओं की पूजा करते हैं तथा भ्रमवश होकर उन्हें दूध-शक्कर तथा फलों के भोग लगाते हैं। सामीजी कहते हैं कोई विरल साधु ही प्रेमपूर्ण शुद्ध सेवा करता है (और अन्तर्मुख होकर) अलख, अभेद एवं पूर्ण (परमात्मा) को देखता है ॥ ४२९ ॥

नींह बिना नादान, वेद पढ़ी वादी थिया।
प्रत्क्षु द्रिसनि न पीअ खे, अन्धा कनि उन्मान।
इस्थति थिया अन्दर में, के नेही निरबाण।
रहनि मंझि जहान, सामी अलेपु आकास जाँ ॥ ४३० ॥

सामीजी कहते हैं कि प्रेम-रहित नादान जीव (अज्ञानी जीव) वेदों का अध्ययन कर वादी बन गये हैं। वे अन्धे, प्रियतम को प्रत्यक्ष न देखकर उसके संबंध में केवल अनुमान ही करते हैं; किन्तु कुछ निर्वाण-प्रेमी आत्मा में स्थित होकर, संसार में रहकर भी आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते हैं ॥ ४३० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नींह बिना नादान, वेद पढ़ी वादी थिया ।
पाणु पछाणनि कीनकी, सभ जी कनि गिलान ।
पीअनि पीआरिनि प्रेम रसु, के साधूजन सुजान ।
सदा निराभिमान, सामी रहनि स्वभाव में ।। ४३१ ।।

सामीजी कहते हैं कि प्रेम-रहित नादान (अज्ञानी) जीव वेदों का अध्ययन कर वादी बन गये हैं। वे अपने आप को तो पहचानते नहीं हैं, किन्तु सब की निंदा करते रहते हैं। परन्तु कुछ सज्जन साधु-पुरुष ख़ुद तो प्रेम-रस का पान करते ही हैं और दूसरों को भी (प्रेम-रस का पान) कराते हैं। वे सदैव अभिमान-रहित होकर अपने ही भावों में डूबे रहते हैं (आत्मानंद में ही लीन रहते हैं) ।। ४३१ ।।

नींह बिना नादान, वेद पढ़ी वादी थिया ।
ब्रांभण कनि ब्याईअ साँ, जप तप दान इस्नान ।
नेहीं नारायण रे, ब्री सुधि रखनि कान ।
रहनि मंझि जहान, निर्पक्षु न्यारा नभ जाँ ।। ४३२ ।।

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि प्रेम-रहित नादान (अज्ञानी) जीव केवल वेदों का अध्ययन कर वादी बन गये हैं। वे द्वैत के वश होकर जप, तप, दान, तथा स्नान करते हैं। किन्तु सच्चे स्नेही नारायण के सिवा दूसरे किसी की सुध भी नहीं रखते हैं। वे संसार में रहकर भी आकाश की भाँति निर्लिप्त एवं निष्पक्ष रहते हैं ।। ४३२ ।।

पढ़ियल पलाली, जग में घुमनि केतिरा ।
कथन्दा वतनि एकता, दृढ़ता खों खाली ।
लधी लख्य अलख जी, नेहिनि निराली ।
सदा सान्ति साली, सामी रहनि स्वभाव में ।। ४३३ ।।

सामीजी कहते हैं कि संसार में कितने ही खोखले विद्वान् (अज्ञानी जीव जो केवल अध्ययन करते हैं, पर उस पर आचरण नहीं करते हैं) घूमते रहते हैं। वे दृढ़ता-विहीन होकर एकता के विषय में बकवास करते फिरते हैं। किन्तु सच्चे प्रमियों ने निराले अलख (परमात्मा) का पता ढूँढ निकाला है, अतएव वे सदैव शान्ति धारण कर अपने ही भावों में लीन रहते हैं (आत्मानंद में ही मस्त रहते हैं) ।। ४३३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पढ़ी पुझाए, स्याणो बणी सभखे ।
माया कारणि मन खे, दहदिस दौराए ।
पेही द्रिसे न पाणखे, मुंहुं मढ़ीअ पाए ।
जाग्रयो जाग्राए, त सुखी थे सामी चए ।। ४३४ ।।

(अज्ञानी जीव) बुद्धिमान् बनकर (वेदों का) पाठ कर दूसरों को भी समझाता है किन्तु माया के वशीभूत होकर अपने मन को दशों दिशाओं में दौड़ाता रहता है; वह अपने भीतर झाँककर, हृदय में स्थित आत्मा को नहीं देखता है। सामीजी कहते हैं यदि कोई जागृत (ज्ञानवान्) उसे जागृत करे (ज्ञान दे) तभी वह सुखी हो सकता है ।। ४३४ ।।

पण्डत चवनि परे, मन वाणीअ खों आत्मा ।
तंहिखे ज्ञाणनि कीन की, जो सभखे सद्र करे ।
चीटीअ ऐ कुन्चर में, बेहद ज्योति ब्ररे ।
सामी द्रिसी ठरे, पंहिजे अख्यें पाणखे ।। ४३५ ।।

अपने को पण्डित समझने वाले (अज्ञानी) कहते हैं कि आत्मा मन तथा वाणी से दूर है। वे उस आत्मा को नहीं जानते हैं जो वास्तव में सब में ही व्याप्त है। सामीजी कहते हैं कि चींटी से लेकर हाथी तक सब में वह अनंत ज्योति (आत्म-प्रकाश) ही जलती रहती है, जिसे अपनी ही आँखों से देखकर मनुष्य शीतल हो जाता है ।। ४३५ ।।

पण्डतु पुकारे, सारु ब्रुधाए सभखे ।
सामी पंहिजे मन जी, ममत्व न मारे ।
रखी द्वैत अन्दर में, सम्ता द्रेखारे ।
हल्यो सो हारे, मानुष्य देहि अमोल्य खे ।। ४३६ ।।

सामीजी कहते हैं कि अपने आप को पण्डित कहलाने वाला (अज्ञानी जीव) सबसे तत्त्व की (आत्मा-संबंधी) बातें करता रहता है, किन्तु अपने मन की ममता को नहीं मिटा पाता है। वह हृदय में द्वैत भाव रखकर केवल बाहर से ही समता दर्शाता है, अतएव वह अपने अमूल्य मानव-शरीर को व्यर्थ ही नष्ट कर (इस संसार से) चला जाता है ।। ४३६ ।।

पथर पूज़ा कनि, देउ न द्रिसनि देहि में ।
पण्डतु ज्ञाणी पाणखे, कर्मनि मंझि ब्रझनि ।
साखां सन्तनि जूं ब्रुधी, मर्मु न रखनि मनि ।
से कीअं रंगि रचनि, सामी सुपिर्युनि जे ।। ४३७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि (अज्ञानी जीव) पत्थरों की पूजा करते हैं किन्तु अपने ही शरीर में स्थित आत्मा को नहीं देखते हैं। वे अपने को पण्डित समझकर (पूजा, पाठ आदि) कर्मों में उलझे रहते हैं। सन्तों की दी हुई साक्षी सुनकर भी वे हृदय में किसी प्रकार की लाज-शर्म नहीं रखते हैं। भला ऐसे (अज्ञानी) जीव प्रियतम के (प्रेम-रूपी) रंग में किस प्रकार रंग सकते हैं ? (ऐसे अज्ञानी जीवों में परमात्मा के प्रति प्रेम हो ही नहीं सकता है) ॥ ४३७ ॥

पन्ना कुझु पढ़ी, पण्डतु समुझनि पाण खे।
सामी चए सन्सार में, चर्चा कनि चढ़ी।
ड्रिसनि न अन्भय आत्मा, पर्ची पाउ घड़ी।
रात्यूं ड्रीहं रड़ी, मुआ रहनि था ममत्व में ॥ ४३८ ॥

सामीजी कहते हैं कि (अज्ञानी जीव) थोड़े से पृष्ठ पढ़कर अपने आप को पण्डित मान लेते हैं और फिर संसार में घूमकर उसकी चर्चा करते रहते हैं; परन्तु एक क्षण भी शान्त होकर अन्तर-स्थित आत्मा को नहीं देखते हैं, अतः दिन रात ममता में रो-रोकर मरते रहते हैं ॥ ४३८ ॥

पन्ना ढेर पढ़ी, वादि कर्नि वेदान्त जी।
सारु न लहनिं लिवं साँ, वाकयनि मंझि वड़ी।
सामी वियो को सूर्मो, चेतन चिट चढ़ी।
भञी भर्म भड़ी, सदा माणे सेज सुखु ॥ ४३९ ॥

(अज्ञानी जीव) पोथे पढ़कर वेदान्त पर वाद-विवाद करते हैं। वे वाक्यों में उलझ जाते हैं, अतः प्रेम से (आत्मा-रूपी) सार को प्राप्त नहीं करते हैं। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही भ्रम-रूपी गठरी को पटक कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है एवं सदैव शय्या-सुख का उपभोग करता है (परमात्मा के साथ विलास करता है) ॥ ४३९ ॥

परमेश्वरु पधरि, अन्धा ड्रिसनि कीन की।
भुली भवनि पाणहीं, ओलहि ऐं ओभरि।
सामी सुजाग्रनि खे, नेड़े अचे नज़रि।
अन्दरि ऐं ब्राहरि, ड्रिसनि सदा आकास जाँ ॥ ४४० ॥

सामीजी कहते हैं कि यद्यपि परमात्मा प्रत्यक्ष है, फिर भी अन्धे (अज्ञानी जीव) उसे नहीं देख पाते हैं। वे भ्रमित होकर पूर्व तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पश्चिम में (परमात्मा को पाने के लिए) भटकते रहते हैं। किन्तु जागृतों को परमात्मा अपनी आँखों के सामने दिखाई देता है, अतः वे सदैव ही उसे आकाश की तरह भीतर एवं बाहर (सब जगह) देखते रहते हैं ॥ ४४० ॥

परमेश्वरु प्रत्क्षु, सामी सूर्य जाँ रहे।
अन्धा डि्सनि कीन की, पटे पंहिंजी अखि।
तंहिंखे तद्रूप थी. लिव सचीअ साँ लखि।
कोहु करें जखि जखि, दरि दरि देवाननि जाँ ॥ ४४१ ॥

परमात्मा सूर्य की तरह प्रत्यक्ष है, पर अन्धे (अज्ञानी जीव) अपनी आँख खोलकर उसे नहीं देख पाते। अतः सामीजी उन्हें उपदेश देते हुए कहते हैं कि तुम लोग पागलों की तरह क्यों द्वार-द्वार बकवास करते फिरते हो? तुम लोग उसे सच्चे प्रेम से देखो एवं उसके साथ तद्रूप हो जाओ ॥ ४४१ ॥

परमेश्वरु प्रतपालु, साणु सदाईं थी रहे।
मूर्ख भवनि मति रे, खणी ख़ामु ख़्यालु।
माणे मौज मुक्ति जी, को रहितवानु रसालु।
जंहिंखे नज़र निहालु, सामी कयो सतिगुरुअ ॥ ४४२ ॥

परमात्मा सबका प्रतिपालक है, वह सदैव ही सब के साथ रहता है। किन्तु मूर्ख (अज्ञानी जीव) बुद्धिहीन होकर, व्यर्थ के विचारों को ग्रहण कर भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, वही पहुँचा हुआ प्रेमी जिसे सद्गुरु ने अपनी नज़र से निहाल कर दिया है (प्रसन्न होकर आत्म-ज्ञान दिया है), मुक्ति का आनंद लूटता है ॥ ४४२ ॥

परमेश्वरु परे, मूर्ख ज्ञाणनि मति रे।
तंहिंखे डि्सनि कीन की, जो सभखे सिधि करे।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, समुझी अजरु जरे।
जंहिंते हथु धरे, सामी पूरो सतिगुरू ॥ ४४३ ॥

सामीजी कहते हैं कि जो परमात्मा सब (कार्यों) को सिद्ध करता है, उसे बुद्धिहीन मूर्ख (अज्ञानी) नहीं देख पाते, अतः उसे (अपने से) दूर बताते हैं। करोड़ों में से वही एक अपने को दृढ़ रखता है जिस पर पूर्ण सद्गुरु ने अपना हाथ धरा है (कृपा की है) ॥ ४४३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रत्क्षु प्रकासे, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ।
अन्धनि अज्ञान्युनि खे, भोरी न भासे ।
सामी ड्रिठो साध संगि, कंहिं नेहींअ निरासे ।
पलक न थिए पासे, पाणु वराए पाणखों ।। ४४४ ।।

सामीजी कहते हैं कि यद्यपि आत्मा भीतर एवं बाहर, प्रत्यक्ष प्रकाशमान है, फिर भी अन्धों तथा अज्ञानी जीवों को वह (आत्मा) रंचमात्र भी दिखाई नहीं देता । किसी विरल निराश प्रेमी ने ही उसे (आत्मा को) साधुओं के संग से देखा है, अतः वह एक पल के लिए भी अपने स्वरूप से अलग नहीं होता है ।। ४४४ ।।

प्रत्क्षु प्रकासे, सामी सूर्य अन्भई ।
व्रिले वद्रभाग़ीअ खे, भर्म रे भासे ।
जंहिंजो कयो सतिगुरू, पटु पर्दो पासे ।
फिरी न फासे, अणहून्दे अज्ञान में ।। ४४५ ।।

सामीजी कहते हैं कि यद्यपि आत्मा सूर्य की भाँति प्रत्यक्ष प्रकाशमान है, फिर भी किसी भाग्यशाली को ही वह भ्रम-रहित दिखाई देता है । जिस (व्यक्ति) का सद्गुरु ने अज्ञान रूपी आवरण हटा दिया है, केवल वही फिर से मिथ्या अज्ञान में नहीं फँसता है ।। ४४५ ।।

प्रत्क्षु परमेश्वरु, अन्धा ड्रिसनि कीनकी ।
हणनि कर्म धर्म में, कल्पे नितु टकरु ।
सुजाग़नि सही कयो, पर्ची पंहिंजो घरु ।
मेटे द्रःखु द्रमरु, सीतलु थियो सामी चए ।। ४४६ ।।

सामीजी कहते हैं कि परमेश्वर प्रत्यक्ष है पर अन्धे (अज्ञानी) उसे नहीं देख पाते हैं, अतः वे सदैव ही कल्पित धार्मिक क्रिया-कर्मों में माथापच्ची करते रहते हैं । किन्तु जागृतों ने प्रेम से अपना (आत्म-रूपी) घर जान लिया है, अतः वे दुःख दर्द मिटाकर शीतल हो गए हैं ।। ४४६ ।।

प्रत्क्षु पंहिंजो पाणु, वियो विसनि खों विसरी ।
भुली भौसागर में, फोलिनि फुर्ने साणु ।
कद्रहीं थिए कीनकी, नानत खों निरब्राणु ।
मिले सन्तु सुज़ाणु, त सुत्ह ड्रिसनि सामी चए ।। ४४७ ।।

यद्यपि परमात्मा प्रत्यक्ष है, फिर भी (अज्ञान में) खोये हुए लोग उसे भूल बैठे हैं । वे अपने आप को भूलकर भवसागर में उसे (परमात्मा को)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ढूँढते रहते हैं तथा कभी भी द्वैत भाव से मुक्त नहीं होते हैं। सामीजी कहते हैं, यदि सज्जन सन्त-पुरुष उन्हें मिल जाएँ, तभी वे अपने स्वरूप (आत्मा) को स्वयं देख सकेंगे ॥ ४४७ ॥

पवनि पंहिंजो पाण, अन्धा जीव अज्ञान में ।
ग़ोता खाइनि ग़ैब जा, करे खिन्चाताण ।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, सुजाग्रा सुज्ञाण ।
सदाई निरब्राण, सामी रहनि स्वभाव में ॥ ४४८ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) जीव स्वयं ही अज्ञान-रूपी समुद्र में कूद पड़ते हैं। वे व्यर्थ ही खींचातानी कर ग़ैब के ग़ोते खाते रहते हैं। किन्तु जाग्रत अनुभवी (ज्ञानी जीव) स्वरूप-सुख का उपभोग करते रहते हैं तथा सदैव ही (अज्ञान से) मुक्त होकर अपने ही भावों में (आत्मानंद में) लीन रहते हैं ॥ ४४८ ॥

पश्चम खे पूर्व, मूर्ख ज्ञाणनि मति रे ।
वेठा पीर फ़क़ीर थी, करे कूड़ कस्बु ।
समुझे को सामी चए, महबति मतिलबु ।
ढौल मिलण जो डबु, जंहिंखे द्रस्यो सतिगुरूअ ॥ ४४९ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख बुद्धिहीन होकर पश्चिम को पूरब मान बैठे हैं (सत्य को असत्य एवं असत्य को सत्य मान बैठे हैं) तथा झूठे कर्म कर पीर-फ़क़ीर बन बैठे हैं। वही विरल प्रेमी सारयुक्त बातें समझ पाता है जिसे सद्गुरू ने परमात्मा से मिलने का रास्ता बता दिया है ॥ ४४९ ॥

पंहिंजी पाड़ पटे, थो मूर्ख जीउ मर्म रे ।
साखां सन्तनि जूँ बुधी, हठ खों कीन हटे ।
मानुष्य देहि अमूल्य खे, थो सागर मंझि सटे ।
वेठो कचु मटे, द्रेई लाल अणमुल्हा ॥ ४५० ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख जीव निर्लज्ज होकर अपनी जड़ उखाड़ रहा है। सन्तों की साक्षी (सच्ची बातें) सुनकर भी वह अपने हठ से नहीं हटता है। उसने अपने अमूल्य मानुष-शरीर को (अज्ञान-रूपी) समुद्र में डाल दिया है और इस प्रकार बहुमूल्य रत्न देकर वह उसके बदले काँच के टुकड़े ले रहा है ॥ ४५० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पंहिंजो कीतो पाण, मूर्ख पाइनि मति रे ।
ड्रांवर ज्यों देहि में, ताणे फासनि ताण ।
सामी चढ़िया सीर ते, के नेहीं निरब्राण ।
जिनिखे प्रीति पछाण, सतिगुर ड्रिनी स्वरूपजी ।। ४५१ ।।

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख बुद्धिहीन होकर (अज्ञानी बनकर) अपने किये हुए कर्मों का फल पाते हैं । वे मकड़ी की तरह अपने ही बनाए हुए जाल में अपने को उलझा देते हैं । (जिस प्रकार मकड़ी अपने ही जाल में उलझकर अपने को नष्ट कर देती है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव भी अज्ञान के जाल में उलझ कर नष्ट होते हैं) । परन्तु (अज्ञान से) मुक्त प्रेमी, जिन्हें सद्गुरू ने स्व-रुप की पहचान कराई है, वे ज्ञान के ही मार्ग पर अग्रसर होते हैं ।। ४५१ ।।

पंहिंजो पाण पियो, भुली जीउ भर्म में ।
न कंहिं मेड़ि मिन्थ कई, न कंहिं ज़ोरु कियो ।
देहीअ जे धर्मनि साँ, मिली देहि थियो ।
बांभणु चए ब्रियो, चेतन न ज्ञाणे ज्ञाण रे ।। ४५२ ।।

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि जीव स्वयं ही (अपने स्वरूप को) भूल कर भ्रम में पड़ गया है । उसे (भ्रम में पड़ने के लिए) न किसी ने अनुनय-विनय की है, न ही किसी ने ज़ोर-ज़बरदस्ती की है । बल्कि वह स्वयं ही देह के धर्मों में आसक्त होकर देह बन गया है (शाश्वत आत्मा को भूलकर अपने को नश्वर शरीर मान बैठा है) । वह ज्ञान के अभाव के कारण चेतन (परमात्मा) को नहीं जान पाता है ।। ४५२ ।।

पंहिंजो पाण पवनि, भुली जीव भर्म में ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, जन्मनि नितु मरनि ।
साधूजन समझी सची, सामी साख ड्रियनि ।
जाग़ी ड्रिठो जिनि, हिकु हेकलो आत्मा ।। ४५३ ।।

सामीजी कहते हैं कि जीव (अपने स्वरूप को) भूलकर स्वयं ही भ्रमों में पड़कर भटकते रहते हैं । वे संसार को सत्य मानकर सदैव जन्मते एवं मरते रहते हैं । किन्तु साधु पुरुष, जिन्होंने जाग्रत होकर (आत्म-ज्ञान प्राप्त कर) एक ही आत्मा को सब में देखा है, वे उसे समझकर सत्य की ही साक्षी देते हैं ।। ४५३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पंहिंजो पाण मरे, थो मूर्खु जीउ मनन में।
जीए भोलो भर्म में, फाथो मुठि भरे।
जाग़ी अविद्या निन्ड्र मों, करे न पटु परे।
सतिगुरु महिर करे, त सामी छुटे दुःख खों ॥ ४५४ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख जीव ने मन के संकल्प-विकल्प में स्वयं ही अपने को उसी प्रकार उलझा दिया है, जिस प्रकार मूर्ख बन्दर ने भ्रमवश मुट्ठी बन्द कर अपने को फसा दिया था। (दृष्टान्त के तौर पर कहा जाता है कि एक बन्दर ने एक छोटे मुँह वाली सुराही में कुछ चमकीली चीज़ें देखीं और उन्हें पाने के लिए उसने अपना हाथ उस में डाला तथा मुट्ठी भरकर वह ज्यों ही अपने हाथ को निकालने लगा, त्यों ही वह (हाथ) छोटे मुँह में फँस गया। भोले बन्दर ने लाख प्रयत्न किये, लेकिन सब व्यर्थ। वह मुट्ठी किसी भी प्रकार सुराही से न निकल सकी। बन्दर हाय-हाय करने लगा। अज्ञान के कारण वह यह न जान सका कि मुट्ठी खोलकर हाथ निकाला जा सकता है। बन्दर की तरह अज्ञानी जीव भी माया-जाल में फँसकर नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प में उलझे रहते हैं। ज्ञान के अभाव के कारण वे भी बन्दर की तरह लाख प्रयत्न करने पर भी उनसे मुक्त नहीं हो पाते हैं।) वह अविद्या-रूपी नींद से जाग्रत होकर, अज्ञान-रूपी आवरण को नहीं हटाता है, किन्तु यदि सद्गुरु उस पर कृपा करे, तभी वह दुःखों से मुक्त हो सकेगा। ॥ ४५४ ॥

पंहिंजो पाण मले, थों मूर्खु मिटी मूंहं खे।
छद्गे साध संगति खे, कुसंग साणु रले।
द्गेई लाल अणमुल्हा, ब्रन्धे कचु पले।
कढी खोटि हले, थो समुझ वराए सखिणो ॥ ४५५ ॥

मूर्ख जीव स्वयं ही अपने मुँह में मिट्टी मल रहा है (अपने को धोखा दे नष्टकर रहा है)। वह साधुओं का संग छोड़कर कुसंग में ही मस्त रहता है, तथा अमूल्य रत्न देकर काँच के टुकड़े लेकर अपने आँचल में बाँधता रहता है (अमूल्य मानव-शरीर पाकर, बुरे कर्मो द्वारा नष्ट करता रहता है।) इस प्रकार वह खोखला (ज्ञानहीन) बुद्धिहीन होकर, बुरे कर्मों का बोझ उठाता फिरता है ॥ ४५५ ॥

पंहिंजो पाण रुले, चोरासीअ में जीउ हे।
जीए मृघी जल खे, द्रिसी मृघु भुले।
तद्गीं ग्रन्ढि खुले, जद्गीं सामी मिले सतिगुरू ॥ ४५६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि यह जीव स्वयं ही चौरासी (लाख योनियों) में उसी प्रकार भटक रहा है जिस प्रकार मृग, मृगतृष्णा के जल को देख कर भटकता रहता है। उसकी (अज्ञान-रूपी) गाँठ केवल सद्‌गुरु के मिलने से ही खुल सकती है ॥ ४५६ ॥

पंहिंजो पाण वहे, ख़लिक पंहिंजे ख़्याल में।
मिली माया मोह साँ, सूर अपार सहे।
ग़ोता खाए ग़ैब जा, को गुर्मुखु अलखु लहे।
सामी सदा रहे, ऐनु अलेपु आकास जाँ ॥ ४५७ ॥

सामीजी कहते हैं कि लोग अपने ही विचारों में स्वयं ही (अज्ञान-रूपी) प्रवाह में बहते जाते हैं। वे माया तथा मोह में पड़कर नाना प्रकार के दुःख सहते हैं। कोई विरला गुरु-भक्त ही रहस्यमय ग़ोते खाकर अलख (परमात्मा) को ढूँढ लेता है; फिर तो वह सदैव आकाश की भाँति शुद्ध एवं निर्लिप्त रहता है ॥ ४५७ ॥

पंहिंजो पाण हणे, थो मूर्खु झुग़ो मति रे।
हीरा लाल फिटा करे, थो कङ्करु कचु खणे।
सामी द्रिसे कीन की, नफो नुकसानु ग़णे।
ताणे मंझि तणे, थो द्रावंर ज्याँ पाणखे ॥ ४५८ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख जीव बुद्धिहीन होकर अपने आप ही (मनुष्य जीव-रुपी) ख़ज़ाने को नष्ट करता है। वह (श्वास-रुपी) हीरे व लाल फेंककर, (कर्म-रूपी) पत्थर व कीचड़ इकट्ठा करता है (अमूल्य मानव-शरीर को व्यर्थ ही नष्ट करता है)। वह लाभ तथा हानि को नहीं देखता है, एवं मकड़ी की तरह स्वयं ही अपने आप को (अज्ञान-रूपी जाल में) उलझा देता है ॥ ४५८ ॥

पंहिंजो पाण हवालु, मूर्खु जीअ मंदो कयो।
रखी चाह अन्दर में, दरि दरि करे सोआलु।
साणु रहे प्रतिपालु, तंहिंखे द्रिसे कीन की ॥ ४५९ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख जीव ने स्वयं ही अपनी बुरी हालत कर दी है। वह हृदय में इच्छा रखकर द्वार-द्वार भीख माँगता रहता है, पर सबकी पालना करनेवाले (परमात्मा) को, जो उसके ही साथ रहता है, नहीं देखता है ॥ ४५९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पाइनि पंहिंजो पाण, मिटी मेड़े मूंहं में ।
ग़ोता खाइनि ग़ैब जा, करे खिन्चाताण ।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, के साधूजन सुज्ञाण ।
सदा रहनि निरबाण, सामी सहज अनंद में ।। ४६० ।।

सामीजी कहते हैं कि (अज्ञानी जीव) स्वयं ही अपने मुँह में धूल झोंकते हैं (अपने आपको धोखा देते है),वे व्यर्थ की खींचातानी में रहस्यमय ग़ोते खाते हैं; किन्तु अनुभवी साधु-पुरुष सदैव ही मुक्त रहते एवं सहजानंद का उपभोग करते हैं ।। ४६० ।।

पोथिर पलाली, कोड़े घुमनि केतिरा ।
ग़ाल्हियूं कनि ज़बान साँ, खिल्वत जूँ ख़ाली ।
जाग़ी ड्रिसनि कीन की, ख़ावन्दु ख़्याली ।
लूअं लूअं मंझि लाली, सामी तंहि स्वरूप जी ।। ४६१ ।।

सामीजी कहते हैं कि कितने ही पोथी पढ़नेवाले खोखले जीव बन-ठन कर घूमते रहते हैं । वे केवल मुख से ही ईश्वर-चर्चा करते हैं, पर जाग्रत होकर रोम-रोम में समाई हुई ईश्वरीय सत्ता-रूपी लालिमा को नहीं देखते हैं ।। ४६१ ।।

ब्रांभणु ब्रुध ज्ञानी, कूड़ा घुमनि केतिरा ।
ग़ाल्हियूं कनि ज़बान साँ, अन्भइ आसानी ।
रहनि रस कस लोभ में, उर्झा अभिमानी ।
ज्ञाणनि न फानी, पुतिलो पंजनि तत्वनि जो ।। ४६२ ।।

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि कितने ही झूठे ज्ञानी घूमते रहते हैं । वे अभिमानी मूर्ख सरलता से ज्ञान-संबंधी बातें करते रहते हैं, किन्तु वास्तव में मोह, झूठ तथा लालच में उलझे हुए रहते हैं । वे यह भी नहीं जानते हैं कि यह पाँच तत्त्वों का बना हुआ शरीर नश्वर है ।। ४६२ ।।

विना दु:ख दु:खी, मूर्खु रहनि मति रे ।
पर्च्छिन्न ज्ञाणी पाणखे, ज्ञमनि मरनि जुखी ।
मिली थियो महबूब साँ, को सामी सन्तु सुखी ।
गहरी गुरमुखी, मुखि रखी मौजां करे ।। ४६३ ।।

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख (अज्ञानी) लोग बुद्धिहीन होकर झूठे दु:खों में दुखी रहते हैं । वे अपने को नश्वर समझकर व्याकुल होकर जन्मते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा मरते रहते हैं। किन्तु सन्त पुरुष प्रियतम से मिलकर सुखी हो गये हैं। वे गहन गुरुभक्त, परमात्मा की ओर मुखकर आनन्द लूटते रहते हैं ॥४६३॥

बिना वेसाह विसा, भुली पिया भर्म में।
पर्च्छिन्न ज्ञाणी पाणखे, कूड़ा कनि क़िस्सा।
सामी श्रोधे सिधि कई, महबत्युनि मन्सा।
दोस्तु दह दिसां, भयसाँ द्रिसनि पंहिंजो ॥ ४६४ ॥

सामीजी कहते हैं कि (अज्ञान में) खोये हुए जीव विश्वास के अभाव के कारण भ्रमों में भ्रमित हो गये हैं। वे अपने (आतमा) को नश्वर समझकर झूठे क़िस्से कहते रहते हैं। किन्तु प्रेमियों ने (आतमा को) ढूँढ कर अपनी इच्छा पूरी कर ली है, अतः वे प्रेम से दसो दिशाओं में अपने दोस्त (परमात्मा) का ही दीदार (दर्शन) करते रहते हैं ॥ ४६४ ॥

बिना वेसाह विसा, भुली पिया भर्म में।
पुठी द्रेई पाणखे, कूड़ा कनि किस्सा।
को आशिकु चढ़ियो अछते, मेटे मन सन्सा।
सामी सर्व दिसां, पूरणु द्रिसे पीअ खे ॥ ४६५ ॥

सामीजी कहते हैं कि अज्ञान में खोये हुए जीव विश्वास के अभाव के कारण भ्रमों में भ्रमित हो गये हैं। वे अपने (स्वरूप से मुख मोड़कर, झूठे क़िस्से कहते रहते हैं। किन्तु कोई विरला प्रेमी ही मन के भ्रमों को मिटा कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है, एवं समस्त दिशाओं में पूर्ण प्रियतम को ही देखता है ॥ ४६५ ॥

बिना वेसाह विसा, भुली पिया भर्म में।
पुठी द्रेई पाणखे, कूड़ा कनि किस्सा।
सामी शोधे सिधि कई, महबत्युनि मन्सा।
दोस्त दह दिसा, पूरणु द्रिसनि पधिरो ॥ ४६६ ॥

सामीजी कहते हैं कि अज्ञान में खोये हुए जीव विश्वास के अभाव के कारण भ्रमों में भ्रमित हो गए हैं। वे अपने (स्वरूप) से मुख मोड़कर, झूठे क़िस्से कहते रहते है; किन्तु प्रेमियों ने अपने स्वरूप को पहचानकर अपनी इच्छा पूरी कर ली है, अतः वे दसों दिशाओं में पूर्ण प्रियतम को प्रत्यक्ष देखते हैं ॥ ४६६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिना समुझ जखे, थो कुतो कच मंदर में ।
ब्रालकु बुधि पर्छावि खों, भुली भै रखे ।
ज्ञानी पाणु लखे, सुखी थे सामी चए ।। ४६७ ।।

सामीजी कहते हैं जिस प्रकार श्वान (कुत्ता) काँच के घर में अपनी परछाई देखकर, उसे दूसरा कुत्ता समझकर भौंकता (और दुखी होता) तथा जिस प्रकार बालक अल्प बुद्धि के कारण भ्रमित होकर अपनी परछाई से भयभीत होता है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव भी अपने वास्तविक स्वरूप को न पहचानकर दुखी होता है; किन्तु ज्ञानी अपने स्वरूप को देखकर प्रसन्न होता है ।। ४६७ ।।

भवण सभि भई, मूर्ख मुठा मति रे ।
सामी सुखु स्वरूप जो, पातो कीन कहीं ।
इस्थति रहे आकाश जाँ, को आशिकु अग्रुहीं ।
जाग्री द्रिठो जहीं, पंहिंजे अख्यें पाणखे ।। ४६८ ।।

मूर्ख लोग बुद्धिहीन होकर सब प्रकार के जन्म पाकर भटक रहे हैं; परन्तु किसी ने भी स्वरूप-सुख नहीं प्राप्त किया है । सामीजी कहते हैं, वही ज्ञानवान् प्रेमी आकाश की भाँति स्थिर रहता है, जिसने जाग्रत होकर अपने स्वरूप को अपनी ही आँखों से देख लिया है ।। ४६८ ।।

भवण सभि भवी, थकी जीउ थधो थियो ।
ममत्व पिण्ड मथे तों, लाथी कीन कहीं ।
सामी द्रसी सतिगुरूअ, सुत्ह ग्रालिह संई ।
वेई वेल तहीं, खपित खोआरी निकिरी ।। ४६९ ।।

जीव सब प्रकार के जन्मों में भटककर, थककर ठण्डे हो गये हैं, किन्तु किसी ने भी अपने सिर से ममत्व-रूपी गठरी नहीं उतारी है । सामीजी कहते हैं, किन्तु जिस क्षण सद्गुरु ने अन्तर्ज्ञान की सीधी बात बताई, उसी क्षण (हृदय से) प्रपंच तथा झंझट निकल गया है ।। ४६९ ।।

भारी भर्मु पियो, जुदाईअ जो जग्र में ।
मारे तंहि माणुहुनि जो, अकुलु ग्रुमु कयो ।
सामी बची को साध संगि, वर्यामु वियो ।
बिना ब्रोध ब्रियो, दिसे कीन अख्युनिसाँ ।। ४७० ।।

संसार में द्वैत का भयानक भ्रम आ पड़ा है । इस भ्रम ने लोगों को भटका-भटका कर, उनकी बुद्धि ही नष्ट कर दी है । सामीजी कहते हैं कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोई वीर (ज्ञानी) ही साधुओं के संग से इस (द्वैत भाव) से बच सका है। अत: वह अपनी आँखों से अपने सिवा (आत्मा के सिवा) दूसरा कुछ भी नहीं देखता है ॥ ४७० ॥

मर्मु न रखनि मनि, मूर्ख मानुष्य देहिजो।
भुली भौसागर में, पंहिजो पाण भवनि।
ड्रिनी साख सुमति साँ, सामी सचारनि।
जाग़ी ड्रिठो जिनि, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ॥ ४७१ ॥

सामीजी कहते हैं कि वे सत्यव्रती लोग, जिन्होंने जाग्रत होकर भीतर-बाहर एक ही आत्मा देखी है, उन्होंने अपनी सद्बुद्धि से यही साक्षी दी है कि मूर्ख लोग अपने हृदय में मानव-शरीर के मर्म को नहीं समझते हैं। अतएव वे स्वयं ही भवसागर में भटकते रहते हैं ॥ ४७१ ॥

मूर्ख करे ममत्वु, भवनि भौसागर में।
पर्च्छिनु ज्ञाणी पाणखे, रोअन्दा वतनि रतु।
उल्टी कंहि आशिक ड्रिठो, तन में तुर्या तत्त्व।
वारे खातो खतु, सामी माणे सान्ति सुखु ॥ ४७२ ॥

मूर्ख लोग ममतावश संसार-सागर में भटकते रहते हैं। वे अपने आप को नश्वर समझकर खून के आँसू बहाते रहते हैं (अत्यन्त ही दुखी होते हैं)। सामीजी कहते हैं, किसी प्रेमी ने (संसार से) विरक्त होकर शरीर में ही तुरीय-तत्व (चौथी अवस्थावाला आत्मतत्व) देख लिया है, अत: वह (कर्मरूपी) बहीखाता मिटाकर शान्ति-सुख का उपभोग कर रहा है ॥ ४७२ ॥

मूर्ख कर्नि वादि, बिना समुझ स्वरूप जे।
ग़ाल्हियूं वेदनि जूँ बुधी, सामी रखनि न यादि।
पर्ची लहनि कीन की, आत्म पदु अगाधि।
बिना सुख समाधि, पण्डतु ज्ञाणनि पाणखे ॥ ४७३ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख लोग स्वरूप-ज्ञान को प्राप्त किये विना ही वाद-विवाद करते रहते हैं। वे वेदों की बातें सुनते तो हैं, किन्तु उन्हें याद नहीं रखते हैं। अतएव वे आत्म-तुष्ट होकर अगाध आत्मपद प्राप्त नहीं कर पाते हैं। वे बिना समाधि-सुख का अनुभव किये ही अपने आपको पण्डित (ज्ञानी) मानते हैं ॥ ४७३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मूर्ख कर्म करे, भुली भोगिनि पाणही ।
भवनि भौसागर में, नाना रूप धरे ।
कटी फास फुर्ने जी, कंहि गुर्मुख गहरे ।
सामी द्रिसी ठरे, अन्दरि ब्राहरि आतमा ।। ४७४ ।।

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख लोग भ्रमित होकर अपने ही कर्मों का फल भोगते हैं। वे नाना रूप धारण कर संसार-सागर में भटकते रहते हैं। किसी गंभीर गुरुभक्त ने ही भ्रम की फाँसी काट ली है। अतः वह भीतर एवं बाहर (एक ही) आतमा देखकर, शीतल होता है ।। ४७४ ।।

मूर्ख कीन द्रिसनि, सन्मुख सुपिर्युनि खे ।
अविद्या जीअ अन्धा कया, द्रिनो पटु प्रियनि ।
भर्म मंझि भुली करे, था पन्ना नितु पढ़नि ।
तप तीर्थ व्रत नेम जग्, जहदु कयो जुगनि ।
गुफा बन पहाड़ में, भुख उञ दुःख सहनि ।
नाना भेष धरे करे, था देहि अमोल्य दहनि ।
बिना साध संगति जे, वहण मंझि वहनि ।
के लखाया लहनि, सामी सुपिर्युनि खे ।। ४७५ ।।

मूर्ख लोग अपने सन्मुख प्रियतम को नहीं देखते हैं। अविद्या ने जीवों को अन्धा बना दिया है तथा आत्मा के आगे (अज्ञान का) आवरण डाल दिया है, अतः भ्रमों में भ्रमित होकर सदैव पन्ने पढ़ते रहते हैं, एवं तप, तीर्थ, व्रत, तथा नियम धारण कर, कष्ट सहन कर पीड़ित होते रहते हैं। वे गुफा, वन तथा पर्वत पर निवास कर, भूख-प्यास और दुःख सहते रहते हैं और नाना प्रकार के वेश धारण कर अमूल्य (मानव-) शरीर को नष्ट करते हैं, व साधुओं का संग न कर (अज्ञान के) प्रवाह में बहते रहते हैं। सामीजी कहते हैं केवल कुछ अनुभवी (ज्ञानी) ही प्रियतम को ढूँढ पाते हैं ।। ४७५ ।।

मूर्ख छिके छिक, फाहीअ फासनि पाणहीं ।
भोगिनि भोग्नि साँ मिली, नाना भांइ नरक ।
द्रिठो अन्भय आतमा, उल्टी कंहि आशिक ।
महिर कई मालिक, सामी जंहिं ते साध संगि ।। ४७६ ।।

मूर्ख लोग खींचतानी कर स्वयं ही (अज्ञान-रूपी) फाँसी में फँस जाते हैं। वे भोगों में मग्न होकर नाना प्रकार के नरक (के दुःख) भोगते हैं। सामीजी कहते हैं, जिस प्रेमी पर मालिक ने साधु-संगति की कृपा की है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(जिसे परमात्मा की कृपा से साधुओं का संग मिला है), वही (संसार से) विरक्त होकर अन्तरात्मा को देख सका है ।। ४७६ ।।

मूर्ख ज्ञाणनि दूरि, नारायण नैननि खों ।
भवनि नितु भुलनि जाँ, दुःखनि जे दस्तूरि ।
सामी आशिक अन्भइ, हर्दम रहनि हज़ूरि ।
जंहिखे पहले पूरि, पारि लंगायो पातिणीअ ।। ४७७ ।।

मूर्ख लोग नारायण को अपनी आँखों से दूर समझते हैं, अतः वे सदैव ही भूले हुए लोगों की तरह दुःखों में भटकते रहते हैं । सामीजी कहते हैं कि अन्तर्मुखी प्रेमी को (सद्गुरु-रूपी) नाविक ने पहले से ही ज्ञान का रास्ता सुझाकर, भवसागर से पार लगा दिया है ।। ४७७ ।।

मूर्ख जीअ खराबु, कया कल्पत पंहिंजीअ ।
जन्मी मरी जमखे, हर हर द्रियनि हिसाबु ।
कोर्युनि मों को हिकिड़ो, करे खुशीअ साँ खाबु ।
जंहिखे शौकु शराबु, सामी द्रिनो सतिगुरूअ ।। ४७८ ।।

मूर्ख जीवों ने अपने आपको (मनकी) कल्पनाओं में ख़राब (नष्ट) कर दिया है । वे बार-बार जन्म एवं मृत्यु को प्राप्तकर यम को हिसाब देते रहते हैं । सामीजी कहते हैं—करोड़ों में से वही एक प्रसन्नता से (संसार को) स्वप्न मानता है, जिसे सद्गुरु ने प्रेम की मदिरा पिलाई है ।। ४७८ ।।

मूर्ख जीअ जुखी, जग में रहनि मति रे ।
चाल चलनि अज्ञान जी, बिना रस रुखी ।
मिली थियो महबूब साँ, को सामी सन्तु सुखी ।
गहिरी गुर्मुखी, मुखि रखी मौजाँ करे ।। ४७९ ।।

मूर्ख जीव बुद्धिहीन बनकर संसार में दुखी होते रहते हैं । वे ज्ञान-रूपी रस के अभाव में अज्ञान की शुष्क व नीरस चाल चलते हैं (ज्ञान के अभाव में अज्ञान-पूर्ण व्यवहार करते हैं) । सामीजी कहते हैं—कोई सन्त ही प्रियतम से मिलकर सुखी हुआ है । वह गहन गुरुभक्त (परमात्मा की ओर) मुख कर आनंद मनाता रहता है ।। ४७९ ।।

मूर्ख थिया ग़ुलाम, बिना ज्ञाति गुरूअ जे ।
हर्दमि हथ ब्धी करे, सामी कनि सलाम ।
रहनि अलेपु आकास जाँ, के नेही निष्काम ।
जिनिखे रम्ता राम, पाणु लखायो पाण में ।। ४८० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख जीव गुरु-ज्ञान के सिवा गुलाम बन गये हैं, वे सदैव हाथ बाँधकर सलाम करते रहते हैं। केवल कुछ निष्काम स्नेही, जिन्हें व्यापक राम ने अपने आप को दिखा दिया है, आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते हैं ॥ ४८० ॥

मूर्ख ड्रे आई, माया ब्रणी ममत्व जी।
फुरे कयाईं फोक सब, ड्रेई वड्राई।
सामी सुजाग्गनि खों, भग्गी भउ खाई।
महतामी साई, करिनि गुमु ज्ञाति साँ ॥ ४८१ ॥

माया, ममता का रूप धारण कर मूर्खों के पास जाती है तथा उनकी प्रशंसा कर उन्हें लूटकर खोखला बना देती है। सामीजी कहते हैं—जाग्रतों (ज्ञानवानों)से वह भयभीत होकर भाग जाती है, क्योंकि जाग्रत जन कुहराम मचानेवाली (माया को) ज्ञान के बल पर ग़ायब कर देते हैं (उसकी हस्ती मिटा देते हैं ॥ ४८१ ॥

मूर्खनि मेड़े, काग़र कोट कठा कया।
सामी लोभ लहरि न्यां, रहति बिना रेढ़े।
आशिक चढ़िया अछ ते, वर्क सभि वेढ़े।
सुर्ग खों नेड़े, सुत्ह ड्रिठाईं सुप्रीं ॥ ४८२ ॥

सामीजी कहते हैं—मूर्खों ने काग़ज़ों के ढेर संग्रहीत किये किन्तु प्रेम (ज्ञान) के अभाव के कारण लोभ-रूपी लहर ने उन काग़ज़ों को बहा दिया (ज्ञान के अभाव में ज्ञान-ग्रन्थों से उन्हें कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं हुआ)। किन्तु सच्चे प्रेमी समस्त पृष्ठ बन्द कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होते हैं तथा प्रियतम को अत्यन्त ही समीप साक्षात् देख लेते हैं ॥ ४८२ ॥

मूर्ख पूज़ा कनि, था पर्चेरीअ पथर जी।
मन में मैलु रखी करे, देही नितु धोअनि।
लाए भोग भ्रान्ति जा, बिना प्रेम नचनि।
से कीअं प्री पसनि, अविद्या जिनि जे अग्ग में ॥ ४८३ ॥

मूर्ख लोग बिना ज्ञान प्राप्त किए पत्थर की पूजा करते रहते हैं। वे मन में तो मैल रखते हैं किन्तु शरीर को सदैव ही धोते रहते हैं। वे भ्रमों के भोग लगाकर प्रेमरहित बनकर नाचते रहते हैं। सामीजी कहते हैं—जिनके आगे अविद्या है, भला वे कैसे प्रियतम को देख सकेंगे ? ॥ ४८३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूर्ख बिना मति, भुली पिया भर्म में।
सति ज्राणी सन्सार खे, खपनि मंझि खपति।
आशिक चढ़िया अछ ते, करे श्रुधि सम्बति।
निन्दा ऐं उस्तति, सामी ज्राणनि सम थी ।। ४८४ ।।

सामीजी कहते हैं—मूर्ख लोग बुद्धिहीन होकर भ्रमों में अपने आपको भूल बैठे हैं। वे संसार को सत्य मानकर उसके झंझट में फँसे हुए हैं, किन्तु प्रेमीजन निन्दा एवं स्तुति को सम समझकर, शुद्ध आचरण द्वारा ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होते हैं ।। ४८४ ।।

मूर्ख भोग़े भोग़, रज़नि न रतीअ जेतिरो।
तोड़े पाइनि अन्ति में, सामी नाना रोग़।
रहनि अलेपु आकास जाँ, के औधूत असोग।
जप तप साधन जोग़, साधे जिनि सिधि कया ।। ४८५ ।।

सामीजी कहते हैं—यद्यपि मूर्ख लोग भोग भोगकर अन्त में नाना प्रकार के रोगों को प्राप्त करते हैं, फिर भी वे (उन भोगों से) रत्ती भर भी तृप्त नहीं होते हैं। किन्तु वे शोक-रहित अवधूत (प्रेमी भक्त) जिन्होंने जप, तप एवं योग साधनाकर अपने आपको पूर्ण बना दिया है—आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते हैं ।। ४८५ ।।

मूर्ख मति मलीन, पिटिनि कारण पेट जे।
मानुष्य देह अमोल्य जो, कदुरु ज्राणनि कीन।
उल्टी अन्तरि मुखु थिया, के प्रेमी प्रब्रीन।
सदा साणु संगीन, सामी रहनि सुमेर जाँ ।। ४८६ ।।

मलीन बुद्धि वाले मूर्ख लोग पेट के कारण भटकते रहते हैं। वे अमूल्य मानुष-देह की क़द्र (मूल्य) नहीं करते हैं। सामीजी कहते हैं—किन्तु प्रवीण प्रेमी (संसार से विरक्त हो), अर्न्तमुख होकर सदैव ही सुमेरु पर्वत की तरह परमात्मा के साथ (अटल) रहते हैं ।। ४८६ ।।

मूर्ख मनु लाए, भोग़िनि भोग़ भर्म जा।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, जो खर्चु थो खाए।
सामी बचियो को सूर्मो, साधूअ जे साए।
चित्त चौको पाए, इस्थति थियो आकास जाँ ।। ४८७ ।।

मूर्ख लोग मन लगाकर भ्रमों के भोग भोगते रहते हैं। वे ज़िन्दगी को खानेवाले (नष्ट करनेवाले) काल को अपने कन्धे पर सवार नहीं देखते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कोई शुरवीर ही साधुओं की कृपा से (काल से) बच सका है तथा चित्त को समेटकर आकाश की भाँति स्थिर हो सका है ।।४८७।।

मूर्ख मवासी, सचु सुञाणनि कीनकी ।
सामी पिया सन्सार जे, फुर्ने में फासी ।
जाग़ी कंहिं जोग़ीअ कई, क्षण में खलासी ।
अलखु अविनासी, ड्रिठो जंहिं अख्युनि साँ ।। ४८८ ।।

सामीजी कहते हैं—अहंकारी मूर्ख सत्य को नहीं पहचानते हैं, अतः वे संसार के भ्रमों में उलझ गये हैं । किन्तु वह जाग्रत जोगी जिसने अपनी आँखों से अलख अविनाशी (आत्मा) को देख लिया है, एक ही क्षण में (संसार के भ्रमों) को ख़त्म कर देता है ।। ४८८ ।।

मूर्ख मुल्हि ग़िधो, भुली भूत भर्म जो ।
जन्म मरण जे दुःख में, ब्रधी पाणु विधो ।
ईहो इशारो अन्भई, कंहिं प्रेमीअ पुर्धो ।
समता मंझि सिधो, सूक्षमु थी सामी चए ।। ४८९ ।।

सामीजी कहते हैं मूर्ख जीव ने भ्रमित होकर भ्रम-रूपी भूत को मूल्य देकर (सहर्ष) ले लिया है और इस प्रकार अपने आपको जन्म-मरण के दुःखों से बाँध लिया है, किन्तु जिस प्रेमी ने अन्तर्ज्ञान के इशारे को समझ लिया है, वह समता को अपनाकर सूक्ष्म (आत्म-पद) को प्राप्त कर बैठा है ।। ४८९ ।।

मूर्ख मूर्खाई, छड्रिनि कीन क्षण भरि ।
पुठी ड्रेई पाण खे, छाणिनि नितु छाई ।
दानाहनि जे दिलि में, सुत्ह सफाई ।
अन्भय में आई, सामी तिनि खे समता ।। ४९० ।।

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख लोग एक पल भी मूर्खता को नहीं छोड़ते हैं। वे अपने स्वरूप से मुख मोड़कर, सदैव ही ख़ाक छानते रहते हैं (मानव-जीवन नष्ट करते रहते हैं) किन्तु जिन बुद्धिमानों के हृदय साफ़ हैं (जो अज्ञान-रूपी कीचड़ से मुक्त है) वे भीतर स्थिर एक ही आत्मा को देख लेते हैं ।। ४९० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूर्ख मैं मेरी, मिठी ज्ञाणनि मन में।
प्रीति न कनि प्रतीति साँ, पर्ची पकेरी।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, वज्रे थो वेरी।
भस्म जी ढेरी, सामी कयो जंहि सभखे ॥ ४९१ ॥

सामीजी कहते हैं—मूर्ख लोग मैं-मेरी की भावना को मधुर मानते हैं। वे आत्मतुष्ट होकर पूर्ण विश्वास के साथ (परमात्मा से) प्रेम भी नहीं करते हैं। तथा जिस वैरी काल ने सबको जलाकर राख का ढेर बना दिया है, उसे भी अपने कन्धे पर सवार हुआ नहीं देखते हैं। ४९१ ॥

मूर्ख वादि कई, पण्डतु ज्ञाणी पाण खे।
ब्रुधायांई सभखे, चारई वेद चई।
सामी सार स्वरूप खे, कयाईं कीन सही।
व्यरो पाण वही, ड्रेई हथ ब्यनि खे ॥ ४९२ ॥

सामीजी कहते हैं—मूर्ख अपने को पण्डित मानकर वाद-विवाद करता है, तथा सब लोगों को चारों वेद सुनाता है किन्तु स्वरूप-ज्ञान से स्वयं भी अनभिज्ञ रहता है। अतः दूसरों को सहारा (उपदेश) देकर भी खुद (अज्ञान के) प्रवाह में बह जाता है ॥ ४९२ ॥

मूर्ख सभि मुंझी, पिया वेदनि जे वाच में।
सामी लख्य स्वरूप जी, कंहि स्याणे समुझी।
जंहिखे ड्रिनी कुन्जी, सतिगुर ऐन आकास जी ॥ ४९३ ॥

सामीजी कहते हैं— मूर्ख लोग वेदों के प्रावह में ही उलझ जाते हैं, किन्तु वह बुद्धिमान् जिसे सदगुरू ने ज्ञान की कुंजी दे दी है, आतमा के स्वरूप को पहचानता तथा समझ पाता है ॥४९३ ॥

रहिया सभि रुझी, जप तप साधन योग में।
सुत्ह शुधि स्वरूपजी, कंहिखे कीन सुझी।
कोर्युनि मों कंहि हिकिड़े, ब्याईअ बिना ब्रुझी।
जंहिखे ग़ाल्हि ग़ुझी, सामी सली सीतगुरुअ ॥ ४९४ ॥

सामीजी कहते हैं कि सब लोग जप तप तथा योग-साधना में ही उलझे हुए हैं। किसी ने भी विशुद्ध स्वरूप की जानकारी प्राप्त नहीं की है। करोड़ों में से उसी एक (व्यक्ति) ने द्वैत-रहित होकर उसे (आत्मा के स्वरूप को) समझा है, जिसे सद्‌गुरू ने रहस्यमयी (आत्मज्ञान-संबंधी) बात बता दी है ॥ ४९४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहे सदाई साणु, प्रत्क्षु पूरणु आतमा ।
अन्धो ड्रिसे कीन की, कढी ममत्व माणु ।
भवे सदाई भर्म में, दरि दरि थी हैरानु ।
सामी थिए सुज्ञाणु, पाए ड्राति गुरूअजी ।। ४९५ ।।

सामीजी कहते हैं कि यद्यपि प्रत्यक्ष पूर्ण आतमा सदैव ही साथ रहती है, फिर भी अन्धा (अज्ञानी)जीव ममता एवं बड़प्पन को छोड़कर उसे नहीं देख पाता है अतः वह भ्रम से परेशान होकर सदैव द्वार-द्वार भटकता रहता है। किन्तु जब उसे गुरू (आतमज्ञान का उपदेश रूपी) उपहार देता है, तब वह पूर्ण ज्ञानी बन जाता है ।। ४९५ ।।

रहे सदाई साणु, प्रत्क्षु पूरणु आतमा ।
तंहिखे ड्रिसे कीनकी, अन्धो जीउ अज्ञाणु ।
भवे भवसागर में, करे ममत्व माणु ।
जे प्रीं लखाए पाण, त सुखी थिए सामी चए ।। ४९६ ।।

सामीजी कहते हैं कि यद्यपि प्रत्यक्ष पूर्ण आतमा सदैव ही साथ रहती है, फिर भी अज्ञानी अन्धा जीव उसे नहीं देख पाता है। अतः वह ममता एवं प्रशंसा में पड़कर संसार-रूपी सागर में भटकता रहता है। किन्तु यदि प्रियतम उसे अपने आप को दिखा देता है (परमातमा कृपा करता है) तो वह सुखी होता है ।। ४९६ ।।

रहे होतु हजूरि, सामी सभ कहींजे ।
भर्म मंझि भुली करे, मूर्ख ज्ञाणनि दूरि ।
रात्यूं ड्रींह मर्म रे, मरनि सन्से सूरि ।
चढ़ी पके पूरि, थिया मुकाबिल* महबती ।। ४९७ ।।

सामीजी कहते हैं यद्यपि प्रियतम सबके अत्यन्त ही निकट रहता है, फिर भी भ्रमों में भ्रमित होकर, मूर्ख लोग उसे अपने से अत्यन्त दूर जानते हैं। अतः वे निर्लज्जता-पूर्वक दिन-रात भ्रमों में दुखी होकर मरते (नष्ट होते) रहते हैं; किन्तु पूर्ण प्रेमी ज्ञान के मार्ग पर चढ़कर पूर्ण पद को प्राप्त कर लेते हैं ।। ४९७ ।।

रात्यूं ड्रींह पिटे, थो मूर्खु जीउ मर्म रे ।
मिली चाह चमारि सां, पंहिजो पाण भिटे ।
बिना साध संगति जे, ममत्व कीन मिटे ।
सामी तड्रीं छुटे, जड्रीं जाग़ी जुड़े पाण में ।। ४९८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूर्ख जीव निर्लज्जतापूर्वक दिन-रात भटकते रहते हैं। वे चाह-रूपी चमारिन से मिलकर (बुरी इच्छाओं में फँसकर) स्वयं ही भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि साधुओं के संग के सिवा उनकी ममता मिटनेवाली नहीं है। वे तब ही (अज्ञान से) मुक्त होते हैं जब जाग्रत होकर (आत्मज्ञान प्राप्त कर) अपने आप(स्वरूप)से जुड़ जाते हैं ।।४९८।।

रात्यूं ड्रींह राखी, मूर्ख कनि माया जी।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, कड़ों कटाखी।
समुझी सटी सिरतों, कंहिं हरिजन हलाखी।
सामी थी साक्षी वर्ते, विधि वीचार साँ ।। ४९९ ।।

मूर्ख दिन-रात माया की रखवाली करते रहते हैं। वे अपने कन्धे पर तीक्ष्ण कटाक्ष करनेवाली मृत्यु को नहीं देखते हैं। सामीजी कहते हैं, किन्तु हरि के भक्तों ने (माया को) दुःखदायी समझकर, उसे अपने सिर से उतार कर फेक दिया है, अतः वे आत्मा का साक्षात्कार कर सब के साथ नियम एवं विचार-पूर्ण वर्ताव करते हैं ।। ४९९ ।।

लखें जीअ लुड़हनि, था अण-हून्दे दर्याह में।
चङो ज्ञाणी चित्त में, मूर्ख कीनि मुड़नि।
सामी कीअं छुड़नि, जे ब्रधा कल्पत पाणहीं ।। ५०० ।।

लाखों जीव (अज्ञान-रूपी) मिथ्या समुद्र में बहते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, इन मूर्खों ने अज्ञान के प्रवाह में बहते रहने में ही अपनी भलाई मान ली है, अतः वे इस प्रवाह से दूर नहीं हो पाते (अज्ञान से बचने की कोशिश नहीं करते हैं)। भला जिन्होंने स्वयं ही अपने आप को प्रपंच में बाँध लिया है, वे उससे कैसे मुक्त हो सकते हैं ? ५०० ।।

लखें लब्राड़ी, गाल्हियूं कनि अगम जूं।
सामी कूड़ाए साधू थिया, मथो ऐं ड्राढ़ी।
ग्रलि पाइनि कपट जी, काती कोहाड़ी।
भाड़ि खईं भारी, वहन्दा वञनि वह में ।। ५०१ ।।

सामीजी कहते हैं लाखों झूठी बकवास करनेवाले अगम की बातें करते रहते हैं। वे अपना सिर एवं दाढी मुंडवाकर साधू बन जाते हैं तथा अपने गले में झूठे प्रपंच की तलवार एवं कुल्हाड़ी लटकाकर (अपना अहित कर) सांसारिक प्रपंच के भारी बोझ को उठाकर अज्ञान के प्रवाह में बहते जाते हैं ।। ५०१ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लखें लेखा कनि, पछाणू को हिकिड़ो।
लेखो छद्दे अलेख में, के गुर्मुख ग़र्कु रहनि।
ब्या सभि वादि बकनि, स्वप्न में सामी चए ।। ५०२ ।।

सामीजी कहते हैं, लाखों लोग (परमात्मा संबंधी) बातें तथा वादों पर वाद-विवाद करते रहते हैं। किन्तु कुछ विरल गुरुमुख ही बातों को छोड़ कर अलख परमात्मा को पहचानते हैं, एवं (उसके प्रेम में) डूबे रहते हैं ।। ५०२ ।।

लखें लेखारी, लेखे मंझि लुढ़ी विया।
ग़ोता खाइनि ग़ैब जा, भर्म करे भारी।
चढ़ियो चेतन चिट ते, को व्रिलो वीचारी।
सामी विश्व सारी, जाग़ी द्रिठी जंहिं ज्योति में ।। ५०३ ।।

सामीजी कहते हैं—लाखों बकवास करनेवाले बक-बक में ही बह गये हैं। वे भ्रमों में भ्रमित होकर ग़ैब के ग़ोते खाते रहते हैं। उस विरल विचारवान् ने ही ज्ञान के मार्ग को अपनाया है, जिसने जाग्रत होकर एक ही आत्मा के प्रकाश को सारे विश्व में देखा है ।। ५०३ ।।

लखें लेखारी, लेखे मंझि लुढ़ी विया।
जीएं पसूं घुमनि घाणे में, पाए पांजारी।
सामी माणे सान्ति सुखु, को व्रिले वीचारी।
भौसागरु भारी, लंघे चढ़ियो लख्य ते ।। ५०४ ।।

लाखों बकवास करनेवाले जीव, व्यर्थ की बक-बक में बह गये हैं। जिस प्रकार तेल की चक्की चलानेवाला पशु आँखों पर पट्टी चढ़वाकर तथा गले में रस्सी से बँधकर चक्की के चारों तरफ चकर लगाता रहता है, उसी प्रकार जीव, अज्ञान-रूपी पट्टे से बँधा हुआ संसार-रूपी चक्की के चारो ओर चक्कर काटता रहता है। सामीजी कहते हैं, कोई विरल विचारवान् ही भारी भवसागर पार कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होकर शान्ति-सुख का आनन्द लूटता है ।। ५०४ ।।

लखें लेखारी, लेखे मंझि लुढ़ी विया।
लंघे चढ़ियो लख्य ते, को उतमु अधिकारी।
जंहिंखे द्रिनो सतिगुरुअ, भवंसो भारी।
सामी सचारी, मुखि रखी मौजां करे ।। ५०५ ।।

सामीजी कहते हैं—लाखों झूठी बकवास करनेवाले बक-बक में ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बह गये हैं। केवल वही उत्तम अधिकारी ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, जिसे सद्गुरु ने पूर्ण विश्वास दिया है; अतः वह सत्यवादी परमात्मा की ओर मुख कर आनन्द मनाता रहता है ॥ ५०५ ॥

लखें लेखारू, लेखे मंझि लुढ़ी विया।
लंघे चढ़ियो लख्य ते, को तमां रे तारूं।
जंहिखे पातो सतिगुरुअ, दिव अंजन दारूं।
सामी मल्हारु मारू, गावन्द वते गोठ में ॥ ५०६ ॥

सामीजी कहते हैं—लाखों झूठी बकवास करनेवाले बक-बक के प्रवाह में बह गये हैं, केवल वही इच्छा-रहित तैराक लक्ष्य की ओर अग्रसर हुआ है जिसे सद्गुरु ने ज्ञान-रूपी अंजन तथा प्रेम-रूपी शराब दी है; अतः वह मल्हार (प्रसन्नता से परिपूर्ण गीत) एवं मारू (दुःख से परिपूर्ण गीत) राग संसार-रूपी गाँव में गाता फिरता है, अर्थात् सुख एवं दुःख में समान भाव से रहता है ॥ ५०६ ॥

लखें लेखारी, वहनि वाच वहण में।
लंघे चढ़ियो लख्य ते, को भाग्यवानु भारी।
सटी जंहि सामी चए, पर्च्छिन पिण्ड सारी।
समता सच्यारी, मुखि रखी मौजां करे ॥ ५०७ ॥

सामीजी कहते हैं—लाखों झूठी बकवास करनेवाले अज्ञान के तेज़ प्रवाह में बहते रहते हैं। वही महाभाग्यशाली ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, जिसने समस्त परिच्छिन्नता के पिण्ड को पटक दिया है तथा सच्चाई एवं समता को अपनाकर परमात्मा की ओर मुखकर आनंद मनाता रहता है ॥ ५०७ ॥

लखें लोक लाफी, लाफां हणनि लख्य रे।
स्वप्न में साहिब थी, मुलिक ड्रियन माफी।
जागी कंहि योधे कई, सामी चए साफी।
जंहिखे सराफ़ी, सतिगुरु ड्रसी स्वरूप जी ॥ ५०८ ॥

लाखों झूठे लोग लक्ष्य-रहित (ज्ञान-रहति) होकर झूठी बड़ाई करते रहते हैं। वे सपने में साहब (राजा) बनकर देश को माफ़ी देते हैं। अर्थात् अज्ञानवश दूसरों को ज्ञान का उपदेश देते हैं। सामीजी कहते हैं, वही विरल-योद्धा जाग्रत होकर अज्ञान-रूपी कीचड़ साफ़ करता है, जिसे सद्गुरु रूपी महाजन (Banker) ने स्वरूप का सच्चा ख़ज़ाना दिखाया है ॥ ५०८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लखें हज़ारें, ग़ाल्हियूं कनि वेदान्त जूँ।
ड्रिसे सिक सचीअ साँ, को व्रिलो वीचारी।
लहे लालु अन्दर मों, ग़ैबी ग़ोतो मारे।
नानत निवारे, सुखी थे सामी चए।। ५०९ ।।

सामीजी कहते हैं—हज़ारों-लाखों लोग वेदान्त की बातें करते रहते हैं, किन्तु केवल विरल-विचारवान् ही सच्चे प्रेम से परमात्मा को देखता है। वह हृदय के भीतर रहस्यमय ग़ोता लगाकर (आत्मा-रूपी) लाल ढूँढ लेता है; अर्थात् हृदय में स्थित आत्मा-रूपी लाल को ज्ञान की डुबकी द्वारा निकाल लेता है तथा द्वैत त्यागकर सुखी बन जाता है ।। ५०९ ।।

लखें हज़ारें, ग़ाल्हियूं कनि वेदान्त जूं।
सामी सौदो प्रेम जो, व्रिलो को धारे।
जे विहे अन्भय हट ते, नानत निवारे।
पर्ची पीआरे, प्यालो भेद भर्म रे।। ५१० ।।

सामीजी कहते हैं—हज़ारों-लाखों लोग वेदान्त की बातें करते रहते हैं, किन्तु कोई विरल-पुरुष ही द्वैत त्यागकर आत्मज्ञान-रूपी दुकान पर बैठकर प्रेम का सौदा करता है तथा आत्म-तुष्ट होकर भेद एवं भ्रम से रहित, प्रेम या ज्ञान-रूपी प्याला पिलाता है अर्थात् दूसरों को भेद व भ्रम से मुक्तकर आत्मज्ञान से सन्तुष्ट करता है ।। ५१० ।।

लखें हज़ारें, वेद पढ़ी वादी थिया।
व्रिले को विधि साँ ब्रुझे, विधि साँ वीचारे।
आणे मन पवन खे, अन्दरि आतारे।
नांनत निवारे, सीतलु थियो सामी चए।। ५११ ।।

सामीजी कहते हैं—हज़ारों-लाखों लोग वेद पढ़कर विवादी बन गये हैं। उनमें से कोई विरल-व्यक्ति ही विधिपूर्वक उस पर विचार करता है तथा विधिपूर्वक उसे समझता है। वह वायु के समान बहनेवाले मन को सांसारिक विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी बनाता है अर्थात् मन को हृदय में स्थित आत्मा में लीन करता है एवं द्वैत मिटाकर शीतल बनता है ।।५११।।

लाफाँ लख हणनि, पण्डतु ज्ञाणी पाणखे।
ग़ाल्हियूं वेदनि जूं ब्रुधी, मर्मु न न रखनि मनि।
ठाकुर वसे घर में, सो अन्धा कीन ड्रिसनि।
लखाया लहनि, सामी सुपिर्युनि खे।। ५१२ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं—अज्ञानी जीव अपने को पण्डित समझ कर अपनी लाख-लाख प्रशंसा करते रहते हैं। वे वेदों की बातें सुनते तो हैं किन्तु मन में लाज-शर्म नहीं रखते हैं। वे अन्धे हृदय-रूपी घर में विराजमान आत्मा रूपी ठाकुर को नहीं देखते हैं। किन्तु ज्ञानवान्, प्रियतम-परमात्मा को ढूँढ ही लेते हैं ।। ५१२ ।।

लिकनि लोक लजा, कूड़ा छद्रिनि कीन की।
सभे माया मोह में, सहनि नितु सज़ा।
आशिक चढ़िया अछ ते, मने रब रज़ा।
करे नितु मज़ा, सामी सफ़ाईअ जा ।। ५१३ ।।

सामीजी कहते है—झूठे (अज्ञानी) जीव लोक-लज्जा नहीं छोड़ पाते, बल्कि उसमें ही फँसे रहते हैं, अर्थात् सांसारिक लोगों तथा बातों का ही ज़्यादा ख्याल करते हैं, अतः सदैव ही वे मोह-माया में कष्ट भोगते रहते हैं (दुःख सहन करते हैं)। किन्तु प्रेमी-व्यक्ति मन में परमात्मा की रज़ा पर राज़ी होकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होते हैं एवं सदैव ही पवित्रता का आनंद लूटते हैं ।। ५१३ ।।

लिकनि लोक लजा, कूड़ा जीअ जहान जा।
अस्थिरु ज्राणी पाण खे, सहनि नितु सज़ा।
के आशिक ज्राणी अकु सभु, सन्सारी मज़ा।
रहनि सदा रज़ा, आत्मसुख अपार में ।। ५१४ ।।

सामाजी कहते हैं—संसार के झूठे जीव लोक-लज्जा में छिपते हैं अर्थात् सांसारिक लोगों तथा उनकी बातों से डरते हैं। वे अपने को नश्वर मानकर सदैव ही कष्ट भोगते रहते हैं। किन्तु प्रेमी लोग संसार के मौज-मजों को आक के समान (कड़ुवा) समझते हैं, तथा सदैव ही अपार आत्मानन्द में लीन रहते हैं ।। ५१४ ।।

लेखे मंझि आहीनि, सभे जीअ जहान जा।
गुर्मुखु लेखे खे छद्रे, पेरु अग्गे पाईनि।
सामी लिव लाईनि, वञी अन्भय जे आकास में ।। ५१५ ।।

सामीजी कहते हैं—संसार के सब जीव बातों में उलझे हुए हैं, किन्तु गुरुभक्त बातों को छोड़कर ज्ञान के मार्ग पर आगे कदम बढ़ाते हैं तथा अन्तर्ज्ञान के आकाश में प्रेम लगाकर बैठते हैं ।। ५१५ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेखे मंझि लटिक्या, कई जीअ जहान जा ।
फसी माया मोह जे, फन्दे मंझि फथिक्या ।
दरि दरि थी भिटिक्या सामी शुधि स्वरूप खों ।। ५१६ ।।

सामीजी कहते हैं—संसार के कई जीव व्यर्थ की बातों में ही उलझ गये हैं । वे मोह-माया के फन्दे में फँसकर तड़प रहे हैं तथा शुद्ध आतम स्वरूप से विमुख होलर द्वार-द्वार भटक रहे हैं ।। ५१६ ।।

लेखे मंझि लुढ़ी, विया जीअ जहान जा ।
अन्दरि ड्रिठो अलेख खे, कंहिं महबतीअ मुड़ी ।
सामी जंहिंजी साध सङ्गि, अविद्या ग्रन्ढि छुड़ी ।
जागी रह्यो जुड़ी, पाण वराए पाण साँ ।। ५१७ ।।

सामीजी कहते हैं—संसार के जीव व्यर्थ की बातों के प्रवाह में बह गये हैं, किन्तु साधुओं के संग से जिस प्रेमी की अविधा-रूपी गांठ खुल गई, उसने अन्तर्मुखी होकर अपने ही भीतर अलेख (जिसका लेखा न किया जा सके) परमात्मा को देखा है, तथा जाग्रत होकर अपने अहं से मुख मोड़कर अपने आत्मा-स्वरूप से जुड़ गया है ।। ५१७ ।।

लेखे लुड़ु विधो, सखिणो हिन सन्सार में ।
इशारो अलेख जो, कंहिं प्रेमीअ पुर्धो ।
सदा रहे सामी चए, समुझ मंझि सिधो ।
मरी मुल्हि ग्रिधो, परमेश्वर खे प्रीति साँ ।। ५१८ ।।

सामीजी कहते हैं, झूठी बातों ने संसार में मिथ्या शोर-गुल मचाया है । किसी प्रेमी ने ही अलेख का इशारा समझा है, अतः वह सदैव ही विचारयुक्त रहता है । उसने अपने आपको मार कर (अहं नष्ट कर) परमातमा को प्रेम से खरीद लिया है ।। ५१८ ।।

लेखे विधो लुड़ु, सामी चए सन्सार में ।
आशिक चढ़िया अछते, करे पंजई पुड़ु ।
सन्मुखु सुपिर्युनि जे, लाए वेठा झुड़ु ।
जीएं गूंगो खाए गुड़ु, मुशिके कुशिके कीनकी ।। ५१९ ।।

सामीजी कहते हैं कि झूठी बातों ने संसार में बहुत शोर मचाया है, किन्तु प्रेमी लोग पाँच विकारों (काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार) को वश में कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुए हैं । वे प्रियतम के सन्मुख इकट्ठे होकर बैठे हैं । उनकी स्थिति उस गूँगे जैसी है जो गुड़ खाकर उसके स्वाद का अनुभव तो करता है, किन्तु उसके संबंध में कुछ कह नहीं पाता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। उसी प्रकार ये प्रेमी आत्मानंद का अनुभव करते हैं किन्तु उस आनंद का वर्णन कर सकने में बिल्कुल असमर्थ हैं ।। ५१९ ।।

लोभ लहरि लोड़े, कोड़े न्यां केतिरा ।
सामी रख्यो सुखान खे, कंहिं महबतीअ मोड़े ।
ब्रन्धन सभि ब्रयाईअ जा, छद्रियाईं छोड़े ।
वेठो जी जोड़े, लंघे पारि प्रियनि साँ ।। ५२० ।।

सामीजी कहते हैं—लोभ-रूपी लहर ने कितने ही अज्ञानी जीवों को बहाकर नष्ट कर दिया है, किन्तु प्रेमी ने मन-रूपी पतवार को भीतर की ओर मोड़ दिया है, अर्थात् मन को सांसारिक बातों से हटाकर हृदय में स्थित आत्मा में लीन कर दिया है, तथा द्वैत के सब बन्धन खोल दिये हैं। वह भवसागर से पार होकर, प्रियतम के साथ हृदय जोड़ कर बैठा है ।।५२०।।

लोभी ऐं लालिची, घाटु न लहनि घर जो ।
मरनि माया मोह में, पंहिंजो पाण पची ।
उल्टी को आशिकु रहे, आत्म रंगि रची ।
जंहिंखे समुझ सची, सामी द्रिनी सतिगुरूअ ।। ५२१ ।।

लोभी तथा लालची जीव घर का रास्ता नहीं ढूंढ पाते हैं, अर्थात् हृदय-रूपी घर में स्थित आत्मा को नहीं देख पाते हैं। वे स्वयं ही माया-मोह में पच-पचकर मरते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, किन्तु जिस प्रेमी को सद्‌गुरु ने सच्चा ज्ञान दे दिया है, वह संसार से विरक्त होकर आत्म-रंग में रंगा रहता है ।। ५२१ ।।

लोभी ऐं लालिची, सचु सुञाणनि कीन की ।
काया माया कुल में, मरनि पाण पची ।
सामी रह्यो को सूर्मो, आत्म रंगि रची ।
जंहिंखे समुझ सच्ची, शोधे द्रिनी सतिगुरूअ ।। ५२२ ।।

लोभी तथा लालची जीव सत्य को नहीं पहचानते हैं, वे काया-माया एवं कुल (संबंधी बातों) में पच-पचकर स्वयं ही नष्ट होते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, किन्तु जिस शूरवीर (ज्ञानी) को सद्‌गुरु ने खोज कर सच्चा ज्ञान दिया है वह आत्म-रंग में रंगा रहता है ।। ५२२ ।।

लोड़े लोभ लहरि, न्यां जीअ जहान जा ।
भुली भवनि पाण ही, दीनु वणी दरि दरि ।
को प्रेमी पूरणु थियो, पर्ची परीअं भरि ।
जंहिंखे स्वतन्तरि, सामी कयो सतिगुरूअ ।। ५२३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोभ रूपी लहर ने संसार के (अज्ञानी) जीवों को प्रवाह में डाल कर नष्ट कर दिया है। वे स्वयं ही अपने आप (स्वरूप) को भूलकर, दीन बनकर द्वार-द्वार भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, किन्तु वह विरल-प्रेमी, जिसे सद्‌गुरु ने अज्ञान, लोभ एवं लालच से मुक्त कर दिया है, वह आतमतुष्ट हो, संसार-सागर के उस ओर जाकर (संसार-सागर से पार होकर) पूर्ण बन गया है।। ५२३ ।।

लोड़े लोभ लहरि, मूर्ख मोहिया केतिरा।
भुली भवन पाणही, कूड़ा ब्रधा कमरि।
के प्रेमी प्रतीति साँ, पर्ची पहुता घरि।
अचे कीन नज़रि, सामी सुपिर्युनि रे।। ५२४ ।।

लोभ रूपी लहर ने कितने ही मूर्खों (अज्ञानी जीवों) को आकर्षित कर नष्ट कर दिया है। वे झूठे भ्रमित होकर, स्वयं ही अपनी कमर को अज्ञान-रूपी बोझ से बाँधकर भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं, कुछ प्रेमी ही पूर्ण विश्वास से आतम तुष्ट होकर हृदय-रूपी घर में पहुँच पाये हैं, (अपने भीतर ही आत्मा को देख पाये हैं), अतः उन्हें प्रियतम के सिवा कुछ भी दिखाई नहीं देता है ॥ ५२४ ॥

लंघे लोक लज्ञा, कूड़ा सघनि कीनकी।
जन्मी मरी जम जी, खाइनि सदा सज़ा।
सचा रहनि सामी चए, राज़ी मंझि रज़ा।
मिली कनि मज़ा, पर्ची पंहिंजे पीअ साँ।। ५२५ ।।

झूठे जीव संसार की लाज-शर्म को नहीं छोड़ सकते हैं (वे संसार के लोगों से डरते रहते हैं)। अतः वे जन्म एवं मृत्यु को प्राप्त कर सदैव यम की सज़ा भोगते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, किन्तु सच्चे जीव परमेश्वर की रज़ा में राज़ी रहते हैं तथा आत्मतुष्ट हो, प्रियतम से मिलकर आनन्द मनाते रहते हैं ।। ५२५ ।।

लंघे लोक लज्ञा, कूड़ा सघनि कीन की।
जन्मी मरी जम जी, सहनि नितु सज़ा।
सचा रहनि सामी चए, राज़ी मंझि रज़ा।
मिली कनि मज़ा, सुत्ह साध संगति साँ।। ५२६ ।।

झूठे जीव संसार की लाज-शर्म को नहीं छोड़ सकते हैं, (संसार के लोगों तथा उनकी बातों से डरते रहते हैं) अतः वे जन्म एवं मृत्यु को प्राप्त कर सदैव ही यम की सज़ा भोगते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, किन्तु

सच्चे ज्ञानवान् परमात्मा की रज़ा में राज़ी रहते हैं तथा शुद्ध साधु-संगति का लाभ उठाकर मज़े मनाते रहते हैं ॥ ५२६ ॥

वञे विस्व वहन्दी, सन्से जे सागर में ।
कई लोभ लहरि साँ, अविद्या सभ अन्धी ।
विरले कंहिं गुर्मुख लधी, कृपा साणु कन्धी ।
ब्रांभण जंहिं ब्रन्धी, पंजई कया वसि पंहिंजे ॥ ५२७ ॥

सारा विश्व भ्रम रूपी सागर में बह रहा है । अविद्या ने लोभ-रूपी लहर से सबको अन्धा बना दिया है । सामीजी कहते हैं उसी विरल-गुरु-भक्त ने गुरु की कृपा से संसार-रूपी सागर का किनारा पा लिया है, जिसने पाँच विकारों को बाँधकर वश में कर लिया है ॥ ५२७ ॥

वहे बिना वीचार, ख़लिक ख़ाम ख़्याल में ।
पच्छिन्न ज़्ाणी पाण खे, रोए ज़ारौं ज़ार ।
रहनि अलेपु आकास जाँ, के नेहीं निराधार ।
लाथी जिनि लिवं तार, सामी सुपिर्युनि साँ ॥ ५२८ ॥

सभी लोग बुद्धिहीन होकर व्यर्थ के विचार-प्रवाह में बहते रहते हैं । वे अपने को नश्वर समझकर खून के आँसू बहाते रहते हैं । सामीजी कहते हैं, किन्तु अज्ञान से मुक्त प्रेमी जिन्होंने प्रियतम के साथ स्नेह किया है, वे आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते हैं ॥ ५२८ ॥

वाई वड़ाई, कूड़ा भुली कनि केतिरा ।
रखनि न रतीअ जेतिरी, समुझ सफ़ाई ।
विरले कंहिं गुर्मुख खे, सामी सान्ति आई ।
सम थी सदाईं, माणे मौज मुक्ति जी ॥ ५२९ ॥

कितने ही झूठे लोग भ्रमित होकर मुख से अपनी बड़ाई करते रहते हैं, किन्तु रत्तीभर भी बुद्धि तथा पवित्रता नहीं रखते हैं । सामीजी कहते हैं, विरल-गुरुभक्त को ही शान्ति प्राप्त होती है अतएव वह समता अपनाकर सदैव ही मुक्ति का आनन्द लूटता है ॥ ५२९ ॥

वाई वड़ाई, मूर्ख कर्नि मर्म रे ।
सति ज़्ाणी सन्सार खे, छाणिनि नितु छाईं ।
स्याणनि सची सामी चए, हरि साँ लिवं लाई ।
कल्पना काई, रखनि न रतीअ जेतिरी ॥ ५३० ॥

मूर्ख, निर्लज्ज होकर अपने मुख से अपनी प्रशंसा करते रहते हैं । वे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संसार को सत्य मानकर, सदैव ही धूल छानते रहते हैं अर्थात् अपने को धोखा देकर, मानव-जीवन नष्ट करते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, किन्तु ज्ञानी, परमात्मा से सच्चा नेह लगाते हैं। वे रत्ती भर भी किसी प्रकार की कल्पना नहीं करते हैं ॥ ५३० ॥

वादि विवादि बकी, मूर्ख मरनि मर्म रे।
छद्रे सुखु स्वरूप जो, पींहनि चाह चकी।
कोर्युनि मों कंहिं हिकिड़े, लधो थांउ थकी।
जंहिंखे प्रीति पकी, सामी द्रिनी सतिगुरुअ ॥ ५३१ ॥

मूर्ख बुद्धिहीन होकर वाद-विवाद तथा बक-बक कर नष्ट होते रहते हैं। वे स्वरूप-सुख को छोड़कर चाह-रूपी चक्की पीसते रहते हैं अर्थात् नाना प्रकार की इच्छाएँ करते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, करोड़ों में से उसी एक ने ही थक कर (प्रयत्न कर) ठिकाना प्राप्त कर लिया है, जिसे सद्गुरु ने पक्की प्रीति दी है ॥ ५३१ ॥

वादी उपाधी, कोड़े घुमनि केतिरा।
कनु कंहिं खे कीन द्रिए, सुत्ह समाधी।
सामी जंहिं साधी, मन्सा गुरु मर्याद साँ ॥ ५३२ ॥

कितने ही उत्पाती-वादी नष्ट होकर घूमते रहते हैं। सामीजी कहते हैं—किन्तु पूर्ण समाधिस्थ (सन्त), जिसने गुरु की मर्यादा से अपनी मनसा (इच्छा) वश में कर ली है, किसी की भी बात पर कान नहीं देता है (किसी की नहीं सुनता है) ॥ ५३२ ॥

वादी ऐं विषई, सचु सुञाणनि कीनकी।
भंवनि भौसागर में, पंहिंजो पाण पई।
ईएं विया अभिमान रे, सामी सन्त चई।
अन्भय अण मई, हुई जिनि जे हथ में ॥ ५३३ ॥

सामीजी कहते हैं, वे अभिमान-रहित सन्त, जिनके पास अपार ज्ञान था यही कह गये हैं कि वादी एवं विषयी सत्य को नहीं पहचानते हैं; अतः वे स्वयं ही भवसागर में पड़कर भटकते रहते हैं ॥ ५३३ ॥

वादी विवादी, सचु सुञाणनि कीन की।
सदा रहनि सन्सार में, पर्छिन प्रमादी।
माणे सुखु स्वरूप जो, आशिकु अगाधी।
मूड़ी मुरादी, सामी द्रिठी जंहिं समता ॥ ५३४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वादी तथा विवादी सत्य को नहीं पहचानते हैं। वे नश्वर संसार में सदैव ही प्रमाद करते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, किन्तु अगाध-प्रेमी, जिसने समता-रूपी पूँजी प्राप्त कर ली है, वह स्वरूप-सुख का ही उपभोग करता रहता है ।। ५३४ ।।

विञायो विसे, पाणु पंहिंजो पाण मों।
देवाननि जाँ देस में, फोले एं फिसे।
ड्रीओ ब्रारे घर में, सामी कीन ड्रिसे।
अचे सन्तु हिसे, त तपति मिटेई मन जी ।। ५३५ ।।

अज्ञान में खोये हुए जीव ने स्वयं ही अपने स्वरूप को अपने से अलग समझकर गँवा दिया है (अपने में स्थित आत्मा को भुला दिया है) ; अतः अब वह पागलों की तरह उसे संसार में ढूँढ़ता रहता है तथा ठोकरें खाता रहता है। सामीजी कहते हैं—वह हृदय-रूपी घर में ज्ञान का दीपक जला कर उसे (आत्मा को) नहीं देखता है। किन्तु यदि उसे सौभाग्यवश कोई सन्त मिल जाए तो उसके मन की तपन मिट जाए ।। ५३५ ।।

विसनि खे वाहणु, वाहे वियो वाच में।
मिली मलाहनि खाँ, पुछीन कीन पतणु।
लंघे चढ़ियो लख्य ते, को प्रेमी पूरणु।
जंहिंजो भोलु भंवणु, सामी लाथो सअिगुरूअ ।। ५३६ ।।

अज्ञान में खोये हुए जीवों की जीवन-नौका को अज्ञान के तेज़ प्रवाह ने धकेल दिया है। वे सन्तरूपी मल्लाहों से मिलकर किनारा नहीं पूछते हैं। (सन्तों का संग कर संसार-सागर से पार नहीं होते हैं)। सामाजी कहते हैं किन्तु जिस पूर्ण-प्रेमी के अज्ञान रूपी पर्दे को सद्गुरु ने उतार दिया है, उसकी जीवन-नौका भवसागर पार कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुई है। ५३६ ।।

विसनि खों विसिरी, वियो आदि घरु पंहिंजो।
सामी पिया सन्सार जे, कल्पति मंझि किरी।
विरले कंहिं वेसाह साँ, लधो घाटु घिरी।
अचे कीन फिरी, जन्म मरण जे दुःख में ।। ५३७ ।।

सामाजी कहते हैं, अज्ञान में खोये हुए जीवों को अपना आदि-घर बिसर गया है, अतः वे संसार के झूठे प्रपंच में फँस गये हैं। किसी विरल-पुरुष ने ही विश्वास से अन्तर्मुख होकर किनारा ढूँढ लिया है, अतः वह फिर से जन्म-मरण के दुःखों में नहीं आता है ।। ५३७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विसनि खों विसिरी, वियो आदी घर पंहिंजो ।
सामी पिया सन्सार जे, कलपति मंझि किरी ।
सुजाग़नि सही लधो, पूरणु पाकु प्रीं ।
जीएं जवाहरी, लालु पछाणे लख्य साँ ।। ५३८ ।।

सामीजी कहते हैं, अज्ञान में खोये हुए जीवों को अपना आदि घर बिसर गया है, अतएव वे संसार के झूठे प्रपंच में फँस गये हैं । किन्तु जाग्रत ज्ञानियों ने पूर्ण पवित्र प्रियतम को अपने ज्ञान से उसी प्रकार पहचान लिया है, जिस प्रकार जौहरी अपने ज्ञान से लाल पहचानता है ।। ५३८ ।।

विसनि विञायो, घर जो धणी घर मों ।
उल्टी द्रिसनि कीन की, जंहिं जगु उपायो ।
सामी सुजाग़नि खे अन्भय में आयो ।
पंहिंजो परायो, ख्यालु मेटे ख़ामोशु थियो ।। ५३९ ।।

अज्ञान में खोये हुए जीवों ने घर के मालिक को घर से गंवा दिया है (आत्मज्ञान को भुला दिया है) । वे संसार से विरक्त होकर संसार के उत्पन्न करनेवाले परमात्मा को नहीं देखते हैं । सामीजी कहते हैं, किन्तु जाग्रतों को वह परमात्मा अर्न्तदृष्टि में आता है, अतः वे अपने-पराये की भावना मिटाकर शान्त होकर बैठे हैं ।। ५३९ ।।

विसनि विञायो, प्रत्क्षु पूरणु आतमा ।
जंहिंसाँ सभि कार्ज सरे, पंहिंजो परायो ।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, अन्भय में आयो ।
सामी समायो, अन्भय में आकास जाँ ।। ५४० ।।

जिस प्रत्यक्ष पूर्ण आत्मा से अपने तथा दूसरों के सभी कार्य सिद्ध होते हैं, उसे अज्ञान में खोये हुए लोगों ने गंवा (भुला) दिया है । सामीजी कहते हैं, किसी विरल गुरु-भक्त को ही वह अर्न्तदृष्टि में आता है अतः वह आकाश की भाँति निर्लिप्त होकर आत्मज्ञान में लीन रहता है ।। ५४० ।।

विसनि विञायो, प्रत्क्षु पूरणु आतमा ।
जंहिं साँ सभुकी सिधि थियो, पंहिंजो परायो ।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, अन्भय में आयो ।
रमी रंग लायो, सामी सन्से भर्म रे ।। ५४१ ।।

जिस प्रत्यक्ष पूर्ण आत्मा से अपने तथा दूसरों के सभी कार्य सिद्ध होते हैं, उसे अज्ञान में खोये हुए लोगों ने भुला दिया है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
सामीजी कहते हैं, किसी विरल गुरुमुख को ही वह अन्तर्दृष्टि में आता है, अतः वह भ्रम-रहित होकर आत्मरंग में रँगा रहता है (आत्मानन्द में लीन रहता है) ॥ ५४१ ॥

॥ विसनि विञायो, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा ।
देही ज्ञाणी पाण खे, फाहे फासायो ।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, अन्भय में आयो ।
पंहिंजो परायो, ख्यालु छद्रे खामोशु थियो ॥ ५४२ ॥

सामीजी कहते हैं अज्ञान में खोये हुए लोगों ने प्रत्यक्ष पूर्ण-आत्मा को भुला दिया है। उन्होंने अपने को शरीर मानकर अज्ञान की फाँसी में अपने को फँसा रखा है। किसी विरल गुरुमुख को ही वह अन्तर्दृष्टि में आता है, अतः वह अपने-पराये की भावना मिटाकर शान्त हो बैठता है ॥ ५४२ ॥

॥ विसनि विञायो, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा ।
देही मने पाणखे, फाहीअ फासायो ।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, अन्भय में आयो ।
सामी समायो, जल पपोटो जल में ॥ ५४३ ॥

अज्ञान में खोये हुए लोगों ने प्रत्यक्ष पूर्ण-आत्मा को भुला दिया है। उन्होंने अपने को शरीर मानकर अज्ञान की फाँसी में फँसा रखा है। सामीजी कहते हैं, किसी विरल गुरुमुख को ही वह अन्तर्दृष्टि में आता है, अतः वह जल के बुदबुदे की तरह जल में समा जाता है; अर्थात् जिस प्रकार जल का बुदबुदा पानी से मिलकर अपना अस्तित्व मिटा देता है उसी प्रकार गुरुभक्त भी अपना अस्तित्व परमात्मा में विलीन कर देता है ॥ ५४३ ॥

विसनि विसारे, छद्रियो अन्भय आत्मा ।
दरि दरि देवाननि जाँ, पुछनि पुकारे ।
मिटी पाए मूंहं में, भवनि भेष धारे ।
सामी सम्भारे, प्रत्क्षु द्रिसनि न पाण में ॥ ५४४ ॥

अज्ञान में खोये हुए लोगों ने अन्तःस्थित आत्मा को भुला दिया है, अतः वे पागलों की तरह द्वार-द्वार (आत्मा के संबंध में) पूछते एवं पुकारते रहते हैं। वे अपने मुख में धूल झोंककर नाना प्रकार के वेश धारण कर भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, किन्तु वे सँभलकर अपने में ही स्थित, प्रत्यक्ष आत्मा को नहीं देखते हैं ॥ ५४४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विसनि विसारे, छद्रियो अन्भय आत्मा ।
भवनि भौसागर में, नाना रूप धारे ।
व्रिले कंहि गुर्मुख लधो, विधि साँ वीचारे ।
नानत निवारे, सामी माणे सान्ति सुखु ।। ५४५ ।।

अज्ञान में खोये हुए जीवों ने अन्तःस्थित आत्मा को भुला दिया है, अतः वे नाना प्रकार के रूप धारण कर भव-सागर में भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, जिस विरल गुरुभक्त ने विधिपूर्वक विचार कर उस आत्मा को ढूँढ़ लिया है, वही द्वैत मिटाकर शान्ति-सुख का उपभोग करता है ।। ५४५ ।।

विसनि विसारे, द्रिनो अन्भय आत्मा ।
दरि दरि देवाननि जाँ, पुछनि पुकारे ।
प्रत्क्षु द्रिसनि न पाण खे, सामी सम्भारे ।
द्रिठो द्रेखारे, त इस्थिति थिए आराम में ।। ५४६ ।।

अज्ञान में भ्रमित लोगों ने अन्तःस्थित आत्मा को भुला दिया है, अतः वे दीवानों की तरह द्वार-द्वार (आत्मा के विषय में) पूछते एवं पुकारते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, वे सँभलकर आत्मा को प्रत्यक्ष नहीं देखते हैं, किन्तु यदि कोई आत्म-द्रष्टा (जिसने आत्मा को देखा है) उन्हें दिखा दे, तो वे शान्ति से रह सकते हैं ।। ५४६ ।।

विसनि विसारे, द्रिनो अन्भय आत्मा ।
भवनि भौसागर में, हीरो जन्म हारे ।
व्रिले कंहि गुर्मुख द्रिठो, नानत निवारे ।
सदा सम्भारे, सामी सुपिर्युनि खे ।। ५४७ ।।

अज्ञान में भ्रमित लोग अन्तःस्थित आत्मा को भूल गये हैं। वे हीरे के समान अपने अमूल्य मानव-जन्म को नष्ट कर संसार-सागर में भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कोई विरल गुरुभक्त ही द्वैष मिटाकर उस आत्मा को देख सका है; अतएव अब वह सदैव ही सँभलकर प्रियतम को देखता है ।। ५४७ ।।

विसनि विसारे, द्रिनो अन्भय आत्मा ।
लुढ़ी लहवारा थिया, हीरो जन्मु हारे ।
उल्टी कंहि आशिक द्रिठो, सामी सम्भारे ।
चढ़ी चौब्रारे, सैल करे सन्सार जा ।। ५४८ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अज्ञान में भ्रमित लोग अन्तःस्थित आत्मा को भुला बैठे हैं। वे हीरे के समान अमूल्य जन्म नष्ट कर संसार-रूपी सागर के प्रवाह में बह रहें हैं। सामीजी कहते हैं, किसी प्रेमी ने ही विरक्त होकर तथा अज्ञान से सँभलकर उसे देखा है; अतः वह दसवें द्वार में स्थित होकर संसार की सैर करता है अर्थात् संसार में रहकर भी आतमानंद में लीन रहता है॥ ५४८ ॥

विसा बिना वीचार, भवनि भौसागर में।
ग़ोता खाइनि ग़ैब जा, रोअनि ज़ारौ-ज़ार।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, के नेहीं निराधार।
सदा रहनि हिक तार, सामी सम स्वभाव में॥ ५४९ ॥

अज्ञान में खोये हुए लोग बिना सोच-विचार के भवसागर में भटकते रहते हैं। वे ग़ैब के ग़ोते खाकर ख़ून के आँसू बहाते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, कुछ अज्ञान से मुक्त प्रेमी ही स्वरूप-सुख का उपभोग करते हैं तथा वे सम-भाव अपनाकर परमात्मा से एकाकार हो जाते हैं॥ ५४९ ॥

विसारे वालिसु, मुठा जीअ मनन में।
जाग़ी द्रिसनि न पाण खे, अन्धा करे आलिसु।
को आशिकु चढ़ियो अछ ते, खुलासी ख़ालिसु।
सामी थी सालिसु, वर्ते विधि वीचार साँ॥ ५५० ॥

जीव अपने वारिस (आत्मा) को भूलकर मन के संकल्प-विकल्पों में नष्ट हो गये हैं। वे अन्धे आलस्य-वश अज्ञान की नींद से जाग्रत होकर अपने स्वरूप को नहीं देखते हैं। सामीजी कहते हैं, किन्तु विरला विशुद्ध-प्रेमी अज्ञान से मुक्त होकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है तथा निष्पक्ष होकर विधि तथा विचार से वर्ताव करता है॥ ५५० ॥

विसा वरी वरी, फाहे फासनि पाण हीं।
सामी सघनि कीन की, तमां सिन्धु तरी।
को प्रेमी लंघे पारि पियो, सटे भर्म भरी।
वेठो अजरु जरी, आदि अन्भय घर में॥ ५५१ ॥

सामीजी कहते हैं, अज्ञान में खोये जीव बार-बार अपने आपको अज्ञान-रूपी फाँसी में फँसाकर नष्ट होते हैं। वे कामना-रूपी सागर को पार नहीं कर सकते हैं। किन्तु प्रेमी भ्रम-रूपी गठरी पटक कर कामना-रूपी सागर से पार हो गया है, एवं अन्तःस्थित आदि-घर में दृढ़ होकर बैठा है॥ ५५१ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विसा विञाए, फोलिनि अन्भय आत्मा ।
उपजे निपजे ज़ंहिं में, सभु जगु समाए ।
सामी सुजाग़नि ड्रिठो, मूंहुं मढ़ीअ पाए ।
लिव सच्ची लाए, सदा माणिनि सान्ति-सुख ।। ५५२ ।।

अन्तःस्थित आत्मा जो संसार को उत्पन्न उसका पालन एवं लय करता है, उसे अज्ञान में खोये जीव बाहर ढूँढ़ते रहते हैं । सामीजी कहते हैं, किन्तु जाग्रतों ने भीतर पैठकर उसे प्राप्त कर लिया है और उससे सच्चा स्नेह कर नित्य शान्ति व सुख का उपभोग करते हैं ।। ५५२ ।।

विसा विञाए, वेठा अन्भय आत्मा ।
रोअनि रतु अख्युनि मों, पुछनि पछुताए ।
सामी सुजाग़नि ड्रिठो, मूंह, मढ़ीअ पाए ।
ममत्व मिटाए, सदा रहनि संतोष में ।। ५५३ ।।

अज्ञान में खोये हुए लोग अन्तःस्थित आत्मा को गवाँ बैठे हैं । वे आँखों से खून के आँसू बहाकर तथा पश्चाताप कर आत्मा के संबंध में पूछते रहते हैं । सामीजी कहते हैं, किन्तु जाग्रतों ने भीतर पैठकर उसे देख लिया है, अतएव वे ममता मिटाकर, सदैव ही संतोष से रहते हैं ।। ५५३ ।।

विसा विसारे पाणु, भवनि भौसागर में ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, छाणिनि छाण्यो छाणु ।
माणे सुख स्वरूप जो, को साधू जनु सुज्ञाण ।
सदाई निरबाणु, सामी रहे स्वभाव में ।। ५५४ ।।

अज्ञान में खोये हुए जीव अपने आत्म-स्वरूप को भूलकर वे संसार-सागर में भटकते रहते हैं, वे संसार को सत्य मानकर ख़ाक छानते फिरते हैं (व्यर्थ ही परिश्रम करते रहते हैं) । सामीजी कहते हैं, किन्तु सज्जन साधु-पुरुष स्वरूप-सुख का उपभोग करता है तथा मुक्त होकर अपने ही भावों में सदैव लीन रहता है ।। ५५४ ।।

विसो विसारे, वेठो अन्भय आत्मा ।
दरि दरि देवाननि जाँ, पुछे पुकारे ।
प्रत्क्षु ड्रिसे न पाण खे, सामी सम्भारे ।
ड्रिठो ड्रेखारे, त करे आराम अन्दर में ।। ५५५ ।।

सामीजी कहते हैं अज्ञान में खोया हुआ जीव अन्तःस्थित आत्मा को भुला बैठा है । वह पागलों की तरह द्वार-द्वार पुकार कर आत्मा के विषय में पूछता रहता है, परन्तु सँभलकर अपने स्वरूप को प्रत्यक्ष नहीं देखता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यदि कोई आत्माद्रष्टा उसे साक्षात्कार करा दे तो उसे आन्तरिक आनन्द प्राप्त होता है ।। ५५५ ।।

विसो विसारे, वेठो अन्भय आतमा ।
दरि दरि देवाननि जाँ, पुछे पुकारे ।
पेही ड्रिसे न पाण खे, साबितु सम्भारे ।
ड्रिठो ड्रेखारे, त सुखी थिए सामी चए ।। ५५६ ।।

अज्ञान में भ्रमित जीव अन्तःस्थित आत्मा को भुला बैठा है । वह पागलों की तरह द्वार-द्वार पुकारता एवं आत्मा के संबंध में पूछता रहता है, किन्तु सँभलकर, अपने भीतर पैठकर, अपने प्रत्यक्ष स्वरूप को नहीं देखता है । सामीजी कहते हैं, यदि कोई आतमद्रष्टा उसे दिखा दे, तो वह सुखी हो जाता है ।। ५५६ ।।

वेठो पाणु मञे, मूर्ख माया मन में ।
तप तीर्थ साधन करे, भोलो कीन भञे ।
सामी कीन वञे, बिना सिक स्वरूप जे ।। ५५७ ।।

मूर्ख व्यक्ति मायावश मन में अपने आप को ही सब कुछ समझ बैठता है । वह तप-तीर्थ एवं अन्य साधन तो करता है किन्तु भ्रम को नहीं दूर कर पाता है । सामीजी कहते हैं—यह अज्ञान-स्वरूप, प्रेम के अनुभव के बिना दूर नहीं हो सकता ।। ५५७ ।।

वेठो मूढु करे, माया कया पंहिंजी ।
ब्रई थियनि न कंहिं जूँ, नाहकु जीउ जरे ।
करे ड्रिसे कीन की, अविद्या पटु परे ।
तड्री वर्कु वरे, जड्री सामी मिले सतिगुरू ।। ५५८ ।।

मूर्ख मनुष्य माया एवं काया को ही अपना मान बैठता है । यद्यपि ये दोनों (माया-काया) किसी की भी नहीं होती हैं, फिर भी जीव व्यर्थ ही उसमें जल रहा है । सामीजी कहते हैं—वह अविद्या के आवरण को हटाकर नहीं देखता है, परन्तु जब उसे सद्‌गुरु मिल जाता है, तब उसका जीवन-पृष्ठ बदल जाता है (उसके जीवन में परिवर्तन आ जाता है) ।। ५५८ ।।

वेदनि जा वादी, कोड़े घुमनि केतिरा ।
ग़ाल्हाइनि ग़ाल्हियूं ब्रुधी, स्याणप उस्तादी ।
व्रिले कंहिं गुर्मुख लधो, अन्भय सुख आदी ।
जो गगन में गादी, पाए वेठो प्रेम साँ ।। ५५९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कितने ही वेदों के वादी भ्रमित होकर भटकते रहते हैं। वे विद्वत्ता एवं बुद्धिमता की बातें सुनकर, दूसरों को सुनाते हैं, किन्तु कोई विरल-गुरुमुख ही आदि आतमसुख प्राप्त करता है तथा प्रेम से आकाश में गद्दी बनाकर बैठता है—आतमज्ञान में लीन रहता है ॥ ५५९ ॥

वेदनि विग़ाड़े, कोड़े छद्रिया केतिरा।
पहुतो चाह चमार में, करे गद्रहु भारे।
को आशिकु आयो घर में, लिव सां मनु लारे।
अख्यूं उघारे, प्रत्क्षु द्रिसे पीअ खे ॥ ५६० ॥

वेदों ने कितने ही अज्ञानी जीवों को उलझाकर भ्रमित कर दिया है। वे गधे की तरह चमार-चाह (बुरी इच्छाओं) में फँसकर, उसके बोझ को ढोते रहते हैं। कोई प्रेमी ही मन को प्रेम से परिपूर्ण कर हृदय-रूपी घर में आता है (अपने भीतर ही आत्मा को देखता है) तथा आँखें खोलकर प्रत्यक्ष प्रियतम को देखता है ॥ ५६० ॥

वेद पढ़ी वादी, मूर्ख थिया मर्म रे।
जाग़ी जाचिन कीन की, मूड़ी मुरादी।
लधी लख्य अलख जी, कंहि आशिक आलादी।
सदा समाधी, सामी रहनि स्वभाव में ॥ ५६१ ॥

विचार-रहित मूर्ख मनुष्य वेदों को पढ़कर वादी बन गये हैं। वे जागृत होकर सच्ची पूँजी (आत्मारूपी खज़ाने) को नहीं परखते हैं—किसी निराले प्रेमी ने ही अलख परमात्मा का लक्ष्य ढूँढ़ लिया है। अतः वह सदैव ही उन्हीं भावों में समाधिस्थ रहता है ॥ ५६१ ॥

वेद पढ़ी वादी, मूर्ख थिया मर्म रे।
सामी द्रेखारिनि न कंहिखे, मूड़ी मुरादी।
विरले कंहि गुर्मुख लधो, अन्भय घर आदी।
ग़मी ऐं शादी, सटे सीतलु थियो ॥ ५६२ ॥

सामीजी कहते हैं--विचार-रहित मूर्ख लोग वेद पढ़कर वादी तो बन गये हैं, किन्तु किसी को भी सच्ची पूँजी (आत्मारूपी ख़ज़ाना) नहीं दिखा पाये हैं। परन्तु, विरल-गुरुमुख ने अन्तःस्थित आदि घर ढूँढ़ लिया है। अतः वह सुख-दुख को भुलाकर समदर्शी तथा शीतल बन गया है ॥ ५६२ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेद पढ़ी वादी, मूर्ख थिया मर्म रे।
सामी सम्भारिनि कीन की, मूड़ी मुरादी।
पर्चो रहे पीअ साँ, माइलु मुतादी।
अन्भय आबादी, सुत्ह द्रिठी सुञमें ॥ ५६३ ॥

सामीजी कहते हैं—विचार-रहित मूर्ख लोग वेद पढ़कर वादी तो बन गये हैं, परन्तु वे सच्ची पूँजी (आत्म ख़ज़ाने) की रक्षा नहीं करते हैं। किन्तु, जो परमात्मा से मिलकर उसके साथ तद्रूप हो गये हैं, वे आत्मतुष्ट होकर, अपनी अन्तर्दृष्टि से, सुनसान जगह को भी आबाद समझते हैं अर्थात् सर्वत्र परमात्मा के दर्शन होने के कारण उन्हें कहीं भी अकेलापन अनुभव नहीं होता है ॥ ५६३ ॥

वेद पुराण पढ़ी, मैलु न मिटी मन जी।
तीर्थ तप साधन करे, द्रिठो ग़ुफा मंझि वड़ी।
समुझ रे सामी चए, उल्टी मैलु चढ़ी।
भग़ी भर्म भड़ी, मिली महद जनन साँ ॥ ५६४ ॥

सामाजी कहते हैं—विचार-रहित होकर वेद-पुराण पढ़ने से तप-तीर्थ एवं साधना करने से तथा संसार से मुख मोड़कर गुफा में रहने से मन की मैल मिटती तो नहीं हैं, बल्कि और भी बढ़ जाती है; किन्तु सन्त पुरुषों का संग करने से भ्रमरूपी गठरी चूर-चूर (नष्ट) हो जाती है ॥ ५६४ ॥

सभखे ठग़िनि ठग़, पंज पंहिजा प्रीतम बणी।
सामी समुझनि कीन की, अन्धा जीअ अलग़।
रहनि अलेपु आकास जाँ, के साधू सर्वग्य।
जिनिखे टोपी पग़, नज़रि अचे राम रे ॥ ५६५ ॥

सामीजी कहते हैं—पाँच धूर्त (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) सबके प्रीतम बनकर उन्हें ठगते रहते हैं, पर अन्धे जीव उनकी धूर्तता को न समझने के कारण उनसे अलग नहीं होते है; किन्तु वे सर्वज्ञ साधु, जिन्हें राम के सिवा ऊँच-नीच कुछ भी दिखायी नहीं देता है, आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते हैं ॥ ५६५ ॥

सभु जग़ु मन रचो, कल्पत जे कलंक साँ।
मञे वेठो पाण में, अणहून्दो मर्मु सचो।
पाए नोड़ु ग़िचीअ में, रात्यां द्रींह नचो।
बला खों बचो, जद्रीं सामी मिल्यो स्वरूप साँ ॥ ५६६ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन ने माया के प्रभाव से अपना सारा संसार रच डाला है। अतः जीव हृदय में झूठे भ्रम को सत्य मान बैठा है। वह गले में प्रपंचरूपी रस्सी बाँधकर दिन-रात नाचता रहता है। सामीजी कहते हैं—वह माया रूपी नागिन से तभी मुक्त हो पाता है, जब वह परमात्मा के स्वरूप में तद्रूप हो जाता है ॥ ५६६ ॥

स्वप्न जो सन्सारु, मूर्ख ज्ञाणनि सति सभु ।
काया माया कुल साँ, पर्ची कनि प्यारु ।
सामी द्रिसनि न सम थी, साक्षी सृजणहारु ।
नाहकु थियनि खोआरु, था भुली पाण भर्म में ॥ ५६७ ॥

मूर्ख लोग स्वप्नवत् संसार को बिल्कुल सत्य मान बैठे हैं। वे सन्तुष्ट होकर काया-माया एवं कुल से प्रेम करते हैं। सामीजी कहते हैं—वे सम होकर साक्षात् जगत्कर्ता को नहीं देखते हैं तथा व्यर्थ ही भ्रमों में भ्रमित होकर नष्ट होते रहते हैं ॥ ५६७ ॥

सामी कनि सलाह, कूड़ा मिड़ी केतिरा ।
लहनि न अशिक अभेदरे, रामनगर जी राह ।
वञी पेई पाण ते, कंहिं नेंहींअ जी निगाह ।
मेटे चिन्ता चाह, चढ़ी वेठो चौद्रोल में ॥ ५६८ ॥

सामीजी कहते हैं—कितने ही झूठे इकट्ठे होकर आपस में सलाह (परमात्मा को पाने लिए आपस में वाद-विवाद) करते रहते हैं, किन्तु अभेद प्रेम के अभाव में राम-नगर (आत्म ज्ञान) की राह नहीं ढूँढ़ पाते हैं। परन्तु जिस प्रेमी की दृष्टि अपने आप (स्वरूप) पर जा पड़ी, वह चिन्ता एवं इच्छा मिटाकर आत्मानन्द में मस्त होकर बैठा है ॥ ५६८ ॥

सामी कल्पति कालु, मूर्ख मन्यो पाणहीं ।
न कंहिं मेड़ मिनथ कई, न कंहिं जोर जवालु ।
भुली सार स्वरूप खों, दरि दरि करे सोआलु ।
सदा रहे बेहालु, जाग़ी द्रिसे न पाण खे ॥ ५६९ ॥

सामीजी कहते हैं—मूर्ख कल्पित काल को स्वयं ही सत्य मान बैठा है। उसे काल को सत्य मानने के लिए न तो किसी ने अनुनय-विनय की है और न किसी ने ज़ोर-ज़बर्दस्ती की है, अज्ञान के ही कारण वह झूठे काल को सत्य मान बैठा है। वह स्वरूप-तत्व को भूलकर द्वार-द्वार (हाथ) फैलाता रहता है। यद्यपि वह सदैव ही बेचैन रहता है, फिर भी जागृत होकर अपने आप (स्वरूप) को नहीं देखता है ॥ ५६९ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामी सभि दुःखी, मूर्ख रहनि मति रे।
चाल चलनि अज्ञान जी, बिना रस रुखी।
मिली थियो महबूब साँ, को साधूजनु सुखी।
गहरी गुरमुखी, मुखि रखी मौजां करे ॥ ५७० ॥

सामीजी कहते हैं—समस्त ज्ञानहीन मूर्ख लोग दुःखी रहते हैं। वे ज्ञान-रूपी रस से रहित शुष्क अज्ञान की चाल चलते हैं (ज्ञान के अभाव में अज्ञानपूर्ण व्यवहार करते हैं)। कोई गहन गुरुमुख साधु जन ही प्रियतम से मिलकर सुखी हुआ है तथा उसकी ओर ही मुख कर मौज मनाता रहता है ॥ ५७० ॥

हर हर हथ हणनि, मूर्ख मन खेन्हूअ खे।
उथारे अविद्या जे, भंवण मंझि भंवनि।
समुझी के जन सूर्मा, सामी सुखि सुम्हनि।
जाग़ी ड्रिठो जिनि, पंहिंजे अख्यें पाण खे ॥ ५७१ ॥

मूर्ख मनरूपी गेंद को बार-बार हाथ लगाते रहते हैं (जिस प्रकार गेंद को हाथ लगाने से वह नीचे-ऊपर होता है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव अपने मनरूपी गेंद को अस्थिर बनाते हैं)। वे अविद्या को अपना कर, भ्रमों में भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं—किन्तु, कुछ शूरवीर (ज्ञानी), जिन्होंने जागृत होकर अपनी आँखों से अपने स्वरूप को देख लिया है, वे सुखी होकर सोते हैं (आत्मानन्द में बेसुध रहते हैं) ॥ ५७१ ॥

हर हर हथ हणे, मूर्खु मन खेन्हूअ खे।
भुली लोक परलोक जूँ, ग़ाल्हियूं नितु ग़णे।
ड्रांवर ज्याँ पाण खे, ताणे मंझि तणे।
जाग़ी हथु खणे, त सुखी थिए सामीचए ॥ ५७२ ॥

मूर्ख बार-बार मन-रूपी गेंद को हाथ लगाता रहता है (मन को विचलित करता रहता है)। वह भ्रमित होकर सदैव लोक एवं परलोक की बातें करता रहता है तथा मकड़ी की तरह अपने ही बनाये हुए जाल में अपने आपको उलझा देता है। सामीजी कहते हैं—यदि वह जागृत होकर मन-रूपी गेंद से हाथ उठा ले (मन को स्थिर कर दे), तो सुखी हो जाए ॥ ५७२ ॥

हून्दे धन ख़ोआरु, मूर्ख थियनि मर्म रे।
पटे ड्रिसनि न प्रेम साँ, सामी दस्वों द्वारा।
जंहिंमें अखुट भण्डारु, रहे सदाई सहज जो ॥ ५७३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं—मूर्ख ज्ञानहीन होकर आतमरूपी ख़ज़ाने के होते हुए भी मानव जीवन को बदनाम करते रहते हैं। वे प्रेम से दसवाँ द्वार, जिसमें सदैव ही अक्षय सहजानन्द का भण्डार भरा हुआ है, खोलकर नहीं देखते हैं ।। ५७३ ।।

तृष्णा जीअ अनेक, विधा वाच वहण में ।
टुब्यूँ खाइनि नर्क जूँ, बिना वैराग्य विवेक ।
सामी समझू सूर्मा, करे अन्भय वित्रेक ।
हृदय रखी टेक, माणे मौज मुक्ति जी ।। ५७४ ।।

तृष्णा (सांसारिक सुख भोग की इच्छा) ने अनेक जीवों को अज्ञान के तेज़ तूफानी प्रवाह में धकेल दिया है। वे वैराग्य तथा विवेक के अभाव में नरक में गोते खा रहे हैं (नारकीय दुःख भोग रहे हैं)। सामीजी कहते हैं—किन्तु बुद्धिमान शूरवीर आतमज्ञान की चर्चा के सिवा कुछ नहीं करते हैं तथा हृदय में दृढ़ विश्वास धारण कर मुक्ति का आनंद लूटते हैं ।। ५७४ ।।

दुःखी करे द्रोटी, माया मोहे सभ खे ।
कंहि खे छद्रे कीनकी, खलि खलि रे खोटी ।
सामी हंयसि सम जी, कंहि साधूजन सोटी ।
मुंहुं मोड़े मोटी, तके न तंहि तदरूप खे ।। ५७५ ।।

माया सबको आकर्षित कर दुःखी बना देती है। यह कपटिनी किसी को भी नहीं छोड़ती। सामीजी कहते हैं—किन्तु, जिस साधु ने इसे समता का डंडा लगाया है, उस एकाग्रचित वाले से यह मुख मोड़ लेती है और कभी भी उसकी ओर नहीं देखती है ।। ५७५ ।।

नाना निहारे, मूर्खु मन जे भांइ थो ।
चई हिकु ज़बान साँ, सभखे द्रेखारे ।
घरु पंहिजो न द्रिसे, सामी सम्भारे ।
हफत थो हारे, हीरो जन्मु हथनि मों ।। ५७६ ।।

यद्यपि मूर्ख मनुष्य मुख से सबको कहकर दिखाता है कि परमात्मा एक है, परन्तु मन के वश होकर वह नाना प्रकार के देवताओं की ओर देखता है। सामीजी कहते हैं—वह सँभलकर हृदय-रूपी घर में झाँककर नहीं देखता है और व्यर्थ ही हीरे के समान अमूल्य जीवन को अपने ही हाथों से गँवाता है ।। ५७६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पण्डतु पुकारे, वेद ब्रुधाए विधि साँ।
साखां ड्रेई समुझ जूँ, सभ जो मनु ठारे।
रखी चाह अन्दर में, पाणु न सम्भारे।
वेठो सो हारे, हीरो जन्मु हथनि मों॥ ५७७॥

अज्ञानी जीव अपने को पण्डित कहलाकर, सबको विधिपूर्वक वेद सुनाता है। वह ज्ञानपूर्ण साक्षियाँ (अच्छे दृष्टान्त) देकर सबके मनको शीतल करता है, किन्तु स्वयं हृदय में अनेक इच्छाएँ लिये रहता है तथा सचेत नहीं होता है। इस प्रकार हीरे के समान अमूल्य मानव-जीवन को अपने ही हाथों से गँवाता है॥ ५७७॥

बिना ज्ञाति ज्ञानु, कूड़ा कथिनि केतिरा।
ग़ाल्हियूं वेदनि जूँ ब्रुधी, कनि अन्दर में उन्मानु।
ड्रिसनि कीन अख्युनि रे, अन्धा अन्भय भानु।
सदा रहनि ग़लतानु, सामी माया मोह में॥ ५७८॥

कितने ही झूठे लोग ज्ञान का अनुभव किये बिना बकवास करते रहते हैं। वे वेदों की बातें सुनकर ही भीतर (हृदय में) अनेक अनुमान लगाते रहते हैं। सामीजी कहते हैं—वे अन्धे अन्तर्दृष्टि के अभाव में आत्मा-रूपी सूर्य को नहीं देख पाते हैं। अतः नित्य ही मोह-माया में डूबे रहते हैं॥ ५७८॥

बिना ज्ञाति ज्ञान, कूड़ी कथ कल्पत जी।
जीए सुओ स्वप्न में, सामी थे सुल्तानु।
अणहून्दो अभिमानु, जाग़ये रहे न जीअ में॥ ५७९॥

ज्ञान की जानकारी के सिवा प्रपंच की समस्त बातें उसी प्रकार झूठी हैं, जिस प्रकार कृपण का सपने में राजा बनना झूठा है, पर जागृत होने पर यह मिथ्या अभिमान हृदय में नहीं रहता है॥ ५७९॥

बिना ज्ञान गवस, जतनु कनि था जोग़जो।
पुछनि न पेराठ्युनि खों, ड्रेह अगम जो ड्रसु।
जिते ड्रींहु न राति को, नको सूर्य ससु।
सुत्ह अन्भय रसु, बाँभण ब्र्याईअ रे वसे॥ ५८०॥

अज्ञानी जीव बिना ज्ञान-विचार के योग-साधन करते रहते हैं। वे सन्तों से अगम देश का पता-ठिकाना नहीं पूछते हैं। सामीजी कहते हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस (अगम) देश में न रात होती है, न दिन; न सूर्य है, न चन्द्रमा; किन्तु केवल द्वैत-रहित आत्मसुख का निवास है ।। ५८० ।।

बिना वेसाह विसा, भुली पिया भर्म में ।
पुठी ड्रेई पाणखे, कूड़ा कनि किस्सा ।
उल्टी ड्रिसे को अन्भई, बेहद जी वर्षा ।
सामी सभि दसा, भरे जंहि भर्पूरि कई ।। ५८१ ।।

विश्वास के अभाव में अज्ञान में खोये हुए जीव भ्रमित होकर भ्रम में पड़ गये हैं । वे अपने स्वरूप से मुख मोड़कर, झूठे किस्से कहते रहते हैं । सामीजी कहते हैं--कोई अन्तर्मुखी ही (संसार से) विरक्त होकर, समस्त दिशाओं को (आत्मानंद से) परिपूर्ण कर देनेवाली अनन्त वर्षा को देखता है ।। ५८१ ।।

बिना वेसाह विसे, पुठी ड्रिनी पाण खे ।
तंहि खे ड्रिसे कीन की, जंहिसाँ ड्रेहु ड्रिसे ।
अस्ताचल अउले जाँ, को प्रेमी पर्से ।
सामी सन्त हिस्से, आया जंहिजे अन्भई ।। ५८२ ।।

विश्वास के अभाव में अज्ञान में खोये हुए जीव ने अपने स्वरूप को पीठ दी है (मुख मोड़ लिया है) । जिस (आत्मा) से वह (जीव) सारा संसार देखता है, उसे ही वह स्वयं नहीं देख पाता है । सामीजी कहते हैं--किन्तु वह प्रेमी, अस्ताचल की परछाईं की भाँति उसे देख सकता है, जिसके भाग्य में आत्मज्ञानी सन्तों का संग है । (जिस प्रकार सूर्य की परछाईं अस्ताचल पर्वत पर साक्षात् दिखायी देती है उसी प्रकार उसे (प्रेमी को) भी परमात्मा का स्वरूप साक्षात् दिखायी देता है ।। ५८२ ।।

बेहदि भुख भछी, माया मूर्खनि खे ।
सामी सघनि कीन की, भरे पेट पछी ।
खाए सम संतोष जो, को साधू सतरछी ।
अन्भय लख्य अछी जंहिखे ड्रिनी सतिगुरूअ ।। ५८३ ।।

सामीजी कहते हैं—माया ने मूर्खों की अनंत (विषय-वासना-रूपी) भूख को प्रज्वलित कर दिया है । वे पिण्ड न छोड़ने वाली (माया) द्वारा उकसायी भूख को तृप्त नहीं कर सकते हैं । वही विरल साधु ही समता और संतोष के व्यंजन-पकवान खाता है, जिसे सद्गुरु ने आत्मज्ञान की दृष्टि दी है ।। ५८३ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भग्विवतु भुलाए, मूर्ख मुठा केतिरा ।
भवनि भौसागर में, कोट जन्म पाए ।
सामी बचियो को सूर्मो, साधुअ जे साए ।
ममत्व मिटाए, इस्थति थियो आकास जाँ ।। ५८४ ।।

कितने ही मूर्ख भगवत-नाम भूलकर नष्ट हो गये हैं। वे करोड़ों जन्म प्राप्त कर संसार सागर में भटकते हैं। सामीजी कहते हैं—कोई विरल शूरवीर ही साधुओं की कृपा से (अज्ञान से) बच सका है तथा ममत्व मिटाकर आकाश की भाँति स्थित हुआ है ।। ५८४ ।।

भुलनि खों भर्मु, मिटे कीन मरण जो ।
मञे वेठा पाण खे, रतु पुइ हड्डा चमु ।
को नेहीं निर्भय रहे, सामी सम सूक्षमु ।
जंहि खे ख़ातरि जमु, कई समुझाणी सतिगुरूअ ।। ५८५ ।।

सामीजी कहते हैं कि अज्ञान में भ्रमित जीव अपने को रक्त, मांस, हड्डियाँ तथा त्वचा ही मान बैठे हैं। अतः उनका मृत्यु का भ्रम मिटता ही नहीं हैं (मृत्यु का भय बना रहता है)। किन्तु प्रेमी, जिसे सद्गुरु ने मृत्यु के विषय में सब कुछ समझा दिया है, वह (आत्मा की) समता तथा सूक्ष्मता को समझकर निडर रहता है ।। ५८५ ।।

[माना जाता है कि आत्मा न मरता है, न जन्मता है; केवल शरीर ही जन्मता रहता है तथा मृत्यु को प्राप्त होता रहता है। अतः इस रहस्य को समझनेवाला, अज्ञानी जीवों की तरह मृत्यु से न डरकर, निडर बना, रहता है।]

भुली धार्नि भेष, मूर्ख भेष असुल खों ।
उल्टी द्रिसनि कीन की, अन्दरि पुरुषु अलेख ।
जो सिधि करे थो सभखे, सुत्ह साक्षी सेषु ।
ज्ञाणिजि मीनु न मेषु, सप्त साँ सामी चए ।। ५८६ ।।

सामीजी दृढ़ता से कहते हैं कि इस बात में ज़रा भी संदेह तथा झूठ नहीं है कि मूर्ख अपने मौलिक (आत्मिक) स्वरूप को भूलकर झूठे वेश धारण करते रहते हैं। वे अन्तर्मुखी होकर अपने भीतर उस अलख पुरुष को तथा साक्षात् आत्मिक सत्ता एवं ईश्वर को, जो सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करता है, नहीं देखते हैं ।। ५८६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुली धार्नि भेषु, मूर्ख भेष असुल खे।
जाग़ी ड्रिसनि कीन की, अन्दरि पुरुषु अलेख।
जंहिं में मीनु न मेषु, सामी आदि जुगादि जो ।। ५८७ ।।

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख अपने मौलिक (आत्मिक) स्वरूप को भूल कर झूठे वेश धारण करते रहते हैं। वे जागृत होकर अपने भीतर उस अलख पुरुष को, जो युग के आदि से लेकर है तथा जिसके (अस्तित्व में) किसी प्रकार का संदेह व शक नहीं है, उसे नहीं देखते हैं ।। ५८७ ।।

भुली पाण भिटे, थो मूर्खु चुहुरीअ चाह साँ।
घटि वधि ज्ञाणी पाण खे, रात्यूँ-ड्रींह पिटे।
तड्रीं छोति मिटे, जड्रीं सामी मिले स्वरूप साँ ।। ५८८ ।।

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख बुरी इच्छाओं के वशीभूत होकर अपने (स्वरूप) को भूलकर भटकता रहता है। वह अपने आप को कम व ज़्यादा जानकर दुःखी होता रहता है; (वास्तव में आत्मा न घटता है; न बढ़ता है, पर शरीर घटता-बढ़ता रहता है। अज्ञानी जीव अपने को शरीर मानकर उसके घटने व बढ़ने पर दुःखी होता रहता है)। किन्तु जब वह स्वरूप से मिल जाता है, तब उसका यह भ्रम मिट जाता है ।। ५८८ ।।

भुली भञनि चटू, भवनि भौसागर में।
खणी नितु खपित जो, सामी साणु टटू।
खेप खटी घरि आयो, को प्रेमी पिण्ड सटू।
लोई शाल पटु, ज्ञाणनि अन्भय उन जो ।। ५८९ ।।

सामीजी कहते हैं कि अज्ञानी जीव भ्रम-वश सदैव ही प्रपंच-रूपी चट्टानें तोड़कर, (उसे) शरीर-रूपी टट्टू पर रखकर भव-सागर में भटकते रहते हैं, किन्तु प्रेमी, प्रपंच-रूपी पिण्ड को फेंककर, आत्मज्ञान प्राप्त कर अपने (हृदय-रूपी) घर में पहुँच जाते हैं; अतएव वे क़म्बल, शाल तथा रेशम सबको आत्मिक पशम (wool) ही जानते हैं (अर्थात् सबमें एक ही आत्मा देखते हैं) ।। ५८९ ।।

भूतु लग़ो भारी, अणहून्दो अन्धनि खे।
देही ज्ञाणी पाण खे, नचे नरु नारी।
रहे अलेपु आकास जाँ, को व्रिले वीचारी।
सटे पिण्ड सारी, सामी मिल्यो स्वरूप साँ ।। ५९० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्धों को महा अज्ञान-रूपी भूत लग गया है। अतः नर तथा नारी अपने को शरीर मानकर नाचते रहते हैं। सामीजी कहते हैं—कोई विरल विचारवान् आकाश की भाँति निर्लिप्त रह पाया है तथा (अज्ञान के) पिण्ड को पटककर स्वरूप से जा मिला है ॥ ५९० ॥

भूतु लगो भारी, सभ खे भेद भर्म जो।
पाए भवनि पाणहीं, ग्रिचीअ में ग़ारो।
सामी रहे को सूर्मो नभ जाँ न्यारो।
जागी जग्रु सारो, लइ द्रिठो जंहिं लख्य में ॥ ५९१ ॥

सामीजी कहते हैं कि सब (जीवों) को भेद तथा भ्रम-रूपी भूत लग गया है। अतः वे गले में अज्ञान-रूपी रस्सी बाँधकर स्वयं ही भटक रहे हैं; किन्तु जिस शूरवीर ने जागृत होकर ज्ञान प्राप्त कर सारे संसार को परमात्मा में लय देखा है, वह आकाश की भाँति निराला (निर्लिप्त) रहता है ॥ ५९१ ॥

महा छलु प्रब्लु, माया महबूबनि जी।
विधो जंहिं जहान में, नाना भाइ ख़ललु।
सामी चढ़ियो सभ खे, अणहून्दो मलु।
पंहिंजो पाण पटलु, द्रेई वेठो पाण खे ॥ ५९२ ॥

सामीजी कहते हैं—परमात्मा की माया अत्यन्त ही छल-प्रबल है। इस माया ने संसार में नाना प्रकार के खलल मचा दिये हैं। सब पर झूठा (माया का) मैल चढ़ गया है, अतः वे स्वयं ही अपने सच्चे स्वरूप को अज्ञान-रूपी पर्दा देकर बैठे हैं ॥ ५९२ ॥

मूढ़ द्रियनि आङुरि, था पंहिंजे गोईअ पाण खे।
अटलु राज़ु छद्रे करे, भीष कर्नि दरि-दरि।
मिली साध संगत साँ, तू सामी सही करि।
बिना भज्ञन हरि, मुठा जीअ मनन में ॥ ५९३ ॥

मूढ़ जीव स्वयं ही अपनी (आँखों में) ऊँगली डालकर अपने आप को धोखा देते रहते हैं। वे अटल राज्य (शाश्वत् आत्म-सुख) छोड़कर द्वार-द्वार भीख माँगते फिरते हैं। सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं (ऐ मानव!) तू साधुओं का संग कर उसे (परमात्मा को) पहचान, क्योंकि हरि के भजन के सिवा जीव मन के संकल्प-विकल्प में ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ५९३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूर्ख मन मती, वादि कर्नि वेदान्त जी ।
जीए खाए खाब दुःखनि जा, स्वप्न मंझि सती ।
कोर्युनि मों कंहि हिकिड़े, समुझी रमिज़ रती ।
प्रत्क्षु प्राण पती, सामी ड्रिसी सम थियो ।। ५९४ ।।

मूर्ख लोग अपने मन के अनुसार वेदान्त की चर्चा करते हैं। वे सती-नारी की तरह सपने में दुःख देखकर दुःखी होते हैं। (सती-नारी का व्यवहार शुद्ध एवं पवित्र होता है, पर फिर भी कभी-कभी बुरे सपने देखकर वह भयभीत हो जाती है; उसी प्रकार मानव, जो वास्तव में आत्मा है, पर अज्ञान के कारण स्वप्नवत् संसार के दुःखों से दुःखी हो जाते हैं।) सामीजी कहते हैं—करोड़ों में से किसी एक ने ही यह युक्ति समझी है, अतः वह प्राणपति (परमात्मा) को प्रत्यक्ष देखकर उसमें समा गया है (उसके साथ एक हो गया है) ।। ५९४ ।।

मूर्ख है है कनि, माया कारण मन में ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, नाना दुःख सहनि ।
कालु पंहिंजे कंध ते, अन्धा कीन ड्रिसनि ।
सामी हल्या वञनि, रोअन्दा रतु अख्युनि मों ।। ५९५ ।।

मूर्ख मानव माया के कारण हाय-हाय करते हैं। वे संसार को सत्य मानकर नाना प्रकार के दुःख भोगते रहते हैं। सामीजी कहते हैं—वे अन्धे (अज्ञानी) अपने कन्धे पर सवार मृत्यु को भी नहीं देखते हैं, अतः अन्त में आँखों से खून के आँसू बहाकर इस (असार संसार) से चले जाते हैं ।। ५९५ ।।

मूर्खु कीन हटे, कूड़ कपट प्रपंच खों ।
मानुष्य देहि अमोल खे, थो सागर मंझि सटे ।
थूहरु लाए घर में, थो सामी अम्ब पटे ।
मोत्युनि साणु मटे, वठे कचु कड़ूर जो ।। ५९६ ।।

मूर्ख जीव झूठ कपट तथा प्रपंच से (दूर) नहीं हटता है। वह अमूल्य मानव शरीर को (प्रपंच-युक्त संसार-रूपी) सागर में धकेल देता है। सामीजी कहते हैं—वह मूर्ख (आत्मज्ञान-रूपी) आम के वृक्ष को उखाड़ कर (अज्ञान-रूपी) बबूल को (हृदय-रूपी) घर में ले आता है तथा मोतियों के बदले भद्दे काँच के टुकड़े लेता है ।। ५९६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूर्खु चौरासी, भुली वञे थो पाणहीं।
नको जमगणु धर्म गणु, नको फन्दु फासी।
ड्रिसी इनीह ग़ाल्हिं खे, अचे मनि हासी।
सामी अविनासी, नासु मने थो निन्ड् में ॥ ५९७ ॥

मूर्ख व्यक्ति स्वयं ही भ्रमित होकर चौरासी के चक्कर में पड़ जाता है। वास्तव में न तो यम के गण हैं, न धर्म के; और न ही किसी प्रकार का फन्द व फाँसी है (अर्थात् माया बिलकुल अस्तित्वहीन है)। सामीजी कहते हैं कि अविनाशी आत्मा (माया-रूपी) नींद में पड़कर अपने आप को नश्वर समझ बैठी है, इस बात पर हँसी आ रही है ॥ ५९७ ॥

मूर्खु थो मारे, पंहिंजे हथें पाण खे।
लग़ी माया मोह् जे, कूड़े लिव लाड़े।
ड्रिसे न सार स्वरूप खे, सामी सम्भारे।
गपणि मंझि गारे, थो हीरा लाल अणमुल्हा ॥ ५९८ ॥

मूर्ख मनुष्य मोह-माया से झूठा प्रेमकर अपने ही हाथों अपना हनन करता है। सामीजी कहते हैं—वह जागृत होकर सार-युक्त (आतम-) स्वरूप को नहीं देखता है, बल्कि (माया-रूपी) दलदल में अपने अमूल्य (श्वास-रूपी) हीरे व लाल डालता है (अर्थात् अमूल्य जीवन व्यर्थ ही नष्ट करता है) ॥ ५९८ ॥

मूर्खु पियो पाए, भाकुर पाण भर्म खे।
अविद्या सन्दे सीर में, ग़ोता नितु खाए।
पना नितु प्रतीति रे, वेठो वाझाए।
जड्री छुटो छद्राए, त सुखी थिए सामी चए ॥ ५९९ ॥

मूर्ख जीव स्वयं ही भ्रम का आलिंगन करता है (स्वयं ही भ्रमित होता रहता है)। वह अविद्या-रूपी बीच समुद्र में सदैव ही ग़ोते खाता रहता है तथा विश्वास-रहित केवल (धार्मिक ग्रन्थों के) पन्ने उलटता रहता है। सामीजी कहते हैं कि वह सुखी तब होगा, जब (अज्ञान से) मुक्त व्यक्ति उसे इस (झूठे प्रपंच) से मुक्त करेगा ॥ ५९९ ॥

मूर्खु पाण मरे, थो खोहे मानुष्य देहि खे।
मिले कीन महबूब साँ, सची सिक करे।
कालु तुंहिंजे कन्ध ते, बीठो ब्राणु भरे।
पौंदे पोइ परे, सिज लथे सामी चए ॥ ६०० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूर्ख मनुष्य (अज्ञान-वश) अपने मानव शरीर को खोकर अपना ही हनन करता है। वह सच्चे प्रेम से (परमात्मा-रूपी) प्रियतम से नहीं मिलता है। सामीजी उसे उपदेश देते कहते हैं कि मृत्यु तुम्हारे सिर पर बाण तानकर खड़ी है, अतः (जीवन-रूपी) सूर्य के अस्त होते ही तू (मोक्ष से) बहुत ही दूर चला जायगा। (क्योंकि माना जाता है कि मानव-शरीर में ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, पर अन्य योनियों में मोक्ष प्राप्त करना संभव नहीं, इस कारण अमूल्य मानव-शरीर को नष्ट करने से मनुष्य मोक्ष से भी हाथ धो बैठता है) ॥ ६०० ॥

मूर्खु विञाए, थो हीरो जन्मु हथनि मों।
मिली साध संगति साँ, लेखे न लाए।
ड्राँवर ज्याँ पाण खे, फन्द रे फासाए।
मूंहुं मढ़ीअ पाए, सामी ड्रिसें कीन की ॥ ६०१ ॥

सामीजी कहते हैं—मूर्ख व्यक्ति हीरे के समान अमूल्य मानव शरीर प्राप्त कर, उसे अपने ही हाथों से गँवाता है। वह साधुओं का संग कर (आत्म-संबंधी बातों पर) सोच-विचार नहीं करता है, बल्कि मकड़ी की तरह (माया-रूपी) फ़न्द-रहित फाँसी में अपने आप को फँसाता है और अपने भीतर कदापि झाँककर नहीं देखता है ॥ ६०१ ॥

मूर्खु विषु खाए, थो आत्म अमृत खे छद्दे।
हीरा लाल अण मुल्हा, थो रोले विञाए।
सामी ड्रिसे कीन की, मूंहुं मढ़ीअ पाए।
हठु कयो हाराए, थो मानुष्य देहि अमोल खे ॥ ६०२ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख (अज्ञानी जीव) आत्मा-रूपी अमृत का परित्याग कर (माया-रूपी) विष का सेवन करता है। वह अपने अमूल्य (श्वास-रूपी) हीरे व माणिक (माया के पीछे) भटक-भटक कर गँवाता है, परन्तु अपने ही भीतर झाँककर नहीं देखता है। इस तरह वह हठ-वश अपने अमूल्य मानव-शरीर से हाथ धो बैठता है ॥ ६०२ ॥

मूर्खु सो आहे, जो सचु सुञाणे कीन की।
पाणु पंहिजो पाण मों, वेठों विञाए।
समुझ रे सामी चए, धिका नितु खाए।
झाती कीन पाए, घिरी पंहिजे घर में ॥ ६०३ ॥

सामीजी कहते हैं कि जो मनुष्य सत्य को नहीं पहचानता है, वह मूर्ख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है; अतः वह अपने (आत्मा-रूपी) सच्चे स्वरूप को अपने ही पास होते हुए भी गँवा बैठता है। बुद्धिहीन होने के कारण वह सदैव ही धक्के खाता रहता है, पर अपने (हृदय-रूपी) घर में प्रवेश कर झाँकता नहीं है ॥६०३॥

अन्भय बिना अपार, वेद पढ़ी वादी थिया।
जेकी चवनि मूँहँ साँ, कनि कीन की पाण।
कयो त्यागु तनीजो, हर्जन मञे हार।
ब्रांभणु ज्ञाणी ब्रार, तुर्या में तद्रूप थियो॥ ६०४॥

सामीजी कहते हैं--अनेक (जीव) अन्तर्ज्ञान के सिवा केवल वेद पढ़ कर विवादी बन गये हैं। वे जो कुछ मुख से कहते हैं, वह करते नहीं हैं (उनकी कथनी और करनी में अन्तर होता है)। किन्तु हरि का भक्त समस्त (प्रपंच) पानी की तरह (तत्वहीन) जानकर अपनी हार स्वीकार कर (प्रपंच का) त्यागकर चेतन में तद्रूप हो जाता है॥ ६०४॥

इच्छा कया अधीनु, सामी जीअ जहान जा।
भवनि भौसागर में, सदा मति मलीनु।
पर्चा रहनि पीअ साँ, के प्रेमी प्रब्रीनु।
जींए जल खों मीनु, पलक पराहूँ न थिए॥ ६०५॥

सामीजी कहते हैं कि इच्छा ने संसार के जीवों को अपने आधीन कर दिया है, अतः वे मलीन बुद्धिवाले (अज्ञानी लोग) सदैव ही भव-सागर में भटकते रहते हैं; परन्तु विरल प्रवीण प्रेमी प्रियतम से उसी प्रकार जुड़े रहते हैं, जिस प्रकार मीन एक क्षण भी पानी से अलग नहीं होती है॥ ६०५॥

खपति मंझि खपे, थो सारो जगु समुझ रे।
अजपा जापु ज़बान रे, को जोग्स्वरु जपे।
कटी जंहि गुरु ग्याति साँ, कल्पत सभ कपे।
सामी कीन तपे, ट्रिनि तापनि जे ताप में॥ ६०६॥

सामीजी कहते हैं कि सारा संसार (अज्ञान-वश) बुद्धिहीन होकर प्रपंच में नष्ट होता है। केवल वह विरल योगीश्वर, मुख से नहीं, बल्कि हृदय से (परमात्मा का) जाप करता है, जिसने गुरु के दिये ज्ञानानुसार समस्त मायावी प्रपंच को काट लिया है। परिणामस्वरूप वह तीन प्रकार के तापों (आधि, व्याधि तथा उपाधि) में नहीं तपता है॥ ६०६॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खुदीअ मंझि ख़राबु, मूर्ख लोक अपार थिया ।
मञे वेठा सति सभु, जगत्र जो इस्बाबु ।
अग्यों काल कहार जो, सामी झलिनि न दाबु ।
हर हर ड्रियनि हिसाबु, समुझ वराए सखिणा ।। ६०७ ।।

सामीजी कहते हैं कि अहं में संसार के अनेक मूर्ख मनुष्य नष्ट हो गये हैं। वे विश्व की समस्त वस्तुओं को सत्य मान बैठे हैं, परन्तु कठोर मृत्यु के दबाव के आगे ज़रा भी ठहर नहीं सकते हैं, अतः वे ज्ञान-हीन खोखले मनुष्य बार-बार (कर्मों का) हिसाब देते रहते हैं ।। ६०७ ।।

ख़ुदीअ मंझि ख़ुआरु, थिया भेष गृहस्ती लोक सभि ।
मने वेठा मन में, विधि निषेध वहिंवारु ।
जाग्री ड्रिसनि कीन की, साक्षी सृजणहारु ।
सामी पाइनि छारु, था समुझ वराए सखिणा ।। ६०८ ।।

सामीजी कहते हैं कि अहं (की भावना) से गृहस्थी तथा अन्य वेशधारी जीव बदनाम हो गये हैं। वे विधि-निषेध-व्यवहार को ही हृदय में (सत्य) मान बैठे हैं। वे ज्ञान-रहित खोखले लोग अपनी (आँखों में) धूल झोंकते रहते हैं (अपने आप को धोखा देते रहते हैं), परन्तु जागृत होकर साक्षात् सृजनहार को नहीं देखते हैं ।। ६०८ ।।

खेतीअ मंझि खसमु, अन्धा ड्रिसनि कीन की ।
भवनि भर्म मति रे, पूर्वु एं पश्चिमु ।
सामी लधो कंहिं साध संगि, सुजाग्रे सुगमु ।
मेटे भेदु भर्मु, इस्थति थिए आनंद में ।। ६०९ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी जीव) अपने (हृदय-रूपी) खेत में अपना भतार (परमात्मा) नहीं देखते हैं। वे भ्रमित एवं ज्ञानहीन उसे (परमात्मा-रूपी पति को) पूर्व तथा पश्चिम में (ढूँढ़ने के लिए) भटकते रहते हैं; किन्तु जागृत व्यक्ति ने साधुओं के संग से उसे सुगमता से ढूँढ़ लिया है तथा भेद व भ्रम मिटाकर आनन्दावस्था में स्थित हो गया है ।। ६०९ ।।

ग़ैरत मंझि ग़र्कु, रहनि जीअ जहान जा ।
पूज्रिनि पीर फ़क़ीर खे, रखी फेरु फ़र्कु ।
आशिक चढ़िया अछ ते, लिवं साँ ब्रधी लकु ।
अन्दरि ब्राहरि हिकु, सामी ड्रिसनि सुप्रीं ।। ६१० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि संसार के जीव मायावी प्रपंच में डूबे रहते हैं। वे द्वैत-भाव रखकर (आत्मा व परमात्मा में भेद समझकर) पीर एवं फकीरों को पूजते रहते हैं; किन्तु प्रेमी प्रेम से रास्ता बनाकर, ज्ञान-मार्ग की ओर अग्रसर होते हैं तथा भीतर व बाहर एक ही प्रियतम को देखते हैं ॥ ६१० ॥

घर में कीन अचे, मूर्खु साध संगति रे।
अविद्या नोरु ग्रिचीअ में, पाए नितु नचे।
सहस्रनि मों सामी चए, को व्रिलो रंगि रचे।
जंहि खे गुर सचे, बेध्यो ब्राणु हणी करे ॥ ६११ ॥

मूर्ख (अज्ञानी) साधु-संगत के सिवा (आत्मा-रूपी) घर में प्रवेश नहीं करता है। वह अविद्या-रूपी रस्सी गले में बाँधकर सदैव ही नाचता रहता है। सामीजी कहते हैं—सहस्रों में से वही विरल (आत्म) रंग से रंग जाता है, जिसे सच्चे गुरु ने (ज्ञान-रूपी) बाण से बेध दिया है ॥६११॥

घर में घर धणी, विसे विसारे द्रिनो।
पुछी पुकारे पाणहीं पर्छिनु पिण्डु खणी।
सामी सावधानु थियो, साधूअ जे सरणी।
अन्भय अणू खणी, पाए वेठो पाकु थी ॥ ६१२ ॥

अज्ञान से भ्रमित होकर (जीव ने) घर के मालिक को भुला दिया है। वह अपना नश्वर शरीर लेकर (अपने को नश्वर शरीर समझकर) (आत्मा के) संबंध में सबसे पूछता रहता है तथा उसे पुकारता रहता है। सामीजी कहते हैं, किन्तु साधुओं की शरण में पड़ने से वह सचेत हो जाता है तथा (आत्मज्ञान-रूपी) अणु लेकर पवित्र हो बैठता है ॥ ६१२ ॥

घर में रामु रहे, मूर्खु फोले दहदिसा।
जप तप साधन योग में, सामी देहि दहे।
नाहकु दुःख सहे, पुठी द्रेई पाण खे ॥ ६१३ ॥

सामीजी कहते हैं—यद्यपि (आत्मा-रूपी) राम (हृदय-रूपी) घर में निवास करता हैं, फिर भी मूर्ख व्यक्ति उसे दसों दिशाओं में ढूँढ़ता रहता है तथा जप, तप व योग-साधना में अपने शरीर को जलाता रहता है (कष्ट देता रहता है)। इस प्रकार अपने स्वरूप को पीठ देकर व्यर्थ ही दुःख सहन करता रहता है ॥ ६१३ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

घर में रामु वसे, ब्राहरि ढून्ढे जीउ नितु ।
पाए मूंहुं महिराण में, सामी कीन पसे ।
पंहिंजो पाण फसे, थो मूर्खु अविद्या फास में ।। ६१४ ।।

सामीजी कहते हैं—यद्यपि (आत्मा-रूपी) राम (हृदय-रूपी) घर में निवास करता है, फिर भी मूर्ख मनुष्य उसे सदैव ही बाहर ढूँढ़ता रहता है; इस प्रकार वह अविद्या-रूपी फाँस में स्वयं ही फँस जाता है; परन्तु (हृदय-रूपी) समुद्र में झाँक कर आत्मावलोकन नहीं करता है ।। ६१४ ।।

चर्या से चइजनि, जे पाणु पछाणनि कीन की ।
ग़ाल्हियूं भलनि जूँ ब्रुधी, मर्मु न रखनि मनि ।
काणि न कढनि कंहिंजी, सूरी सठी जनि ।
सदा ग़र्कु रहनि, सामी सुपिर्युनि साँ ।। ६१५ ।।

सामीजी कहते हैं—जो (जीव) स्वयं को नहीं पहचानते हैं, वे पागल कहलाते हैं । वे सज्जनों की बातें सुनकर भी हृदय में लाज-शर्म नहीं रखते हैं; किन्तु जो (प्रेम-रूपी) शूली पर चढ़ गये हैं, वे किसी की परवाह न कर सदैव ही अपने प्रियतम (के प्रेम में) डूबे रहते हैं ।। ६१५ ।।

चर्या से चइजनि, जे पाणु पछाणनि कीन की ।
ग़ाल्हियूं भलनि जूँ ब्रुधी, मर्मु न रखनि मनि ।
पंहिंजे ग़िचीअ पाणहीं, जोड़े सेल्ह विझनि ।
सामी कीन ड्रिसनि, झाती पाए घर में ।। ६१६ ।।

सामीजी कहते हैं—जो (जीव) स्वयं को नहीं पहचानते हैं; वे पागल कहलाते हैं । वे सज्जनों (ज्ञानवान) की बातें सुनकर भी हृदय में लाजशर्म नहीं रखते हैं । वे अपने गले में स्वयं ही (मुसीबत-रूपी) काँटे पिरोकर डालते हैं, परन्तु (हृदय-रूपी) घर में आत्मावलोकन नहीं करते हैं ।। ६१६ ।।

चर्या से चइजनि, जे मर्मु न रखनि मन में ।
ग़ाल्हियूँ वेदनि जूँ ब्रुधी, दरि दरि बक बकनि ।
नाना जुग़त्युनि साँ करे, दिब दृष्टान्त ड्रियनि ।
सामी कीन ड्रिसनि, जाग़ी ज्योति स्वरूप खे ।। ६१७ ।।

सामीजी कहते हैं—जो (जीव) हृदय में लाज-शर्म नहीं रखते हैं, वे पागल कहलाते हैं । वे वेदों की बातें सुनकर द्वार-द्वार पर बकवास करते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहते हैं तथा नाना प्रकार की युक्तियों से दिव्य दृष्टान्त देते रहते हैं; किन्तु जागृत होकर (ज्ञान प्राप्त कर) स्वरूप-प्रकाश को नहीं देखते हैं।। ६१७ ।।

जग में जीअ जुखी, मूर्ख मरनि मति रे।
चाल चलनि अज्ञान जी, बिना रस रुखी।
मिली थिए महबूब साँ, को सामी सन्तु सुखी।
गहिड़ी गुर्मुखी, मुखि रखी मौजां करे।। ६१८ ।।

सामीजी कहते हैं कि बुद्धिहीन (मूर्ख मनुष्य) संसार में दुःखी होकर मरते हैं। वे रसहीन व्यक्ति अज्ञान की चाल चलते हैं (अज्ञानपूर्ण व्यवहार करते हैं); किन्तु गहन गुरुमुखी सन्त प्रियतम (परमात्मा) से मिलकर सुखी होता है एवं उसकी ओर मुख कर आनन्द लूटता रहता है।। ६१८ ।।

जग में वसनि ठग, भारी पंज भर्म जा।
मोहे मारे मति खसे, सभ खे कनि डगमग।
के सुजागा सूर्मा, रहनि ऐन अलग।
सामी थी सर्वग्य, माणिनि मौज मुक्ति जी।। ६१९ ।।

सामीजी कहते हैं कि संसार में भ्रम-रूपी पाँच महा कपटी निवास करते हैं। वे सब (जीवों) को अपनी ओर आकर्षित कर तथा उनकी बुद्धि छीनकर उन्हें विचलित करते रहते हैं, किन्तु कुछ जागृत शूरवीर उन (पाँच धूर्तों) से मुक्त व अलग रहते हैं तथा सर्वज्ञ बनकर मुक्ति का आनन्द लूटते हैं।। ६१९ ।।

जन्मे एं मरे, थो भुली जीउ भर्म में।
जीए पाछाओं पंहिजो, ड्रिसी ब्रारु ड्ररे।
स्वप्न में सामी चए नाना रूप धरे।
वेठो सिधि करे, मृघ तृष्णा जे जल खे।। ६२० ।।

सामीजी कहते हैं—जिस प्रकार (अज्ञानी) बालक अपना प्रतिबिम्ब देखकर उससे डरता है। उसी प्रकार (अज्ञानी) जीव भ्रम में अपने सच्चे स्वरूप को भूलकर जन्मता एवं मरता रहता है। वह सपने में ही अनेक रूप धारण करता है तथा झूठी मृगतृष्णा को सफल बनाता रहता है।। ६२० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जन्मे मरे जीउ, पॼिन ॼाणी पाण खे ।
सामी ड्रिसे न सम थी, प्रत्क्षु पूरणु पीउ ।
व्रिले कंहिं गुर्मुख जो, मिटयो सन्सो सीउ ।
सन्मुखु रहे सदैव, घटाकास महाकास जाँ ॥ ६२१ ॥

सामीजी कहते हैं कि जीव अपने को नश्वर समझकर, जन्मता एवं मरता रहता है। वह समता अपना कर पूर्ण प्रियतम को प्रत्यक्ष नहीं देखता है। किसी विरल गुरुभक्त का ही भ्रम-रूपी भय मिट जाता है तथा उसे घटाकाश (जीवात्मा) में ही महाकाश (परमात्मा) सदैव ही सन्मुख दिखायी देता है (समस्त जीवों में परमात्मा की ही सत्ता देखता है)॥६२१॥

जीउ करे जखि जखि, रात्यूं ड्रीहां निण्ड में ।
पटे ड्रिसे न प्रेम साँ, सामी अन्भय अखि ।
परमेश्वर प्रत्क्षु, व्यापी रहियो विश्व में ॥ ६२२ ॥

सामीजी कहते हैं कि जीव दिन-रात (अज्ञान की) नींद में बक-बक करता है, किन्तु ज्ञान के लोचन खोलकर प्रेम से विश्व में व्यापक प्रत्यक्ष परमेश्वर को नहीं देखता है ॥ ६२२ ॥

जीउ करे थो जुठि, भुली पंहिंजो पाण साँ ।
जीएं फाहीअ में फसे, भोलो भरे मुठि ।
ड्रेई वेठो पुठि सामी चए स्वरूप खे ॥ ६२३ ॥

जिस प्रकार बन्दर (अज्ञान-वश) मुट्ठी बन्द कर अपने को फन्दे में फँसा देता है। उसी प्रकार जीव भ्रम-वश अपने सच्चे (आतम-) स्वरूप को पीठ देकर अपने आप को मुसीबत में डाल देता है ॥ ६२३ ॥

कूड़ा कूड़ करे, फाहे फासनि पाण हीं ।
भोगिनि भोग नर्क जा, रोअनि रतु भरे ।
सच्यारनि सटे विधी, पॼिन पिण्ड परे ।
सामी ध्यानु धरे, माणिनि मौज मुक्ति जी ॥ ६२४ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे (जीव) झूठा व्यवहार कर स्वयं ही (अज्ञान-रूपी) फन्दे में फँस जाते हैं। वे नरक के दुःख भोग कर, खून के आँसू बहाते हैं; किन्तु सत्य का व्यवहार करने वालों ने नश्वर पिण्ड को दूर पटक दिया है तथा ध्यान धारण कर मुक्तावस्था का आनन्द भोगते हैं ॥ ६२४ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कूड़ी कथ कथे, सामी सभि लुढ़ी विया ।
रखनि सिक समुझ रे, कागज़ कोट सथे ।
मखणु कढियो मन मों, कंहिं महबतीअ मथे ।
लेखे लथे पथे, सेष ड्रिठाई सुप्री ।। ६२५ ।।

सामीजी कहते हैं कि सब (जीव) झूठे कथन कहकर (अज्ञान-रूपी समुद्र में) बह गये हैं । वे प्रेम के सिवा मात्र काग़ज़ ही इकट्ठे करते हैं; किन्तु प्रेमी हृदय को मथकर (आत्मज्ञान-रूपी) नवनीत निकाल लेते हैं तथा (सांसारिक) लेखे उतार कर प्रियतम को ही शेष देखते हैं ।। ६२५ ।।

खणी पर्छिनु पिण्डु, मूर्ख मुठा केतिरा ।
जग्गोती जमराइ जा, भर्नि ड्रिहारी ड्रण्ड ।
दानाहनि दिलि में ड्रिठी, अन्भय ज्योति अखण्ड ।
सामी सभि ब्रह्माण्ड, आहिनि जंहिं जे असिरे ।। ६२६ ।।

सामीजी कहते हैं कि कितने ही मूर्ख मनुष्य नश्वर (शरीर-रूपी) बोझ उठाकर नष्ट हो गये हैं । वे प्रतिदिन यमराज के दुःखदायी दण्ड भरते हैं (दुःख सहन करते है) । किन्तु बुद्धिमानों ने अपने ही हृदय में उस (आत्मज्ञान-रूपी) अखण्ड ज्योति को देखा है, जिसके सहारे ही सारा ब्रह्माण्ड स्थित है ।। ६२६ ।।

अन्धो पियो आणे, भवसागर जे भीड़ में ।
तारि ब्रधी तुरहो ब्रधो, कर्मनि जो काणे ।
सामी आभासु सूर्य जो, को सञो सुञाणे ।
मौज मिली माणे, प्रत्क्षु पूरण पंहिंजी ।। ६२७ ।।

(अज्ञान-वश) नेत्रहीन (व्यक्ति) भवसागर के बीच स्वयं को लाता रहता है । वह कर्म-रूपी तुम्बा (जिसके सहारे पानी में तैरा जा सकता है) बाँधकर (इस पानी-रहित झूठे संसार-रूपी समुद्र में) तैरता है । अर्थात् अज्ञान-वश संसार को सत्य मानकर, नाना प्रकार के कर्म कर जन्मता एवं मरता रहता है । सामीजी कहते हैं—कोई विरल नेत्रयुक्त व्यक्ति ही (आत्मा-रूपी) सूर्य का प्रकाश पहचानता है और अपने प्रत्यक्ष पूर्ण (स्वरूप) से मिलकर आनन्द मनाता है ।। ६२७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्धो पियो आणे, ब्रुद्री ब्रारि सुकीअ में ।
तारि ज्ञाणी तुरहो ब्रधो, कर्मनि जो काणे ।
सामी आभासु सूर्य जो, को सज्रो सुञाणे ।
मौज मिली माणे, पाणु वराए पाण साँ ।। ६२८ ।।

सामीजी कहते हैं—अन्धा (अज्ञानी जीव) सूखे संसार को गहरे पानी से युक्त मानकर उसमें आता रहता है। (झूठे संसार में अज्ञानी जीव को केवल पानी का आभास होता है, किन्तु वास्तव में उसमें पानी है ही नहीं। ऐसे संसार-रूपी समुद्र में वह हाथ पछाड़-पछाड़ कर अपने को दुःखी बनाता है)। वह इस सागर से पार होने की युक्ति जानते हुए भी, (अज्ञान-वश) कर्म-रूपी तुम्बा बाँधकर इस सागर में तैरता रहता है, किन्तु नेत्रयुक्त (व्यक्ति) आतमा-रूपी सूर्य का आभास पहचानता है तथा अपने अहं को त्यागकर अपने आप (स्वरूप) से मिलकर मौज मनाता है ।। ६२८ ।।

अन्धो पियो आणे, भुली भवसागर में ।
अब्रुद्धि ब्रधो तुरहो, कर्मनि जो काणे ।
सुजागो सामी चए, सफा सभु ज्ञाणे ।
मौज मिली माणे, पाणु वराए पाण में ।। ६२९ ।।

सामीजी कहते हैं कि अन्धा व्यक्ति भ्रमित होकर बुद्धिहीन कर्मों-रूपी तुम्बा बाँधकर इस भवसागर में आता रहता है (भटकता रहता है), किन्तु जागृत मनुष्य सब कुछ साफ देखता है (उसे इस संसार में किसी भी प्रकार का भ्रम नहीं होता है)। वह अन्तर्मुखी बनकर अपने (स्वरूप) से मिलकर आनन्द लूटता है ।। ६२९ ।।

अन्धो पियो आणे, भुली भवसागर में ।
ब्रांभण ब्रधो तुरहो, कर्मनि जो काणे ।
चिमत्कारु चेतन जो, को सज्रो सुञाणे ।
मौज मिली माणे, पाणु वराए पाण में ।। ६३० ।।

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि अन्धा (व्यक्ति) भ्रमित होकर कर्म-रूपी तुम्बा बाँधकर इस (झूठे) संसार-रूपी सागर में आता रहता है। कोई विरल नेत्रवान व्यक्ति ही चेतन के चमत्कार को पहचानता है तथा अन्तर्मुखी होकर अपने (स्वरूप) से मिलकर मौज मनाता है। ६३० ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चुहुरी चमारी, चाह चपल चिन्ता भरी।
सामी खसे ममत्व, सुखु ड्रेई ड्रेखारी।
रहे अलेपु आकाश जाँ, को व्रिले वीचारी।
सटे पिण्ड सारी, मिल्या सार स्वरूप साँ॥ ६३१॥

सामीजी कहते हैं कि चाह अत्यन्त ही चपल, चिन्ता से युक्त तथा चर्म की भाँति बुरी है। वह ममत्व से सुख दिखाकर (अज्ञानी जीव का) सर्वस्व छीन लेती है, किन्तु विरल विचारवान् आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है तथा (प्रपंच का) बोझ पटककर सच्चे स्वरूप से जा मिलता है॥ ६३१॥

चोड्रह लोक चब्रे, माया खाधा मोह साँ।
जोरु तहीं ते जीव जो, फाथे कीन फब्रे।
हंयुसि ग़र्टु ग्रिचीअ में, कंहिं दर्दवन्द दब्रे।
सामी सज्ञे खब्रे, पूरणु ड्रिसे पीअ खे॥ ६३२॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने मोह से चौदह लोकों को चबाकर खा लिया है, अतः (अज्ञानी) जीव उस पर दबाव रखकर, उसे कस कर फँसा नहीं सकता है किन्तु दर्दमन्द ने उसे दबाकर, उसके गले में फाँसी डाल दी है (अपने वश में कर लिया है), अतः वह दायें व बायें (चारों तरफ) पूर्ण प्रियतम को ही देखता है॥ ६३२॥

छल वल करे छली, फाहे फासनि पाणहीं।
मरनि मति मर्म रे, जीअ में नितु जली।
माणे सुखु स्वरूप जो, को ब्रुद्धीवानु ब्रली।
सभ खे मति भली, सामी ड्रिए सालिसु थी॥ ६३३॥

सामीजी कहते हैं—कपटी (जीव) छल-बल कर स्वयं ही अपने आप को फन्दे में (माया के फन्दे में) फँसा लेते हैं। निर्लज्ज व बुद्धिहीन लोग सदैव ही हृदय में जलकर मरते हैं (नष्ट होते हैं)। किन्तु बुद्धिमान-बलवान् (ज्ञानी मनुष्य) स्वरूप-सुख का उपभोग करता है एवं दयालु बन कर सबको अच्छी मति (सलाह) देता है॥ ६३३॥

चाह कया चर्या, मोहे जीअ जहान जा।
पछिनु ज्ञाणी पाण खे, पाइनि नितु फेरा।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, के प्रेमी पकेरा।
निर्मलु, निर्वैरा, सामी रहनि स्वभाव में॥ ६३४॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि चाह ने संसार के जीवों को मोहित कर पागल बना दिया हैं। वे अपने को नश्वर समझकर (संसार में) सदैव ही चक्कर लगाते है; किन्तु दृढ़ प्रेमी स्वरूप-सुख का उपभोग करते हैं। वे निर्मल तथा निरवैरी अपने ही भावों (आत्मानंद) में लीन रहते हैं ॥ ६३४ ॥

अन्धो पियो आणे, भुली भवसागर में।
ब्रांभण ब्रधो तुरहो, कर्मनि जो काणे।
सुत्ह सिधि स्वरूप खे, को सज्ञो सुञाणे।
ममत्व रे माणे, मौजां नितु मालिकु थी ॥ ६३५ ॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि अन्धा (व्यक्ति) भ्रमित होकर कर्म-रूपी तुम्बा बाँधकर इस झूठे संसार-रूपी सागर में आता रहता है। कोई नेत्रवान (ज्ञानी व्यक्ति) ही अपने सच्चे स्वरूप को पहचानता है तथा बिना ममत्व मालिक बनकर मौज मनाता रहता है ॥ ६३५ ॥

उपदेश

अन्धा करे अन्याउ, खोहि न मानुष देहि खे।
मिली वठुंउ महबूब साँ, छद्रे दुत्या भाउ।
कालु तुहिंजे कन्ध ते, थो दमि-दमि तके दाउ।
सामी चए पीउ माउ, संगी साथी नाहिं को ॥ ६३६ ॥

सामीजी अज्ञानी जीव को उपदेश देते हुए कहते हैं—ऐ अन्धे (अज्ञानी)! अपने मानव-शरीर को नष्ट कर अपने साथ अन्याय मत कर बल्कि द्वैत भाव मिटाकर अपने प्रियतम से मिल ले, क्योंकि मृत्यु तेरे कन्धे पर सवार होकर सदैव ही अपना दाँव तक रही है और (इस मृत्यु से बचाने के लिए) माँ-बाप तक साथ नहीं देते हैं ॥ ६३६ ॥

अन्धा करे अनाड़, खोहि न मानुष देहि खे।
मिली वठु महबूब साँ, छद्रे लोभ लब्राड़।
अज्ञु कल्ह अचे ओचिते, कालु पटींदुइ पाड़।
भंवदे पोइ उजाड़, सिज लथे सामी चए ॥ ६३७ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं—ऐ अन्धे (अज्ञानी जीव)! अपनी मूर्खता से अपने मानव-शरीर को नष्ट मत कर, बल्कि लालच एवं झूठ-कपट छोड़कर परमात्मा से मिल ले; क्योंकि मृत्यु, आज नहीं तो कल,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आकर तुझे जड़ से उखाड़ देगी । (जीवन-रूपी) सूर्यास्त होने पर तुझे वीरान होकर भटकना पड़ेगा ॥ ६३७ ॥

अन्धा छद्रि अभिमानु, काया माया कुल जो ।
मिली वठु महबूब साँ, धरे निर्मलु ध्यानु ।
कालु तुहिंजे कन्ध ते, कशे बीठो ब्राणु ।
सामी सभु जहानु, मारे जंहिं मिटी कयो ॥ ६३८ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं—ऐ अज्ञानी जीव ! काया-माया तथा कुल का घमंड छोड़कर, निर्मल ध्यान धारण कर प्रियतम से मिल ले; क्योंकि जिस मृत्यु ने सारे संसार को मिट्टी में मिला दिया है, वह तेरे सिर पर भी बाण ताने खड़ी है ॥ ६३८ ॥

अन्धा छद्रि अहंकार, काया माया कुल जो ।
मिली वठु महबूब साँ, हिकदमि करे करारु ।
मतां अचे ओचिते, कुहेई कालु कहारु ।
सामी सभु सन्सारु, मारे जंहिं मिटी कयो ॥ ६३९ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं—ऐ अन्धे जीव ! काया-माया एवं कुल के झूठे अभिमान को त्यागकर, दृढ़-निश्चयी बनकर प्रियतम से मिल ले; क्योंकि कठोर काल, जिसने सारे विश्व को धूल में मिला दिया है, अचानक ही आकर तुझे कत्ल (नष्ट) कर देगा ॥ ६३९ ॥

अन्धा छद्रि अहंकारु, कूड़ो माया मोह जो ।
मिली वठु महबूब साँ, करे विधि वीचारु ।
मतां अचे ओचितो, कुहेई कालु कहारु ।
सामी सभु सन्सारु, मारे जंहिं मिटी कयो ॥ ६४० ॥

सामीजी कहते हैं—ऐ अज्ञानी अन्धे, तू मिथ्या मोह-माया का अहंकार त्यागकर, विधिपूर्वक सोच-विचार कर प्रियतम से मिल ले; क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि कठोर काल, जिसने सारे विश्व को मार कर मिट्टी कर दिया हैं, तुझे भी अचानक आकर कत्ल कर दे (नष्ट कर दे) ॥ ६४० ॥

अन्धा छद्रि अहंकारु, कूड़ो माया मोह जो ।
मिली वठु महबूब साँ, करे विधि वीचारु ।
मोटी ईंदुइ कीन की, अहिड़ो समो सारु ।
थींदे पोइ ख़ुआर, सिज लथे सामी चए ॥ ६४१ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं—"ऐ अन्धे ! तू झूठी माया तथा मोह का घमंड छोड़कर, विधिपूर्वक सोच-समझकर प्रियतम से मिल ले; क्योंकि यह सारयुक्त समय (अमूल्य मानव-जीवन) फिर लौटकर नहीं आयगा। कहीं ऐसा न हो कि (जीवन-रूपी) सूर्य के अस्त होने से तुझे व्यर्थ ही बदनाम होना पड़े" ॥ ६४१ ॥

अन्धा छद्रि इगमाजु, कूड़ो माया मोह जो ।
मिली वठु महबूब साँ, करे सन्त समाजु ।
मोटी ईंदुइ कीन की, अहिड़ो समो साजु ।
थींदे पोइ मोथाजु, सिज लथे सामी चए ॥ ६४२ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं--"ऐ अज्ञानी ! तू झूठी माया तथा मोह की मस्ती छोड़कर, साधुओं के सम्पर्क से प्रियतम से मिल ले; क्योंकि ऐसा सुन्दर समय (मानव जीवन) तुम्हें फिर से नहीं मिलेगा। (आयु-रूपी) सूर्य के अस्त होने पर तुझे पराधीन (कर्मों के आधीन) होना पड़ेगा" ॥ ६४२ ॥

अन्धा छद्रि इगमाजु, कूड़ो माया मोह जो ।
सोधे लहु सुतत में, रामनगर जो राजु ।
मोटी मिलंदुइ कीन की, अहिड़ो सुन्दर साजु ।
थींदे पोइ मोथाजु, सिज लथे सामी चए ॥ ६४३ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं, ऐ अन्धे (अज्ञानी) ! तू झूठी माया एवं मोह की मस्ती का परित्याग कर शीघ्रातिशीघ्र अपने भीतर राम-नगर के राज्य को ढूँढ़ ले (बिना समय नष्ट किये हृदय में स्थित आत्मा को पहचान ले); क्योंकि यह सुन्दर समय (मानव-जीवन) तुझे फिर से नहीं मिलेगा। कहीं ऐसा न हो कि (आयु-रूपी) सूर्य के अस्त होने पर तुझे दूसरों (कर्मों) के अधीन होना पड़े ॥ ६४३ ॥

करे कोहु हिर्स, काया माया कुल जो ।
इनीहं अविद्या भर्म में, भुली सारी विसु ।
सटि स्वप्न जे सुख खे, छद्रे ऊंघ आलिसु ।
गुर्गम जाग़ी दिसु, सामी पंहिंजो पाण खे ॥ ६४४ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं--(ऐ जीव !) तू काया, माया तथा कुल पर व्यर्थ ही घमण्ड क्यों कर रहे हो ? वास्तव में अविद्या के इस भ्रम में ही सारा संसार भ्रमित हुआ है। ऐ गुरुमुख, अब भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
(अज्ञान-रूपी) नींद तथा आलस्य का परित्याग कर, (माया-रूपी) स्वप्नवत् सुख को पटक कर, जागृत होकर, अपने आप (आत्मा) को देख। (अपने सच्चे आत्म-स्वरूप को पहचान) ॥ ६४४ ॥

करे ठाहु ठगी, मूर्ख खोहि न तनु रतनु।
मिली वठु महबूब साँ, साधूअ संगि लग़ी।
अज़ु कल्ह अचे ओचिते, वठंदुइ काल खग़ी।
रोअंदे पोइ तग़ी, सिज लथे सामी चए ॥ ६४५ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं, ऐ मूर्ख ! तू झूठ कपट कर अपने मानव-शरीर-रूपी रत्न को नष्ट मत कर, बल्कि साधुओं के सम्पर्क में रहकर, प्रियतम से मिल ले; क्योंकि आज नहीं तो कल काल-रूपी बाज़ अचानक ही आकर तुझ पर झपटेगा। ऐ (माया पर) विश्वास रखने वाले, (आयु-रूपी) सूर्य के अस्त होते ही तुझे रोना पड़ेगा ॥ ६४५ ॥

करे पुरुषार्थ, मिली महद जननि साँ।
ममत्व विञाए मन जी, सामी थीउ समर्थ।
आत्म पदु अकथु, लोड़े लहु घर मों ॥ ६४६ ॥

सामीजी जीव को उपदेश देते हुए कहते हैं, तू पुरुषार्थ से, महात्माओं का संगकर, मन की ममता को मिटाकर, अपने आप को शक्तिशाली बना तथा अकथनीय आत्म-ज्ञान को (हृदय-रूपी) घर में ही ढूँढ़ निकाल ॥ ६४६ ॥

करे पोलु पलालु, मूर्ख खोहि न तनु रतनु।
मिली वठु महबूब साँ, छद्रे ख़ाम ख़्यालु।
मतां अचे ओचिते, कन्धु भञेई कालु।
बेहदि बुरो हालु, सामी कयो जंहि सभजो ॥ ६४७ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं, ऐ मूर्ख ! तू अपने आप को सूखे घास की तरह खोखला बनाकर (आत्म-ज्ञान से विहीन होकर) मानव-शरीर-रूपी रत्न को नष्ट मत कर। तू व्यर्थ के विचारों का परित्याग कर प्रियतम से अभिसार कर ले। कहीं ऐसा न हो कि काल, जिसने सबकी बुरी हालत कर दी है; अचानक आकर तेरी भी गरदन तोड़ दे ॥ ६४७ ॥

करे भाउ भग़ति, सामी तरु सन्सारु तूं।
ब्रेड़ी करि वेसाह जी, चपो महबत मति।
सतिगुरु पुरुष मलाहु करि, पतणु कढु कुमति।
साक्षी ज्ञाणी सति, पहुंचे पारि भर्म खों ॥ ६४८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं, (ऐ जीव !) हृदय से कुमति निकाल कर, भक्ति-भाव से विश्वास-रूपी नौका पर, प्रेम-रूपी पतवार लेकर तथा सद्गुरु को उस (जीवन-रूपी नौका) का केवट बना ले, तो तू भ्रमों से मुक्त हो जायगा एवं सत्य को प्रत्यक्ष जानकर, संसार-रूपी सागर से पार उतर ले ॥ ६४८ ॥

करे मानु मणी, मूर्ख खोहि न तन रतनु ।
सोधे लहु सुततु में, घर में घर-धणी ।
मतां अचेई ओचिते, वञेई कालु खणी ।
भवें भूतु बणी, सिज लथे सामी चए ॥ ६४९ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं, ऐ मूर्ख ! तू झूठे बड़प्पन को अपनाकर अपने मानव-शरीर-रूपी रत्न को नष्ट मत कर; बल्कि शीघ्रातिशीघ्र (हृदय-रूपी) घर में घर-मालिक (आत्मा) को ढूँढ़ ले; क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि अचानक ही मृत्यु आकर तुझे ले जाये तथा (आयु-रूपी) सूर्य के अस्त होने पर तुझे भूत बनकर भटकना पड़े ॥ ६४९ ॥

करे मोहु-मालिसु, मूर्ख खोहि न तनु रतनु ।
मिली वठु महबूब साँ, छद्रे ऊंघ आलिसु ।
मोटी ईंदुइ कीन की, अहिड़ो समो सर्सु ।
पोइ थीदें परवसु, सिज लथे सासी चए ॥ ६५० ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं, ऐ मूर्ख ! तू मोह-ममता की मालिश कर (मोह-ममता में उलझकर) मानव-शरीर-रूपी अमूल्य रत्न को नष्ट मत कर; बल्कि (अज्ञान-रूपी) नींद और आलस्य छोड़कर प्रियतम से अभिसार करले; क्योंकि ऐसा सुअवसर (मानव-शरीर) तुझे नहीं मिलेगा। (आयु-रूपी) सूर्य के अस्त होने पर तू पराधीन (कर्मों के आधीन) बन जायगा ॥ ६५० ॥

करे वठु उपाउ, अविद्या रोग़ असार जो ।
मोटी ईंदुइ कीन की, अहिड़ो उतमु दाउ ।
मिली साध संगति साँ, अन्भय औषधु खाउ ।
सामी नाना भाउ, मिटी वञेई मन मों ॥ ६५१ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी अज्ञानी जीव को उपदेश देते हुए कहते हैं, तू अविद्या-रूपी असार रोग का इलाज कर ले (साररहीन अज्ञान से अपने आप को मुक्त कर ले), क्योंकि ऐसा सुन्दर दाँव (मानव-शरीर-रूपी सुअवसर) तुझे फिर नहीं मिलेगा। तू साधुओं की संगत से आत्मज्ञान-रूपी औषध का सेवन कर, जिससे तेरे मन के नाना प्रकार के विकार मिट जायें ॥ ६५१ ॥

करे सम सिदिकु, मिली साध संगति साँ।
जे तोखे प्यास पसण जी, त सिप चात्रक जाँ सिकु।
पाए बून्द अन्भई, करि लोकनि खों लिकु।
त अन्दरि ब्राहरि हिकु, सामी ड्रिसें सुप्रीं ॥ ६५२ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं कि यदि तू (परमात्मा के) दीदार का प्यासा है तो साधुओं का संग कर, समता एवं स्नेह को अपनाकर, सीप तथा चातक की तरह (परमात्मा-रूपी) स्वाति-बूँद के लिए तड़प (सीप और चातक की-सी सच्ची तड़प को हृदय में उत्पन्न कर)। आत्मज्ञान-रूपी बूँद के पाने के पश्चात् संसार से छिप (एकान्त में बैठ) तो तुझे बाहर एवं भीतर एक ही प्रियतम दिखायी दे ॥ ६५२ ॥

कंहिंजो कोन्हे कोइ, जे तो भाउर भाइयाँ।
प्यारी प्रियनि खों करे, जा तो मञी पंहिंजी जोइ।
जद्रहिं वेंदइ प्राण पिन्डीअ मों, प्रेतु चवंदइ सोइ।
संगी थींदुइ सोइ, जेकी जपींदे जगदीस्वर खे ॥ ६५३ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं—(ऐ जीव!) जिन लोगों को तू ने अपना बन्धु माना तथा जिस प्राणों से प्रिय (नारी को) तू ने अपनी पत्नी समझा, वे वास्तव में किसी के भी नहीं; क्योंकि जिस समय तेरे शरीर से प्राण निकलेंगे, उस समय वे ही लोग तुझे प्रेत कहेंगे। तुम्हारा साथ केवल जगदीश का नाम (जो तूने जपा होगा) देगा ॥ ६५३ ॥

काठीअ खे कींए, खाई जीअं खलासु कयो।
कोड़े कढु कल्पना, अन्दर मों ईंए।
प्यालो अगम जो, पुरु करे पींए।
जीएं जो तीएं, सामी ड्रिसीं सुप्रीं ॥ ६५४ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार कीड़ा (घुन) लकड़ी को भीतर से काट कर नष्ट कर देता है, उसी प्रकार (ऐ जीव!) तू (ज्ञान-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूपी कीड़े से) अपने भीतर के विषय-वासना को काट कर नष्ट कर दे। यदि तू अपने (हृदय-रूपी) प्याले को अगम परमात्मा के प्रेम से लबालब भर कर पियेगा तो तुझे प्रियतम ज्यों का त्यों दिखायी देगा ॥ ६५४ ॥

काथे कूड़ु न करि, कहिंसाँ कण जेतिरो।
ईहो वाक्य वेसाह जो, हरिदमि हृदय धरि।
त पर्ची नियेईं पल में, घोटु पंहिंजे घरि।
करे सभिनी खाँ सरि, सामी लईं सम सुखु ॥ ६५५ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं—(ऐ जीव!) कहीं भी, किसी से भी रत्ती-मात्र झूठ मत बोल। उक्त वाक्य पर पूर्ण विश्वास कर, यदि तू इसे हृदय में धारण कर लेगा तो तेरा कान्त शीघ्र ही प्रसन्न होकर, तुझे सब प्रकार के प्रपंच से मुक्त कर अपने घर में बुला लेगा, जहाँ तुझे सदैव ही समता-सुख का ही अनुभव होगा ॥ ६५५ ॥

कृपा बिना कल्याणु, कंहिंजो थियो कीन की।
ईंए करनि था आदि जो, वेद पुराण वखाणु।
समुझी द्रिसु सामी चए, तूं कढी पंहिंजो पाणु।
रहु साबूतीअ साणु, त सुत्ह मिलनी सुप्रीं ॥ ६५६ ॥

आदि काल से वेद-पुराण यही कहते हैं कि (परमात्मा की) कृपा के सिवा किसी का भी कल्याण नहीं हुआ है, अतः सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं, (ऐ जीव!) ज़रा सोचकर देख तथा अहं निकाल कर, ज्ञानियों का संग कर तो तुझे शीघ्र ही प्रियतम मिल जाय ॥ ६५६ ॥

कूकें कोहु चरी, त को लिको नाहिं लकनि में।
फिटी करि सामी चए, ईहा भर्म भरी।
मोटी द्रिसु महल में, त वञनी ठप ठरी।
त दौलत जी दरी, प्रीं पटे द्रियनी पाणहीं ॥ ६५७ ॥

सामीजी जीवात्मा को संबोधित करते हुए कहते हैं—ऐ पगली! तेरा प्रियतम गुफाओं में छिपा हुआ तो है नहीं, फिर क्यों इस प्रकार चिल्ला रही हो? तू इस भ्रम-रूपी गठरी को (आत्मा और परमात्मा में भेद समझने का भ्रम) फेंक दे तथा अपने (हृदय-रूपी) महल में पैठकर देख, तो तेरा रोम-रोम शीतल हो जायगा; क्योंकि (परमात्मा को अपने हृदय में झाँक-कर देखने-मात्र से ही) प्रियतम (आत्मज्ञान-रूपी) कोष-गृह की खिड़की स्वयं ही खोल देंगे ॥ ६५७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कूड़ा कम करे, खोहि न मानुष देहि खे।
मिली वठु महबूब साँ, सची सिक धरे।
काल तुंहिंजे कन्ध ते, बीठो ब्राण भरे।
पवंदें पोइ परे, सिज लथे सामी चए।। ६५८ ।।

सामीजी अज्ञानी जीव को उपदेश देते हुए कहते हैं कि झूठे कर्म कर अपने मानव-शरीर को नष्ट मत कर, बल्कि सच्चे स्नेह को धारण कर, प्रियतम से अभिसार कर ले; क्योंकि काल तेरे कन्धे पर बाण ताने खड़ा है। अतएव (आयु-रूपी) सूर्य के अस्त होते ही तू दूर जा पड़ोगे (मानव-शरीर से दूर अन्य योनियों में जा भटकोगे) ।। ६५८ ।।

कूड़ा कम न करि, मूर्ख मन जे भांइ तूं।
अथी अविद्या सिन्धु जी, ड्राढी लोभ लहरि।
वचनु सापुरुषनि जो, जाग्री हृदय धरि।
त हाज़ुरु ड्रिसें हरि, सामी चए सभ में।। ६५९ ।।

सामीजी जीव को उपदेश देते हुए कहते हैं कि माया-रूपी संसार-सागर की लोभ-लालच-रूपी लहरें अत्यन्त ही तेज़ हैं, अतः (ऐ जीव!) तू मन के वशीभूत होकर झूठे कर्म मत कर; बल्कि जागृत होकर, सन्तों के वचनों (उपदेश) को हृदय में धारण कर; तो तुझे सब में परमात्मा उपस्थित दिखायी दे ।। ६५९ ।।

कूड़ा कम न करि, मूर्ख मन जे भांइ तूं।
वड्रा वीर वर्याम नर, लोढ़िया हिन लहरि।
लेखा छद्रे लोभ जा, गुर्ग्रम अची घरि।
त दोस्तु तुंहिंजे दरि, पेही अचे पाणहीं।। ६६० ।।

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं:—ऐ मूर्ख ! माया-रूपी लहर ने श्रेष्ठ वीरों (ज्ञानियों) को अपने तेज़ प्रवाह में बहा दिया है। अतएव तू मन के वशीभूत होकर झूठे कर्म मतकर; बल्कि लोभ-लालच को छोड़कर, प्रेमी बनकर (हृदय-रूपी) घर में झाँककर देख, तो तुझे तेरा दोस्त (परमात्मा) तेरे (हृदय-रूपी घर के) द्वार से प्रवेश करता हुआ दिखायी देगा ।। ६६० ।।

कूड़ा घरि म घाट, मूर्ख मन जे भांइ तूं।
मिली साध संगति साँ, वठु वेसाही वाट।
त खोले वज्र कपाट, कामिल ड्रियनी कल साँ।। ६६१ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी अज्ञानी जीव को उपदेश देते हुए कहते हैं, ऐ मूर्ख ! तू मन के वश में होकर काल्पनिक महल मत बना, बल्कि साधुओं का संगकर, विश्वास के रास्ते को अपना ले, ताकि परमात्मा युक्ति से बज्र के समान कठोर (माया-रूपी) द्वार खोल दे (माया के कठोर आवरण को हटा-कर तुझे आत्मा के दर्शन करा दे) ॥ ६६१ ॥

कूड़ा ताण म ताणि, मूर्ख माया मोह जा ।
सामी चए स्वरूप साँ, मिली मौजाँ माणि ।
अज़ु कल्ह नींदुइ ओचिते, मारे कालु मसाणि ।
समुझी पाणु पछाणि, मतां पवें पोइ दुखनि में ॥ ६६२ ॥

सामीजी अज्ञानी जीव को उपदेश देते हुए कहते हैं, "ऐ मूर्ख ! माया एवं मोह के झूठे संकल्प-विकल्प मत कर, परन्तु अपने स्वरूप से मिल कर आनंद लूट; क्योंकि आज नहीं तो कल अचानक ही मृत्यु आकर तुझे श्मशान-भूमि में ले जायगी । अतएव सोच-समझकर अपने आप (आत्मा) को पहचान ले, कहीं ऐसा न हो कि बाद में तुम्हें दुःख उठाने पड़ें ॥६६२॥

कूड़ा ताण म ताणि, सामी चए सन्सार में ।
दर ते थो दाहूँ करे, कालु तुहिंजे काणि ।
अज़ु कल्ह नींदुइ ओचिते, मारे मंझि मसाणि ।
साझुरि पाणु सुञाणि, मतां पवें पोइ दुखनि में ॥ ६६३ ॥

सामीजी अज्ञानी जीव को उपदेश देते हुए कहते हैं कि संसार में रह कर झूठे संकल्प मत कर (झूठे हवाई-महल मत बना); क्योंकि तेरे (जीवन-रूपी) दरवाज़े पर मृत्यु खड़ी, तुझे पुकार रही है । यह मृत्यु, आज नहीं तो कल, अचानक ही तुझे मारकर श्मशान-भूमि में ले जायगी, इसलिए (जीवन-रूपी) प्रभात में ही (जीवन के आरंभ से ही) अपने आप को पहचान ले; क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि बाद में तुझे दुःख उठाने पड़ें ॥ ६६३ ॥

कूड़ा भेख म पाइ, पसण काणि प्रियनि जे ।
अग्रयों पाण सराफु थी, तूं हुनिर कीम हलाइ ।
मिली साध संगति साँ, सामी चाह चुकाइ ।
अचे भोले भांइ, त सहज मिलनी सुप्रीं ॥ ६६४ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं कि प्रियतम का दीदार करने के लिए झूठे वेश मत धारण कर, किन्तु जौहरी बनकर अपनी कला का उपयोग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर (अर्थात् जिस प्रकार जौहरी अपनी कला से जवाहर परखता है, उसी प्रकार तू भी अपने ज्ञान से आत्मा-रूपी जवाहर को परख); तथा साधुओं का संग कर, इच्छाओं का परित्याग कर। इस प्रकार जब तुम भ्रम-रहित बन जाओगे, तो तुम्हें सहज ही प्रियतम मिल जायेंगे ॥ ६६४ ॥

कूड़ा लेख म लिखु, अन्दरि ड्रिसु अलेख खे।
अथी वाच वहण जो, महा तीब्रु तिखु।
लोढ़े नींदुइ लोभ साँ, सामी सोग़ु हर्खु।
थी सतिगुर जो सिषु, वचनु मञे करि मुन्सफी ॥ ६६५ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं कि (ऐ जीव!) तू झूठे लेख मत लिख, बल्कि अपने भीतर ही लेखों से परे (परमात्मा) को देख; क्योंकि (अज्ञान-रूपी सागर का) बहाव अत्यन्त ही तेज़ एवं तीव्र है। इस (सागर) में (सांसारिक) हर्ष-शोक, तुझे लालच से, बहाकर नष्ट कर देंगे। अतः तू गुरु के ज्ञानपूर्ण वचन मानकर उसका शिष्य बन जा ॥ ६६५ ॥

कूड़ा लेख म लिखु, मूर्ख मन जे भांइ तूं।
अविद्या जे आराह जो, अथी तीब्रु तिखु।
जाग़ी कढु अन्दर मों, सभु वीचारे विषु।
थीउ गुरूअ जो सिषु, त सीतलु थिएं सामी चए ॥ ६६६ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं, ऐ मूर्ख! मन के वश में होकर झूठे प्रपंच के लेख मत लिख; क्योंकि यह अविद्या-रूपी सागर का प्रवाह अत्यन्त ही तेज़ एवं तीव्र है, अतः तू जागृत होकर (ज्ञान को अपनाकर) भीतर से (विकार-रूपी) विष सोच-समझकर निकाल ले तथा गुरु का शिष्य बन जा, ताकि तू शीतल बन जाय ॥ ६६६ ॥

कूड़ीअ लुझ म लुझु, लुझे तां लुझु लिवं साँ।
ज्ञाणी झूठि जगत्र खे, गुर्गम घर में रुझु।
ईहा बूझ बुझी करे, सामी थीउ अबुझु।
कंहिखे सलि म ग़ुझु, अज़ग़ैबी इसरार जो ॥ ६६७ ॥

सामीजी उपदेश देते हुए कहते हैं—(ऐ जीव!) तू (संसार की) झूठी बातों में अपने को व्याकुल मत कर, यदि तुझे अपने को व्याकुल बनाना ही है तो (परमात्मा के) सच्चे प्रेम से ही बेचैन बन। संसार को झूठ समझ कर तू गुरु के उपदेशानुसार अपने (हृदय-रूपी) घर में (आत्म-ज्ञान में) ही मस्त रह; इस प्रकार आतमज्ञान अपना कर तू अन्य (संसार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की बातों से) अनजान बन जा तथा इस अज़गैब इसरार (अदृष्ट रहस्य) का वर्णन किसी से भी मत कर ॥ ६६७ ॥

कूड़ी कल्प न करि, सति ज्राणी सन्सार खे ।
सामी आणि सुर्ति खे, उल्टाए अन्तरि ।
जाग़ी डि्सु अख्युनि साँ, हाज़ुरि पंहिंजो हरि ।
मेट भोलाओ धरि, त मुक्तो ममत्व खों थिएं ॥ ६६८ ॥

सामीजी जीव को उपदेश देते कहते हैं कि संसार को सत्य मानकर तू उसके झूठे प्रपंच में मत पड़, बल्कि अपनी दृष्टि को (सांसारिकता से) हटाकर भीतर की ओर कर, एवं भ्रम को मिटाकर (स्वयं को) धारण कर (पहचान) तो तू ममता से मुक्त हो जायगा। और जाग्रत होकर अपने परमात्मा को अपनी आँखों से अपने ही सामने देख लेगा ॥ ६६८ ॥

कूड़ो ज्राणु सनेहु, सामी हिन सन्सार जो ।
अची ठग़ बाज़ीअ में, करे वेसाहु न वेहु ।
ड्रींदइ आत्म धन खे, सभि छल वल सा छेहु ।
ड्रोरे लहु सो ड्रेहु, जिसे तुंहिंजो सुप्रीं ॥ ६६९ ॥

सामीजी मनुष्य को उपदेश देते हुए कहते हैं कि इस संसार के स्नेह को झूठा समझ। इसकी कपटबाज़ी में आकर इस पर विश्वास मत कर बैठ; क्योंकि यह अपने छल-बल से तेरी आत्मा-रूपी सम्पत्ति को हानि पहुँचायेगा; अतः जिस देश में तेरा प्रियतम है, उसे ढूँढ़ ले ॥ ६६९ ॥

कूड़ो बखेड़ो, अथी माया मोह जो ।
समुझी कढु सामी चए, झुग़े मों झेड़ो ।
करि कृपा साँ मोकिरो, वेसासी वेड़ो ।
त नेड़े खों नेड़ो, सन्मुख ड्रिसें सुप्रीं ॥ ६७० ॥

सामीजी मनुष्य को उपदेश देते कहते हैं कि इस माया-मोह का प्रपंच सब झूठा है; अतः तू सोच-विचार कर अपने (हृदय-रूपी) घर से द्वैत निकाल, अपने (सद्गुरु की) की कृपा से उसे (हृदय-रूपी घर को) विश्वास से विशाल बना ले तो तुझे अपना प्रियतम समीप से भी समीप (अत्यन्त ही निकट) दिखायी दे ॥ ६७० ॥

कूड़ी कथ म कथि, दरि दरि देवाननि जाँ ।
मिली साध संगति साँ, मन पंहिंजे खे मथि ।
अहिड़ो वेलो हथि, मोटी ईंदुइ कीन की ॥ ६७१ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी जीव को उपदेश देते हुए कहते हैं कि तू पागलों की तरह द्वार-द्वार भटक कर झूठी बकवास मत कर, बल्कि साधुओं के संग से अपने मन का मन्थन कर (आत्मा-रूपी मक्खन प्राप्त कर); क्योंकि यह समय (मानव-शरीर) फिर लौट कर नहीं आयगा ॥ ६७१ ॥

कूड़ी कल्प करे, थो वहें कूड़े वहण में।
जीएं सुम्हियो स्वप्न जो नाना रूप धरे।
जाग्रये बिना न थिए, अविद्या पटु परे।
सामी तद्रीं ठरें, जद्रीं पर्ची द्रिसें पाणखे ॥ ६७२ ॥

सामीजी मनुष्य को उपदेश देते हुए कहते हैं कि तू झूठी माया के झूठे प्रवाह में अपने को बहाकर नष्ट हो रहा है। जिस प्रकार सोया हुआ व्यक्ति सपने में नाना प्रकार के रूप धारण करता है, उसी प्रकार अज्ञान की नींद में तू भी नाना प्रकार के रूप धारण कर भटक रहा है। (ऐ जीव !) जागृत होने के सिवा (ज्ञान प्राप्त किये बिना) तुम्हारी अविद्या का आवरण नहीं हटेगा। तुझे शीतलता तब मिलेगी, जब तू संतुष्ट होकर अपने स्वरूप को देखेगा ॥ ६७२ ॥

कूड़ो मोहु म करि, मतां लहर मंझि लुढ़ी वञें।
नाना ख़्याल फिटा करे, हिकु ख़्यालु ख़सम जोधरि।
बिना भज्ञन हरि, ब्या सभि ब्रन्धन जीअ जा ॥ ६७३ ॥

(सामीजी उपदेश देते हैं कि ऐ जीव) तू झूठे मोह में मत पड़, कहीं ऐसा न हो कि तू (माया-रूपी) प्रवाह में बह जाए। तू नाना प्रकार के अन्य विचार छोड़कर, केवल परमात्मा-सम्बन्धी विचार धारण कर, क्योंकि परमात्मा के भजन के सिवा अन्य सभी प्रकार के विचार जीव के लिए बन्धन ही हैं। ॥६७३॥

कोहु करें अभिमानु, काया माया कुल जो।
इस्थित रह्यो कोन को, मीरु मलकु सुल्तानु।
समुझी द्रिसु सामी चए, अथी फानी समु जहानु।
पाए आतम ज्ञानु, कल्पत कढ़ु अन्दर मों ॥ ६७४ ॥

सामीजी उपदेश करते हैं—(ऐ जीव) तू काया, माया तथा कुल पर व्यर्थ ही गर्व क्यों कर रहा है ? ज़रा सोच-मझकर देख कि यह संसार क्षणभंगुर है; यहाँ मीर, मलक (राजा) तथा सुल्तान तक भी स्थिर नहीं रह पाये हैं, अतः तू भी हृदय से प्रपंच निकाल कर आत्मज्ञान प्राप्त कर ले ॥६७४॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कोहु करें अभ्यासु, मूर्ख माया मोह जो ।
सामी सभेई कया, जंहि रण में रोले नासु ।
मिली साधसंगति साँ, करि ब्रारीअ मंझि निवासु।
त चेतनु चिदाकासु, ड्रिसें पंहिंजे घर में ।। ६७५ ।।

सामीजी जीव को उपदेश देते कहते हैं कि ऐ मूर्ख, इस माया ने सब (जीवों) को (संसार-रूपी) वन में भटका कर नष्ट कर दिया है, फिर भी तू इस मोह एवं माया का अभ्यास क्यों कर रहा है ? तू तो साधुओं का संग कर तथा अपने भीतर ही निवास कर (अन्तर्मुखी बन कर आत्मा-वलोकन कर) तो तुझे अपने (हृदय-रूपी) घर में ही चेतन चिदाकाश दिखाई देगा ।।६७५।।

कोहु करें कूड़ी, हार सींगार सुहाग रे ।
रोलि न मानुष्य देहि खे, ममत्व मंझि मूढ़ी ।
जाग्री कढु अन्दर मों, अविद्या अरूड़ी ।
लाए लिव ग़ूड़ी, सामी चए मिलु शाह साँ ।। ६७६ ।।

सामीजी जीवात्मा को संबोधित करते कहते हैं : ऐ झूठी, तू (आत्मज्ञान-रूपी) सुहाग से वंचित होकर झूठे हार-शृंगार क्यों कर रही है ? (अर्थात् आत्मज्ञान से वंचित होकर झूठी माया में अपने आप को क्यों भुलाये बैठी हो ?) । ऐ मूर्ख ! तू ममता में पड़कर अपने मानव-शरीर को मत भटका (भ्रमित कर); बल्कि जागृत होकर अपने हृदय से अप्रिय-अविद्या निकाल ले तथा गंभीर स्नेह से अपने (आत्मज्ञान रूपी) राजा से मिल ले ।।६७६।।

कोहु करें वलु छलु, मूर्ख मन जे भांइ तूं ।
दोसाणीअ दर्ब्रारि में, थींदुइ सभु अदलु ।
रोअंदे रतु अख्युनि मों, पाए पंहिंजो फलु ।
सामी समुझी हलु, दीख्या वठी गुरख़ों ।। ६७७ ।।

सामीजी उपदेश देते कहते हैं : ऐ मूर्ख तू मन के वश में होकर छल-वल क्यों कर रहा है ? क्योंकि परमात्मा के दरबार में तेरा पूरा-पूरा न्याय होगा तथा अपने (बुरे) कर्मों के फल को प्राप्त कर तू ख़ून के आँसू बहाने लगेगा । अतः अब से ही गुरु से दीक्षा (उपदेश) लेकर सोच-समझकर आचरण कर ।।६७७।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोहु करें है-है, मूर्ख मन जे भाइं तूं ।
जगत्र सभु झूठो अथी, करे ड्रिसु अन्भय ।
जींए लहर समुद्र जी, रूप धरेथी लय ।
तीएं साक्षीअ रे शै, सामी अथी कान का ।। ६७८ ।।

सामीजी उपदेश देते कहते हैं : ऐ मूर्ख, मन के वशीभूत होकर तू व्यर्थ ही हाय-हाय क्यों कर रहा है ? जरा अर्न्तमुखी बन कर देख ले कि यह सारा संसार झूठा है । जिस प्रकार समुद्र की लहर, रूप धारण कर उसी में लय हो जाती है, उसी प्रकार परमात्मा के सिवा किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं है ।।६७८।।

खपति मंझि खुही, रोलि न पंहिंजो पाण खे ।
मोटी ईंदुइ कीन की, अहिड़ी मौज मुई ।
मिली वठु महबूब साँ, दिलि मों कढी दुई ।
मतां कालु कुही, अचे विझेई ओचितो ।। ६७९ ।।

सामीजी जीवात्मा को उपदेश देते कहते हैं कि प्रपंच में पड़कर अपने आप को मत भटका । ऐ भाग्यहीना ! यह मौज व आनन्द (मानव-शरीर) तुझे फिर नहीं मिलेगा । अतः हृदय से द्वैत निकाल कर अपने प्रियतम से मिल ले, कहीं ऐसा न हो कि मृत्यु आकर अचानक ही तुझे क़त्ल कर दे ।।६७९।।

खुही करि म खोटु, कंहिं साँ कण जेतिरो ।
ज्ञाणी मौतु मथे ते, मन्दाईअ खों मोटु ।
भेटे वठु भर्म रे, घूँघट खोले घोटु ।
त फिरी तोखे फोटु, जम जगाती न ड्रिए ।। ६८० ।।

सामीजी जीवात्मा को उपदेश देते कहते हैं : ऐ भाग्यहीना तू किसी के साथ रत्तीमात्र भी कपट मत कर । अपने सिर पर मृत्यु को उपस्थित जानकर, बुराई से बच एवं भ्रमरहित होकर (अज्ञान-रूपी) घूँघट हटा-कर अपने प्रियतम से मिल ले, तो तुझे फिर कभी करालकाल यातनाएँ न देगा ।।६८०।।

ग्रणित्यूं कोह ग्रण, थो मूर्ख पंहिंजे मन में ।
घटि वधि थींदुइ कीन की, तोड़े मूंहं ते हथ हणे ।
ब्रजे जी ब्रांभणु चए, सभुको ब्रारि खणे ।
जे तोखे वाक्यु वणे, त इस्थति रहु अन्दर में ।। ६८१ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामीजी उपदेश देते कहते हैं : ऐ मूर्ख, तू अपने मन में अब क्यों चिन्ता कर रहा है ? अब चाहे तू कितना भी पश्चाताप करेगा, पर तेरी (यातनाएँ) कम-ज़्यादा नहीं होंगी, क्योंकि कहा जाता है कि जो जैसा बोयेगा वैसा ही पायेगा । यदि यह बात तुझे ठीक लगे, तो अपने भीतर ही स्थित रह ॥६८१॥

ग़णिती करि फिटी, अन्दरि ड्रिसु अग़णत खे ।
सामी सन्तनि साँ मिली, समुझु ग़ाल्हि चिटी ।
जिनजी ममत्व मिटी, से राजा रांवल देसजा ॥ ६८२ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं—(ऐ जीव) तु चिन्ता त्यागकर अपने भीतर चिन्तारहित (परमात्मा) को देख तथा सन्तों से मिलकर यह बात अच्छी तरह से समझ ले कि जिन (जीवों) की ममता मिट जाती है वे ही रावल (अनन्त) नगर के शासक बन जाते हैं ॥६८२॥

गुज़री सा गुज़री, बाकी रखु रहति साँ ।
वञी साध संगति में, सामी पउ किरी ।
त पर्ची पाण प्रीं, खणी वठनी हथ साँ ॥ ६८३ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं—(ऐ जीव) बीती को बिसार कर आगे की सुध ले तथा साधुओं के पास जाकर उनके (पैरों पर) गिर जा, तो परमात्मा प्रसन्न होकर तुझे अपने ही हाथों से उठा लेंगे ॥६८३॥

ग़ैरत गन्दु म विझु, मूर्ख मेड़े घर में ।
जन्मनि जे जन्जाल जो ईहा ब्याई अथी ब्रिजु ।
समुझी करि सामी चए, तूं दौड़णु खों धीजु ।
त सिर ते साक्षी सिजु, प्रघटु थिएई पाणहीं ॥ ६८४ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं—ऐ मूर्ख, द्वैत-रूपी कीचड़ (हृदय रूपी) घर में इकट्ठी मत कर, क्योंकि यह द्वैत ही (आत्मा और परमात्मा को भिन्न समझने की भावना) जन्म-जन्मान्तरों के झंझटों का बीज (कारण) है; अतएव इस बात को समझकर तू (योनियों में) भटकने से मुक्ति पा ले। द्वैत के नाश होते ही (ज्ञान-रूपी) सूर्य स्वयं ही प्रगट हो जायगा ॥६८४॥

घुरें कोहु घणी, मूर्ख माया राम खों ।
विया पिटींदा केतिरा, मुंहं ते हथ हणी ।
तूं भी नींदे कीन की, कोड्री साणु खणी ।
सारि सम्भारि धणी, त सुखी थिएं सामी चए ॥ ६८५ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी उपदेश देते कहते हैं--ऐ मूर्ख, तू परमात्मा से अपार धन-सम्पत्ति की माँग क्यों करता है। कितने ही (वैभवशाली) यहाँ से पश्चाताप करते खाली हाथ चले गये हैं। तू भी अपने साथ एक फूटी कौड़ी तक नहीं ले जायगा, अतः शीघ्र ही परमात्मा का स्मरण कर ले ताकि तू सुखी बन जाए ॥६८५॥

चकुमकु चलाए, जीएं जड़ लोहे खे।
तीएं आत्मा देहि खों, कार्य कराए।
समुझी द्रिसु सामी चए, मुंहुं मढ़ीअ पाए।
ममत्व मिटाए, सदा माणें सान्ति सुखु॥ ६८६ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि जिस प्रकार चक़मक़ जड़ लोहे को चलायमान करता है उसी प्रकार ही (चैतन्य) आत्मा (जड़) शरीर से सभी कार्य कराती है। अतः (ऐ जीव) इस बात को समझकर ममता मिटाकर, आत्मावलोकन कर, जिस से तू सदैव ही शान्ति-सुख का आनन्द मना सके ॥६८६॥

चकुमकु चलाए, जीएं जड़ लोहे खे।
तीएं चेतन सभ खों, क्रिया कराए।
समुझी द्रिसु सामी चए, मुंहु मढ़ीअ पाए।
द्रीओ जग़ाए, कढु अन्धेरो अन्दर मों॥ ६८७ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि जिस प्रकार चुम्बक जड़ लोहे को चलाता है उसी प्रकार चेतन (आत्मा) (जड़ शरीर से) सभी कार्य कराता है। (ऐ जीव) इस बात को सोच-समझकर आत्मावलोकन कर तथा (ज्ञान का) दीपक जलाकर भीतर से (अज्ञान-रूपी) अन्धकार निकाल दे ॥६८७॥

चर्या छद्रि चवणु, दमु मारे रहु दम में।
सहजे करि सामी चए, साक्षीअ जो सुमिरणु।
कढी वठु कल्पत रे, महबत साणु मखणु।
भौंकणु ऐं भंवण, अथी कम कुतनि जो॥ ६८८ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि ऐ मूर्ख, बकवास छोड़ दे। शान्त होकर अपने आप में ही स्थित रह। शीघ्र ही परमात्मा का स्मरण कर तथा प्रेम से द्वैत-रहित, (आत्मज्ञान-रूपी) नवनीत निकाल, क्योंकि बकना एवं भटकना तो कुत्तों का ही काम है ॥६८८॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चर्या थी चन्चलु, खोहि न मानुष्य देहि खे ।
मिली वठु महबूब साँ, छद्रे सभु छलु-वलु ।
अज्ञु कल्ह अचे ओचिते, कन्दुइ कालु क़तलु ।
पवंदुइ पोइ पटलु, सिज लथे सामी चए ।। ६८९ ।।

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि ऐ पागल, तू चंचल बनकर अपने मानव-शरीर को नष्ट मत कर, बल्कि सब प्रकार के छल-कपट त्यागकर प्रियतम से अभिसार कर ले; क्योंकि आज नहीं तो कल मृत्यु आकर तुझे अचानक ही नष्ट कर देगी। जब तेरा (जीवन-रूपी) सूर्य अस्त हो जायगा तब तुझे (मानव-शरीर के महत्व) का पता चलेगा ।।६८९।।

चर्या नितु चोटी, कोहु पटाएं काल खों ।
हून्दे ब्रलु निर्ब्रलु थिएं, ख़्वाहिश रखी खोटी ।
खाई थीउ ख़ावन्द जी, रुखी-सुखी रोटी ।
ईन्दुइ कीन मोटी, समय हे सामी चए ।। ६९० ।।

सामीजी कहते हैं-ऐ मूर्ख, तू नित्य ही मृत्यु से अपनी चोटी क्यों खिंचवाता है ? (बार-बार मृत्यु का शिकार क्यों बनता है) तू झूठी इच्छाओं को धारण कर बल होते हुए भी निर्बल बन रहा है। तू तो रूखा-सूखा खाकर परमात्मा का बन जा क्योंकि यह समय (मानव शरीर) लौटकर नहीं आयेगा ।।६९०।।

चरी कोहु चएं, थी दरि दरि हालु हबीब जो ।
जे तोखे प्यास पसण जी, त धन्धा कींअ धएं ।
सामी सुपिर्युनि सां, छद्रे ठाह ठहें ।
पंहिंजीअ मंझि पएं, त लहें सुखु सुहाग़ जो ।। ६९१ ।।

सामीजी जीवात्मा को उपदेश देते कहते हैं, ऐ पगली, तू द्वार-द्वार अपने प्रियतम का हाल क्यों पूछ रही है ? यदि वास्तव में तुझे प्रियतम-दर्शन की प्यास है, तो फिर (सांसारिक) व्यवसाय क्यों कर रही है ? जब तू बाह्याडम्बर छोड़कर, अपने ही भीतर पैठकर देखेगी तब ही तुझे प्रियतम से सुहाग का आनन्द प्राप्त होगा ।।६९१।।

छ अठारह चारि ग़ालिह चवनि था हिकिड़ी ।
दरि दरि देवाननि ज्याँ, नाहकु कीन निहारि ।
गुर्गम पंहिजे घर में, ग़ैबी ग़ोतो मारि ।
त पूरणु पारि उर्वारि. सामीं द्रिसें सुप्रीं ।। ६९२ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि छः शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही बात कहते हैं कि (आत्मा को पाने के लिए) पागलों की तरह द्वार-द्वार व्यर्थ ही मत भटकते रहो, बल्कि ऐ गुरुमुख, अपने (हृदय-रूपी) घर में रहस्यमयी डुबकी लगाकर देख तो तुझे संसार-रूपी समुद्र से पार लगानेवाले पूर्ण प्रियतम दिखाई देंगे ।।६९२।।

छ अठारह चारि, ग़ाल्हि चवनि था हिकिड़ी ।
दरि दरि देवाननि ज्याँ, नाहकु कीम निहारि ।
मिली साध संगति साँ, बेहदि ड्रीओ ब्रारि ।
त बीठे मंझि बज़ारि, सामी ड्रिसें सुप्रीं ।। ६९३ ।।

सामीजी कहते हैं कि छः शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही बात कहते हैं कि (आत्मा को पाने के लिए) पागलों की भाँति द्वार-द्वार मत देख, बल्कि साधुओं के सम्पर्क से अनन्त (ज्ञान-रूपी) दीपक जला ले तो तुझे (संसार-रूपी) बाज़ार में खड़े रहने पर भी प्रियतम दिखाई देंगे ।।६९३।।

छ अठारह चारि, गाल्हि चवनि था हिकिड़ी ।
पुठी ड्रेई पाण खे, पलि पलि कीन पुकारि ।
सामी साध संगति जी, दीख्या हृदय धारि ।
वाच सभोई वारि, लेखणि वठी लख्य जी ।। ६९४ ।।

सामीजी उपदेश देते कहते हैं—(ऐ जीव) छः शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक बात कहते हैं, कि तू अपने भीतर स्थित स्वरूप से मुख मोड़कर, उसे ही बार-बार बाहर मत पुकार, बल्कि सन्तों का संगकर, उनके दिये उपदेश को हृदय में धारण कर तथा भटकना छोड़कर ज्ञान का रास्ता अपना ।।६९४।।

छः अठारह चारि, ग़ाल्हि चवनि था हिकड़ी ।
पूरणु ज्ञाणु परमात्मा, नाना भर्मु निवारि ।
मिली माया मोह साँ, हीरो जन्मु न हारि ।
साझुरि पाण सम्भारि, मतां पवें पोइ ड्रुखनि में ।। ६९५ ।।

छः शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही बात कहते हैं कि परमात्मा को पूर्ण जानकर, नाना प्रकार के भ्रमों का निवारण कर ले। मोह एवं माया से प्रेम कर हीरे के समान (मानव) जीवन मत नष्ट कर। शीघ्र ही अपने आपको सम्भाल ले क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि बाद में तुझे दुःख उठाने पड़ें ।।६९५।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छः अठारह चारि, ग़ाल्हि चवनि था हिकिड़ी ।
भग़ति करे भग़िवन्त जी, नाना भर्मु निवारि ।
मिली माया मोह साँ, हीरो जन्मु न हारि ।
साझुरि पाणु सम्भारि, मतां पवें पोइ ड़ुखनि में ।। ६९६ ।।

छः शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही बात कहते हैं कि (ऐ मनुष्य) नाना प्रकार के भ्रमों का निवारण कर, भगवान की भक्ति कर । मोह-माया में पड़कर हीरे के समान अमूल्य मानव-जीवन को मत गँवा, बल्कि शीघ्र ही अपने स्वरूप को सम्भाल (पहचान) ले, कहीं ऐसा न हो कि बाद में तू दुःखों में पड़ जाए ।।६९६।।

छः अठारह चारि, ग़ाल्हि चवनि था हिकिड़ी ।
सामी वसे सुप्रीं, पर्छिनता खों पारि ।
हेड़े होड़े हथिरा, बिना मर्म न मारि ।
निर्मलु नेण निहारि, त घर में ड़िसें सोझिरो ।। ६९७ ।।

सामीजी कहते है--छः शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही बात कहते हैं कि प्रियतम (परमात्मा) नश्वरता से परे तथा सर्वव्यापक है, अतएव (ऐ मनुष्य) तू बिना सोच-समझ के उसे यहाँ-वहाँ मत ढूँढ; बल्कि अपने निर्मल नेत्रों से आत्मावलोकन कर तो तुझे हृदय-रूपी घर में वह प्रकाशमान दिखाई देगा ।।६९७।।

छः अठारह चारि, ग़ाल्हि चवनि था हिकिड़ी ।
सामी सुञ वसंव जे, वेही ड़िसु विच कारि ।
केरु करे सिधि सभ खे, आहे कंहि आधारि ।
समुझी मामत्व मारि, त माणें सुखु स्वरूप जो ।। ६९८ ।।

सामीजी कहते हैं कि छः शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही बात कहते हैं--(ऐ जीव) तू एकान्त तथा बस्ती के बीच बैठकर देख कि कौन समस्त कार्य सिद्ध करता है तथा (यह संसार) किसके आधार पर स्थित है । ये समस्त बातें समझकर, ममता मिटा, तो तुझे स्वरूप-सुख का अनुभव होगा ।।६९८।।

छः अठारह चारि, ग़ाल्हि चवनि था हिकिड़ी ।
सामी हिन सन्सार जो, ड़िठो सभु विसारि ।
दीख्या ड़ाति गुरूअजी, हर्दमि हृदय धारि ।
दोस्त जे दर्बारि, पहुँचे पूरणु पाकु थी ।। ६९९ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामीजी कहते हैं कि छः शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही बात कहते हैं,(ऐ जीव) तूने जो कुछ इस संसार में देखा है, उसे भूल जा तथा हरदम गुरु की दी हुई दीक्षा (उपदेश) को हृदय में धारण कर तो पूर्ण एवं पवित्र होकर अपने प्रियतम के दरबार में पहुँच सकेगा ।।६९९।।

छः अठारह चारि, ग़ाल्हि चवनि था हिकिड़ी ।
हेड्रे होड्रे हथिरा, बिना मर्म न मारि ।
सामी सन्तनि साँ मिली, मन में ड्रिसु मुरारि ।
शहरु बहरु बाजारि, आहे जंहिंजे आसिरे ।। ७०० ।।

सामाजी कहते हैं कि छः शास्त्र, अठारह पुराण तथा चार वेद एक ही बात कहते हैं—(ऐ जीव) तू बिना सोच विचार के परमात्मा को यहाँ-वहाँ मत ढूँढ, बल्कि सन्तों का संग कर, उस मुरारी को हृदय में ही देख जिसके आसरे ही शहर, समुद्र, बाज़ार (सब कुछ) स्थित है ।। ७०० ।।

छड्रि ब्राहर जी ब्रांणि, सामी चयो सतिगुरूअ ।
ड्रांवण ज्याँ पाण खे, ताणे मंझि न ताणि ।
उल्टी लहु अन्दर मों, खिम्यां ख़ुशीअ जी खाणि ।
मिली मौजा माणि, सुत्ह सिधि स्वरूप साँ ।। ७०१ ।।

सामीजी कहते हैं, (ऐ जीव) सद्गुरु ने कहा है कि तू बाह्य-प्रपंच छोड़ दे । मकड़ी की भाँति स्वयं ही अपने आप को (माया-रूपी) जाल में डालकर बेचैन मत बन; बल्कि अन्तर्मुखी होकर प्रसन्नता एवं आनन्द की खान (आत्मानन्द) ढूँढ ले तथा साक्षात् स्वरूप से मिलकर आनन्द का उपभोग कर ।। ७०१ ।।

छड्रि वड्राई वाउ, काया माया कुल जी ।
सामी थींदुइ कोन को, हरि बिना हमिराउ ।
मिली साध संगति साँ, साझुरि करि समाउ ।
अहिड़ो दिलबरु दाउ, मोटी ईंदुइ कीन की ।। ७०२ ।।

सामीजी उपदेश देते कहते हैं, (ऐ जीव) तू काया, माया तथा कुल की प्रशंसा (बड़प्पन) छोड़ दे क्योंकि प्रभु के सिवा तेरा कोई भी हमसफ़र नहीं होगा । अतएव तू साधुओं से मिलकर शीघ्रातिशीघ्र उसका (प्रभो का) स्मरण कर ले, क्योंकि ऐ दिलबर ! ऐसा सुन्दर अवकाश (मानव शरीर) तुझे फिर नहीं मिलेगा ।। ७०२ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छड्रि वरु वकरु वाउ, कूड़ो माया मोह जो।
सामी सिक सचीअ साँ, सरणि गुरूअ जे आउ।
अथी मुहबु मिलण जो, ईहो ऐनु उपाउ।
मतां पोइ पछिताउ, करें जूणि भवण में ।। ७०३ ।।

सामीजी उपदेश देते कहते हैं—(ऐ जीव) झूठी माया-मोह के झूठे दाँव-पेंच छोड़कर, सच्चे स्नेह से युक्त होकर गुरु की शरण में आ; क्योंकि प्रियतम से मिलने का यही शुद्ध साधन है। कहीं ऐसा न हो कि अन्य योनियों में भटकने पर तुझे पश्चाताप करना पड़े ।। ७०३ ।।

छड्रे खुदीअ जो ख़्यालु, हलु हेठांहीअं हलीमु थी।
हिन खुदीअ सभि ख़राबु कया, अथी किबरु वड्रो कालु।
निउर्तु मंझों निहालु, थींदे अल्बति आदिमी ।। ७०४ ।।

सामीजी उपदेश देते कहते हैं—(ऐ जीव) तू अहं (अहंकार अभिमान) त्यागकर सबके साथ नम्रतापूर्वक व्यवहार कर क्योंकि अभिमान ही महाकाल है जिसने सबको नष्ट कर दिया है। परन्तु नम्रता से तुझे आनन्द प्राप्त होगा और तू मानव बनेगा ।। ७०४ ।।

छड्रे वरु वकड़ु, खणे पेरु प्रियनि ड्रे।
त सहजे सुपिर्यनि जो, सामी लहें तड़ु।
मोटी तोखे मूड़ु, जमु जग्राती न करे ।। ७०५ ।।

सामीजी कहते हैं (ऐ जीव) तू वक्रगति को त्याग कर, प्रियतम की ओर अपने चरणों को अग्रसर कर तो तुझे सहज ही प्रियतम मिल जायगा तथा फिर यम तुझे कदापि यातनाएँ न देगा ।। ७०५ ।।

छड्रे हठु हंई, ब्राँभणु चए ब्रधु तुरहो।
पहुँची पारि प्रियनि खे, सुत्ह करि सही।
बेर्युनि जे वेहें में, कंदीअ कोहु रही।
वेदुइ ड्रींहु लही, पोइ कुटींदइ कोप्री ।। ७०६ ।।

ब्राह्मण (सामीजी) जीवात्मा को उपदेश देते कहते हैं कि तू घमण्ड छोड़कर (दृढ़ता-रूपी) तुरहा बाँधकर (संसारसागर के उस) पार पहुँचकर शीघ्र ही अपने प्रियतम (परमात्मा) को प्राप्त कर ले। संसार-रूपी वैरी के पड़ोस में रहकर तू क्या करेगी? (संसार को वैरी कहा गया है क्योंकि वह उसे माया में उलझाकर नष्ट कर देता है)। आयु-रूपी दिन के अस्त होते ही कठोर काल आकर तुझे मारेगा ।। ७०६ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छद्रे हठु हंई, मिली वठु महबूब साँ।
फिटी करि फ़ुर्सत खे, वेदुइ द्रींहुं लही।
जाग़ी जग़ु स्वप्न जो, सामी करि सही।
मतां पोइ रही, पए वसि वेर्युनि जे॥ ७०७॥

सामीजी जीवात्मा से कहते हैं कि तू हठ त्यागकर प्रियतम से अभिसार कर ले। तेरा जीवन-रूपी दिन अस्त हो जायगा, अतः तू व्यर्थ समय मत गँवा (आलस्य त्याग दे) जागृत होकर स्वप्नवत् संसार की वास्तविकता को जान ले। कहीं ऐसा न हो कि बाद में तू दुश्मन (संसार की विषय वासनाओं) के हाथ में पड़ जाए॥ ७०७॥

छाखों मेड़ें मालु, तू पांधेरू पन्ध जो।
कहीं न्यो कीन की, मणनि मों मिशकालु।
बुरो तनी जो हालु, जंहिजो लेखो प्यो लखनि साँ। ७०८॥

सामीजी कहते हैं, (ऐ जीव) तू इस (संसार) से जानेवाला है, फिर क्यों इतनी वस्तुएँ एकत्र कर रहा है? कोई भी अपने इकट्ठे किये हुए ढेर में से रत्ती मात्र भी नहीं ले जाता है। जिन लोगों को (सांसारिक वस्तुओं का) हिसाब करना पड़ता है, उनकी दशा अत्यन्त ही बुरी होती है, अर्थात् जो सांसारिक प्रपंच में लीन रहते हैं उन्हें अन्त समय में अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं॥ ७०८॥

छाखों मेड़ें मालु, साणु हंलदुइ कीन की।
बिना नाले नाम जे, अथी जग़त्तु सभु जन्जालु।
छद्रे ख़ामु ख़्यालु, जाग़ी जपि हरि नाम खे॥ ७०९॥

सामीजी कहते हैं—(ऐ जीव) तू (सांसारिक) वस्तुएँ क्यों एकत्र कर रहा है? ये सभी तेरे साथ तो चलेंगी ही नहीं। प्रभो के नाम के सिवा सारा जगत मात्र झंझट ही है, अतएव तू व्यर्थ के विचार त्यागकर, जागृत होकर हरि नाम का जाप कर॥ ७०९॥

छाखों थो सोरें, सिमर्णयूं समुझ रे।
साधन सुपिर्युनि रे, अथी सभि ओरे।
मिली साध संगति साँ, कल्पत कढु कोरे।
त झूलें हिन्दोरे, सामी अन्भय सार जे॥ ७१०॥

सामीजी जीव को उपदेश देते कहते हैं कि तू बिना सोच विचार के (आत्मज्ञान-रहित) मालाएँ क्यों फेर रहा है। (सद्गुरु रूपी) प्रियतम के सिवा और सभी साधन तुझे उलझन में डालनेवाले हैं, अतः तू साधुओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का संग कर (हृदय से) माया की मलीनता निकाल दे और आत्मतत्त्व-रूपी झूले में झूल अर्थात् आत्मानन्द में मस्त रह ॥ ७१० ॥

छोथो ड्रुक पांए, पई माया मोह में।
मिली वठु महबूब साँ, सामी लिव लाए।
कालु तुहिंजे कन्ध ते, खर्चु थो खाए।
मतां विञाएं, हीरो वञी हथनि मों ॥ ७११ ॥

सामाजी जीव को उपदेश देते कहते हैं कि तू मोह-माया के वशीभूत होकर इतनी दौड़-धूप क्यों कर रहा है ? तू सच्ची लगन से अपने प्रियतम से अभिसार कर ले क्यों कि तेरे कन्धे पर सवार मृत्यु तेरे (जीवन रूपी) खर्चे को खा रही है, अतः कहीं ऐसा न हो कि तू (मानवजीवन-रूपी) हीरा हाथ से गँवाकर जाए ॥ ७११ ॥

रचियो मन जग़तु, अणहून्दो अविद्या करे।
समुझी ड्रिसु सामी चए, तूं कढी ममत्व मतु।
त अन्भय आतम तत्त्वु, हाज़ुरु ड्रिसें हथ ते ॥ ७१२ ॥

मन ने अविद्यावश मिथ्या संसार की रचना की है। सामीजी उपदेश देते कहते हैं, (ऐ जीव) तू ममता निकाल, सोच-विचार कर देख तो तुझे अन्तःस्थित आत्मा प्रत्यक्ष दिखाई दे ॥ ७१२ ॥

रचियो मन जग़तु, अणहून्दो सन्सारु सभु।
समुझी ड्रिसु सामी चए, तूं कढी ममत्व मतु।
मिली महद जननि साँ, कढु कूड़ो कल्पतु।
त अन्भय आतम तत्वु, प्रतक्षु ड्रिसें पाण में ॥ ७१३ ॥

मन ने ही इस मिथ्या संसार की रचना की है, अतः सामीजी उपदेश देते कहते हैं, (ऐ जीव) तू ममता मिटाकर सोच-विचार कर देख तथा महात्माओं से मिलकर झूठे भ्रमों का परित्याग कर ले, तो तुझे स्वयं में ही स्थित आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष दिखाई दे ॥ ७१३ ॥

लेखा लिखणु छड्रि, अन्दरि ड्रिसु अलेख खे।
जीअन्दे हिन जहान मों, सामी समुझी लड्रि।
अनल जाँ आकास में, केवल कुटी अड्रि।
पाणु तनी साँ गड्रि, नींह जनी जो नाथ साँ ॥ ७१४ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि (ऐ जीव) तू (सांसारिक) लेखे लिखना छोड़ दे (अर्थात् मायावी प्रपंच का त्याग कर)। लेखों से परे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परमात्मा को अपने ही भीतर देख। ज़िन्दा रहते हुए ही इस संसार का परित्याग कर ले (सांसारिक बन्धनों से अपने को मुक्त कर ले)। अनल पक्षी की तरह आकाश में ही अपनी कुटिया बना (आत्मज्ञान में ही लीन रह) तथा जिन लोगों का परमात्मा से प्रेम है, उन्हीं के साथ समागम कर ॥ ७१४ ॥

लेखा लिखण छद्रि, कूड़ा माया मोह जा।
खणी विझन्दइ ओचिते, ड्राइणि पहिंजे खद्रि।
मिली साध संगति साँ, प्रेम पीघोरा अड्रि।
पाणु तनी साँ गड्रि, नींहु जनीजो नाथ साँ ॥ ७१५ ॥

सामीजी कहते हैं (ऐ जीव) तू झूठी माया एवं मोह के लेखे लिखना छोड़ दे क्योंकि यह (माया-रूपी) डायन तुझे अचानक ही गर्त में डाल देगी, अतः तू साधुओं से मिलकर, उनके संग से प्रेम-रूपी झूले की रचना कर (परमात्मा के प्रेम-रूपी झूले में झूल) तथा उन लोगों के साथ जा मिल जिनका परमात्मा से ही प्रेम है ॥ ७१५ ॥

लेखा सभि विसारि, अन्दरि द्रिसु अलेख खे।
देही दिब पाए करे, हिर्फंत साणु न हारि।
ज्राण विञाए पंहिंजी, सामी सारु सम्भारि।
निर्मल नैंन निहारि, त पसणु थेई पिर जो ॥ ७१६ ॥

सामीजी कहते हैं, (ऐ जीव) तू समस्त (सांसारिक) लेखे भूलकर अपने ही भीतर स्थित लेखों से परे (परमात्मा) को देख। दिव्य (मानव) शरीर प्राप्तकर इसे यों ही मत गँवा। बल्कि तू अपनी पहचान कर (अहं मिटा कर) तत्त्व (आत्मा) को सम्हाल एवं अपने उज्जवल नेत्रों से देख तो तुझे प्रियतम का दीदार होगा ॥ ७१६ ॥

लेखा सभि विसारि, जीअन्दे हिन जहान मों।
मिली साध संगति साँ, पंहिंजो पाण सम्भारि।
देही मने पाण खे, हीरो जन्मु न हारि।
निर्मलु नैन निहारि, त सुखी थिएं सामी चए ॥ ७१७ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं, (ऐ जीव) ज़िन्दा रहते ही तू संसार के समस्त लेखे भुला दे तथा साधुओं से मिलकर अपने आपको सम्हाल ले। अपने को शरीर मानकर हीरे (के समान मानव) जीवन को मत नष्टकर बल्कि निर्मल नेत्रों से अवलोक ताकि तू सुखी हो जाय ॥ ७१७ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वञी पउ किरी, सामी सरणि गुरूअ जे ।
त पर्ची कनी पंहिजो, ड्रेई ज्ञान गिरी ।
सहजे जगु स्वप्न जो, वञेई विसिरी ।
अचें कीन फिरी, जन्म मरण जे चक्रमें ।। ७१८ ।।

सामीजी जीव को उपदेश करते हैं कि तू गुरु की शरण में जा गिर, ताकि वह (गुरु) सन्तुष्ट होकर, ज्ञान का उपदेश देकर तुझे अपना बना ले, जिससे स्वप्नवत् संसार को तू सहज में ही भूल जाए तथा जन्म-मृत्यु के चक्कर में तुझे आना ही न पड़े ।। ७१८ ।।

वञी पउ किरी, सामी साध संगति में ।
दीक्षा वठी दिलि साँ, लंघे पउ घिरी ।
त जन्म मरण जे ज्ञार में, अचें कीन फिरी ।
सहजे कनी प्रीं, लाए पंहिजो पाण साँ ।। ७१९ ।।

सामीजी कहते हैं—(ऐ जीव) तू साधुओं की शरण में जा पड़ तथा हृदय से दीक्षा (उपदेश) ग्रहण कर (आत्मज्ञान के मार्ग में) प्रवेश कर । ऐसा करने से तुझे जन्म-मृत्युरूपी जाल में न आना पड़ेगा तथा प्रियतम तुझे अपने हृदय से लगाकर सहज ही अपना बना लेगा ।। ७१९ ।।

वञी पउ किरी, सामी साध संगति में ।
दीक्षा वठी दिलि साँ, लंघे घाटु घिरी ।
त सहजे जगु स्वप्न जो, वञेई विसिरी ।
अचें कीन फिरी, जन्म मरण जे दुःख में ।। ७२० ।।

सामीजी कहते हैं (ऐ जीव) तू साधुओं की शरण में जा पड़ तथा हृदय से दीक्षा (उपदेश) ग्रहण कर एवं (संसार को) लाँघकर (आत्मज्ञान के मार्ग में) प्रवेश कर तो तुझे स्वप्न का संसार सहज में ही भूल जाए तथा तुझे जन्म-मृत्यु के दुःखों में फिर न आना पड़े ।। ७२० ।।

वञी ब्रुधु ब्राणी, त भला चवनि कोहु था ।
कढी वठु मखणु तूं, विझी मांधाणी ।
फुर्सत छड्रि सामी चए, थी वञे वेहाणी ।
फुटे घट पाणी, जीएं रेती मुठि में ।। ७२१ ।।

सामीजी कहते हैं (ऐ जीव) तू सज्जन पुरुषों की वाणी जा कर सुन कि वे क्या कहते हैं । हृदय से (विचार-रूपी) मथानी द्वारा (आत्मतत्त्व-रूपी) मक्खन निकाल ले । आलस्य छोड़ दे क्योंकि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
जिस तरह फूटे हुए घड़े से पानी तथा मुठी में से रेत बह जाती है, उसी प्रकार ही यह जीवन भी बीत रहा है ॥ ७२१ ॥

वञे थी गुज़िरी, आर्जा हिननि हथनि मों ।
समुझी द्रिसु सामी चए, तूं करे दिलि उजिरी ।
मौतु कन्दुइ मुजिरी, अची करे ओचितो ॥ ७२२ ॥

सामीजी कहते हैं (ऐ जीव) मन को उज्वल बना तथा (ज्ञान द्वारा) सोचकर देख कि यह आयु तेरे हाथों से गुज़रती जा रही है एवं अचानक ही मौत आकर तेरा बुरा हाल कर देगी ॥ ७२२ ॥

वञे थी गुज़िरी, आर्जा हिननि हथनि मों ।
सम द्रिसु सामी चए, तूं करे वीचारु वरी ।
मौतु ईन्दुइ कन्ध ते, वठन्दुइ ख़बर खरी ।
जलिदी ब्रधु भरी, न त पवंदे पोइ द्रुखनि में ॥ ७२३ ॥

सामीजी कहते हैं (ऐ जीव) तेरी आयु तेरे हाथों से गुज़रती चली जा रही है । ज़रा तू फिर से सोच-विचारकर देख, क्योंकि मृत्यु तेरे कन्धे पर आकर तेरी ठीक-ठीक ख़बर लेगी । अतः तू शीघ्र ही (ज्ञान तथा अच्छे कर्मों की) गठरी बाँध ले, अन्यथा तू दुःखों में जा पड़ेगा ॥ ७२३ ॥

वञे थी वहन्दी, आर्जा हिननि हथनि मों ।
जीएं जल अथाह जी, सामी वेगु नन्दी ।
तू सारि सम्भारि तहीं खे, आहें जहीं सन्दी ।
मतां पोइ अन्धी, जमु करेई जुठियूं ॥ ७२४ ॥

सामीजी जीवात्मा को उपदेश देते कहते हैं कि जिस तरह से अथाह पानी की नदी तेज़ गति से बहती रहती है उसी तरह तेरे हाथों से आयु बहती चली जा रही है । ऐ नेत्रहीना, तू जिसकी है उसे शीघ्र ही यादकर क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि बाद में यम तेरे साथ बहुत बुरा व्यवहार करे ॥ ७२४ ॥

वञे थी वहन्दी, आर्जा हिननि हथनि मों ।
वेई विसारे करे, बाकी रखु रहन्दी ।
पउ प्रियां जे पेचिरे, लिंव साँ लकु ब्रन्धी ।
सामी चङी मन्दी, ग्रणे कान अन्दर में ॥ ७२५ ॥

सामीजी कहते हैं (ऐ जीव) तेरे हाथों तेरी आयु बहती चली जा रही है । जो आयु बीत चुकी है, उसे भूल जा, पर जो बाकी है उसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ध्यान रख (उसे नष्ट होने मत दे) क्योंकि प्रियतम (परमात्मा) तेरी अच्छाइयों और बुराइयों की गिनती नहीं करते हैं, अतः तू प्रेम से प्रियतम के रास्ते पर अग्रसर हो जा ॥ ७२५ ॥

वञे थी वही, आर्जा हिननि हथनि मों ।
इस्थिरि ज़णी पाण खे, तूं वेठें कोहु रही ।
समुझी ड्रिसु सामी चए, करे ग़ाल्हि सही ।
वेन्दुइ ड्रीहुं लही, पोइ हणन्दे हथिड़ा ॥ ७२६ ॥

सामीजी जीवात्मा को संबोधित करते रहते हैं कि तू अपने को स्थिर जानकर क्यों बैठ गई हो ? तेरी आयु तो तेरे हाथों से बहती चली जा रही है अतएव तू ज़रा सोचकर इस बात को ठीक तरह से जान ले क्योंकि जीवन-रूपी दिन के अस्त होते ही तू पश्चाताप करेगी ॥ ७२६॥

वञे थी वही, आर्जा हिननि हथनि मों ।
समुझी ड्रिसु सामी चए, करे ग़ाल्हि सही ।
वेठें कोहु रही, इस्थिर ज़ाणी पाण खे ॥ ७२७ ॥

सामीजी जीवात्मा को उपदेश देते कहते हैं कि तू अपने को स्थिर समझकर क्यों बैठ गई है ? ज़रा सोचकर इस बात को जान ले कि तेरी आयु तेरे हाथों से बहती जा रही है ॥ २२७ ॥

वञे नितु वही, थी आर्जा हिननि हथनि मों ।
समुझी ड्रिसु सामी चए, करे ग़ाल्हि सही ।
मिली वठु महबूब साँ, पंजई दूत दही ।
वेन्दुइ सिजु लही, पोइ हणन्दे हथिरा ॥ ७२८ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं, (ऐ जीव) ज़रा सोच-समझकर इस बात को जान ले कि तेरी आयु तेरे हाथों से सदैव ही बहती जा रही है। अतः तू (काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार-रूपी) पाँच दूतों को मार कर प्रियतम से मिल ले; क्योंकि (जीवन-रूपी) सूर्य के अस्त होने के पश्चात् तुझे हाथ मलने पड़ेंगें ॥ ७२८ ॥

विझी मांधाणी, जंहिं मखणु कढियो मन मों ।
तंहिजी सुर्ति स्वरूप में, सहजे समाणी ।
मौज तनी माणी, आतम पद अपार जी ॥ ७२९ ॥

सामीजी कहते हैं कि जिसने (विचार रूपी) मथानी से हृदय में से (आत्मतत्व-रूपी) नवनीत निकाला है, उसका चित्त सहज ही (परमात्मा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के) स्वरूप में समा जाता है तथा वह आत्मपद का अनन्त आनन्द लूटता है ॥ ७२९ ॥

विसा कीन विञाइ, मानुष्य देहि ममत्व में ।
मिली वठु महबूब साँ, छद्रे हिर्सु हवाइ ।
मतां अचे ओचिते, ड्रेई कालु सज़ाइ ।
पोइ करें है है हाइ, पियो पिटीन्दे पाणही ॥ ७३० ॥

सामीजी अज्ञानीजीव को उपदेश देते कहते हैं : ऐ भ्रमित, तू ममता में पड़कर मानव-जीवन को हाथ से मत गँवा, बल्कि व्यर्थ की तमन्नाओं को त्यागकर परमात्मा से मिल ले । क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि अचानक ही मौत आकर तुझे सज़ा दे और तू हाय-हाय करने लगे तथा तुझे अपने आप को पीटना पड़े (पश्चाताप करना पड़े) ॥ ७३० ॥

विसा कीन विञाइ, मानुष्य देहि मर्म रे ।
मिली वठु महबूब साँ, सुतत भोले भांइ ।
अज़ु कल्ह अचे ओचिते ड्रीन्दुइ काल सज़ाइ ।
पोइ भवन्दे बे जाइ, समुझ रे सामी चए ॥ ७३१ ॥

सामीजी अज्ञानी जीव को उपदेश देते करते हैं—ऐ भ्रमित, तू मर्म-हीन (विचारहीन) बन मानुष-देह को मत गँवा, बल्कि शीघ्र ही भ्रम मिटाकर परमात्मा से मिल ले। क्योंकि आज नहीं तो कल अचानक ही कहीं काल आकर तुझे सज़ा देगा और तुझे बिना विचार के यहाँ-वहाँ भटकना पड़ेगा ॥ ७३१ ॥

विहाणी वञे थी, मिली वठु महबूब साँ ।
छद्रे आलिस ऊंघ खे, ईहा ग़ाल्हि मञे ।
जाग़ी भोलु भञे, न त पोइ हणन्दे हथिरा ॥ ७३२ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं—(ऐ जीव) समय गुज़रता जा रहा है, यह बात मानकर, तू नींद एवं आलस्य को त्यागकर, भ्रम का नाश कर तथा जागृत होकर प्रियतम परमात्मा से मिल ले, अन्यथा तुझे हाथ मलने पड़ेंगे ॥ ७३२ ॥

वेई सा वेई, बाकी रखु रहति साँ ।
सामी सुपिर्युनि खे, अन्दरि पसु पेही ।
मानुष्य देही, मोटी ईन्दइ कीन की ॥ ७३३ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं—(ऐ जीव) गुज़री हुई आयु की चिन्ता त्यागकर बाकी बची हुई (आयु) को सुरक्षित रख (अर्थात् आज तक यदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तूने परमात्मा का स्मरण नहीं किया है तो अब से उसे पाने के लिए साधना कर) तथा अपने भीतर बैठकर (आत्मावलोकन द्वारा) प्रियतम को देख ले, क्योंकि यह मानव-शरीर तुझे फिर नहीं मिलेगा ।। ७३३ ।।

सभ खे कालु कहारु, मारे अचे ओचिते ।
खयों वञे क्षण में, जुआनु ॿुढो एं ॿारु ।
छद्रे तमां तन धन जी, तूं भी थीउ त्यारु ।
मता करें इतिबारु, सामी वेहें स्वास ते ।। ७३४ ।।

सामीजी कहते हैं कि कठोर काल अचानक ही आकर सबको मारता है। यह बालक, जवान अथवा वृद्ध को एक ही क्षण में उठाकर ले जाता है। अतः (ऐ जीव) तू भी अपने इन श्वासों पर विश्वास मत कर तथा तन-धन की इच्छा त्यागकर जाने की तैयारी कर ले ।। ७३४ ।।

सामी अलखु अपारु, मन, बुद्धि वाणीअ खों परे।
व्यापी रहियो विश्व में, साक्षी सृजणहारु ।
मिली साध सङ्गति साँ, तूं करि गुसे खे ग़ारु ।
त दोस्त जो दीदारु, ड्रिसें हिननि अख्युनि साँ ।। ७३५ ।।

सामीजी कहते हैं कि प्रत्यक्ष सृजनहार (परमात्मा) अलख व अनन्त है; वह मन, बुद्धि और वाणी से परे है एवं संसार भर में व्याप्त है। अतः (ऐ जीव) तू क्रोध को नष्टकर, साधुओं का संगकर इन्हीं नेत्रों से उसका दीदार कर ले ।। ७३५ ।।

सामी कीन सड्राइ, ज्ञानी पण्डतु पाण खे ।
इन्हीअ ममत्व मुठा केतिरा, तू समुझी पाणु पचाइ।
आज्ञा मने अगस्त जाँ, अविद्या सिन्धु सुकाइ ।
झाती झरोके पाइ, त सन्मुख ड्रिसें सुप्तीं ।। ७३६ ।।

सामीजी जीव को उपदेश देते कहते हैं कि तू अपने को ज्ञानी व पण्डित मत कहला; क्योंकि इसी मोह ने कितने ही (लोगों) को नष्ट कर दिया है। अतः तू सोच-समझकर अपने (ज्ञान) को पचा तथा अगस्त्यऋषि की भाँति अविद्या-रूपी समुद्र को सोख कर अपने (हृदय-रूपी) झरोखे में झाँककर देख तो तुझे प्रियतम सन्मुख दिखाई देगा ।। ७३६ ।।

सामी कोहु मनन, करें थो कल्पति जो ।
दुःखी ज्ञाणी पाण खे, घुमें घर दर बनु ।
अविद्या अन्दर में रखी, सिधि करे साधनु ।
जिएं अलेपु गगनु, तिएं तू साक्षी सदा ।। ७३७ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामीजी उपदेश देते कहते है :— (ऐ जीव) तू आकाश की भाँति सदैव ही निर्लिप्त एवं प्रत्यक्ष है, फिर भी अपने भीतर अविद्या रखकर तू (सांसारिक) प्रपंच का मनन क्यों करता है। और अपने को दुःखी मानकर घर-घर, द्वार-द्वार और बन में साधन कर क्यों भटकता है ॥ ७३७ ॥

सामी चए सुततु, जपे वठु जग़दीस खे।
मोटी ईन्दुइ कीन की, अहिड़ो हथि वक्तु।
ज़ाणी जूठि जग़त्र खे, करि सतीअ साँ सतु।
पोइ रोइन्दे रतु, अख्युनि मों आजज़ु थी ॥ ७३८ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं, (ऐ जीव) तू शीघ्र ही ज़गदीश्वर का जप कर ले क्योंकि ऐसा समय (मानव-शरीर) फिर लौटकर नहीं आएगा। संसार को झूठा समझकर तू सती स्त्री की भाँति (सच्चे परमात्मा रूपी पति से) प्रेमकर, अन्यथा दुःखी होकर आँखों से खून के आँसू बहायेगा ॥ ७३८ ॥

सामी छद्दि सम्बधि, जपे वठु जग़दीस खे।
मोटी ईन्दुइ कीन की, अहिड़ो दाउ हथि।
करे कालु कल्पना, पोइ लाहींदुइ पति।
वठी वेंदुइ तिति, जिते कंहिजीं कान चले ॥ ७३९ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि (ऐ जीव) समस्त सम्बन्धों को छोड़कर जगदीश्वर का स्मरण कर ले क्योंकि तुझे ऐसा अवकाश (मानव-शरीर) फिर लौटकर नहीं मिलेगा। काल (समय) तुझे प्रथम प्रपंच में डाल कर बाद में अपमानित करेगा तथा तुझे वहाँ ले जायगा, जहाँ किसी की भी नहीं चलती है ॥ ७३९ ॥

सामी ज़ाणु असति, जग़तु हे जग़दीस जो।
सन्तनि सापुरूषनि जी, अथी ईहा मति।
समुझी प्रेम प्रतीति साँ, करे शुधु सम्बधि।
पहुँची द्रिसें तिति, जिते साक्षीअ जो सोझिरो ॥ ७४० ।

सामीजी उपदेश देते कहते हैं, (ऐ जीव) सन्त-महात्माओं का यही विचार है कि जगदीश्वर के इस संसार को तू असत्य जान एवं सोच-समझकर प्रेम और विश्वास से पवित्र सम्बन्ध कर, वहाँ पहुँच जहाँ प्रत्यक्ष उजाला है ॥ ७४० ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सामी सभि विसारि, लेखा चोखा जीअ मों ।
मिली साध सङ्गति साँ, पंहिंजो पाणु सम्भारि ।
त दोसाणीअ दर्ब़ारि, खासो ख़िल्वतुदार थिएं ।। ७४१ ।।

सामीजी उपदेश देते कहते हैं, (ऐ जीव) अपने हृदय से सब प्रकार के (सांसारिक) लेखे भुला दे तथा साधुओं से मिलकर आप को सम्हाल तो परमात्मा के दरबार में तुझे सम्मान प्राप्त हो ।। ७४१ ।।

सामी सभु दीदारु, अथी अजीबनि जो ।
ड्रिसे बुधे पाण थो, ब्रोले ब्रोलण हारु ।
निराकारु आकारु, धारे आयो जग में ।। ७४२ ।।

सामीजी कहते हैं, (ऐ जीव) यह समस्त दीदार उसी अनोखे (परमात्मा) का है । वही देखता, सुनता तथा बोलता है (तात्पर्य यह कि आत्मा ही परमात्मा है और उसी के होने से ही मनुष्य, बोलता, देखता और सुनता है ।) वह निराकार होते हुए भी आकार धारण कर इस संसार में आया है ।। ७४२ ।।

हंई हठु निवारि, मतां ड्रिसें ड्रुखु ड्रोहाग जो ।
छड्रे ख़्यालु ख़लिक जो, घर पंहिंजे में घारि ।
करि सींगारु मिलण जो, पुछी जेड्रियूँ चारि ।
त दोसु अचे दर्ब़ारि, ड्रियेई सुखु सोहाग जो ।। ७४३ ।।

सामीजी जीवात्मा को सम्बोधित करते हैं—ऐ अभिमानिनी तू अभिमान त्याग दे, कहीं ऐसा न हो कि (इस अभिमान के कारण) तुझे (परमात्मारूपी पति के) बिछोह का दुःख सहना पड़े । तू सांसारिक विचार छोड़ कर अपने (हृदयरूपी) घर में ही अपना समय बिता (हृदय में स्थित आत्मा में लीन हो ।)तू अपनी समवयस स्त्रियों से (वे जीवात्माएँ जो परमात्मा से मिल चुकी हैं) पूछ कर मिलन का शृंगार कर ले तो प्रियतम तेरे(हृदयरूपी)दरबार में आकर तुझे सुहाग का सुख दे ।। ७४३ ।।

हंई हठु विञाइ, मतां ड्रिसें ड्रुःखु ड्रोहाग जो ।
करि अदब साँ आजज़ी, पान्दु ग्रिचीअ में पाइ ।
ख़लिक साँ ख़ल्कत में, ख़ावन्द खे रीझाइ ।
निउड़ी नाथु निंवाइ, मतां कुलज़ि थिएं कतार में । ७४४ ।।

सामीजी जीवात्मा को सम्बोधित करते कहते हैं—ऐ अभिमानिनी, तू अभिमान त्याग दे । कहीं ऐसा न हो कि (इसी अभिमान के कारण) तुझे (परमात्मा-रूपी पति के) बिछोह का दुःख सहना पड़े । तू अपने गले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में कपड़ा डाल कर (अर्थात् अत्यन्त ही दीन बनकर) सम्मान-सहित निवेदन कर। सृष्टि में सृष्टि के जीवों (की सेवा) द्वारा सृष्टि के कर्ता को प्रसन्न कर। अत्यन्त ही दीन बनकर प्रियतम को वश में कर। कहीं ऐसा न हो कि दूसरी (जीवात्माओं) की पंक्ति में तुझे अपमानित होना पड़े ॥ ७४४ ॥

हंई हठु विञाइ, मतां ड्रिसें दुःखु ड्रोहाग जो।
करि अदब साँ आजज़ी, पान्दु ग़िचीअ में पाइ।
मन मती छड्रे करे, चितु चर्ननि साँ लाइ।
प्रियनि खे पर्चाइ, त सामी पाएं सहज सुखु ॥ ७४५ ॥

सामीजी जीवात्मा को सम्बोधित करते कहते हैं—ऐ अभिमानिनी, तू अभिमान त्याग दे। कहीं ऐसा न हो कि (इस अभिमान के कारण) तुझे (प्रियतम के) बिछोह का दुःख सहना पड़े। तू अपने गले में कपड़ा डाल कर (अर्थात् अत्यन्त ही दीन बनकर) सम्मान सहित निवेदन कर। तू मन की न मानकर (मन के अनुसार कार्य न कर) परमात्मा के चरणों में चित्त लगाकर उसे सन्तुष्ट कर, तो तुझे सहज-सुख प्राप्त होवे ॥ ७४५ ॥

हंई हठु विञाइ, साझुरि समझी पंहिंजो।
दासनि जी दासी थी, शेवा सभु कमाइ।
ब्रांभणु चए ब्र्याइअ रे, चितु चर्ननि साँ लाइ।
प्रियनि के पर्चाइ, मतां रुठाई रहिजी वञे ॥ ७४६ ॥

सामीजी जीवात्मा को उपदेश देते कहते हैं—ऐ अभिमानिनी तू अभिमान त्यागकर शीघ्र ही अपना (हित) सोच ले तथा (परमात्मा के) दासों की दासी बन कर उनकी सेवा का फल कमा ले (सेवा का फल प्राप्त कर)। द्वैत-रहित होकर (परमात्मा के) चरणों में अपना चित्त लगा और उन्हें राज़ीकर, कहीं ऐसा न हो कि वे (परमात्मा) तुझसे रूठे ही रहें ॥ ७४६ ॥

हज़ारनि जी हिक, ग़ाल्हि बुधाई सतिगुरूअ।
ख़लिक़ अथी ख़ालिक़ में, ख़ालिक़ु मंझि ख़लिक़।
तंहिखे ड्रिसु तद्रूप थी, सामी रखी सिक।
कोहु चटें थो चिक, छड्रे सुखु सागर खे ॥ ७४७ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि सद्गुरु ने हज़ार बातों की एक बात बता दी है कि सारी सृष्टि परमात्मा में व्याप्त है तथा परमात्मा पूर्णसृष्टि में व्याप्त है। अतः (ऐ जीव) तू तद्रूप होकर सच्चे स्नेह से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसे (सृष्टि के कण-कण में) देख। तू क्यों व्यर्थ ही सुख के सागर (आत्मानन्द) को छोड़कर (विषय-वासनारूपी) कीचड़ चाट रहा है ? ॥ ७४७ ॥

हज़ारिन जी हिक, ग़ाल्हि बुधाइ सतिगुरूअ ।
ख़लिक़ वसे ख़ालिक़ में, ख़ालिक़ मंझि ख़लिक़ ।
उल्टी ड्रिसु अख्युनि साँ, सामी रखी सिक ।
कोहु चटें थो चिक, दरि दरि देवाननि जाँ ॥ ७४८ ॥

सामीजी उपदेश देते कहते हैं कि सद्गुरु ने हज़ार बातों की एक बात बता दी है कि सारी सृष्टि परमात्मा में व्याप्त है, तथा परमात्मा पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। अतः (ऐ जीव) तू आँखें उलटकर (अन्तर्मुखी होकर) सच्चे स्नेह से उसे देख; तू व्यर्थ ही पागलों की भाँति द्वार-द्वार (विषयवासना रूपी) कीचड़ क्यों चाट रहा है ? ॥ ७४८ ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाह जो रसालो

शाह अब्दुल्लतीफ़ का जीवन और काव्य

सिन्ध आध्यात्मिक कवियों का आशियाना माना जाता है। सिन्ध के सन्त-कवियों के काव्य में अनोखी सुन्दरता, सरसता एवं मधुरता है। इन सन्त-कवियों में शाह अब्दुल लतीफ, सचल तथा सामी साहित्य-कोष के अमूल्य रत्न माने जाते हैं। इन्हें सिन्धी काव्य की 'त्रिवेणी' व 'त्रिमूर्ति' भी कहा जाता है। इससे पूर्व 'सामी के सलोकों' का आनन्द आप ले चुके हैं।

शाह अब्दुल्लतीफ़ भटाई का जन्म सन् १६८९ ई० में हैदराबाद ज़िले के हाला तालुके में हाला-हवेली नामक गाँव में हुआ। कहा जाता है कि उनके पिता शाह हबीब ने उन्हें वाई नामक गाँव के प्रसिद्ध विद्वान् आलम आख़वन्द नूर मुहम्मद भटीअ के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा था। परन्तु शाह साहब ने 'अलिफ़' उच्चारने के पश्चात् 'बे' कहने से साफ़ इन्कार कर दिया। भिन्न-भिन्न विद्वान् शाह साहब की शिक्षा-दीक्षा पर अलग-अलग मत रखते हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि वे अपने युग के महान् विद्वान् थे, तो कुछ कहते हैं कि वे अनपढ़ थे पर परमात्मा की ओर से उन्हें अनोखी प्रतिभा प्राप्त हुई थी। शाह साहब जब मस्ती में आ जाते थे तब कलाम (रचना) गाते थे और उनके शिष्य वे कलाम लिख लेते थे। वे ही कलाम 'शाह जो रसालो' में संग्रहीत किये गये हैं।

माना जाता है कि बीस वर्ष की आयु में शाह साहब सांसारिक प्रेम के शिकार हुए। कोटिड़ी के मिर्ज़ा मुग़ल बेग का शाह के पिता शाह हबीब पर अटूट विश्वास था। जब भी मिर्ज़ा के घर पर कोई बीमार पड़ता तो वे हबीब जी को अपने घर पर दुआ के लिए ले जाते थे। एक बार मिर्ज़ा हबीब की बेटी बीमार हुई। वे शाह हबीब को दुआ के लिए बुलाने गये किन्तु शाह हबीब भी उस समय बीमार थे अतः उन्होंने अपने बेटे शाह अब्दुल्लतीफ़ को भेजा। शाह ने जब मिर्ज़ा की बेटी को देखा तब अपनी सुध-बुध खो बैठे और उसका हाथ पकड़कर कहा, 'जिसका हाथ सय्यद अपने हाथ में लेते हैं, उसे किसी प्रकार की कोई हानि नहीं पहुँचती।' शाह का यह व्यवहार मिर्ज़ा को अच्छा नहीं लगा और उनके मन पर शाह के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। प्रेम का तीर लगने के पश्चात् शाह घर-बार छोड़कर कुछ वर्षों तक फ़क़ीरों के साथ भटकते रहे। जब

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वापस घर आये तब शाह हबीब ने उन्हें शादी के बन्धन में बाँधना चाहा। सौभाग्य से जिस मिर्ज़ा बेग की लड़की के लिए शाह जंगलों में भटकते रहे उसी लड़की के साथ ही उनका विवाह हुआ। कहते हैं कि एक बार कुछ क्रूर अत्याचारी डाकुओं ने मिर्ज़ा के घर पर आक्रमण किया और उनकी समस्त क़ीमती वस्तुएँ लेकर भाग गये। शाह ने अपनी जान की बाजी लगाकर अपने साथियों सहित डाकुओं पर वार किया, फिर भी मिर्ज़ा का हृदय न पसीजा और वे शाह से घृणा करते रहे। इस पर शाह साहब दुखी हुए और उनके मुँह से बद्दुआ निकली, जिसके फल-स्वरूप मिर्ज़ा किसी के हाथों मारे गये और बाद में मिर्ज़ा के घर की औरतों ने शाह साहब से माफ़ी माँगी और मिर्ज़ा की बेटी की शादी उनसे करा दी।

कहते हैं शाह के कोई सन्तान न थी, पर उसका उन्हें कोई दुःख न था। वे कहते थे कि उनके शिष्य ही उनकी सन्तान हैं।

शाह साहब अपना काफ़ी समय बन्दगी और कविता करने में गुज़ारते थे। वे प्रकृति-प्रेमी थे। प्रकृति के सुन्दर दृश्य देखकर वे प्रायः अपनी सुध-बुध खो बैठते थे। वे घंटों एकान्त में बैठकर —"इन्सान क्या है ?" "संसार क्या है ?" तथा "सत्य क्या है ?", जैसे गंभीर विषयों पर सोचते रहते थे। वे कोमल-हृदयी थे। पशु-पक्षियों के प्रति उनका हृदय द्रवित हो जाता था।

शाह का काव्य उनके गुणों का दर्पण माना जाता है। वे सादा जीवन व्यतीत करते थे। शाह काले धागे से सी हुई गेरुए रंग की कफ़नी (ढीला कुर्ता) पहनते थे तथा हाथ में एक लाठी और कमण्डल लेते थे। ये चीज़ें अब तक 'भट शरीफ़' पर सुरक्षित रखी हुई हैं।

शाह संगीत-प्रेमी थे। वे सदैव संगीत-स्वरों में मस्त रहते थे। कहते हैं कि संगीत सुनते-सुनते उन्होंने देह त्यागी।

शाह वीतराग थे। उन्हें किसी भी वस्तु पाने की इच्छा नहीं रहती थी। कहते हैं कि उनका एक शिष्य प्रति वर्ष उनके दर्शनार्थ आता था और अपने साथ एक "खथा" (मोटा कम्बल) उपहार के तौर पर लाता था। एक बार दरिद्रता के कारण वह कम्बल न खरीद सका, अतः शाह से मिलने भी नहीं गया। अगले वर्ष जब फिर वह शाह के दर्शनार्थ गया तब शाह ने उससे पिछले वर्ष न आने का कारण पूछा। कारण सुनकर शाह ने कहा—"वह कम्बल ही क़ुर्बान, जो दोस्त को दोस्त से तड़पाए।"

सिन्धी-साहित्य-शिरोमणी शाह अब्दुल्लतीफ़ अपनी रचनाओं में लौकिकता से अलौकिकता की ओर प्रवृत्त दिखाई देते हैं। लोक-कथाओं को काव्य का रूप देकर, उन्होंने न केवल लोगों का मन बहलाया है, किन्तु साथ ही साथ उन्हें आध्यात्मिक प्रेम की ओर उन्मुख किया है। शाह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साहब सूफ़ी, रहस्यवादी और दुर्लभ आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि वाले कवि थे। उनका काव्य प्रतीकात्मक है। उनके "शाह जो रसालो" का एक-एक पद रहस्यात्मक प्रतीकवाद के ताने-बाने से बुना हुआ है। उनकी कथाओं की सांकेतिकता के दो प्रकार हैं—मानव का ब्रह्मान्वेषण और ब्रह्म की किसी विशेष मानव के लिए चाह। इन दोनों प्रकारों का निर्वाह, उनकी अनेक सुन्दर उपमाओं, रूपकों और दृष्टान्तों में हुआ है। शाह ने अपने प्रेमाख्यानों में आत्मा को नायिका के रूप में और परमात्मा को नायक के रूप में प्रस्तुत किया है। ईश्वर मिलन को आतुर आत्मा लैला, मूमल, सोहिणी, ससुई, नूरी और मारुई की भूमिकाओं में उतरी है और परमात्मा क्रमशः चनेसर, राणा, मेहार पुन्हुँ, तमाची और खेतसेन की भूमिकाओं में प्रस्तुत हुआ है।

सिन्ध के सिरताज कवि शाह में सिन्ध की सच्ची आभा तथा गरिमा दिखाई देती है। उनके काव्य के भीतरी तह में भारत का ज्ञान, योग, भक्ति एवं वैराग्य है, किन्तु बाह्य बनावट है सूफ़ियों के प्रेम की। शाह ने अपनी जन्मभूमि की आकर्षक लोक-कथाओं को अमरत्व प्रदान किया है। सिन्ध के सूफ़ी-कवियों में शाह सर्वोच्च और सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। वे विश्व के महानतम कवियों में गिने जाने के योग्य हैं।

शाह द्रष्टा एवं सिद्धपुरुष थे और उनके दोहे दिव्य सत्य के मुक्ता हैं। शाह को सिन्ध का 'हाफ़िज़' कहा जाता है, क्योंकि उनका 'रसालो' सिन्ध के लोगों के लिए अमूल्य निधि है, जिस प्रकार हाफ़िज़ का दीवान ईरान के लोगों के लिए रहा।

शाह चमत्कार से भरे तुकबन्द नहीं थे, वे सच्चे अर्थों में एक कवि थे—एक यशस्वी तथा प्रतिभाशाली कवि। उनके रूप की झाँकी देखियेः—

सुहिणी-मेहार की गाथा तथा उसका आध्यात्मिक अर्थ

सुहिणी, तुला नामक एक कुम्हार की बेटी थी जो पंजाब के एक गाँव में रहता था। मेहार का वास्तविक नाम इज़्ज़तबेग था। वह बुखारा के एक धनी व्यापारी मिर्ज़ा अली का बेटा था। उसका जन्म एक फ़क़ीर की आशीर्वाद से हुआ था तथा लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से हुआ था। जब इज़्ज़तबेग बड़ा हुआ तब व्यापार के लिए दिल्ली गया। वहाँ पर उसने तुला कुम्हार की कला की प्रशंसा सुनी। अतः उसने अपने नौकर को वहाँ पर कुछ बर्तन खरीद करने के लिए भेजा। अचानक नौकर की दृष्टि वहाँ बैठी सुहिणी पर पड़ी। उसका सौन्दर्य देख वह हक्का-बक्का रह गया और अपने मालिक से आकर उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करने लगा। नौकर द्वारा सुहिणी के रूप का बखान सुन इज़्ज़तबेग उसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देखने के लिए वहाँ गया। और उसे देखकर अपनी सुध-बुध खो बैठा। उसने बुखारा जाने का विचार ही छोड़ दिया। धीरे-धीरे उसकी सारी सम्पत्ति भी खत्म हो गई। बाद में उसने तुला कुम्हार से कुछ क़र्ज़ लिया और क़र्ज़ चुकाने के लिए उसके यहाँ नौकरी करने लगा।

एक दिन अवसर पाकर इज़्ज़तबेग ने सुहिणी को अपने हृदय की बात बता दी। सुहिणी भी उस पर मोहित हो चुकी थी। इस तरह दोनों का प्रेम पनपने लगा। परन्तु सुहिणी की माता को इस बात का पता लग गया इसलिए उसने जल्दी से सुहिणी का विवाह उसके चचेरे भाई दम के साथ कर दिया। इस बात से इज़्ज़तबेग के हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह जोगी बन चिनाब नदी की दूसरी ओर कुटिया बनाकर रहने लगा। शीघ्र ही उसके त्याग एवं वैराग्य की प्रशंसा चारों ओर फैल गई। एक दिन सुहिणी भी अपनी सहेलियों को साथ लिये उस जोगी के दर्शनार्थ गई। उसने शीघ्र ही अपने प्रियतम को पहचान लिया। अब वह हर रोज़ अर्द्ध-रात्रि के समय एक घड़े के सहारे नदी तैरकर उससे मिलने के लिए जाती थी, और सुबह होने से पहले वापस आ जाती थी।

एक दिन जब सुहिणी अपने प्रियतम से मिलने के लिए जा रही थी, उसकी ननद ने उसे देख लिया। उसने सुहिणी को बहुत समझाया पर सुहिणी अपनी ही बात पर अटल रही। एक दिन सुहिणी की ननद ने उसका पक्का घड़ा चुरा लिया और उसकी जगह पर वैसा ही एक सुन्दर कच्चा घड़ा रख दिया। प्रेम की मस्ती में सुहिणी को इस बात का पता तक न चला और हमेशा की तरह वह घड़ा लेकर नदी में कूद पड़ी। कच्चा घड़ा पानी में पड़ते ही गल गया और सुहिणी बिना तुरहे (सहारे) के, लहरों के बीच डगमगाने लगी। उसने सहायता के लिए अपने मेहार को पुकारा। मेहार ने उसकी आवाज़ पहचानी और जिस नदी में मल्लाह भी कूदने की हिम्मत नहीं कर रहे थे उसी नदी में मेहार सुहिणी की सहायता करने के लिए प्राणों की बाजी लगाकर कूद पड़ा और बड़ी कठिनाई से सुहिणी से जा मिला। इस तरह सुहिणी और मेहार दोनों ही सागर में समा गये और एक हो गये।

इस कहानी के माध्यम से बताया गया है कि प्रेम का प्रवाह समुद्र के प्रवाह से भी ज़्यादा तेज़ होता है। सच्चा प्रेमी सदैव ही प्रेम की मस्ती में डूबा रहता है। जो प्रेमी अहं को त्यागकर तथा सांसारिक भरोसा छोड़कर प्रेमसागर में कूदता है, वह समुद्र के भँवर और मगरों से नहीं डरता है। (अर्थात् आध्यात्मिक रास्ते पर चलनेवाला व्यक्ति, दुःख और कष्टों से नहीं डरता।)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्सान का अस्तित्व कच्चे घड़े की तरह है, जो बाहर से बहुत ही सुन्दर है पर भीतर से तत्वहीन एवं सारहीन है। मनुष्य का अहं ही उसके और परमात्मा के बीच की बाधा है। जब यह अहं रूपी घड़ा टूट जायगा तब सुहिणी रूपी जीवात्मा को संसार रूपी सागर में परमात्मा रूपी सहायक आ मिलेगा। मनुष्य अपनी हस्ती को मिटाकर ही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

वास्तव में परमात्मा, जीव तथा सृष्टि में कोई भेद नहीं हैं; जीव और सृष्टि दोनों परमात्मा से ही उत्पन्न हुए हैं। जिसे परमात्मा को पाने की उत्कण्ठा है, परमात्मा भी उससे मिलने के लिए बेचैन एवं व्याकुल है।

वह तिख, वाहुड़ तिख, जिति नींहुं, तिख निराली।
जिनि खे इश्क़ु अमीक़ जो, ख़िल्वत ख्याली।
वारिईं से, वाली! हिंयड़ो जिनि हथि कयो॥

समुद्र तथा नदी का प्रवाह तेज़ होता है, पर जहाँ प्रेम है, वहाँ के (प्रवाह की) तेज़ी कुछ निराली ही होती है। जिन्हें गहन प्रेम है, वे एकान्त में (परमात्मा के) विचारों में लीन रहते हैं। ऐ परमात्मा, मेरी यह तीव्र इच्छा है, कि जिन्होंने मेरे हृदय को क़ाबू कर रखा है, उन्हें तू मुझसे मिला दे।

बाहुड़ वहनि नवाँ, अग्रा वहु अग्रे थियो।
घर वेठियूँ घणा करियो, सरतियूँ! सङ्ग संवाँ।
सूरत जा साहड़ जी, सा जे ड्रिठी आँ।
हून्द न पलियो माँ, घिड़ो सभु घड़ा खणी॥

पानी के अनेक नये प्रवाह बह रहे हैं, पर तेज प्रवाह और भी आगे है। ऐ सखियो, तुम सब घर पर बैठकर प्रियतम के साथ सहज नाते का दम भर रही हो। यदि तुम लोगों ने उसकी सूरत देखी होती, तो मुझे कदापि वहाँ जाने से न रोकतीं बल्कि खुद भी घड़े लेकर (प्रेम के) समुद्र में कूद पड़तीं।

कन्धीअ उमियूँ केतिरियूँ, 'साहड़ु साहड़ु' कनि।
किन्हीं साँगो साह जो, के 'घोरियसि' कयो घिड़नि।
साहड़ु सन्दो तनि घाघाई घिड़नि जे॥

अनेक (प्रेमिकाएँ प्रेम रूपी) सागर के किनारे पर खड़ी होकर 'प्रियतम प्रियतम' पुकार रही हैं, परन्तु उनमें से कुछ को अपने प्राणों की चिन्ता है तो कुछ "मैं मर गई तो क़ुर्बान हो गई" कहकर समुद्र में कूद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पड़ती हैं। परमात्मा उन्हीं के सहायक बनते हैं जो मुस्कराते हुए गहन समुद्र में प्रवेश करती हैं।

बणनि वेठा काँग, विचीं थी वेला करे।
घिड़ी घड़ो हथि करे, सुणी सांझीअ ॿाँग।
सेई ढूंढे साँग, जिते साहड़ू सुप्रीं॥

संध्या हुई, वृक्षों पर कौए आराम करने के लिए बैठ गए। सुहिणी ने शाम की नमाज़ की बाँग सुनी और घड़ा हाथ में लेकर समुद्र में कूद पड़ी। वह उस मार्ग को ढूंढ रही है, जिस पर उसका प्रियतम परमात्मा है।

घिड़ी घड़ो हथि करे, ॿहूँ निहारे ॿँगु।
"सरदर क़दमे यार फ़िदा शुद चि बजा शुद," वसल इहोई वँगु।
राति जनियन जो रँगु, अल्लाह! से उकारिएं॥

सुहिणी घड़ा लेकर समुन्दर के रुख को अच्छी तरह परख कर कूद पड़ी। "प्रियतम के क़दमों पर सिर क़ुर्बान हुआ तो क्या हुआ?" यही मिलन-सुख का आनन्द उठाने का रहस्य है। (कवि कहते हैं) ऐ परमात्मा, मेरी यह तीव्र अभिलाषा है कि जो रात के समय आनन्द उठाते हैं (जब संसार सोता है, तब जो जागते हैं) उन्हें तू पार उतार दे।

घड़ो भग्गो त घोरियों, पाणाँ हो हिजाबु।
वाज़टु वज़े वुजूद में, रहियो रूह रबाबु।
साहड़ रे सवाबु, आऊँ घणोईं घोरियाँ॥

यदि घट टूट गया तो अच्छा ही हुआ, क्योंकि वह मेरे लिए एक रुकावट ही था। मेरी हृदय-वीणा झंकृत हो उठी है, मेरे चित्त में (अनहद) नाद बज रहा है। सचमुच परमात्मा के (प्रेम के) सिवा मात्र बाह्य धार्मिक कर्तव्य कुछ भी महत्व नहीं रखते। (इस पद में घट से तात्पर्य अहं की भावना से है। अहं के नष्ट होने के बाद ही अनहद-नाद सुनाई देता है।)

घड़ो भग्गो, मुन्ध मुई, वसीला विया।
तिहाँ पोइ सुआ, सुहिणीअ सड्ड मेहार जा॥

जब घट टूट गया, समस्त साधन नष्ट हो गये और सुहिणी का अभिमान चूर-चूर हो गया, तब ही मेहार ने उसकी पुकार सुनी (साधक भी जब सब आशा-विश्वास छोड़कर नम्र और एकनिष्ठ होकर परमात्मा को पुकारता है, तब ही उसकी पुकार परमात्मा सुनते हैं।)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पाणु न खणिजि पाण सीं, वसीला विसार।
लुड़ लँघाए सुहिणी ! पिरति विझंदीअ पारि।
से तुरतु लँघीन्दियूँ तारि, उकन्ड आग़हु जिनि सीं ।।

(सुहिणी अपने आपसे कहती है) ऐ सुहिणी, तू अपने साथ अहं की भावना मत ले तथा समस्त बाहरी साधन त्याग दे, क्योंकि केवल सच्चा स्नेह ही तुझे इस गहरे समुन्दर से पारकर सकता है। वे (जीवात्माएँ) शीघ्र ही पार हो जायेंगीं, जिनका सहारा, गहन प्रेम है।

कोन्हे आग़हु अहिड़ो, जहिड़ी मुहबत मनि।
उभियूँ ओरिएं पार ड्रें, कूड़ियूँ कख पुछंनि।
नदी तिनि नीड़ थिए, जे रीअ तुरहे तरनि।
सिक रसाणी, सुहिणी ! असलि आशक़नि।
से झलियूँ कीन कुननि, पुछनि जे मेहार खे।।

(परमात्मा को प्राप्त करने के लिए) हृदय में प्रेम के सिवा दूसरा कोई सहारा नहीं है (अर्थात् केवल सच्चे प्रेम से ही परमात्मा को पाया जा सकता है।) झूठी प्रेमिकाएं (संसार-प्रपंच में फँसी हुई जीवात्माएँ) इसी किनारे पर खड़ी होकर सागर पार करने के साधनों की पूछ-ताछ करती हैं, किन्तु जो प्रेमिकाएँ बिना किसी साधन के कूद पड़ती हैं उनके लिए यह अथाह समुद्र एक छोटा सा नाला बन जाता है ! ऐ सुहिणी, अनादि काल से लेकर प्रेमियों का सच्चा स्नेह ही उन्हें प्रियतम तक पहुँचाता रहा है। जिन्हें मेहार (परमात्मा) से मिलने की आतुरता है, उन्हें सागर के भंवर नहीं रोक पाते हैं।

पुछनि जे मेहार खे, पुछे से मेहार।
तुरहो तिनीं बारु, इश्क़ु जिनीं खे आकिरो।।

जो (परमात्मा रूपी) मेहार के लिए तड़पते हैं, मेहार भी उनके लिए आतुर रहता है। जिनके पास प्रेम का मज़बूत साधन है, उनके लिए तुरहा (अन्य साधन) बोझ स्वरूप हो जाते हैं।

साहड़ सा सुहिणी, साइरु पिणि सोई।
आहे निजोई ग़ुझु:, ग़ुझान्दर ग़ाल्हड़ी।।

(शाह साहब कहते हैं) वास्तव में जो परमात्मा है, वही सुहिणी है और वही समुद्र है अर्थात् ईश्वर, जीव और जगत् एक ही है; किन्तु यह बात गुह्य, गहन और रहस्यमयी ही है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करग़ल कोच कुन घणा, जिति जर वागू जियाईं ।
पाणु उछली आब में, वह सिरि विधाईं ।
लहरियूं लंघियाई, लुत्फ़ साणु, लतीफ़ चए ।।

जिस समुद्र में कोलाहल तथा लहरों की गर्जन थी, जिसमें अनेक मगरमच्छ एवं भँवर थे, उसी समुद्र में सुहिणी स्वयं कूद पड़ी, परन्तु परमात्मा की अनुकम्पा से वह उससे पार उतर गई ।

दहशत दम दरियाह में, जिति सटाणा सेसार ।
बेहद बाग़ू बहर में, हैबतनाकि हज़ार ।
सारियाँ कान सरीर में, ताक़त तव्हाँ धार ।
साहड़ ज़ाम सतार, सिधो रसिजि सीर में ।।

जिस समुद्र की गर्जन हृदय को दहलाने वाली है, जिसमें सहस्रों शक्तिशाली मछलियाँ, तथा अनगिनत मगरमच्छ हैं, ऐ परमात्मा ! वहाँ तेरे सिवा मैं अपने शरीर में शक्ति अनुभव नहीं करती हूँ (वहाँ तेरे सिवा स्वयं को हर तरह से निर्बल समझती हूँ ।) अतएव ऐ लाज रखनेवाले सहायक, शीघ्र ही मुझे आकर बीच समुद्र में मिलना ।

दहशत दम दरियाह में, जिति जायूँ जानारनि ।
नको सन्दो सीर जो, मपु न मलाहनि ।
दरन्दा दरियाह में, वाका कयो वरनि ।
सज़ा बेड़ा ब़ार में, हलिया हेठ वञनि ।
पुर्ज़ो पैदा न थिए, तख़्तो मझाँ तिनि ।
को जो क़हरु कुननि में, विया कीन वरनि ।
उते अणतारुनि, साहड़ ! सीर लँघाइ तूं ।।

जिस समुद्र की गर्जन भय उत्पन्न करनेवाली है, जहाँ भयानक पशुओं का निवास है, जिसकी गहराई का कोई अन्त ही नहीं है, मल्लाह भी जिसकी गहराई को नहीं जानते हैं, जहाँ रक्त के प्यासे पशु चिल्ला रहे हैं, जिसमें बड़े बड़े बेड़े (नौकाएँ) इस तरह डूब जाते हैं, कि उनका कोई पुर्ज़ा तक भी नहीं मिलता है, जहाँ के भँवर इतने भयानक हैं कि उन में फंसे हुए लोगों का पता तक नहीं चलता, वहाँ पर ऐ मददगार (परमात्मा !) तू खुद आकर उन्हें पार उतार, जो तैरना नहीं जानते हैं (अर्थात् जो निर्बल हैं और जिन्हें केवल तेरा ही सहारा है) ।

घेड़ाँ करे न घूर, तड़ तकड़ि खाँ न लहे ।
जंहिखे सिक साहड़ जीं, पूरनि मथे पूर ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कारीअ राति कुननि में, वहमंनि की वहलूर।
जंहिखे सांणु प्रियाँ जा सूर, तंहिखे नदी नाहि निगाह में ॥

सुहिणी समुद्र के बहाव को ग़ौर से नहीं जाँचती है। शीघ्रता के कारण वह सुरक्षा वाली जगह की परख नहीं करती। वास्तव में जिन्हें परमात्मा को प्राप्त करने की तीव्र उत्सुकता है, उन्हें नाना प्रकार के (परमात्मा सम्बन्धी) विचार आते रहते हैं। अन्धकारमयी रात्रि में समुद्र के भँवर में (परमात्मा सम्बन्धी) विचार आते रहते हैं। अन्धकारमयी रात्रि में समुद्र के भँवर में (परमात्मा सम्बन्धी) विचारों ने उसे हैरान कर दिया है (तात्पर्य यह कि परमात्मा के चिन्तन में वह इतनी तल्लीन है कि उसे दूसरा कुछ सुझाई नहीं देता)। जिन्हें प्रियतम के लिए सच्ची तड़प है, उनकी दृष्टि में समुद्र का कुछ अस्तित्व ही नहीं है।

जितां वहे, तितां वाट, कपर व पुछनि कूड़ियूं।
जिनखे सिक साहड़ जी, से घेड़ न पुछनि घाट।
जिन खे इश्क़ जी उसाट, से वाहुड़ भांईनि विखड़ी ॥

समुद्र के जिस ओर से सुहिणी जाती है, वहाँ उसके लिए मानों मार्ग ही है। समुन्दर की गहराई की चिन्ता तो झूठा प्रेम करने वालियों, को ही होती है। जिन्हें प्रियतम से मिलने की तड़प (बेचैनी) है वे तो न बहाव देखती हैं, न किनारा! जिन्हें प्रेम की प्यास है, वे समुद्र को एक की ही छलांग से पार करनेवाली (नाली) ही मान लेती हैं।

कंहिं जंहिं घेड़ घिड़ी, जिअं अवतड़ान तड़ थियोसि।
सालुम वेई सुहिणी, कुननि की न कयोसि।
उहिसु अखिड़ियुनि में, प्रियाँ जो पियोसि।
हक़ाँ हक़ु थियोसि, हुई तालिबि हक़ जी ॥

सुहिणी ने जिस समुद्र में प्रवेश किया, उसे पार करना वास्तव में कठिन था, पर सुहिणी के लिए (सच्चे प्रेम के कारण) वह सरल हो गया। फलतः सुहिणी सुरक्षा से पार उतर गई। समुन्दर के भँवर उसका कुछ भी बिगाड़ न सके। वह अपने प्रियतम के लिए तड़प रही थी, अतः प्रियतम की ओर से उसे न्याय प्राप्त हुआ और उसकी आँखों में प्रियतम का नूर झलकने लगा।

तोड़ी तोड़ाईं, नींहं नवाज़ी सुहिणी।
ग़िचीअ हारु हबीब जो, लाइक़ु लधाईं।
सो तड़ु सोठाईं, जेड्राहिं आलमु आसिरो ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुहिणी आदि से ही प्रेम की मारी हुई थी अतः उसने प्रियतम के गले का सुन्दर हार (मिलन का शृंगार) ढूँढकर, प्राप्त कर लिया। उसने वह रास्ता खोज निकाला, जहाँ संसार का सहारा (परमात्मा) है।

सारी सिखु सबक़ु, शरीअत संदो सुहिणी !
तरीक़ताँ तिखो वहे, हक़ीक़त जो हक़ु।
मअरिफ़त मरकु, असलु आशिक़न खे॥

(शाह साहब कहते हैं) ऐ सुहिणी, तू सर्वप्रथम शरीअत (धार्मिक कर्तव्य) का पाठ पढ़। तरीक़त (आध्यात्मिक रास्ते) से हक़ीक़त (परमात्मा के स्वरूप) का ज्ञान ज़ोरदार है। मअरिफ़त (आत्मा-परमात्मा का मिलन) प्राप्त करना आदि आशिक़ों का कर्तव्य है।

नोट—सूफ़ी मतानुसार साधक को परमात्मा तक पहुँचने के लिए चार मंज़िलें पार करनी पड़ती हैं:— १. शरीअत—यह पहली अवस्था है जिसमें साधक धार्मिक कर्त्तव्यों का पालन करता है। २. तरीक़त—यह साधना की दूसरी मंज़िल है। इस मंज़िल पर पहुँचकर साधक पढ़ी हुई धार्मिक बातों का आचरण करता है। ३. हक़ीक़त—इस मंज़िल तक पहुँचने वाले साधक को हक़ीक़त (सचाई) का पता चलता है अर्थात् उसे ब्रह्मस्वरूप का ज्ञान होता है। ४. मअरिफ़त—यह अंतिम मंज़िल है। इस मंज़िल पर साधक परमात्मा से मिलकर एक हो जाता है।

सियारे सिह रात में, जा घिड़ी वसन्दे मींहँ।
हलो त पुछूं सुहिणी, जा कर ज्ञाणे नींहँ।
जंहिं खे रातो-दींहँ, मेहारु ई मन में॥

विषम सर्दी के मौसम में रात के समय, ज़ोरदार वर्षा की परवाह न कर जिस सुहिणी ने समुद्र में प्रवेश किया, चलो, उससे प्रेम के विषय में पूछ-ताछ करें, क्योंकि वही सच्चे प्रेम की ज्ञाता है। उसके मन में दिन-रात मेहार (परमात्मा) का ही निवास है।

मुहबती मेहार जूं, दिलि अन्दर दून्हियूं।
आणियो विझे आर में, लुहाणो लूहियूं।
जे साहड़ जूं सूंहियूं, सीर सिराड़ो तिनि खे॥

जिनके हृदय में प्रियतम मेहार के लिए प्रेमाग्नि धधकती रहती है, उन्हें वह प्रेमाग्नि लाकर (प्रेम के) गहन समुद्र में फेंकती है। जिन्हें परमात्मा का ज्ञान है, उनके लिए बीच समुद्र धरती सा बन जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अदियूं ! सभ अन्दाम, चड़नि मुंहिंजा चोरिया ।
लारुनि जा लँव लाई, सा कीअँ आछियाँ आम ।
लग्रियस जंहिं जे लाम, सो दिलासा दोस्त मुंजे ।।

ऐ सखियो, मेहार के (प्रेम रूपी) घंटियोंने मेरे शरीर के समस्त अंगों को स्पन्दित कर दिया है । इन घंटियों ने जो प्रेम की भावना मेरे हृदय में जागृत की है, उसका वर्णन मैं आम लोगों से किस तरह करूँ ? जिस (परमात्मा) का भरोसा मैं लिए हुए हूँ, वह प्रियतम मुझे हर तरह से आश्वासन भेज (दे) रहा है।

कारा कुनकारी तुग्री, जत कारेहर कड़िका ।
मई मते महिराण में, अचनि दुपारा दड़िका ।
वीन्दे साहड़ साम्हाँ, झोल ड्रिनसि झड़िका ।
खरिकिनि जा खड़िका, सूंहाँ थियड़सि सीर में ।।

अंधकारमयी रात्रि में, अंधकारमय भंवर में, जहाँ वासुकी नाग की तरह दहकाने वाली भयानक गर्जन हो रही है, मस्त सागर में जहाँ दोनों ओर से (आगे और पीछे से) ख़तरे दिखाई दे रहे हैं, ईश्वर की ओर जाती हुई सुहिणी को भयानक लहरें पटक रही हैं, वहाँ (प्रेम रूपी) घंटियों की आवाज़ उसे बीच समुद्र में सहायक हुई है । (तात्पर्य-प्रेम की घंटियों की आवाज़ में तल्लीन सुहिणी भयानकता का अनुभव तक नहीं करती) ।

हुन भरि सुयमि होइ, सुते संभारनि जी ।
चितु चड़नि चोरियो, जौंक थियड़मि जोइ ।
मुहबती मेहार जी, बाल्लाह पियमि बोइ ।
वञी रूअबरूअ, देखियाँ दोस्त मेहार खे ।।

(सुहिणी कहती है) मैंने इस पार (संसार में) सोते हुए अचानक प्रेम का शोर सुना । (प्रेम रूपी) घंटियों ने मेरे चित्त को जागृत किया और स्नेह ने मेरे हृदय में निवास किया । परमात्मा की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मुझे प्रियतम मेहार की सुगन्ध का अनुभव हुआ है, अतः मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मैं प्रत्यक्ष जाकर मेहार का दीदार करूं ।

मेहाराँ मिरक, पीताईं प्रेम जी ।
तंहि मुन्ध मतवाली की, सन्दीअ साअ सुरिक ।
लग्रियसि काम किरिक, लोहाँ तिखी लतीफ़ चए ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाह साहब फ़रमाते हैं—सुहिणी ने मेहार से उस प्रेम-सुधा का पान किया है, जिसके स्वाद ने उसे मस्त बना दिया है। उसे लोहे से भी तेज़ प्रेमरूपी बाण लगा है।

घिड़िया से चढ़िया, ईंअ अथेई।
मए मते महिराण में, पौ टिपो ड्रेई।
त मेहारु मिलेई, संभूड़ो सेणाह सीं॥

देखा गया है कि जो (प्रेम रूपी) समुद्र में कूद पड़ते हैं, वे ही पार उतरते हैं। अतः तू इस गहन सागर में कूद पड़ तो तुझे भी मेहार, समुद्र पार करने के साधन (तुरहों) सहित उपस्थित मिलेगा। (अर्थात् जो जीवन की बाज़ी लगाकर परमात्मा से मिलने के लिए चल पड़ते हैं उन्हें परमात्मा आकर सहायता देता है।

अखियूं मुह मेहार ड्रें, रखियूं जिनि जोड़े।
रे सन्ड, सय्यदु चए, तारि घिड़नि तोड़े।
तिन्हीं खे ब्रोड़े, साअरु सघे कीन की॥

शाह कहते हैं—जिन्होंने अपनी आँखें मेहार (प्रियतम) से जोड़ रखी हैं, वे यद्यपि विना तैरने के साधन के भी गहन सागर में कूद पड़ती हैं, फिर भी सागर उन्हें डूबो नहीं सकता है; अर्थात् जिनका परमात्मा में अटल विश्वास है, उनका संसार-सागर कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता है।

जेहर लोकु झप करे, जरो जाग्र न होइ।
ओहीर अचियो, अदियूं! पहु प्रियाँ जा पोइ।
जे कचो चवनिमि कोइ, त मरकु भाँयाँ महिणो॥

(सुहिणी कहती है) ऐ सखियो, जिस समय लोग गहन निद्रा में सोये रहते हैं, उस समय प्रियतम के विचार मुझे बेचैन बना देते हैं। यदि लोग मुझे ताने मारते हैं, तो उसमें भी मैं गर्व का अनुभव करती हूँ (अर्थात् सच्चे प्रेमी, समाज की निंदा एवं आलोचना की परवाह तक नहीं करते।)

दाइमु जा दरियाह में, सा मछी किनी कोहु?
आहिस ई अन्दोह, पाणी किथे त पियाँ॥

मछली जो सदैव ही समुद्र में रहती है, फिर भी उसमें से दुर्गन्ध क्यों आती है? उसे चिन्ता है कि पानी कहाँ से पियूँ। (मनुष्य अज्ञानी इसी कारण है कि वह हर जगह व्यापक परमात्मा के प्रकाश को पहचानता नहीं है और उसे पाने के लिए भटकता रहता है।)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अखियूं पेर करे, वञिजे वो वञिजे ।
सुप्रियाँ जी ग़ाल्हड़ी, कंहिं साँ कीन कजे ।
लिकाए लोक खाँ, गुझड़ी ग़ोठ निजे ।
महबतीअ मेहार जो, सूरु न कंहिं सलिजे ।।

प्रियतम की ओर आँखों से चलकर जाना चाहिए। महबूब के प्रेम की चर्चा किसी से भी नहीं करनी चाहिए बल्कि उसे लोगों से छिपाकर अपने (हृदय रूपी) गाँव में रखनी चाहिए। प्रियतम के प्रेम की पीड़ा का भेद किसी से न कहना चाहिए।

खामाँ, पचाँ, पञुराँ, लुछाँ ऐं लोचाँ ।
तन में तौंस प्रियनु जी, पियाँ, न डापाँ ।
जे समुंड मुँहं करियाँ, तोइ सुरक्याई न थिए ।।

(सुहिणी विरह-व्यथा का वर्णन करती कहती है) मैं प्रियतम के लिए दुखी, व्यग्र और बेचैन हूँ, मैं तड़प रही हूँ। मेरा अन्तर प्रियतम को पाने के लिए इतना प्यासा है कि यदि मैं पूरा समुद्र भी पी जाऊँ, तो वह मेरे लिए एक घूँट तुल्य भी न होगा।

कारी रात, कच्चो घड़ो, ऊणटीह ऊँदाही ।
चण्ड नालो नाहि को, दरियाह दड़ लाई ।
साहड़ कारण सुहिणी, आधीअ थी आई ।
ए कमु इलाही, न त कुननि में केरु घिड़े ?

उनतीस (तारीख़) की अंधकारमयी रात्रि हैं, सुहिणी के पास कच्चा घड़ा है। चन्द्रमा का नामोनिशान नहीं है और समुद्र गरज रहा है। सुहिणी आधी रात के समय प्रियतम से मिलने के लिए समुद्र के किनारे आयी है। (शाह साहब फ़रमाते हैं) यह सब परमात्मा की दी हुई प्रेरणा से ही हुआ है, अन्यथा वह कैसे इस भयानक भँवर में कूद पड़ने की हिम्मत करती।

ओरारि न परारि, वेचारी वह विच में !
सुकीअ ड्रिनी सुप्रीं, ब्रियो मिड़ोई तारि ।
तूं घिड़ु, कीम निहारु, ब़ूड्रन्दनि सी ब्राझूं करे ।।

बिचारी सुहिणी न इस पार है, न उस पार; बल्कि बीच समुद्र में गोते खा रही है। उसका प्रियतम उस पार किनारे पर खड़ा है किन्तु बीच में केवल पानी ही पानी है। (कवि कहते हैं) ऐ सुहिणी तू यहाँ-वहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मत देख, बल्कि भीतर प्रवेश कर (अर्थात् अन्तर्मुखी हो)। परमात्मा डूबने वालों पर ही दया करता है।

सुकीअ बुडनि जे, साहडु साणी तिनि जो।
लहरिन सिरि लतीफ़ु चए, कुल्हनि चाढ़ियो ने।
जे पुछनि पन्धु परे, तिनि उमाणे ओरहूँ॥

जो साधक पृथ्वी पर ही डूबते हैं (अर्थात् समुद्र में प्रवेश करने से पहले ही अपने शरीर का मोह त्याग देते हैं।) उनका परमात्मा मददगार होता है। वह उन (साधकों) को अपने कन्धे पर चढ़ाकर लहरों से पार उतार देता है। जो उस पार के विषय में पूछते हैं, उन्हें वह (परमात्मा) उस पार इतनी शीघ्रता से पहुँचाता है कि वे अनुभव करते हैं कि वह (मंज़िल) अत्यन्त ही समीप थी।

सांभारा सड कयो, उभा चवनिमि : "आउ"।
हिकु तिखो ई तारि वहे, ब्रियो, लुड़ लहरियूं ऐ वाऊ।
साणी जिनि अल्लाह, बुझाँ से न बुडन्दियूं॥

(सुहिणी कहती है) मेरा महबूब उस पार खड़ा, मुझे पुकार कर कह रहा है, "यहाँ आ।" पर एक तो गहन समुद्र तेज़ी से बह रहा है, तेज़ लहरों का शोर मचा हुआ है तथा तूफ़ान ज़ोरों से लग रहा है किन्तु मैं समझती हूँ कि जिनके साथ प्रियतम (परमात्मा) है वे कदापि न डूबेंगी।

हारी! हक़ु रखीजि, सांभारा साहड़ जो।
ख़्वाब, ख़्याल, ख़तिरा, तिनि खे तर्कु ड्रिईजि।
अन्दर आईनो करे, परि में सो पसीजि।
इन्हींअ राह रमीजि, त मुशाहिदो माणीं॥

ऐ नादान! उस पार खड़े प्रियतम की पहचान रखना। जो तेरे हृदय में भ्रम, भुलावा एवं भय हैं उन सबको त्याग दे। अपने हृदय को दर्पण की भाँति उज्ज्वल बना और उसी में उसे (प्रियतम को) देख। जब तू यह रास्ता अपनाएगी तब ही तू उसके दर्शन का आनन्द उठाएगी।

कच्चे साणु कही, पको पुछे न सुहिणी।
लंघियो लुडु लतीफ़ चए, वछारनि वही।
सा कीअँ नींह नहे? जंहि खे नींह नधो खणी॥

सुहिणी कच्चा घड़ा लेकर समुद्र की ओर जाती है, उसे पक्के घड़े की परवाह नहीं है। वह तेज़ सागर से गुज़र कर मेहार की ओर जा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रही है। भला जिसे ईश-प्रेम ने अपने वश में कर लिया है, वह कैसे अन्य प्रेम के वश में हो सकती है ?

कच्चो ताँ कोहु ? पको नज़रु प्रींअ जो।
साहुड़ु मुंहिंजो सुप्रीं, ॾम ॾिठेई ॾोहु।
जे छटो जे छोहु, त पूरीन्दियसि पारि मणी ।।

(सुहिणी कहती है) यह घट कच्चा है तो क्या हुआ ? प्रियतम की दृष्टि तो पक्की और मज़बूत है (अर्थात् यदि साधक पर परमात्मा की कृपा-दृष्टि है, तो साधन चाहे कितना भी कमज़ोर हो, उसकी उसे चिन्ता नहीं रहती) परमात्मा मेरा प्रियतम है, सांसारिक बिषय वासनाओं को देखना भी गुनाह है। चाहे तेज़ आँधी चलती हो, या तेज़ सागर बहता हो, फिर भी मैं उस पार अवश्य जाऊंगी।

तन खे कढे तारि माँ, सुलहु साहड़ु जो।
उति आड्रो अचे कीन की, ब्रेलीपो ब्रिअे जो।
मेहर ! कजि मुंहिंजो, को ओकरु कन्हीं आरताँ ।।

प्रियतम की अनुकम्पा ही इस शरीर (जीव) को (संसार रूपी) सागर से पार कर सकती है। यहाँ दूसरे किसी का सहारा काम नहीं आता। अतएव ऐ मेहार ! तू ही मुझे इस सागर से मुक्ति दिला।

लहरिन लख लिबास, पाणी पसणु हेकिड़ो।
ऊन्हें तंहिं अमीक़ जी, वारे छद्र विमास।
जिति नाहि निहायत नींह जी, खोइ उत पंहिंजी खास।
तड़नि जी तलाश, लाहि त लालन लग्गि थिएं ।।

यद्यपि पानी एक है किन्तु लहरों के लाखों रूप है (उसी तरह परमात्मा एक है पर उसके अनेक रूप और रंग हैं)। अतः (ऐ साधक) तू इस गहन सागर का सोच-विचार ही त्याग दे। जहाँ प्रेम का कोई अन्त नहीं है, वहाँ तू अपनी समस्त इच्छाओं को भी नष्ट कर दे। सुरक्षित स्थान की खोज करना छोड़ दे तो तू परमात्मा के समीप पहुँचेगा।

नको सन्धो सूर जो, नको सन्धो सिक।
अददु नाहि इश्क़ु, पुज़ाणी पाण लहें ।।

न दर्द का कोई अन्त है, न स्नेह का ही कोई अन्त है। वास्तव में स्नेह अकथ है, वह अपना अंत स्वयं ही जानता है। (दूसरा कोई उसका अंत नहीं पा सकता है)। (तात्पर्य यह कि प्रेम चाहे कितना भी गहन हो, फिर भी वह अपूर्ण ही है। वास्तव में प्रेम का अन्त पाना असंभव ही है, क्यों कि वह परमात्मा की तरह ही बेअन्त है।)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साहड़ धाराँ सुहिणी, आहे में आज़ारु ।
ड्रम पासे में डुखन्दो, सिहत वटि संघार ।
तोड़ीअ सन्दे तन जी, दवा में दीदार ।
जे पसे मुंहं मेहार, त सिघ्याई सघी थिए ।।

(सुहिणी के प्रेम की प्रशंसा करते हुए शाह साहब फ़र्माते हैं) प्रियतम के सिवा मानो सुहिणी अस्वस्थ है। ड्रम (सांसारिक विषय वासनाओं) के समीप वह मानो रोगग्रस्त है किन्तु मेहार (परमात्मा) के समीप वह हर तरह से रोग-मुक्त (स्वस्थ) है। सुहिणी के शरीर की पुष्टि (शक्ति) प्रियतम का दीदार है, यदि वह उसका मुखड़ा देखे, तो शीघ्र ही स्वस्थ हो जाए।

जाँ जाँ हुई जीअरी, वेठी न वेसान्दि ।
लुढ़ी लहरिन पाँदि, मुयाई मेहार ड्रे ।।

जब तक सुहिणी जीवित थी, तब तक वह चैन से नहीं बैठी अर्थात् प्रियतम को पाने का यत्न करती रही। मरने के समय भी वह लहरों के आँचल में मेहार (परमात्मा) की ओर बढ़ती रही।

सुर यमन कल्याण

'यमन' का अर्थ है "मन को नियन्त्रित" करना। इस स्वर में शाह साहब ने बताया है कि मन को वश में किस प्रकार किया जा सकता है। उनका कहना है कि क्रोध दुःख का मूल है और संतोष में ही सुख समाया हुआ है। जिनके सम्पर्क से मन की कलुषिता बढ़ती है, उनसे किनारा करना चाहिए, पर जिनके सम्पर्क से मन पवित्र होता है, उनके समीप कुटिया बनाकर रहना चाहिए।

इस स्वर में शाह साहब ने सूफ़ियों की विशेषताओं का भी वर्णन किया है। वे कहते हैं सच्चा सूफ़ी संसार से दूर आध्यात्मिक मस्ती में मस्त रहता है। वह धार्मिक बन्धनों से आज़ाद है तथा सदैव अपने मन पर संयम रखता है। सूफ़ी बनने के लिए उसे ज़हर का लबालब प्याला पीना पड़ता है। उसकी दृष्टि में यह संसार तिलिस्म का घर है, भ्रम एवं धोखा है, परन्तु अहं में डूबे रहने के कारण जीव इस सत्य से अनजान ही रहते हैं।

तूं हबीबु, तूं तबीबु, तूं दर्द जी दवा ।
जानिब ! मुंहिजे जीअ में, आज़र जा अनवा ।
साहिब ड्रे शिफ़ा, मियाँ मरीज़नि खे ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(शाह साहब परमात्मा से कहते हैं) तू ही मेरा प्रियतम है, तू ही मेरा वैद्य है, तथा तू ही मेरे दर्द की दवा है। ऐ प्राणाधार! मेरा मन अनेक प्रकार के (सांसारिक) दुःखों से दुखी है। ऐ साहब! तू ही मुझे इस बीमारी से मुक्ति दे।

कानारिया कुणिकनि, जनीं लोहु लिङनि में।
मुहबत जे मैदान में, पिया लाल लुछनि।
पाणहीं ब्रधनि पटियूं, पाणहीं चिकिया कनि।
वटाँ वाडोड़ियनि, रही अचिजे रातिड़ी।।

जो (प्रेम रूपी) तीर से घायल हो गये हैं, जिनके हृदय में (विरह रूपी) लोहे की नोक वाला तीर लगा है वे तड़पते रहते हैं। जो प्रेम के रंग में रंगे हुए प्रेम के मैदान में बेचैन और व्यग्र होते रहते हैं, जो स्वयं ही अपने घावों की मरहमपट्टी करते रहते हैं तथा अन्य इलाज करते रहते हैं, काश ऐसे प्रेम से घायल लोगों के पास एक रात जाकर रहें।

आयलि! उन न विसहाँ, हंजूं जे हारीनि।
आणियो आबु अख्युनि में, ड्रेह खे ड्रेखारीनि।
सज्रणु जे सारीनि, से नकी रुअनि, न चवनि की।।

(कवि सच्चे एवं झूठे प्रेमियों के बीच का अंतर बताते कहते हैं) ऐ माता, मैं उन (प्रेमियों) पर विश्वास नहीं करता जो प्रकट रूप से अश्रु-धारा बहाते हैं तथा आँखों में आँसू भरकर संसार को दिखाते हैं, किन्तु प्रियतम को याद करनेवाले न तो रोते हैं, न मुख से उफ़ तक कहते हैं।

तन तबीब न तूं, सुधि न लही सूर जी।
साँढ पंहिंजा डबड़ा, खड्र खणी मे भून।
कान घुरिजे मूँ, हयाती होतनि रे।।

(सच्चा प्रेमी सांसारिक वैद्य से कहता है) ऐ वैद्य! मुझे जो बीमारी है, उसका इलाज तू नहीं कर सकेगा। तू मेरे दर्द को पहचान ही नहीं सकेगा, अतएव तू अपनी समस्त औषधियाँ एक गड्ढे में दफ़ना दे, क्योंकि मुझे अपने प्रियतम के सिवा यह जीवन ही नहीं चाहिए।

आहे घणो अघनि जो, तर्सु तबीबनि।
कयो वसु ब्रेज्रनि, ताँ किरीअ रे कीन थिए।।

(सद्गुरु रूपी सच्चे वैद्यों का वर्णन करते कवि कहते हैं) वैद्यों को रोगियों (सांसारिक रोगग्रस्त लोगों) पर दया आती है और वे नाना तरह के उपचार बताते हैं, पर परहेज़ न करने के कारण रोग नष्ट नहीं होता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(तात्पर्य यह कि सच्चे पथ-प्रदर्शक सांसारिक रोगग्रस्त जीवों पर दयाकर उन्हें उससे मुक्त होने के नाना प्रकार के साधन बतलाते हैं पर वे उन पर आचरण नहीं करते) ।

पाड़े वेज्ञ हुआमि, ताँ मूँ मूर न पुछिया ।
तेलाहीं पियामि, मोरेसर अख्युनि में ॥

मेरे पड़ोस में ही (आध्यात्मिक-पथ-प्रदर्शक रूपी) वैद्य थे, परन्तु उनसे मैंने (परमात्मा के विषय में) कुछ पूछ-ताछ नहीं की, यही कारण है कि मेरी आँखों में मोतियाबिन्द पड़ गए हैं (अर्थात् मुझे स्वरूप-ज्ञान नहीं है) ।

वढे जिनि विधियासि, वरी वेज्ञ ई से थिया ।
तुर्तु ब्रधाऊँ पटियूँ, रोज़ि कयाऊँ रासि ।
हींअड़ा तिन्हीं पासि, घारि त घायलु न थिएं ॥

जिन्होंने मुझे घायल कर दिया था (अर्थात् जिन्होंने मेरे हृदय में प्रियतम के लिए प्रेम जागृत कर, तड़प पैदा की थी) वे ही बाद में मेरे वैद्य बन गए (परमात्मा से संयोग कराने में सहायक हुए) । शीघ्र ही मेरी मरहम-पट्टी की (परमात्मा से मिलने का रास्ता बताया) और एक ही दिन में मुझे ठीक कर दिया (ज्ञान की आँखें खोल दीं) । ऐ दिल ! तू अब उन्हीं वैद्यों (सद्गुरुओं) के समीप रह, जिससे फिर तुझे किसी तरह का घाव न लगे ।

सरु जो सत्रियो, सज्ञणिनि, ब्रेहर ब्राणु भरे ।
छिम्कियो सो छोह माँ, कड़ि कड़ि कानु करे ।
जेरा जिगरि बुकियूं, लंघे पियो परे ।
लग्गो जीअ जड़े, ताणियाँ तीरु न निकिरे !

प्रियतम ने दुबारा (प्रेम रूपी) तीर ऐसा कस कर मारा कि वह तेज़ी से छम-छमकर मेरे जिगर, गुर्दा आदि को पार कर चला गया । वह तीर मेरे हृदय में ऐसे धँस गया है कि निकालने पर भी नहीं निकलता है ।

पतंगु चाईं पाण खे, त अची आग्गि उझाइ ।
पचण घणा पचाइया, तूं पचण खे पचाइ ।
वाक़ुफ़ि थी विसाइ, आग्गि न ड्रिजे आम खे ॥

(शाह साहब प्रेमी से कहते हैं) यदि तू अपने को पतंग कहलाता है तो आकर आग को बुझा (अर्थात् परमात्मा से मिलने का प्रयत्न कर विरह रूपी आग को बुझा दे ।) इस आग ने अनेकों को जलाया है पर तू इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आग को आत्मसात् कर (अर्थात् विरहरूपी अग्नि को सहर्ष सहन कर) सावधान रह, इस (विरहाग्नि) को अपने नियन्त्रण में रख, उसका भेद लोगों को मत दे।

जे ततो तनु तनूर जिअं, त छण्डे साणु छमाइ।
आणे आग्रि अदब जी, ब्रारे जानि जलाइ।
बुरक़ुआँ अन्दरि बाज़ियूँ, पंहिंजूँ सभु पचाइ।
लुछणु लंव, लतीफ़ चए, पधरि हद्रि म पाइ।
मतां लोक लखाइ, वसालान विच पए।।

लतीफ़ साहब (प्रेमी को परामर्श देते) कहते हैं, यदि तेरा हृदय भट्ठी की तरह तपा हुआ है, तो उसे संतोष का जल डालकर शीतल कर। संयम की आग जलाकर उसी में अपने को जला। छिप-छिप कर (आध्यात्मिक) क्रीड़ा करता रह। अर्थात् आध्यात्मिक मंज़िलों को पार करता रह। अपनी व्याकुलता को कदापि प्रकट मतकर, कहीं ऐसा न हो कि लोगों को तेरे प्रेम का पता चल जाय जिससे तेरे (प्रियतम से) मिलने में बाधा आ जाय।

सिरु ड्रेई सटि जोड़, कंहिं पर कलालनि सीं।
काती करटु कपार में, खंजरु आणे खोड़ि।
मरणां मुंहं म मोड़, वटी थी वधि लहे।।

(शाह साहब प्रेमी से कहते हैं) अपना सिर तक देकर साक़ी बाला से किसी भी तरह सौदा कर ले। अपने सिर में तलवार, ख़ंज़र, आरा आदि चुभा ले। मरने से मुख मत मोड़ क्योंकि (प्रेम के) प्याले का मूल्य सिर से भी अधिक है अर्थात् सिर देने से भी यदि प्रेम मिलता है तो इस सौदे को सस्ता समझ।

सूफ़ी सालिम से विया, जे अक्सर सी अद्वयार।
बाज़ी बाज़िन्दनि खे, आहे अवेसार।
प्रियाँ सीं पहकार, रिन्दीअ रसाणी कया।।

संसार से किनारा करनेवाले सूफ़ी, सुरक्षा से पार हो गए। सूफ़ियों को प्रेम की क्रीड़ा कभी भूलती ही नहीं है। प्रेम की उस मस्ती ने उन्हें प्रियतम तक पहुँचा दिया है।

सूफ़ी लाकोफी, कोन भांइयसि केरु।
मंझियाँ ई मंझि विढ़े पधर नाहिस पेरु।
जिन्यनि साणुस वेरु, तिन्यनि जो वाहरु।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(शाह साहब सूफ़ियों की विशेषताएँ बताकर कहते हैं) सच्चा सूफ़ी धार्मिक बाह्याडम्बरों से मुक्त रहता है अतः कोई उसकी महानता को नहीं बूझता है (अर्थात् दिखावे से मुक्त होने के कारण लोग उसकी महानता से अनजान रहते हैं)। वह भीतर ही भीतर अपने मन से लड़ता रहता है, पर इस बात को रत्ती भर भी प्रकट होने नहीं देता है। जो उसके वैरी हैं, उनका भी वह समर्थक तथा सहायक होता है।

जे कुलाह रुखी कन्ध ते, त सूफ़ी सालमु थीउ।
विह वटी हथि करे, पुर प्यालो पीउ।
हन्धु तिन्यनि जो हीउ, जिनि हासुल कयो हाल खे॥

(ऐ सूफ़ी) यदि तू सिर पर सूफ़ियानी टोपी पहनता है, तो सही अर्थों में सूफ़ी बन। हाथ में विष का प्याला पकड़, उसे पूरा पान कर ले। यह जगह उन्हीं की है जिन्होंने आध्यात्मिक मस्ती प्राप्त की है (अर्थात् आध्यात्मिक-मस्ती-प्राप्त लोग ही सूफ़ी बन सकते हैं।)

आलम आऊँ साणु, भरियो थो भीर करे।
पाण न आहे ज्ञाणु, मान्डीअ मन्डु पखेड़ियो॥

सारा विश्व अहंकार के नशे में झूम रहा है। उसे यह ज्ञान तक नहीं कि यह समस्त माया उसी जादूगर (परमात्मा) की ही है।

पढ़ियो था पढ़नि, कढ़नि कीन क़लूब में।
पाणाँ द्रोह चढ़नि, जीअं वरक़ वराईनि वितरा॥

मूर्ख जीव पृष्ठ पर पृष्ठ पढ़ते रहते हैं, पर हृदय में उन बातों का मनन नहीं करते (अर्थात् आचरण नहीं करते)। अतः जैसे-जैसे वे पृष्ठ उलटते जाते हैं, वैसे-वैसे अपने पर ज़्यादा अपराध (पाप) भी चढ़ाते जाते हैं।

अखरु पढ़ अलफ़, जो वरक़ सभि विसारि।
अन्दर तूं उजारि, पन्ना पढ़ँदे केतिरा॥

(शाहलतीफ़ परामर्श देते हैं) ऐ जीव, केवल अलफ़ (अल्लाह) का अक्षर पढ़, बाकी सभी पृष्ठ भुला दे। केवल अपने हृदय को उज्जवल कर क्योंकि कितने पृष्ठ पढ़कर कितने पढ़ता जायगा?

जे हू पाईनि कानु कमान में, त सीनो सिपर रखु।
मुंहं में माशूक़नि जा, चाक चटिका चखु।
सूरीअ भांइ म शकु, आशिक़ु थीउ त उबहीं॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(शाह साहब सूफ़ी को संबोधित करते हैं) यदि वह (प्रियतम परमात्मा) धनुष पर तीर चढ़ाता है तो तू अपने हृदय को ढाल बनाकर उसके सामने रख दे। महबूब के दिये हुए दुखों तथा यातनाओं को सहन कर। शहादत पर किसी प्रकार का संदेह मत कर (अर्थात् शहादत से निसंदेह ही प्रियतम की प्राप्ति होती है)। तू सच्चा स्नेही बन तो तुझे सफलता तथा विजय मिले।

पाए कानु कमान में मियाँ मार म मूँ।
मूँ में आहीं तूं, मतां तुहिंजो ई तोखे लग्गे।।

ऐ प्रियतम, धनुष पर बाण चढ़ाकर मुझे मत मार, क्योंकि मेरे अन्तर में तेरा ही निवास है, अतएव कहीं ऐसा न हो कि तेरा तीर तुझे ही लगे।

मुहबत जे मैदान में, सिर जो कर म सांगु।
सूरीअ सुप्रियनि जी, चढु त थिएं चांगु।
इश्क़ु आहे नांगु, ख़बर खाधनि खे पवे।।

(शाह साहब सूफ़ी से कहते हैं) प्रेम के मैदान में तू अपने सिर की परवाह मत कर। प्रियतम के (प्रेम रूपी) शूली पर चढ़ जा तो तुझे सच्चा स्वास्थ्य प्राप्त हो (अर्थात् तेरा जीवन सफल हो)। वास्तव में प्रेम, सर्प की भाँति है, जिसे वे ही जानते हैं, जिन्हें इसने डंक मारा है।

अञा तो मंझाँ, कख छुते रतु निकिरे।
मुंह में महबूबनि जा, कीअं झलींदीअं घाव।
सो तू कुञाड़िया, सिकण जूँ सिधूँ करीं।।

(ऐ सूफ़ी) तेरे शरीर से तो मात्र तिनके के स्पर्श से ही ख़ून निकलता है तो फिर प्रियतम द्वारा दिये दुःखों को कैसे सहन कर सकेगा? क्यों व्यर्थ स्नेह की रट लगाए हुए हो?

जेकी सिकणु सिखु, नात पसु सिकन्दिएं।
पासे तिनीन म लिकु, नींहुं न सुञाणनि जे।।

(ऐ सूफ़ी) या तो स्नेह में तड़पना सीख या तो तड़पने वालों को देख। परन्तु जो प्रेम की तड़प से अपरिचित हैं, उनके समीप मत छिप।

आशिक़! माशुक़नि जो, वठी वेहु दुकाणु।
पइजि पेशु प्रियुनि जे, पटीअ विझी पाणु।
त तूं तनीनि साणु, सदा रहीं सुरख़रो।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐ प्रेमी ! तू महबूब के मार्ग को पकड़कर बैठ जा। प्रियतम के आगे गले में आँचल डालकर मस्तक झुका ले तो सदैव ही सम्मानित रहेगा।

सूरु जिनीनि खे सरियो, सरी तिनि सिहत।
मिठी मुसीबत, आहे आशिक़नि खे ।।

जिन्हें दुःख मिलते हैं, उनका ही बाद में हित होता है। यही कारण है कि प्रेमियों को मुसीबतें प्यारी लगती हैं।

नमी खमी निहारि तूं, डुमरु ड्रोलाओ।
थीए साञाओ, जे उभिएं इन्हीअ पेर ते।।

(ऐ सूफ़ी) नम्रता और क्षमा को अपना कर चल, क्योंकि क्रोध से दुःख और उलझनें प्राप्त होती हैं। यदि तू इस व्यवहार पर दृढ़ रहे, तो तुझे वास्तविक पहचान प्राप्त हो जायगी।

खमु ! खमन्दनि खटियो, हारायो होड़नि।
चखियो न चून्दनि, हो जो साउ सबिर जो।।

(ऐ सूफ़ी) धैर्य धारणकर, क्योंकि धैर्य धारण न करनेवालों ने बाज़ी हार दी है। बकवास करनेवालों ने तो धैर्य का स्वाद चखा तक नहीं है।

वेठे जिनीनि वटि, डुखन्दो ड्राढो थिए।
सा मजिलस ई मटि, जे हासिलु होइ हज़ार जो।।

(ऐ सूफ़ी) जिनके सम्पर्क से दुःख बढ़ जाते हैं, उनसे दूर रह, चाहे तुझे हज़ारों रुपयों का भी फ़ायदा हो।

वेठे जिनीनि वटि, डुखन्दो दूरि थिए।
तन ! तिनीनि सी कटि, ओड्रा अड्रे पखड़ा।।

ऐ मेरे शरीर (जीवात्मा!) जिनके सम्पर्क से दुःख दूर हो जाते हैं, उनके ही समीप कुटिया बनाकर तू अपना जीवन गुज़ार।

सुर खम्भात

'सुर खम्भात' को गुजरात के खम्भात शहर के मशहूर गवैये ने बनाया इसलिए इसे स्वर खम्भात कहा जाता है। इस स्वर में शाह साहब ने अपने प्रियतम परमात्मा के सौंदर्य व उदारता का वर्णन किया है और बताया है कि इन्सान में तो अनेक दोष व त्रुटियाँ हैं परन्तु परमात्मा दयालू एवं सहनशील है। चाहे पूर्णिमा का चन्द्रमा सहस्त्र शृंगार कर ही उदय हो पर प्रियतम के सौंदर्य के सामने उसका सौंदर्य बिल्कुल फीका पड़ जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

परमात्मा के अनुपम (अर्थात् जिसके सदृश उत्तम कोई नहीं) स्वरूप के वर्णन के अतिरिक्त शाह साहब ने इस स्वर में इन्सान के मन का भी अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। शाह साहब ने मन की तुलना ऊँट से की है क्योंकि दोनों में बहुत ही साम्य है। जिस तरह ऊँट चन्दन, अगर आदि सुगन्धित पेड़ों की टहनियों से मुख मोड़कर आक के पत्ते और लाणी (निम्न कोटि की घास जो स्वाद में नमकीन व कड़ुई होती है) ही खाता है, उसी तरह इन्सान का मन भी सुखदायी आध्यात्मिक बातों से दूर रहकर दुखदायी सांसारिक विषय-वासनाओं की ओर ही भागता रहता है। ऊँट को चाहे मोतियों की माला, रेशम तथा स्वर्ण के ज़िरह ही क्यों न पहनाए जाएं, फिर भी वह अपनी आदत से बाज़ नहीं आता; इस कारण ज़ंजीर ही उसके लिए ठीक रहती है। ऊँट की तरह मानव-मन भी बड़ा कमीना है और वह तब ही सुधरता है जब निरंतर उस पर अंकुश रखा जाता है तथा उसे संयमित करने की कोशिश की जाती है। पर मन की एक विशेषता है कि यदि एक बार वह वश में हो जाता है तब वह जीव को शीघ्र ही प्रियतम के पास पहुँचा देता है, फिर तो उसका मूल्य ही बढ़ जाता है। तात्पर्य यह कि स्वच्छन्द मन शैतान की तरह जीव को अधोगति के गर्त में धकेल देता है; पर संयमित मन फ़िरिश्तों की तरह उसे आकाश की सैर कराता है।

भलाई आहीनि, प्रियनि भलाईअ पांहिजी।
सब्राझा सिरि चढ़ियो, ड्रोरापा न ड्रियनि।
माँ ड्रे मदियूं थियनि, सज़ण सज़ायनि में॥

(शाह साहब परमात्मा की महानता का वर्णन करते कहते हैं) प्रियतम अपनी श्रेष्ठता के कारण सम्पूर्ण रूप से महान है। वह इतना तो दयालू है कि कभी भी किसी तरह का मुझे उपालम्भ नहीं देता। मुझ में तो समस्त बुराइयाँ ही हैं, किन्तु मेरा प्रियतम अच्छाइयों से ही परिपूर्ण है।

चोड्हींअ चन्ड ! तूं उभिरीं, सहसे करिएं सींगार।
पलक प्रियाँ जे न पड़ीं, जे हीलनि करिएं हज़ार।
जहिड़ो तू सभ ज़मार, तहिड़ो दमु दोस्त जो॥

ऐ चौदहवीं के चाँद ! चाहे तू सहस्र शृंगार कर उदय हो, फिर भी लाख प्रयत्न करने पर भी प्रियतम के संग के एक पल की भी बराबरी नहीं कर सकता है (अर्थात् प्रियतम के सौंदर्य की मात्र एक पल की झलक के सामने तेरा पूरा सौंदर्य फीका पड़ जाता है।) तेरी सारी आयु का प्रकाश प्रियतम के एक पल के प्रकाश-सदृश है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सहसे सिजनि उभरी, चौरासी चम्डनि ।
वाल्लाह रे प्रियनि, सभ ऊन्दाही भाइयाँ ।।

(शाह साहब प्रियतम के सौंदर्य का वर्णन करते कहते हैं) ख़ुदा की क़सम ! यदि सहस्र सूर्य एवं चौरासी चन्द्रमा उदय हों, फिर भी मैं प्रियतम के सिवा समस्त सृष्टि को अन्धकारमय ही समझूंगा ।

चन्ड ! तुहिंजी ज़ाति, पाड़ियाँ न प्रियुनि सीं ।
तूं अछो में राति, सज्रण नितु सोझिरा ।।

ऐ चन्द्रमा ! मैं तेरे सौंदर्य को प्रियतम के सौंदर्य के बराबर नहीं समझता हूँ क्योंकि तू केवल रात्रि के समय ही चमकता है, किन्तु मेरा प्रियतम तो सदैव ही चमकता रहता है ।

चम्ड ! चवाएँ सचु, जे मठी न भाइएं ।
कद्रहिं उभिरीं सम्हड़ो, कद्रहिं उभिरीं ग्रचु ।
मुंहं में ब्ररेई मचु, तो में नाहि पेशानी प्रींअ जी ।।

ऐ चन्द्रमा ! यदि तुझे बुरा न लगे तो मैं तुझे एक सच्ची बात कहूँ । तू कभी कम, तो कभी ज़्यादा रहता है । तेरे चेहरे में चमक तो है पर प्रियतम की सी चमक नहीं है (तात्पर्य यह कि प्रियतम के सौंदर्य के आगे चन्द्रमा का सौंदर्य हर तरह से तुच्छ है ।)

करहा ! कसर छड्ड, विख वधन्दी पाइ ।
मुंहिंजो हलणु उतहीं, जिते जानिब जाइ ।
तोखे चन्दनु चारियाँ, ब्रियो वग्रु, लाणी खाइ ।
ईंएं ऊठ ! ऊठाए, जींअ हून्दीअ राति हुति मिड़ू ।।

(शाह साहब अपने मन रूपी ऊँट से कहते हैं) ऐ (मनरूपी) ऊँट! आलस्य त्यागकर शीघ्रता से चल (अर्थात् प्रियतम को पाने के लिए साधन कर) । मैं तो वहीं जाना चाहता हूँ जहाँ प्रियतम का निवास है । मैं वहाँ चलकर तुझे चन्दन खिलाऊँगा जब कि दूसरे लाणी (कड़वी घास) ही खाते हैं (अर्थात् यदि मन जीव को परमात्मा से मिला देता है तब तो वह संसार में रहकर भी शीतल सुगन्धित चन्दन (आनन्द) का उपभोग करता है, जबकि दूसरे विषयवासना रूपी कड़ुवी घास ही खाते रहते हैं ।) ऐ (मन रूपी) ऊँट ! तू मुझे इस तरह से उठाकर चल कि मैं आज की रात ही प्रियतम से जा मिलूँ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कसर छड्डि कन्वाट! विखूं विझु वधन्दियूं।
संईं सुप्रियनु जी, विंगी भाइ म वाट।
छड्डि झूरी, ड्रे झाट, त हून्दीअ रातु हुत मिड़ूं॥

(शाह-साहब अपने मन रूपी ऊँट को सम्बोधित करते कहते हैं) ऐ जवान ऊँट, आलस्य त्याग और शीघ्रता से चल। प्रियतम के सरल-सीधे मार्ग को तू टेढ़ा-मेढ़ा व कठिन मत समझ। ढीलापन त्याग और इतनी शीघ्रता से चल (इतनी ज़्यादा साधना कर) कि आज रात को ही जाकर मैं अपने प्रियतम से मिलूं।

आणे ब्रधुमि वण जाइ, मान मुखरियूँ चरे।
कुधातुरो करहो, लिकियो लाणी खाए।
इन मए सन्दी, माइ! मूंखे ग़ाल्हड़ियनु ग़ोड़हा कयो॥

(शाह साहब अपने मन रूपी ऊँट की ढिठाई का वर्णन करते कहते हैं) कि मैंने अपने (मनरूपी) ऊँट को फूलों के वृक्षों से बाँध दिया ताकि बह फूल खाए (अर्थात् सुखदायी आध्यात्मिक परिवेश में रखा ताकि आत्मानन्द रूपी फूलों का उपभोग करे।) किन्तु यह दुष्ट छिप-छिपकर जाकर कड़ुवी घास (सांसारिक विषय-वासना) ही खाता है। ऐ माता! इस ऊँट के कृत्यों ने मुझे हर तरह से परेशान कर दिया है।

ऊठ न वञे वग़ सीं, चरे न चाँगो।
लग़ोसि नाउक नींह जी, निहोड़ियो नाँगो।
छड्डे सिर साँगो, रिढ़े रंदि प्रियनि जी॥

शाह साहब अपने संयमित मन की प्रशंसा करते कहते हैं) कि मेरा (मनरूपी) ऊँट अपने अन्य साथियों के साथ चरने नहीं जाता, (अर्थात् अन्य ऊँटों की तरह सांसारिक विषय-वासनाओं की ओर नहीं जाता,) क्योंकि उसे प्रेम का ऐसा तीर लगा है जिसने उसे (उसके अहं को) नष्ट कर दिया है। अब वह अपनी जान की परवाह न कर प्रियतम की ओर ही जाता है।

करहे खे कईं, विधमि पैद पलण जा।
लीड़ो लाणीअ खे चरे, नियर साण नईं।
चाँगे सन्दी चित में, साहबु! विझु संईं।
ओबाहियोसि अईं, लुतफ़ साणु लतीफ़ु चए॥

शाह लतीफ़ कहते हैं मैंने अपने मनरूपी ऊँट को वश में करने के लिए अनेक तरह से बाँध दिया है, पर वह जंजीरों से बंधा हुआ भी जाकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लाणी (कड़ुवी घास) ही खाता है (अर्थात् मन को अनेक तरह के साधनों से परमात्मा की ओर लगाता हूं किन्तु वह दुष्ट सांसारिक विषय-वासनाओं में ही मस्त रहता है)। ऐ परमात्मा! तू ही इस (मन रूपी) ऊँट को सुमति दे और अपनी अनुकम्पा से इसे सीधे रास्ते पर ला।

चाँगे चई चुक्यासि, मथां अक न उल्हे।
जंहि वलि घणा विहाटिया, उनसीं आरि लग्यासि।
चोधारी चन्दन वण, पची पूज़ प्यासि।
रुआरे रतु कयासि, हिन कुधातूरे करहे॥

मैं अपने (मन रूपी) ऊँट को समझा-समझाकर थक गया हूँ कि आक के पत्तों पर मत टूट (सांसारिक विषय-वासनाओं में मत फँस)। जिस (विषय-वासना रूपी) वल्लरी ने अनेकों की सुध-बुध नष्ट कर दी है, उसी के साथ जाकर इस (ऊंट) का नेह लगा है। चारों तरफ चन्दन के वृक्ष विकसित हैं। इस दुष्ट (मनरूपी) ऊंट ने तो मुझे ख़ून के आंसू बहाने पर मजबूर कर दिया है।

किनीं कामण कयाइ? कीअं भन्भोलिएं? करहा।
अख्युनि मथे अख्या, पिड़ में पेर गठाइ!
वग़ कि विसरियाइ? ब्रधो जिएं घाणे वहीं॥

(शाह साहब अपने मन रूपी ऊँट से पूछते हैं) ऐ ऊँट, तुझपर किसने जादू-टोना कर दिया है कि तू ख़ुद को भी भूल बैठा है? तेरी आँखों पर (अज्ञान के) पर्दे लगे हुए हैं तथा तेरे पैर (संसार रूपी) चक्की में फँसे हुए हैं। तू अपने हितैषियों को भूलकर कैसे (सांसारिक) चक्की में कोल्हू के बैल की तरह भटक रहा है?

खाए न खटणहार, चन्दन जा चूपा करे।
अगर ओद्रो न वञे, सिरखण्ड लहे न सार।
लाणीअ जी लग़ार, मयो मतारो कयो॥

(शाह साहब अपने दुष्ट मनरूपी ऊंट की दुष्टता का वर्णन करते कहते हैं) मेरा (मनरूपी) ऊँट, खटणहार (सफ़ेद प्रकार के फूल) नहीं खाता तथा चन्दन में से दोष निकालकर उसे थूक देता है। वह 'अगर' (सुगन्धित डाली) के समीप तक नहीं जाता तथा चन्दन को तो पूंछता तक नहीं; पर लाणी (कड़वी घास) के चस्के ने इसे हर तरह से मस्त बना दिया है (तात्पर्य यह कि सुखदायी आध्यात्मिक बातों की ओर नहीं जाता, पर दुःखदायी सांसारिक विषय-वासनाओं में ही मस्त रहता है।)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चाँगा चन्दनु न चरीं, मया ! पिएं न मोक।
अगर ओड़ो न वञीं, थुकियो छड्रिए थूक।
लाणी विचाँ लोक, तो कहिड़ी अखरि आउड़ी ?

(शाह साहब अपने मन रूपी ऊँट को सम्बोधित करते कहते हैं) ऐ ऊँट ! तू न चन्दन खाता है, न बहता हुआ पानी पीता है। अगरु जैसी सुगन्धित डाली) के तू समीप नहीं जाता तथा उच्चकोटि के पकवानों को तू थूक देता है। ज़रा बता कि किस कारण पूरी सृष्टि में तुझे लाणी (कड़ुवी घास) ही अच्छी लगती है ?

सध्यनि सेण न हूनि, नींहु न्यापे न थिए।
कारीअ राति रत फुडा, जाँ जाँ नेण न रूनि।
मोटण जनीं मीहणो, पिड़ ते सेई पूनि ।।

(शाह साहब कहते हैं) मात्र तमन्ना करने से प्रियतम नहीं मिलता। मात्र संदेश भेजने से ही प्रेम की पूर्ति नहीं होती। जब तक अंधेरी रात्रि में नेत्र ख़ून के आँसू नहीं बहाते (तब तक प्रियतम नहीं मिलता।) प्रेम के रास्ते पर वे ही क़दम रखें जो उस रास्ते से वापस लौट जाने में हीनता का अनुभव करते हों।

तोणे तड़िएँ तूं, या अला ! तो दरु तोइ न छड्रियाँ।
मूं खे सो मुशाहिदो, जे मुँह न ड्रिएं मूं।
मूं ब्रिया दर घणा निहारिया, आहिइँ तूं ई तूं ।।

ऐ परमात्मा ! चाहे तू मुझे अपने द्वार से धकेल दे फिर भी मैं तेरा द्वार न छोड़ूंगा। तेरी उपेक्षा भी मेरे लिए दीदार है। मैंने दूसरे बहुत से द्वार भेंटे हैं पर वास्तव में केवल तू ही मेरा आधार है।

"ससुई-पुन्हू की गाथा तथा उसका आध्यात्मिक अर्थ"

नाऊँ नामक एक ब्राह्मण था, जिसकी पत्नी का नाम था मुन्धर। बुढ़ापे में इस दम्पति के घर में एक कन्या पैदा हुई, जिसके सौंदर्य के आगे चन्द्रमा भी शरमा जाता था। इतनी सुन्दर कन्या की प्राप्ति पर भी ब्राह्मण दम्पति को प्रसन्नता नहीं हुई क्योंकि उसका विवाह किसी अजनबी से लिखा था। परिणामतः ब्राह्मण दम्पति ने भविष्य में होने वाली बदनामी से बचने के लिए, उस कन्या-रत्न को पेटी में डालकर समुद्र में बहा दिया। सौभाग्यवश वह पेटी तैरती हुई भंभोर के समीप समुद्र के किनारे जा पहुँची, जहाँ वह, प्रसिद्ध तथा धनी महमुद नामक एक धोबी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को हाथ लगी। महमुद के अपनी सन्तान न थी, अतः वह उस सुन्दर बालिका को देखकर ख़ुशी से झूम उठा और उसका नाम रखा ससुई जिसका अर्थ है चन्द्रमा। महमुद धोबी के पास अपार धन था अतः उसने अपनी लाडली बेटी ससुई के लिए एक भव्य महल बनाया, जहाँ ससुई अपनी सखियों सहित उछलती-कूदती रहती थी।

उस ज़माने में केच देश के क़ाफ़िले व्यापार के लिए भंभोर में आते थे। एक बार पुन्हू नामक एक बड़ा सम्पन्न व्यापारी अपने भाई चनरे के साथ क़ाफ़िला लेकर भंभोर पहुँचा, जहाँ उसकी भेंट ससुई से हुई। प्रथम दृष्टि में ही दोनों प्रेम के सूत्र में बन्ध गए।

ससुई ने अपने हृदय की बात अपनी सखी से की, जिसने ससुई के पिता के पास जाकर, सब कुछ बता दिया। महमुद-धोबी ने आरम्भ में अपनी लाडली बेटी का विवाह एक परदेशी तथा ग़ैर-जाति वाले पुन्हू के साथ करने से इन्कार कर दिया, किन्तु समझाने-बुझाने पर, बाद में वह राज़ी हो गया और बड़ी धूम-धाम से उसने ससुई की शादी पुन्हू से कर दी। शादी के पश्चात् पुन्हू ने अपने देश में जाने का विचार ही त्याग दिया।

किन्तु पुन्हू के भाई चनरे ने अपने देश जाकर पुन्हू का समस्त हाल पिता को सुनाया। पिता पुत्र के वियोग में बेहाल हो गया। यह देख उनके अन्य तीन पुत्रों ने उसे सान्त्वना देकर कहा कि वे भंभोर जाकर शीघ्रातिशीघ्र पुन्हू को किसी न किसी युक्ति से वापस ले आयेंगे।

जब तीनों भाई भंभोर पहुँचे, तब ससुई के पिता ने उनका हार्दिक स्वागत किया। उनके सत्कार में रोज़ रात को महफ़िलें सजने लगीं। एक रात महफ़िल में पुन्हू के भाइयों ने पुन्हू को ख़ूब शराब पिलाई और बेसुधी की हालत में उसे ऊँट पर लादकर अपने वतन के लिए प्रस्थान किया। नींद में डूबी हुई ससुई को इस बात का पता तक न चला। सुबह जब उसे मालूम हुआ कि पुन्हू के भाई उसे ले गये हैं, तब वह अत्यन्त ही दुखी हुई और भंभोर से अपने नाते तोड़कर, मुसीबतों की चिन्ता न कर, अकेली ही पुन्हू को पर्वतों और जंगलों में ढूंढ़ने निकल पड़ी। रास्ते में भूख-प्यास के मारे बेसुध हो जाती, किन्तु होश आते ही फिर चल पड़ती थी। कभी-कभी ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों की चढ़ाई देख वह भयभीत हो जाती, किन्तु दूसरे ही क्षण हिम्मत बाँधकर आगे चल पड़ती।

चलते-चलते ससुई को एक ऊँचे पहाड़ पर एक झोपड़ी दिखाई दी। वह पुन्हू के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करने के लिए शीघ्रता से वहाँ पहुँची, किन्तु उस झोपड़ी में रहने वाले व्यक्ति ने ज्यों ही ससुई को देखा, त्यों ही उस पर मोहित हो गया। ससुई ने उसके मन के कुविचार को शीघ्र ही भाँप लिया, दूसरा कोई चारा न देखकर उसने अपने सतीत्व की रक्षा के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लिए परमात्मा को पुकारा। पुकार में कुछ ऐसा जादू था कि उसी समय पहाड़ फट गया और ससुई उसके भीतर समा गई। यह घटना देखकर वह व्यक्ति डर गया, उसे अपने किये पर पश्चाताप हुआ; फिर वहाँ ससुई की क़ब्र बनाकर उसकी पूजा करने लगा।

वहाँ पुन्हू को जब होश आया और उसे पता चला कि उसके भाई उसे भगाकर ले जा रहे हैं, तब शीघ्र ही उसने भंभोर की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में उसे वही क़ब्र दिखाई दी जिस पर ससुई का दुपट्टा बिछा हुआ था। पुन्हू ने वह पहचान लिया और पूछ-ताँछ करने के लिए वहाँ जा पहुँचा। क़ब्र की पूजा और देखभाल करनेवाले व्यक्ति ने उसे पूरा हाल बता दिया। सुनते ही पुन्हू ससुई के विरह में बावला सा हो गया और क़ब्र पर सिर फोड़कर परमात्मा से प्रार्थना करने लगा— ऐ मालिक, बिछड़े हुओं को फिर से मिला। परमात्मा ने उसकी पुकार सुनी; पहाड़ फिर फट गया और पुन्हू भीतर समा गया तथा सदैव के लिए ससुई से एक हो गया।

इस गाथा के द्वारा शाहसाहब ने यह रहस्य प्रकट किया है कि जब जीव अपनी आत्मा में झाँककर देखता है, तब वह स्वयं परमात्मा हो जाता है। ससुई को भ्रम ने धोखा दिया था, अन्यथा वह खुद पुन्हू थी। वह इन्सान भी भ्रम में है जो परमात्मा को ससुई की तरह जंगलों और पहाड़ों में ढूंढ़ने के लिए जाता है। वास्तव में ससुई-पुन्हू (आत्मा और परमात्मा) एक है, उनमें कोई दूरी नहीं है, अतः जुदाई भ्रम मात्र है।

शाहसाहब के अनुसार सच्चा जिज्ञासु ससुई की तरह दुःखों, कष्टों, संकटों और बाधाओं में ज़रा भी विचलित नहीं होता है। उसके प्रेम में एक ऐसी शक्ति रहती है, जिससे वह जंगल और पहाड़ों तक को भस्म कर देता है। सच्चे जिज्ञासु को अपने प्रियतम के लिए सदैव ही सतर्क रहना चाहिए, वह यदि ससुई की भाँति सो जायेगा, तो उसका पुन्हू-परमात्मा उससे दूर चला जायगा। ससुई की राह की कठिनाइयों का वर्णन कर शाहसाहब यह संदेश देना चाहते हैं कि आशिक़ों को आध्यात्मिक राह पर चलते हुए हृदय-विदारक मुसीबतों से डरना नहीं चाहिए, बल्कि हिम्मत से आगे बढ़ना चाहिए। उन्हें अपनी ख़ुदी नष्ट कर देनी चाहिये क्योंकि पूर्ण सद्गुरु का पद अत्यन्त ही ऊँचा है। जिज्ञासु तब तक उसके पास नहीं पहुँच सकता है, जब तक वह अपने अहं को नष्ट नहीं करता है।

शाहसाहब ने पुन्हू को शाही ख़ानदान तथा ससुई को नाचीज़ धोबिन बताकर यह सिद्ध किया है कि पुन्हू-परमात्मा जिसके समान कोई दूसरा नहीं, जिज्ञासु के सौंदर्य पर मस्त होता है, न कि उसके कुल और जाति पर; और सच्चा जिज्ञासु भी ससुई की तरह हर पल, हर क्षण परमात्मा की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुनय-विनय कर अपनी अयोग्यता का प्रदर्शन तथा प्रियतम के गुणों एवं उदारता का बखान करता रहता है।

ससुई-पुन्हू की गाथा द्वारा शाहसाहब ने एक ओर ससुई रूपी जीवात्मा की पुन्हू रूपी (परमात्मा) के लिए तड़प दिखाई है तो दूसरी ओर पुन्हू-परमात्मा की ससुई रूपी विशेष जीवात्मा के लिए चाह दिखाई है। पुन्हू का सर्वस्व त्यागकर ससुई के लिए भटकना, परमात्मा का विशेष जीवात्मा के लिए भटकना है। ससुई का निवासस्थान भंभोर इस जहान का प्रतीक है, जिसमें सदैव ही धुंआ उठा रहता है अर्थात् माया का भ्रम छाया हुआ रहता है। जिसने इस असत्य संसार को ससुई की तरह त्याग दिया उसने ही मुक्ति प्राप्त की, किन्तु जो इससे चिपक बैठा उसे दुःखों के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला।

शाहसाहब ने ससुई पुन्हू की गाथा पर पाँच स्वर लिखे हैं—स्वर आबरी, स्वर मैज़ूरी, स्वर देसी, स्वर कोह्यारी और स्वर हुसेनी। सभी स्वरों में ससुई के कष्टों तथा आध्यात्मिक मंज़िल का वर्णन है।

"स्वर आबरी"

इस स्वर के आरम्भ में शाहसाहब ने ससुई की प्रेम-पिपासा का वर्णन किया है। वास्तव में प्रेम की पिपासा रहस्यमयी होती है—पिपासा जो तृप्त होना नहीं जानती, चाहे सारा सागर ही बड़े-बड़े घूंट करके क्यों न पिया जाय। ससुई की प्रेम पिपासा भी ऐसी है, जो पीने से और भी बढ़ जाती है, बुझती नहीं। इसी स्वर में शाहसाहब ने ससुई की कमजोरी का भी वर्णन किया है। ससुई द्वैत की भावना में भूली हुई है, यही कारण है कि वह पुन्हू को अपने भीतर झाँककर नहीं देखती, बल्कि उसे वन, पर्वतों में ढूंढ़ती रहती है।

पसी झाज्ह जमाल जी, जिनीं पीती पिक।
अपर अग्ानिझो थियो, सूरु उनीनि खे सिक।
हद्रि न भग्रियनि हिक, सदा साइर सीर में॥

शाहसाहब ससुई की अमिट प्रेम-पिपासा देखकर कहते हैं—जिन्होंने प्रियतम के अथाह सौंदर्य और प्रेमरूपी सागर से एक घूंट भी पी लिया है, उन्हें अनन्त तड़प और स्नेह घेर लेते हैं। यद्यपि वे सदैव ही उस प्रेम-सागर के बीच में पड़े रहते हैं, फिर भी उनकी पिपासा कभी भी तृप्त नहीं होती।

मुहबत सन्दो मन में, पुरु प्यालो जिनि।
पियण पर्चाऊ नाहि को, कंहि जंहि द्राहि द्रभनि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तंहिं निहायत नाहिका, जंहिं सुञा सुञ वञनि ।
तेलां उञ मरनि, सदा साइर सीर में ।।

जिनके (हृदय-रूपी) प्याले (प्रेम से) लबालब भरे हुए हैं, वे किसी ऐसी आग में जलते रहते हैं कि उन्हें चैन तक नहीं मिलता। जिस (प्रेम के) सुनसान रास्ते से वे (सच्चे आशिक़) जा रहे हैं, उस रास्ते का कोई अन्त ही नहीं है। यद्यपि वे प्रेमरूपी सागर की बीच धारा में पड़े हुए हैं, फिर भी प्यास से मर रहे हैं; तात्पर्य यह कि प्रेम की प्यास अनोखी प्यास है जो बुझना नहीं जानती, बढ़ना ही जानती है।

साजन कारणि सुञ, मरु क़बूली ससुई ।
अन्दरि जिनीं उञ, पाणी उञियो उन खे ।।

(शाह साहब ससुई के प्रेम की प्रशंसा करते कहते हैं—) ससुई जैसी प्रेमिका ही प्रियतम के लिए सुनसान सफ़र (कठिन यात्रा) क़बूल करती है। वास्तव में जिनके भीतर प्रेम पिपासा है, उनके लिए पानी को भी प्यास है तात्पर्य यह कि जो जीवात्मा परमात्मा के लिए तड़पती रहती है, प्रियतम-परमात्मा भी उसको पाने के लिए बेचैन रहता है। तभी तो कहा जाता है कि प्रेम दोनों ओर से होता है, एक ओर से नहीं।

पाणीअ मथे झूण्ड़ा, मूरख उञ मरनि ।
साहाँ ओड्रो सुप्रियनि, लोचे ताँ न लहनि ।
दमु न सुञाणनि, दान्हूँ कनि मुठनि जिए ।।

मूर्ख (अज्ञानी जीव) पानी के ऊपर झोंपड़े बनाकर भी प्यासे मरते हैं। यद्यपि प्रियतम उनके प्राणों से भी समीप है, फिर भी वे उसे ढूंढ़ नहीं पाते हैं। उन्हें अपने (चेतन) प्राणों तक का कुछ भी ज्ञान नहीं है, अतः वे पागलों की तरह केवल चिल्लाते रहते हैं।

लग्गे कोसो वाडउ, लोकु मिड़ोई लहसियो ।
अुभनि मंझाँ आयो, हय-हय जो हुग्गाउ ।
तेवरनि तब्वारियो, पुन्हू पुञाणाउ ।
रस्यो सूरु शबान खे, वहूशनि वटाउ ।
मिरुअनि मौतु कबूलियो, अपर अफसो साइ ।
बर पिणु कनि बुकाउ, उकन्ढिया आरीअ लइघणो ।।

ससुई पुन्हू की विरहाग्नि में जल रही है, उसका प्रभाव प्रकृति पर भी पड़ रहा है। शाहसाहब उसी का वर्णन करते कहते हैं—) ऐसी (विरहरूपी) गर्म लू चली कि सारी सृष्टि मानों दग्ध हो उठी। आकाश से हाय-हाय की आवाज़-सी आने लगी। पुन्हू के चले जाने के बाद पक्षी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक विलाप करने लगे। भेड़िये अपनी भेड़-बकरियों को गर्मी के मारे बेचैन देखकर, दुःखी हुए। पशुओं ने दुःख के कारण मरना स्वीकारा; यहाँ तक कि मरुभूमि भी पुन्हू के लिए तड़पती हुई मानों रो रही थी।

पसी डून्गर ड्राहि, जिम हलण में हीणी वहीं।
लाम्चे लक लतीफ़ चऐ, पुठीअ केच्युन काहि।
पुछी पूरजि ससुई, बलोचाणी बाहि।
इन वड़ाइते वर जी, आसर हद्रि म लाहि।
जो अखिऊँ ओड्रो आहि, सो प्रियनि पराम्हूँ म चओ॥

शाहसाहब ससुई (सच्चे जिज्ञासु) से कहते हैं— ऐ दासी, तू पर्वत देखकर पीछे मत लौटना, तू गुफाएँ पार कर केचियों (अर्थात् केच से आने वाले पुन्हू और उसके भाई) के पीछे दौड़ती जा। ऐ ससुई! पुन्हू की प्रेमाग्नि से भलीभाँति परिचित होकर आगे जा। उस गुणवान पति का विश्वास कदापि न त्याग। जो प्रियतम, आँखों से भी अधिक समीप है, उसे दूर मत कह। (तात्पर्य यह कि सच्चे जिज्ञासु को आध्यात्मिक रास्ते पर चलते समय दुःख और कष्टों की परवाह नहीं करनी चाहिए; बल्कि परमात्मा पर निष्ठा और विश्वास रखकर साधना के रास्ते पर अग्रसर होना चाहिए।)

हिताँ खणी ह्रुति, जिनि रखियो से रस्यूं।
साजनु सुम्हँ सुतं, विखाँई वेझी घणो॥

जिन (जीवात्माओं) ने अपना चित्त यहाँ (संसार) से लेकर वहाँ (परमात्मा की ओर) रख दिया, वास्तव में वे ही जाकर अपनी मंज़िल पर पहुँचीं। प्रियतम जो पूर्ण सुन्दर तथा ज्ञान-रूप है, वह एक क़दम से भी ज़्यादा समीप है, अर्थात् परमात्मा इतने समीप है कि उसे पाने के लिए एक क़दम तक उठाने की ज़रूरत नहीं है।

वाक़ुफु न वणिकारु जी, पाणी खन्युमि न पाउ।
जबलु जल्दायूं करे, तिख ड्रेखारे ताउ।
लग्गे लुक लतीफ़ चए, मैज़ूरिनि मथाउ।
उते ओड्रो आउ, जिति होत हेकली आहियाँ॥

(ससुई कहती है—) मैं गहन वनों की जानकार नहीं हूँ। मैंने अपने साथ (रास्ते के लिए) पाव भर पानी तक नहीं उठाया है (अर्थात् मैंने अपने साथ किसी भी तरह का साधन नहीं लिया है।) पर्वत शीघ्रता से तप रहा है और अपना ताप मुझे दिखा रहा है। मुझ बिचारी अबला

के ऊपर लू बह रही है। ऐ प्रियतम, मैं अकेली हूँ, अतः तू शीघ्र ही आकर मुझसे मिल।

वेचारीअ वणिकारु, अग्गु न द्विठो कद्दहीं।
महिर न हुई माड़ुहीनि, हो सभु हिन्दूकारु।
जतु कयाई यारु, सूरनि कारणि सतियूँ॥

(शाहसाहब ससुई के दुःख का वर्णन करते कहते हैं— बिचारी ससुई ने पहले कभी वह वन (आध्यात्मिक रास्ता तथा उसकी कठिनाइयाँ) आँखों से नहीं देखा था। मनुष्यों के हृदय में दया नहीं थी, चारों तरफ केवल अंधकार फैला था। ऐ सखियो, लगता है कि ससुई ने दुःख प्राप्त करने के लिए ही पुन्हू को अपना प्रियतम बनाया है।

पुन्हू छद्दियो पोइ, जानिबु जबलु ग्गोल्हीं।
तेलान्हीनि तन्गूं करिएँ, जेलान्हीनि तूं जोइ।
साज्ञनु सुञ निहारिईं, दुखी द्रोहु कयोइ।
हाड़हो होतु न होइ, वरी पुछु वेठियुनि खे।
वरी पुछु वेठियुनि खे, सन्दा पुन्हूअ पार।
साज्ञनु सभु ज्ञमार, दुखी द्वोरिजि द्वील में॥

(शाहसाहब ससुई से कहते हैं—) ऐ ससुई, (जिज्ञासु) तू पुन्हू (परमात्मा) को पीछे छोड़कर, अब पर्वतों में उसे ढूँढ़ रही है? जिस हालत में तू ने पुन्हू के साथ प्रेम भरी बातें की हैं, उस हालत में तुझे उसे सूने में ढूंढ़ना शोभा नहीं देता। ऐ दुःखों की मारी, तू जो अपने प्रियतम को सूने (वीराने) में ढूंढ़ रही है, वह महान् अपराध कर रही है। तेरा प्रियतम पर्वतों में नहीं है, अतः तू लौटकर उन लोगों से उनका पता पूछ जो एक ही जगह पर बैठे हैं। ऐ दुखिया, तू जीवनपर्यन्त अपने महबूब को अपने हृदय में ही ढूंढ़।

कोन्हे उति कोह्यारु, जिति तो, भोरी भांइयो।
पन्धु म करि पहाड़ द्वे, वुजुदु ई वणिकारु।
धारिया भांइजि धार, पुछु प्रियाँकर पाणु तूँ॥

ऐ भोली ससुई, तेरा पुन्हू वहाँ नहीं है, जहाँ तू समझ रही है। पर्वत की ओर मत जा क्योंकि (परमात्मा रूपी) हरियाली तेरे भीतर ही है। परायों को पराया ही समझ. प्रियतम का समाचार अपने से ही पूछ।

सभेई सारे ससुई, घर कुन्डूँ तू घोरि।
वञी दूरि म द्वोरि, दरा मंझि दोस्तु थियो॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐ ससुई, तू अपने (हृदय रूपी) घर के सब कोने अच्छी तरह जाँच-परख कर देख। प्रियतम को दूर जाकर मत ढूंढ क्योंकि वह तो तेरे भीतर ही है।

वञीं छो वणिकारु ? हिति न ग़ोल्ई होत खे।
लिको कीन लतीफ़ चए, ब्रारोचो ब्रिए पारि।
थीउ सती, ब्रधु सन्दिरो, प्रिति पुन्हूअं सी पारि।
नान्ई नेण निहारि, तो में देरो दोस्त जो।।

शाहलतीफ़ कहते हैं, (ऐ ससुई) तू वन की ओर क्यों जा रही है ? अरी यहीं नहीं अपने प्रियतम को ढूंढती ! तेरा बारोचल (पुन्हू) किसी दूसरी ओर छिपा हुआ नहीं है। तू सत्य पर दृढ़ रहकर हिम्मत बाँधकर पुन्हू से प्रेम निबाह। तू दृष्टि झुकाकर अपने अन्तःकरण में झाँककर देख (तब तुझे मालूम होगा) कि तेरे प्रियतम का निवास तुझमें ही है।

हलु हिएं सीं होत ड्रे, पेरें करि म पन्धु।
राई पुछु म रन्दु, रिड़िहु रूहानी ससुई।।

ऐ ससुई, केवल पैरों से नहीं बल्कि हृदय से प्रियतम की ओर चल। तू पर्वत की रेत में से प्रियतम का रास्ता मत ढूंढ, पर हृदय के रास्ते से उसकी ओर चल।

सिधाइती सभका, बुख न बासे का।
जेहीअ तेहीअ जाति जी, जुम्बशि कान्हे जा।
मूँ साँ हले सा, जा जी मिठू न करे।।

हरेक (जीवात्मा, परमात्मा को) पाने की इच्छुक है, पर भूखों मरना कोई नहीं स्वीकारती (अर्थात् परमात्मा को प्राप्त करना सभी चाहते हैं, पर कष्ट सहने के लिए तैयार नहीं होते)। ऐसे जिज्ञासु को इस रास्ते पर चलने की हिम्मत तक नहीं है। (ससुई सखियों से कहती है—) मेरे साथ वही चल सकती है, जिसे प्राणों का मोह बिल्कुल नहीं है।

अज़ु मलीन्दियुसि माइ ! धाज़ा कन्दियुसि कपड़ा।
जीजाँ ! जोग़ियाणी थियाँ, मूँ खे झल म पाइ।
होत ब्रूरोची लाइ, कनें कुनरि पाइयाँ।।

(ससुई अपनी माँ से कहती है—) ऐ माता, आज मैं अपने वस्त्र धोकर भगवे वस्त्र धारण करूँगी अर्थात् सांसारिक बातें त्यागकर परमात्मा की प्रेमिका बन अपना जीवन सफल करूँगी। ऐ माँ, मुझे संन्यासिन बनने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से मत रोक। मैं अपने प्रियतम के लिए संन्यासियों की तरह कानों में कुण्डल भी पहरूँगी (अर्थात् सभी तरह के कष्ट सहन करूँगी)।

पहरीं तूँ पारेजि, पारणु पोइ पुन्हूअ ते।
ब्रोलु म विसारीजि, हू जो कयुइ होत सीं॥

(ससुई अपने मन से कहती है—) तू पहले अपने वचन का पालन कर फिर पुन्हू से उसके वचन पालने की आशा रख। जो प्रण तूने प्रियतम से किया है, उसे मत भूल।

सिज्ञ उल्थे ससुई, रत वरणो रोइ।
पहे न पाँधी को, जंहिं कर पुछे लोइ।
मूड़ही वञे तोइ, मोटण जी कान करे॥

सूर्यास्त के समय ससुई ख़ून के आँसू बहा रही है। उसे न कोई दूत और न कोई पथिक ही दिखाई दे रहा है कि जिससे वह पुन्हू के देश का पता पूछे। वह घबड़ा गई है, फिर भी पीछे लौटने के लिए तैयार नहीं है। (ससुई की तरह सच्चे साधक साधना के पथ पर निरन्तर चल कर कभी-कभी सोच में पड़ जाते हैं पर फिर भी पीछे लौटने के लिए तैयार नहीं होते।)

मोटी मराँ न माइ! मोटण खाँ अग्रे मराँ।
लुछी लालन लाइ, शाल पवन्दियसि पेर ते॥

(ससुई माँ से कहती है—) ऐ माता, मेरी यही अभिलाषा है कि मैं पीछे लौटने के बाद न मरूँ, बल्कि लौटने से पहले ही नष्ट हो जाऊँ (तात्पर्य यह कि सच्चा जिज्ञासु परमात्मा की खोज में ही मृत्यु पाना चाहता हैं।) काश! मैं प्रियतम के लिए तड़प-तड़पकर उसके पदचिह्नों पर ही प्राण दे दूँ।

पेही जाँ पाण में; कयमि रूह रहाणि।
त नको डूंगरि ड्रेह में, न का केचियुनि काणि।
पुन्हू थियसि पाण; ससुई ताँ सूर हुआ॥

ससुई कहती है कि ज्यों ही मैंने अपने भीतर झाँककर आत्मा से प्रेम भरी बातें कीं, त्यों ही मुझे मालूम हुआ कि जहान में न कोई पर्वत है, और न ही मुझे किसी केची (केच में रहनेवाले) की अपेक्षा है। जब तक मैं ससुई थी (अर्थात् जब तक मुझमें द्वैत की भावना थी) तब

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक विरह का दर्द था, पर जब मैंने अपना अस्तित्व मिटा दिया, तब मैं खुद ही पुन्हू बन गयी।

पुन्हू थियसु पाणही, वियो ससुईअ जो शर्मु।
हेकलियूँ हलनि जे, भज्रे तिनि भर्मु।
जो वन्दुर में वर्मु, सो सोदा सरियसु हितहीं ॥

(ससुई कहती है—) जब मेरा ससुई वाला पर्दा दूर हट गया, तब मैं स्वयं ही पुन्हू बन गयी (अर्थात् जब द्वैत मिट गया तब साधक को अनुभव हुआ कि वह ख़ुद ही परमात्मा है।) जो (जीवात्माएँ) अकेली ही प्रियतम को पाने के लिए चल पड़ती हैं, उनका (माया का) पर्दा हट जाता है। ससुई, जो सौदा पर्वतों पर करने जा रही थी, वह सौदा उसे यहीं मिल गया।

वेई सुन्हँ ससुईअ जी, पुन्हू थियसु पाण।
सभनि जी सैयद चए, आहे उतु उमाण।
भम्भोर जा भाण, आड्रा अजीबनि खे ॥

ससुई कहती है कि जब मुझमें ससुई का सौंदर्य (अहं की भावना) नष्ट हुआ, तब मैं ख़ुद ही पुन्हू बन गई। शाहसाहब फ़र्माते हैं कि सभी का अन्तिम रास्ता यही है। वास्तव में भंभोर (संसार) के रिश्ते-नाते ही महबूब के समीप जाने में रुकावट डालते हैं।

वविड़यमि सम वथाण, यार कारणि जत जे।
अल्लाह बिकुलि शै मुहीतु, ई आरियाणी उहत्राण।
सभ में पुन्हू पाण, कीन्हे ब्रियो ब्ररोच रे ॥

प्रियतम पुन्हू के लिए मैंने सभी स्थान ढूंढ लिये, (पर अब मुझे मालूम हुआ है कि) "अल्लाह ही समस्त वस्तुओं के पास है"। यही उसका लक्षण है। पुन्हू स्वयं ही सब में समाया हुआ है, उसके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है (अर्थात् पूरी सृष्टि में परमात्मा की ही सत्ता समाई हुई है)।

अहुखी आग्रहु आहे, वो! मूँखे ताँ न छड्रीन्दो तिख में।
पुछे पोइ-पियनि खे, लकनि में लड्र लाहे।
आरी उघाड़नि खे, पुन्हू ज्रामु पराही ॥

ससुई अपने पुन्हू के गुणों का बखान करती कहती है कि वह (पुन्हू) मुसीबत के समय में मेरा सहायक है; इसलिए वह मुझे इस भवसागर के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तेज़ बहाव में छोड़ न देगा। वह गिरे हुए लोगों के (दुःख-रूपी) बोझ गुप्त रूप से उतारकर उनकी सहायता करता है। वह नंगों को वस्त्र पहनाता है अर्थात् ग़रीब व दुखियों की लाज रखता है।

हेकान्दीअ होई, उथी राति रवानि थिया।
साहु सग़े में सूर जे, पुन्हू वियो पोए।
रहु क़ज़ा! दमु कोई, त हेकड़ हेकान्दी थियाँ॥

(ससुई पुन्हू के विरह में विलाप कर कहती है—) मेरा पुन्हू मिलन के पश्चात् रातो-रात चला गया। उसने मेरे प्राण दर्द के सूत्र में पिरो लिए हैं। ऐ नियति, कुछ क्षण ठहर जा (अर्थात् कुछ समय मुझे जीने दे) ताकि एक बार मैं अपने प्राणाधार से मिल लूँ।

हद्रि न साहु सुधीरु, दिलि दरमान्दी दोस रे।
पाए वियड़ा पिरति जो, ज़ोरावर ज़ंजीरु।
जी जुसो, जागीरु, हाणे मिल्क होत जी॥

मेरे प्राण धैर्य धारण नहीं कर पाते, मेरा हृदय प्रियतम के सिवा व्याकुल-विह्वल है। प्रियतम ने मुझे जोरदार प्रेम की ज़ंजीरों से ऐसा कसकर बाँधा है कि अब मेरा तन, मन, धन सर्वस्व उसी की सम्पत्ति है।

राई की रन्जूर, टकर तोइ टाकियो चढ़े।
लान्चे लक, लतीफ़ चए, हले ड्रांहि हुज़ूर।
रहिया सभि रुअनि में, ससुईअ जा सालूर।
साज़नु मेड़ियुसि सूर, सुख न मेड़ियुसि सुप्रीनि॥

शाहसाहब कहते हैं कि ससुई को पहाड़ों की रेत ने घायल कर दिया है, फिर भी वह चट्टानें चढ़ रही है और गुफाएँ लाँघ रही है। पुन्हू के समीप पहुँचने के लिए वह बड़ी तेज़ी से गुफाएँ लाँघती हुई जा रही है। मरुभूमि की रेत ने ससुई के रेशमी वस्त्रों तथा श्रृंगार को भी मिटा दिया है। वास्तव में उसे सुखों ने नहीं, बल्कि दुःखों ने ही प्रियतम से मिलाया है।

ब्रियाई त ब्रारि, फूकि त लग़े अम्बरे।
हिते जे हुअण जूँ, वथूँ सभि विसारि।
समूरी सरिकारि, नेई रखिजि नाहि में॥

(ऐ ससुई) यदि तेरे (हृदय में) प्रेम की अग्नि जल रही है तो तू उसे जलाती रह। इस आग को इतना भड़का कि वह जाकर आकाश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को छूए। यहाँ की (संसार की) हस्तीवाली समस्त चीजें भूल जा, यहाँ का सम्पूर्ण काम-काज भी नाबूदी के अलाव पर रख दे। (तात्पर्य यह कि सांसारिक बातों की चिन्ता छोड़कर परमात्मा के प्रति प्रेम को जागृत कर।)

ब्रिलरि लग्रो ब्राणु, पसो, जोइ जरा थिए।
सा मुन्ध मरे, न जिए, पेई पछाड़े पाणु।
ससुई सूरनि साणु, सम्भोड़ी सैयद चए॥

शाहसाहब कहते हैं कि देखो तो इस दुखिया (ससुई) को (प्रेम का) ऐसा तीर लगा है, जिसने इस अबला को चूर-चूर कर दिया है। यह बिचारी नारी न मर पाती है, न जी पाती है, केवल बेचैन-विह्वल होकर तड़प रही है। ससुई सदैव ही दुःखों के लिए तैयार खड़ी है।

अधरि, निधरि अभरी, आहियाँ असून्हीं।
परद्रेही प्रियनि कया, मरण लइ मून्हीं।
ससुई खे, सैयद चए, तन्गुनि में तूँ ही।
हारी! किअं हून्हीं, रिइ समर सधूं करीं?

ससुई कहती है, (ऐ पुन्हू,) मैं निराधार, निराश्रय तथा निःसहाय हूं। मैंने मानों मौत पाने के लिए ही परदेसी को प्रियतम बनाया है। मुझे तो मुसीबतों के बीच तेरा ही विश्वास है। शाहसाहब ससुई से कहते हैं, ऐ मूर्खा, तू बिना सामान (साधना) के प्रियतम से मिलने की तमन्ना कैसे कर रही है?

अची इज़्रिराईल, सुती जाग्राई ससुई।
थी दोड़ाई दलील, त पुन्हू माड़हू मोकिल्यो॥

जब मौत ने प्रेम में खोई हुई ससुई को सचेत किया, उस समय भी वह सोच रही थी, मानों पुन्हू ने किसी पथिक को उसकी सहायता के लिए भेज दिया है।

मुन्कर अँ नकीर खे जद्रहिं द्रिठाईं।
अगियाँ उथी उनि खे, पुन्हू पुछियाईं।
अदा, इताईं, को वियो साथु सज्ञण जो॥

ससुई ने जब क़ब्र में लेखा पूछनेवाले मुन्कर और नकीर नामक फ़िरिश्तों को देखा, तब उठकर उनसे पुन्हू का हाल पूछने लगी। कहने लगी— "ऐ भय्या, क्या यहाँ से मेरे प्रियतम तथा उसके साथियों के काफ़िलों को गुज़रते हुए तुम लोगों ने देखा?"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भायाणी थी भोरि, पुठीअ केचियुनि ककिरा।
राओ मिड़ियोई रत सीं, कारणि कान्ध ककोरि।
लान्चे लक, लतीफ़ चए, उथी डून्गर ड्रोरि।
जतु वञे थो ज़ोर, उपड़ु ताँ ओढ़ी थिएँ॥

ऐ ससुई, केच के रहनेवाले (पुन्हू तथा उसके भाई) के पीछे बराबर की हिस्सेदार बनकर, पत्थरों को चूर-चूर कर दे और भतार के लिए पहाड़ को अपने रक्त से रंगकर लाल कर दे। तू उठकर गुफाओं तथा पहाड़ों में उसे खोज (अर्थात् कठोर साधना द्वारा प्रियतम को पा)। शाहसाहब ससुई से कहते हैं कि समय बड़ी तेजी से जा रहा है, तू शीघ्रता से कदम उठा, ताकि तू उसके समीप पहुँच सके।

करि को वाको वसु, विहु म मुन्ध भंभोर में।
चढ़ी ड्राढियनि डून्गरें, पेरु पुन्हूअ जो पसु।
ड्रोरण मन्झाँ ड्रसु, पवन्दुइ होत पुन्हूअ जो॥

ऐ नारी, उठकर कुछ शोर मचा और कुछ उपाय कर। इस तरह (संसार रूपी) भंभोर में मत बैठ जा। कठिन पर्वतों पर चढ़कर, पुन्हू के पैरों के निशान ढूंढ ले (अर्थात् कठोर साधना कर) ढूंढने से ही तुझे प्रियतम पुन्हू का पता लगेगा।

सौ कोह करे सभका, तूं खुही! खणिजि विख।
ताणिजि मन्झाँ तिख, त पन्धु पासे भर निबिरी॥

ऐ थकी हुई नारी, सौ कोस का रास्ता हरेक पार करता है, पर तू केवल एक ही क़दम उठा (अर्थात् सांसारिक प्रपंच में तो सभी भटकते हैं, पर तू केवल परमात्मा को पाने के लिए कदम उठा।) पूर्ण उत्साह से कूद पड़ तो तेरा सफ़र क्षण में ही पूरा हो जाए।

हेकिल्याई हील, पोरीन्दियसि पुन्हूअ ड्रे।
आड्रा डून्गर लकियूं, सूरियूं सुज़ानि सील।
न कर बेंली आहिनि ब्रेंल, जे सूर प्रियाँ जा साणु मूं॥

(ससुई कहती है) अब अकेली ही पुन्हू के लिए सफ़र करूँगी (साधना करूंगी)। यद्यपि पर्वतों का रास्ता दुर्दम्य है तथा उनकी चोटियाँ ऊँचाई के कारण प्रसिद्ध हैं, पर यदि प्रियतम के दिए दर्द मेरे साथ हैं, तो वे ही मेरे सहायक हैं। तात्पर्य यह कि यदि प्रियतम की तड़प साधक के पास है तो वह साधना की कठिनाइयों की परवाह तक नहीं करता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दोस्त डि्ठाईं दिलि सीं, विर्चीं ताँ न विहे।
लान्चे लक, लतीफ़ चए, पहणनि मंझि पही।
सन्दे नींह निही, की सरफ़िराज़ु ससुई ।।

शाहलतीफ़ कहते हैं कि ससुई ने अपने प्रियतम को हृदय की आँखों से देखा, यही कारण है कि उसने कभी भी तंग होकर चलने से मुख न मोड़ा (साधना नहीं छोड़ी); गुफाएँ पार कर वह पहाड़ों पर चढ़ गई। प्रेम के वैभव ने ही उसे ऊँचे पद पर पहुँचाया है।

हथाँ हड्रि न छड्रियाँ, सब्रु शुकरानो।
ज़ोक़ ज़मानो, मूँ वर! वियो विसरी।
नाहि जमियत जान खे, होत पुज़ाणाँ हाणि।
अल्लाह सेई आणि, जिनि साउ चखायमि सिकजो ।।

(ससुई कहती है) मैं धैर्य और संतोष को कभी हाथ से जाने नहीं दूंगी। ऐ प्रियतम, मैं (सांसारिक) मौज-शौक़ का ज़माना भूल गई हूँ। प्रियतम के सिवा, अब मेरे प्राणों को चैन नहीं। ऐ परमात्मा, तू उन्हें वापस ला, जिन्होंने मुझे प्रेम का स्वाद चखाया है।

"स्वर मैज़ूरी"

"मैज़ूरी" शब्द का अर्थ है बेहाल तथा लाचार। इस स्वर में शाह-साहब ने बेहाल ससुई का वर्णन किया है। वह पुन्हू के स्नेह में मतवाली होकर सुनसान रास्ते से अकेली ही बड़ी तेजी से जा रही है। उसकी हालत अत्यन्त ही दयनीय है और मार्ग के कष्ट दिल दहकाने वाले हैं, उसे मन के विकार भी हैरान करते हैं, परन्तु वह अपने प्रियतम का ध्यान करती, मन के विकारों पर जीत प्राप्त करती, आगे बढ़ती जाती है। कठिनाइयों का सामना करना ही मानों उसकी पूजा है। हर वस्तु में उसे अपने दोस्त का दीदार होता है। इस स्वर में लतीफ़ जी ने साधना के रास्ते पर सांसारिक सुखों के त्याग पर भी बल दिया है। साधक जब अपनी सब इच्छाएं मार देता है, तब ही उसे प्रियतम का दीदार नसीब होता है।

हलन्दे होत पुन्हूअ ड्रे, खुहिजनि के खूटियूं।
पहणु तिनीं पटु थिए, जे लइ लालन लूठियूं।
सभि सहेलियूँ सिक खे, चुन्जिहूँ अँ चूठियूँ।
ब्रांभण! थीउ ब्रूटियूं, त कुता खीन्ई केच जा ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाहसाहब फ़र्माते हैं कि प्रियतम की ओर जाने में झूठी प्रेमिकाएँ (जीवात्माएँ) ही थक जाती हैं, पर जो प्रियतम के लिए बेचैन हैं, उनके लिए, तो पर्वत भी मैदान बन जाते हैं। ऐ ब्राह्मणी (ससुई!) सच्चे स्नेह के रास्ते पर तेरी सभी सहेलियाँ (अज्ञान में खोई जीवात्माएं) शिथिल और बेखबर दिखाई देती हैं, पर तू इस रास्ते पर चूर-चूर हो जा (अपने आप को मिटा दे) ताकि तेरा माँस केच के कुत्ते खा-खाकर उत्सव मनाएँ अर्थात् सभी तेरे बलिदान की प्रशंसा करें।

सधर सीं सङु करे, परखन्डेनि पिय्यासि।
केरु ब्राह्मण ? किनि जी ? केरु ज्ञाणे केणासि।
हुन्द न सिन्धु सुयास, हिन पुरयेनि कयसि पधिरी ॥

ससुई कहती है, शक्तिशाली प्रियतम से नाता जोड़कर मैं देश-विदेश में प्रसिद्ध हो गई हूँ। वैसे किसे कैसे मालूम होता कि यह ब्राह्मणी कौन है ? और किस की है ? अर्थात् कोई भी मुझे न पहचानता। वैसे तो इस (ससुई) का नाम सिन्धप्रदेश ही सुन पाता, पर अब (प्रियतम से नाते जोड़ने के कारण) तो देश-विदेश में उसका नाम प्रसिद्ध हो गया है।

ख़ूबी मन्झि ख़िफ़त, अे ! दोस्त दिक़त आहे अब्दुल्लतीफ़ खे।
मदह मूं खाँ न थिए, सन्दी सूर सिफ़त।
हिजी करियाँ हीज सीं, मुत्तालुइ महबत।
हुज़नु होत पुन्हूअ जो, रुग्याई राहत।
परियाँ जे पिस्तान जो, फ़ाक़ूई फरहत ॥

(शाहसाहब अपने को ससुई मानकर कहते हैं—) ऐ प्रियतम, मेरे लिए दर्द और जफ़ा (कठिनाइयों) में बड़ी ही ख़ूबी है, अतः दर्द की महानता की प्रशंसा मैं कर ही नहीं पाता हूँ। मैं "मुहब्बत" शब्द का उच्चारण बड़े शौक से करूँ और लग्न से पढ़ूँ। पुन्हू का दर्द मेरे लिए राहत है। प्राणाधार के लिए प्रेमाग्नि में जलने में ही मुझे आनन्द है।

आदियूं ! वरु उघाड़, विहाँउ जंहिं विसारियो।
जेद्रियूं ! छद्रे जाड़, सभि नग्गियूं थी निकिरो ॥

ससुई अपनी सहेलियों से कहती है— ऐ सखियो, जिसने (प्रियतम के लिए) सांसारिक हार-शृंगार भुला दिया है, उनका त्याग वास्तव में महान् है। ऐ समवयस्काओ, तुम सब भी ग़फ़लत (अज्ञान) छोड़ कर निःसंकोच होकर (इस रास्ते पर) निकल पड़ो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभि नंगियूं थी निकिरो, लालच छद्दे लोभ।
सुप्रियाँ सीं सोभ, निन्डूं कन्दे न थिए॥

(ऐ सखियो) तुम सब हर तरह के लोभ लालच (तमन्नाएँ) त्याग कर, निःसंकोच हो, इस (प्रेम के) रास्ते पर निकल पड़ो क्योंकि परमात्मा को प्राप्त करानेवाली सिद्धि (अज्ञान की) नींद करने से प्राप्त नहीं होती।

हून्दियाँ होतु परे, ओड्रो आहि अण हून्द खे।
साज्ञनु तिनि सरे, ला सीं लद्वीनि जे॥

प्रियतम सम्पन्न पुरुषों से दूर तथा दरिद्रों के समीप है (अर्थात् सांसारिक लोगों से दूर और संसार को त्यागनेवालों के समीप है।) प्रियतम उन्हें प्राप्त होता है, जो अपने साथ कुछ भी नहीं लेते हैं।

लाए ख़न्जरु "ला" जो, हिय ख़चर खे हणु।
सधुनि जूं, सैय्यदु चए, वथूँ सभु विकणु।
पेरु परोड़े खणु, त हलण में होरी वहीं॥

(ऐ ससुई!) तू मन-रूपी खच्चर पर अल्लाह नाम की ख़न्जर चला तथा इच्छाओं का समस्त साज़-सामान त्याग दे। आध्यात्मिक रास्ते पर सोच समझ कर क़दम उठा, ताकि रास्ते पर स्फूर्ति से आगे बढ़ सके।

होरिनि हाड़हो लन्घियो, थी जरीदी जोइ।
हून्द जिनीनि सीं होइ, होतु न हून्दो तिनि सीं॥

ऐ नारी, तू हिम्मत बाँधकर अकेली ही आगे बढ़। हाड़हो पर्वत वे ही पार कर सकती हैं, जिनके साथ बोझ नहीं है, (तात्पर्य यह कि तरीक़त अथवा आध्यात्मिक रास्ते पर वे ही जीवात्माएँ सफलता से चल सकती हैं, जिन्होंने सांसारिक प्रपंच रूपी बोझ त्याग दिया है), पर जिनके पास सांसारिक वस्तुएँ और विकार हैं, उनके साथ कभी भी प्रियम नहीं है।

वधो कीम वणाहु, ऊँचा डून्गर मथियो।
टिमो म नेणाहु, त पेरु निहारियाँ प्रियनि जो॥

(पुन्हू की खोज में मतवाली ससुई वृक्षों, पर्वतों आदि से कहती है—) ऐ वृक्षो, मेरे रास्ते में तुम मत बढ़ो, ऐ पर्वतो, तुम इतने ऊंचे मत बनो, ऐ मेरे नेत्रो, तुम अश्रुधारा मत बहाओ, ताकि मैं पुन्हू के पैरों के निशान साफ़-साफ़ देख सकूं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कन्डा मूं पेरनि में, तोणे लख लग्ननि।
आङुरि अङूठे न मिड़े, छिपूं पेर छिननि।
वीन्दे ड्राह्नि प्रियनि, जुती जाति न पाइयाँ ॥

(ससुई कहती है) चाहे मेरे पैरों में लाखों काँटे चुभें और पहाड़ मेरे पैरों को इतना पथरीला (कठोर) बना दें, कि मेरी उंगलियाँ, अंगूठे की तरह न मरोड़ी जा सकें, फिर भी प्रियतम की ओर जाते मैं जूते कदापि नहीं पहनूंगी (अर्थात् अनेक तरह के कष्ट सहन करूँगी, किन्तु सांसारिक साधनों का सहारा नहीं लूंगी।)

जुतियूं से पाईन्दियूं, जिनीनि पेर प्रीं।
लथियूं सभि परियिन, ससुई सुप्रियुनि खे ॥

ससुई कहती है जूते वे (जीवात्माएं) पहनेंगी, जिन्हें (प्रियतम से ज्यादा) अपने पैर प्रिय हैं। मैंने तो प्रियतम के लिए (सांसारिक) सभी रीति-रिवाज छोड़ दिए हैं।

मरी, जीउ, त माणिईं, जानिब जो जमालु।
थिएं हून्द हलालु, जे पन्दि इहाई पारिईं ॥

(ऐ ससुई !) अपने को जिन्दा ही मार दे (अर्थात् मरने से पहले ही अपनी इच्छाएं और विकारों को नष्ट कर दे) तो तू प्रियतम के हुस्न (सौन्दर्य) के दीदार का आनन्द मना सके। यदि तू इस आदेश के अनुसार आचरण करेगी, तो अवश्य ही अपने प्राणधार को भायेगी अर्थात प्रियतम को अच्छी लगेगी और वह तुझे अवश्य ही स्वीकार करेगा।)

मरु त मोचारी थिएं, अजलाँ अग्गे अज्ञु।
जाँ की हुई जीअरी, त मुन्ध भंभोराँ भज्ञु।
पुन्हूअ साणु पहज्ञु, त मलक अलमोतु माणिईं ॥

(ऐ ससुई!) तू मरने से पहले ही मर (अर्थात् जिन्दा रहते ही इच्छाओं और विकारों को मार दे) ताकि तू कृतकृत्य हो जाए। ऐ नारी (जीवात्मा), जब तक तू जिन्दा है, तब तक इस (संसार रूपी) भंभोर से दूर रह। पुन्हू के साथ सच्ची बनी रह, तो मृत्यु के सुन्दर पार्षदों का दीदार तुझे नसीब होगा।

हथें, पेरें, मूंड़िईं, कहिजि भरि कपार।
मतां छोरी ! छड्डिईं, प्रीतणी पचार।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तोखे सन्द ससुई ! सन्दी लँव लग़ार ।
जे हून्ऐ होत हज़ार, त बि पाड़िजि कोम पुन्हूअ सीं ।।

ऐ ससुई, तू पुन्हू प्रियतम के पास, अपने हाथ, पैर, घुटने तथा सिर के बल दौड़ जा । ऐ औरत, तू भूल कर भी प्रेम का पीछा न छोड़ना । ऐ ससुई, तुझे प्रेम का सहारा है तथा लगन की चपेट भी लगी हुई है । यदि तेरे सहस्रों हितैषी हों, फिर भी उनमें से किसी को पुन्हू के बराबर मत समझ ।

लिखियो जो निराड़ि, सो अंगु क्याड़ीअ न थिए ।
पाड़ियो वेठी पाड़ि, जेकी लालन लिखियो लोह में ।।

(ऐ ससुई!) जो भाग्य में लिखा हुआ है, वह कदापि नहीं मिटता । अतः जो कुछ विधाता ने तेरे भाग्य में लिख दिया है, वही प्रयत्नपूर्वक करती रह । (अर्थात् विधाता ने यदि तेरे भाग्य में दुःख लिखे हैं, तो तू उन दुःखों का सामना करती रह ।)

फ़र्दा मुन्ध फिटी कई, नक़दु खन्यो नारि ।
ही जा वाग़ विल्हीअ जी, वेरमि ड्रे म वारि ।
जांकी मुठीअ मारि, जांकी मेड़ु मुठीअ खे ।।

ससुई कहती है—इस नारी (मैं) ने 'कल' को त्याग 'आज' को अपनाया है । (ऐ पुन्हू—परमात्मा) मुझ गरीब की डोर जो तेरे ही हाथ है, उसे विलम्ब की ओर मत खींच । (अर्थात् मेरे मिलन में विलम्ब मत करना) या तो इस भाग्यहीना को मार दे या अपने से मिला ले ।

ड्रिसणु ड्रि खाँ अग़िरो, ससुई आणि म शकु ।
थी ब्रान्ही, भर ओइयूँ, लुड्डु म पसी लकु ।
वरु पुन्हूअ सी पलकु, खोइ ब्रारहन वरह बियनि सीं ।।

ऐ ससुई, इस बात पर कभी संदेह मत करना कि प्रियतम का दर्शन (सांसारिक) हार-श्रृंगार से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है । पुन्हू की दासी बनकर तू उसकी पानी की पखालें भर और पर्वतों तथा गुफाओं (राह की कठिनाइयों) को देख विचलित न हो । पुन्हू के साथ बिताये हुए एक पल पर, दूसरे के साथ बिताए गए बारह महीने भी कुर्बान हैं (अर्थात् दूसरों के साथ गुज़ारा हुआ लम्बा समय भी पुन्हू के मिलन के एक पल की बराबरी नहीं कर सकता है ।

डुखी सन्दियूं डून्गरियनि, वण-टिण वायूं कनि ।
वटाँ वेही जिनि, वढे से वाढोड़िया ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ससुई के दुःख से दुखी होकर पेड़, पौधे तक रो रहे हैं। उसी का वर्णन करते शाहसाहब कहते हैं—) पर्वतों के पेड़-पौधे भी इस दुखिया की ही चर्चा कर रहे हैं। इस घायल ने, पेड़ों के पास बैठ, उन्हें अपने दुःख से मानों घायल कर दिया है।

रुञुनि में रड़ थी, कर सारंगी साज़ु।
ई इश्क़ जो आवाज़ु, माड़हो रखनि मुन्ध ते ।।

(शाह साहब कहते हैं—) मरुभूमि में ससुई की पुकार सारंग की आवाज़ के समान (मधुर) लग रही है। यह स्नेह का आलाप है, पर साधारण लोग उसे एक दुखिया का विलाप समझ रहे हैं।

"स्वर देसी"

स्वर देसी एक रागिनी है, जो दिन के समय गायी जाती है। इस स्वर में शाह साहब ने ससुई के दृढ़ निश्चय तथा राह की कठिनाइयों का वर्णन किया है एवं उसे अज्ञान की नींद में सो जाने के कारण अनेक तरह के उपालम्भ दिए हैं। शाह साहब ससुई से कहते हैं कि यदि तू सोयी हुई न होती, तो आज तुझे इस तरह भटकना न पड़ता। अरी बावली, यदि तूने पुन्हू के ऊँटों को ज़ंजीरों से न बाँधकर अपने बालों से बाँधा होता, तो तुझे ये दुःख न देखने पड़ते। अब भी सर्वस्व त्याग कर, पुन्हू को पाने के लिए निकल पड़, तो वह अवश्य ही तुझे मिलेगा।

अङण मथे ओपिरा, जद्गहिं ड्राघा ड्रिठइ ड्रींहं।
वठी सड़क ससुई, वेहु विहाणीअ सीअं।
चोटी से चाँगनि खे, जड़ु ज़ंजीरुनि जीअं।
त होतु तुहिंजो हीअं, हून्द पुन्हू न्याऊँ न पाण सीं ।।

अरी ससुई, जिस दिन तूने अपने आँगन में पराये ऊँट देखे, उस दिन यदि तू जागकर सुबह तक उनका रास्ता पकड़ बैठ जाती तथा तूने अपने बालों से उन ऊँटों को ज़ंजीरों की तरह बाँध लिया होता तो वे तेरे पुन्हू को इस तरह अपने साथ न ले गये होते (तात्पर्य यह कि यदि साधक सचेत रहता तो परमात्मा उससे कभी भी दूर न होता)।

अङण मथे ओपिरा, जद्गहिं ड्राघा ड्रीन्ह ड्रिठाइ।
कुँजूं जे क़ुल्फ़नि जूं, ताँ कंहिं ललि लिकाइ।
त सुभाणे सन्दियाइ, थिए सारूणी ससुई ।।

ऐ ससुई, जब तू ने अपने आँगन में पराये ऊँट देखे, तब यदि तूने ताले की चाबियाँ छिपाकर रख ली होतीं, तो दूसरे दिन अवश्य ही तेरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सार-सम्हाल ली गई होती; अर्थात् यदि साधक अपनी साधना जारी रखता है और मन ही मन अपने प्रियतम का चिन्तन करता रहता है, तो प्रियतम भी उसकी याद अवश्य करता है।

गह सिरि थिए म गुस, पणी पोइ म प्रियनि ते।
जंहिं सिरि साज़नु सुप्रियनु, तंहं उठ म लग़े उस।
पुन्हू पाक पुरस, होत न कजनि हेड्रियूं॥

(ससुई अपने पुन्हू के प्रति शुभकामनाएँ प्रकट करती कहती है कि) मेरी आकांक्षा है कि जिस रास्ते से पुन्हू जा रहा है, उस रास्ते पर धूल न उड़े, जिससे मेरे पुन्हू को कोई कष्ट पहुँचे। जिस ऊँट पर मेरा प्रियतम सवार हो, उसे धूप तक न लगे। ऐ पाक पुरुष प्रियतम, तुम्हें इस तरह का व्यवहार शोभा नहीं देता।

लड्डींदे लिबासु, जतनि जेड्रोई कयो।
अचे आरीअ ज़ाम जो, वण वण मन्झाँ वासु।
मिरूँ खियन्मि मासु, हड्ड हलन्दा होत ड्रे॥

(ससुई कहती है—) भंभोर से जाते हुए जाटों ने (मुझसे) महान कपट किया है। मुझे तो प्रत्येक वृक्ष से पुन्हू की महक आ रही है। यदि मेरा मांस पशु खाकर नष्ट करदे, फिर भी मेरी हड्डियाँ प्रियतम की ओर चलती जायेंगी। (कितने ही कष्ट आयें, प्रियतम-प्रभु से मिलने की साधना चलती ही जायगी।)

उठ वेरी, ओठार वेरी, वेरी थियड़मि ड्रेर।
चोथों वेरी वाऊ थियो, जंहिं लटिया पुन्हू पेर।
पंजो वेरी सिज़ु थियो, जंहिं उल्ही की अवेर।
छहों वेरी छपरु थियो, जंहिं संवाँ कया न सेर।
सतों वेरी चन्डु थियो, खिड़ियो न वड्डीअ वेर।
वाहेरे जी वेर, छुलूं करियाँ छपरियनि॥

(ससुई अपने वैरियों का बखान करती कहती है) एक तो ऊँट मेरे शत्रु थे, दूसरे ऊँट चलानेवाले जाट और तीसरे मेरे देवर। मेरा चौथा वैरी पवन हुआ जिसने पुन्हू के पद चिह्न मिटा दिए। मेरा पाँचवा वैरी सूर्य हुआ, जिसने अस्त होने में देर की, मेरा छठा वैरी पर्वत हुआ, जिसने अपने रास्ते टेढ़े मेढ़े बनाये है (टेढ़े मेढ़े रास्ते के कारण वह पुन्हू को दूर से जाता हुआ नहीं देख पाती) मेरा सातवाँ वैरी चन्द्रमा हुआ जो शीघ्र ही उदय नहीं हुआ अतः मैं संध्या के समय पर्वतों के मध्य अत्यन्त ही शीघ्रता से चली जा रही हूँ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिड़ी मुग्ध ड्रे आइयूँ, साहिड़ियूँ सहजाँन।
अलसफ़रू क़ितुह मिन अल्नारि, हारी मोटु हिताँ।
सड्ढु सिरात अल्मस्तक़ीम जो, अथेई ताँ अग्रियाँ।
से केची नींन्दइ कियाँ ? तुंहिंजो नींहँ निफाक़ सीं॥

ससुई की सहेलियाँ उसके चारों ओर इकट्ठी होकर कहने लगीं, "ऐ ग़ाफ़िला ! यह (प्रेम का) सफर दोज़ख़ की आग सदृश है, अतः तू इस रास्ते से लौट आ। आगे तो वह दोज़ख़ का पुल है जो तलवार से तेज़ तथा बाल से भी बारीक है। केची (अर्थात् केच के रहनेवाले पुन्हू और उसके भाई) तुझे अपने साथ कैसे ले जायेंगे, यदि तेरा प्रेम द्वैत-पूर्ण होगा ?

सबह स्याही, आरीअ ज़ाम रे।
कद्रहिं पसे का न का, रिअ लालन लालाई।
द्रदु दिलि ताँ दूर करे, करि साजन सफ़ाई।
मन ला शेख़ु लह फ़शीख़हु अल्शैतानु, इन रिअ ऊदांही।
होइ जा हली हेकली, सा ग़ैरब गमाई।
बिल्ला शेख़िमन यम्शीफ़ी अल्तरीक़ि अहिड़ी अवाई।
तंहिं रिअ तवाई, कोड़ें थियनि केतिरियूँ॥

(ससुई कहती है) पुन्हू के सिवा मेरे लिए चारों तरफ अन्धकार है। प्रियतम के सिवा किसी ओर कहीं पर प्रकाश देखने में नहीं आता (तात्पर्य यह कि प्रियतम के सिवा जिज्ञासु के लिए चारों ओर अन्धेरा है) ऐ प्रियतम, मेरे हृदय की कालिमा (अज्ञान) मिटाकर उसे उज्जवल बना। (कहा जाता है) "जिसके कोई शेख़ (सद्‌गुरु) नहीं, उसका पथ-प्रदर्शक शैतान बनता है।" वास्तव में सद्‌गुरु के सिवा सब कुछ अन्धकारमय है क्योंकि जो अकेला (बिना गुरु के) इस (आध्यात्मिक) पथ पर चला उसे अहं ने पथभ्रष्ट किया। जो साधक बिना सद्‌गुरु के आध्यात्मिक रास्ते पर चलता है, वह मानो बिना नौका के समुद्र में कूदता है। उसके (सद्‌गुरु के) बिना करोड़ों लोग इस पथ पर उलझ जाते हैं।

अल्लाह कारणि ओठिया, लेड़ा न्यो म लुर।
न्यो निमाणी पाण सीं, ब्रान्हीअ झले ब्रुर।
मूँ खे मारे मन्झि थी, सन्दी होतनि हुर।
कचो लायाँ कुर, केचाँ ओरे जे वराँ॥

(ससुई कहती है) ऐ ऊँट चरानेवालो, परमात्मा के लिए ऊँटों को इतना तेज़ दौड़ाकर मत ले जाओ। इस नम्र दासी को उसके बालों से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घसीटकर अपने साथ ले चलो। मुझे भीतर ही भीतर प्रियतम की याद सता रही है। यदि मैं केच (पुन्हू का निवास-स्थान) से वापस लौट आयी तो मानों अपने कुल को कलंक लगाऊँगी।

केचाँ ओरे केतिरियूँ, मैज़ूरियूँ मुयूँ।
वाटूं वीह थियूँ, कुहु ज्ञाणा केही विया।।

केच की ओर जाती कितनी ही अबलाएँ (जीवात्माएँ) मरकर नष्ट हो गईं। केच की ओर जाने के लिए बीसों मार्ग हैं, मुझे क्या पता कि वे किस रास्ते से गये हैं। तात्पर्य यह कि परमात्मा तक पहुँचते-पहुँचते कितने ही साधक अपनी साधना से भ्रष्ट हो जाते हैं; तथा परमात्मा को पाने के लिए अनेक रास्ते हैं, अत: विचारा साधक उलझ जाता है कि किस रास्ते को अपनाऊँ।

बिरह मनायसि वरु, ना त सुखी केर सधूँ करे ?
घणो ड्रोरियाई दुख सीं, ड्रेरनि लइ डून्गर।
वरी आयुसि वरु, सफ़र मुईअ जा साबि पिया।।

शाह साहब फ़र्माते हैं कि प्रेमाग्नि ने ही ससुई को मरुभूमि में भटकाया है, अन्यथा कोई सुखी (औरत) इस तरह भटकने की कैसे इच्छा करती ? बड़ी कठिनाइयों का सामना कर उसने देवरों की खोज पर्वतों पर की, तब तो उसका प्रियतम वापस लौट आया और उसने आकर ससुई की यात्रा को सफल बनाया।

जिअं सो हरणु हुमाउ, सरगर्दान सन्सार में।
ही पगु न खोड़े पटईं, हू धड़ सिरि धरे न साहु।
जेकुसि तन मुलाउ, ससुई सूर पिराइया।।

जिस तरह कस्तूरी-मृग अपनी नाभि से आने वाली महक पर विस्मित होकर चारों तरफ उसे पाने के लिए भटकता रहता है तथा हुमा पक्षी जमीन पर पैर न रखकर सदैव आकाश में उड़ता रहता है, दोनों को अपने शरीर की भी सुध बुध नहीं रहती है, उसी तरह लगता है मानों ससुई ने भी उनसे भटकना सीख लिया है तभी तो वह मरुभूमि में शीघ्रता से जा रही है।

तात्पर्य यह कि जिस तरह कस्तूरी-मृग नहीं जानता है कि महक उसके अन्तर से आ रही है और उसे बाहर ढूंढता रहता है उसी तरह साधक भी परमात्मा को अपने भीतर न ढूंढकर उसे पाने के लिए बाहर इधर-उधर भटकता रहता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समरु जिनीं न साणु, होतु हिमाती तिनि जो ।
करे छेज़ छप्पर में, पुन्हू ईन्दो पाण ।
थींदी रीझ रिहाणि, लहज़े मंझि लतीफ़ु चए ।।

शाह लतीफ़ कहते हैं कि जिसके पास कोई (सांसारिक) साधन नहीं है, उसका सहायक परमात्मा स्वयं है । पुन्हू-परमात्मा स्वयं ही नृत्य करता पर्वतों में प्रकट होगा, फलतः एक ही पल में दोनों प्रेमियों के बीच प्रेम भरी बातें होने लगेगी ।

ससुई लंघियो सो, मर्द जंहिं मातु कया ।
जबलु वद्रो जो, नूणि मिड़ोई नींहं खे ।।

ससुई ने वह पहाड़ पार किया है, जो वीर पुरुषों को भी परास्त कर देता है अर्थात् ससुई प्रेम के उस कठिन रास्ते को पार कर गई है, जिस रास्ते पर वीर भी हार मानकर बैठ जाते हैं । वास्तव में ऊँचा पहाड़ भी प्रेम के सामने सीधी, सरल ज़मीन की तरह ही है ।

आड्रितिराछा आहुड़ा, डूंगर खे ड्राका ।
कयमि आहि अजीब खे, सिक मन्झां सा का ।
पेई हथीकी होत खे, कूक बनी कनि का ।
मुंहिंजो वसु वाका, बुधणु कमु ब्ररोच जो ।।

पर्वत पर चढ़ने के रास्ते बड़े ही टेढ़े-मेढ़े और कठिन हैं । मैं प्रेम में तड़प-तड़प कर प्रियतम के लिए आहें भर रही हूँ । मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरी पुकार मेरे महबूब के कान तक अवश्य पहुँची है । मेरा काम है पुकार तथा विनय करना और प्रियतम का काम है उन पुकारों को सुनना ।

करड़ा डूंगर कह घणी, जिति बरपट सुज़नि बीरानु ।
ड्राहनि ड्राहप विसिरी, थिया हरीफ़ ई हैरानु ।
ससुई लंघियो, सैय्यदु चए, मुहबत सीं मैदानु ।
जंहिंजो आरियाणी अग्रिवानु, तंहिंखे कान्हे बाक बहीर में ।।

शाह साहब कहते हैं कि पर्वत कठिन तथा यात्रा लम्बी है, जहाँ पर केवल वीरानी और सन्नाटा ही छाया हुआ है । इस रास्ते पर विद्वान अपनी विद्वत्ता भी भूल जाते हैं तथा प्रवीण व अनुभवी भी उलझन में पड़ जाते हैं । किन्तु ससुई ने प्रेम के कारण यह (कठिन) यात्रा पूरी की, क्योंकि जिसका पथ-प्रदर्शक पुन्हू-परमात्मा होता है, उसे किसी भी तरह का भय और सन्देह नहीं रहता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करड़ा डूंगर कह घणी, जिति जबल गूनागूनि ।
लीड़नि जूँ लतीफ़ु चए, तन्ग तन्वारूँ पुनि ।
जिनि डिठो पेरु पुन्हूअ जो, से नकी रुवनि न चुवनि ।
हुन्दनि मथे हुवनि, लग़ापा हिन लोक जा ।।

शाह साहब कहते हैं कि पर्वत दुर्लंघ्य हैं तथा यात्रा अनन्त है, जहाँ तरह-तरह के पर्वत (कठिनाइयाँ) हैं; जिनके तंग रास्तों से जाते हुए ऊँट भी डर के मारे चिल्लाते रहते हैं, परन्तु जिन्होंने प्रियतम के पैरों के निशान ढूंढ लिए हैं, वे इस कठिन रास्ते से जाते हुए भी न तो आँसू बहाते हैं, न होंठ तक हिलाते हैं (अर्थात् न शिकायत करते हैं)। वास्तव में ज़िन्दा लोगों के लिए ही इस संसार के रिश्ते-नाते (बंधन) हैं (पर जिन साधकों ने अपने को ज़िन्दा ही मार दिया है, वे इन कठिनाइयों से बिल्कुल नहीं डरते हैं)।

करड़ा डूंगर, कह घणी, जिति विया रोढ़ा रिंगाए ।
साङापे सेणनि जे, थी बिन्दुरि वाझाए ।
रह्यसु रसु, लतीफ़ चए, तंहि कमीणीअ काहे ।
आरियाणी आहे, मन्हिँ मँज़ूरिनि जी ।।

शाह लतीफ़ जी कहते हैं कि पर्वत कठिन है तथा यात्रा असह्य है। इस रास्ते पर ऊँट भी चिल्लाते रहते हैं, पर ससुई पुन्हू से नाता जोड़ देने के कारण ऐसे विकट पहाड़ में से गुज़र रही है। (वह पुन्हू से कहती है) "मैं पीछे रह गई हूँ अतः तू शीघ्रातिशीघ्र इस कमीनी के पास आ, क्योंकि तू ही कमज़ोरों का सहारा है"।

माणिकु मिटु सन्दोमि, ऊन्दाहीअ में सोझिरो ।
हशर वेल हिसाब में, छद्रे न वेन्दोमि ।
सारियो सदु कन्दोमि, कोह्यारो केचु धणी ।।

ससुई कहती है—पुन्हू जैसे माणिक के साथ मेरा रिश्ता है, जो अन्धकार को भी प्रकाश में बदल देता है। क़यामत के दिन लेखा चुकाते समय, वह मुझे छोड़ न देगा। केच का मालिक वहाँ पर मुझे अवश्य याद कर पुकारेगा। (इस पद में साधक की पूर्ण निष्ठा को अभिव्यक्त किया गया है।)

पुन्हू सीं प्रीत जो, को जो पेचु पियोमि ।
भम्भे हिन भंभोर में, विहणु विहु थियोमि ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मतियों मोटण सन्दियूँ, काकियूँ कीम ड्रियोमि ।
सरतियूँ, साहु सन्दोमि, थियो हवाले होत जे ।।

(ससुई कहती है—) मेरी पुन्हू के साथ ऐसी स्नेह की गाँठ जुड़ गई है, कि मुझे इस भद्दे और कुरूप (संसार रूपी) भंभोर में बैठना ही ज़हर हो गया है । ऐ सहेलियो, तुम मुझे (प्रेम के रास्ते से) वापस लौट आने की सलाह न दो । ऐ सखियो, मेरा जीवन तो अब प्रियतम के ही भेंट है अर्थात् मेरा अपने जीवन पर अब कोई अधिकार नहीं है ।

को मुंहँ कुठलि आइयो, वसि न वेचारी ।
होत ! तुन्हिजे हथ रे, पहुचे न पारी ।
अचीं जे आरी ! ता पान्दु पुज़ी, लकु लन्घियाँ ।।

इस प्रेम की मारी को, ऐसी मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा है कि वह बेचारी अपने ही वश में नहीं रही है । ऐ प्राणधार, यह दासी तेरी सहायता के सिवा, केच तक न पहुँच सकेगी । ऐ आरी सरदार, यदि तू यहाँ आ जाय तो मैं तेरा आँचल पकड़ इस रास्ते को पार कर लूँ ।

अदियूँ ! आऊँ न तीअं, जीअं पिरीतणो प्रियुनि सीं ।
ब्रधी सुतियसु न सघो, छलवरु छातीअ सीं ।
केची काहे करहा, मून्हाँ वञनि कीअं ?
ड्रोहु मुन्हिजे ड्रीन्हनि, पुन्हूअ खे का म चए ।।

(ससुई कहती है:) ऐ मेरी सखियो, मैंने वैसा नहीं किया जैसा कि प्रियतम के प्रेम में मुझे करना चाहिए था । मैं घुँघराले बालों वाले पुन्हू को अपने हृदय से जकड़कर सोई होती, तो केची, उसे ऊंट पर बिठाकर फ़रार न हो गये होते (भाग न गये होते ।) । समस्त दोष मेरी तक़दीर का है, अतः तुम में कोई भी पुन्हू के विषय में कुछ मत कहो ।

वर ! म विसारीजि, आहियाँ तुहिंजे आसिरे ।
ड्राढो डूंगर जो सुझे, सो लुत्फ़ूँ लन्घाईजि ।
उसिरी उन्हीं वीर ! तूँ आरी ज़ाम अचीजि ।
निमाणीअ खे नूर सीं, लालन ! लड्राईजि ।
ज़ुलमत जा ज़मीन जी, सा निर्मल ! नूर करीजि ।
कामिल ! कनि करीजि, फ़र्यादूँ फ़क़ीर जूँ ।।

ऐ भर्तार, मुझे मत भुला, मैं तेरे ही सहारे जी रही हूँ । जो पर्वत (पार करना) कठिन है, उस पर्वत से मुझे अपनी अनुकम्पा से पार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगा। ऐ आरी सरदार, तू वहाँ प्रकट होना तथा मुझ अनाथ को अपने तेज से रास्ता पार कराना। ऐ पवित्र पुरुष, इस पृथ्वी पर जो (अज्ञान का) अन्धकार है, उसे (अपने ज्ञान द्वारा) प्रकाशित करना। ऐ पूर्ण पुरुष, इस भिक्षुणी की शिकायतें अपने कानों से सुनना।

"स्वर कोहियारी"

कोह शब्द का अर्थ है पर्वत। इस स्वर में पहाड़ों की कठिनाइयों का वर्णन किया गया है। ससुई को नींद में सो जाने के कारण ताने दिए गए हैं एवं आशिक़ों को जाग्रत रहने की चेतावनी दी गई है। शाह साहब कहते हैं कि जो पाँव पसार कर सो गए, उन्हें प्रियतम नींद में ही छोड़कर चला जाता है।

इस स्वर में शाह साहब ने साधकों को चेतावनी दी है— अज्ञान की नींद में न खोकर, परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए सदैव ही जाग्रत रहना चाहिए। आध्यात्मिक पथ पर आने वाली विकट कठिनाइयों के सामने हिम्मत न हारकर, उनका नम्रता और साहस से सामना करके आगे की ओर बढ़ते रहना चाहिए। सच्चे प्रेमियों से प्रेम की शिक्षा लेनी चाहिए, क्योंकि सच्चा प्रेम वह आग है, जिसकी एक चिनगारी ही रास्ते की समस्त कठिनाइयों को जलाकर खाक कर देती है।

पूर्ण सद्‌गुरु की पदवी बहुत ही ऊँची है और जिज्ञासु तब तक गिनती में नहीं है, जब तक वह अपने अहं को तपाकर नष्ट नहीं कर देता। पुन्हू शाही ख़ानदान का था और ससुई थी एक साधारण धोबिन। पुन्हू रूपी सद्‌गुरु ने ससुई का कुल नहीं देखा, बल्कि देखी उसकी अपूर्व सुन्दरता। शाह साहब ने बताया है कि सच्चे जिज्ञासु में भी कुछ छिपा सौन्दर्य रहता है, जो पूर्ण सद्‌गुरु को ही दिखाई देता है; फिर चाहे वह कितने साधारण कुल का भी क्यों न हो। प्रायः सद्‌गुरु और जिज्ञासु का मिलन थोड़े समय के लिए ही होता है, किन्तु उस मिलन से जिज्ञासु इतना प्रभावित होता है कि अपने को जीवित ही मारकर (अर्थात् सांसारिक नाते तोड़कर) जाकर अपने प्रियतम से मिलता है। सच्चा साधक नम्रता से भरा होता है और सदैव अपने प्रियतम के सामने अनुनय-विनय करता रहता है तथा अपनी अयोग्यता का बखान कर प्रियतम की अनुकम्पा प्राप्त करता है।

लील न जाग्रिएँ लख सीएँ, कुली नोमु कयाइ।
क़ुम थी, पहुचु क़रीब खे, इज्लसि तो न जुग्राइ।
मुठी ! महमाननि सीं, वेही राति विहाइ।
जेलाँ निन्ड कयाइ, ते रोज़ु रहीं थी राह में।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ऐ ससुई) तू रात के समय थोड़ी सी भी सचेत न रही, तू केवल (अज्ञान की) नींद ही करती रही। अब भी उठ और जाकर प्रियतम तक पहुँच क्योंकि इस तरह बैठना उचित नहीं। ऐ भाग्यहीन ! तू (परमात्मा-रूपी) अतिथि के साथ सारी रात रहकर गुज़ार। जिस हालत में तू ने नींद ली है, उस हालत में तू सदैव के लिए रास्ते पर ही रह जायगी अर्थात् कभी भी मंज़िल तक नहीं पहुँच सकेगी।

ग़ाफ़िलि ग़फ़िलत छोड़ ! तूं कीअं अणासी ओझिरीं।
चुपाता चढ़ी विया, वञी पहुता तोड़ि।
नैंणनि निन्ड ऊखोड़ि, जिम वरनि में वाका करीं॥

ऐ गाफ़िला ! गफ़िलत छोड़। ऐ निर्लज्जा! तू कैसे नींद की ख़ुमारी में अलसा रही है ? वे (पुन्हू और उसके भाई) चुपचाप ऊँट पर सवार होकर चले गये और अपनी मंज़िल तक जा पहुँचे। अब भी आँखों से नींद निकाल दे, कहीं ऐसा न हो कि इस (नींद के) कारण तुझे पर्वतों के कठिन रास्तों पर रोना-चिल्लाना पड़े।

सुतीअं पेर डिघा करे, वड्डी जाड़ कयाइ।
दर भर उभिईं दोस्त जे, त सुरि पुरिहून्द सुयाइ।
असलि आरीअ ज्ञाम जी, सग़ी तूँ न सियाइ।
पुन्हूं सीं पियाइ, थी निभाग़ी ! निन्डूँ करीं !

(ऐ ससुई) तू ने महान भूल की है कि पाँव पसार कर सो गई। ऐ नादान ! तू क्यों नहीं अपने प्रियतम की खोज करती है ? इस नींद (अज्ञान) के कारण भाग्यहीनों पर (जीवन व्यर्थ गंवा देने के) आरोप लगते हैं। जो (जीवात्माएँ) सूर्यास्त होते ही सो जाती हैं, वे पुन्हू (परमात्मा) की माँग ही कैसे करती हैं ?

सुतीअं सन्झेई, मुंहूँ वेढ़े मुअनि जिअं।
ओजाग़ो अखियुनि खे, ज्ञातोइ न ड्रेई।
हथाँ तो पेई, थी कचो केचियुनि करीं॥

(ऐ ससुई) तू सूर्यास्त होते ही मुर्दे की तरह मुख ढाँपकर सो गई। आँखों को जाग्रत रखना तो तू जानती तक नहीं। भूल तो तुझ से हुई है और दोष तू केचियों (केच के रहनेवालों) को दे रही है। अर्थात् साधक अपने अज्ञान के कारण भटकता है, फिर भी वह अपने को दोषी न मानकर दूसरों को दोषी मानता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डूंगर तूं ड्राढो, ड्राढा ! ड्राढायूँ करीं।
मूँ तन अन्दरि तीअं वहीं, जिअं वणु वढे वाढो।
ई कर्म जो काढो, ना त केर पन्धु करे॥

(ससुई पर्वत को उलहना देती हुई कहती है) ऐ पहाड़, तू बड़ा क्रूर और कठोर है। ऐ पत्थर दिल, तू मुझ पर बहुत ही ज़ुल्म-सितम कर रहा है। तू मेरे शरीर को ऐसे काट रहा है, जैसे सुतार पेड़ को काटता है। यह सब क़िस्मत का खेल है, नहीं तो कौन इस पर्वत पर भटकता ?

डूंगर ! ड्रोरापो, पहिर्यों चवन्दियसि प्रियनि खे।
पहण पेर पिथूं कया, तिरियूँ छिनियूँ तो।
रहम न पियइ रूह में, क़दुरु मंहिजो को।
वाको कन्दियसि 'वो ! मूँसीं जबलु थो जाडूँ करे'॥

ऐ पर्वत, मैं सबसे पहले प्रियतम से तेरी शिकायत करूँगी। कहूँगी, "पत्थरों ने मेरे पैर बुरी तरह से घायल कर दिए हैं तथा मेरे तलवों में छाले डाल दिए हैं। तेरे हृदय में मेरे लिए थोड़ी भी दया उत्पन्न न हुई और न ही तू ने मेरी क़द्र की।" मैं विलाप करके कहूँगी, "ऐ अल्लाह, पर्वत मुझसे बड़ी कठोरता से पेश आ रहा है।"

डूंगर ! डुखोयुनि खे, दिलासा ड्रिजनि।
घणो पुछिजे तिनि खे, जिनि वटाँ होत वञनि।
तूँ कीअं सन्दा तिनि, पहण पेर डुखोईं॥

ऐ पहाड़, दुःखों के सताये हुए लोगों को तो आश्वासन देना चाहिए। जिन्हें प्रियतम छोड़कर चले जाते हैं, उनके प्रति तो सहानुभूति दिखानी चाहिए। ऐ पर्वत ! (सहानुभूति न दिखाकर) तू कैसे उनके (दुखी) पैरों को कष्ट दे रहा है ?

की जे कढिया पार; डुखीअ डूंगर पाण में।
सुणी सा तन्वार, मिरूँ पिया मामरी॥

(विरह) दुःख से घायल ससुई तथा पर्वत ने आपस में मिलकर कुछ ऐसे विलाप किए कि उनका स्वर सुनकर पशु भी मातम करने लगे। (तात्पर्य यह कि ससुई के विलापों की गूँज से जानवर तक दुखी हो गए।)

मूँ खे छड्रि म छपरीनि, हिति, होताणी ! हाणि।
ओड्री मुन्ध उठनि खे, अल्लाह कारण आणि।
पोरिह्यो कन्दियसि पाणि, अगियाँ आरीचनि जे॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐ पुन्हू, मुझे यहाँ पहाड़ों में अकेला मत छोड़ दे। परमात्मा के लिए इस अबला को अपने ऊँटों के समीप ला। मै तेरे लोगों की दासी बनकर सेवा करूँगी।

जेही जे तेही, त बि ब्रान्ही ब्रारोचनि जी।
हुजत होत पुन्हूअ सीं, मूँ कमीणीअ केही।
असुलि आरीअ ज्राम जी, पले आऊँ पेई।
होइ जा पाईनि पेर में, तंहि जुतीअ न जेही।
विसारे वेही, तिनि केचियुनि खे कीअं रहाँ ?

(ससुई कहती है) मैं जैसी हूँ, वैसी ही पुन्हू की दासी हूँ; भला मुझ दुष्टा दासी का, मालिक पुन्हू पर कैसे अधिकार हो सकेगा ? वास्तव में, मैं आरी सरदार (पुन्हु-परमात्मा) के दामन में पड़ी हूँ अर्थात् उसकी ही मैंने शरण ली है। जो जूते वह अपने पैरों में पहनते हैं, मैं उन जूतों जैसी भी नहीं हूँ। मैं केच के सरदार को कैसे भूलकर बैठ जाऊँ ? (इस पद में शाह साहब ने जिज्ञासु की विनम्रता तथा विनय का वर्णन किया है। सच्चा साधक ससुई की तरह परमात्मा के सामने अपने को हर तरह से तुच्छ मानता है।)

हुई, जे न हुई, तबि ब्रान्ही ब्रारोचनि जी।
इन सङ मुक़ाबिलि ससुई, सन्दियनि थे सुई।
हुन ताँ लज्र लुई, हिन जो हलण होत ड्रे॥

(ससुई कहती है) चाहे मैं रहूँ, या न रहूँ, फिर भी मैं दासी अपने पुन्हू की ही हूँ। वास्तव में ससुई का नाम पुन्हू से नाता जोड़ने के कारण ही सुनने में आया है। (अर्थात् पुन्हू से नाता जोड़ने के कारण ही उसे ख्याति मिली है।) यद्यपि उन्होंने अपनी लाज (पत्नी) से नाता तोड़ दिया है, पर मैं फिर भी पुन्हू-प्रियतम की ओर ही चलती रहूँगी।

हलणु सहाँ न होत जो, वञणु मूँ न वसु।
अल्लाह ! आरीचनि जे, गोली मेड़िईं गसि।
प्रीं, पन्हवार ! तो पुछाँ, डून्गरिया ! मूँ ड्रसि।
अखियनि जे आरसि, मन्ध जीहाई जोड़ की॥

(ससुई कहती है) मैं पुन्हू का, यहाँ से चला जाना सहन नहीं कर सकती हूँ और उस तक पहुँचना मेरे वश से बाहर है। ऐ अल्लाह ! काश तू इस दासी को पुन्हू के रास्ते तक पहुँचा दे। ऐ पथिक, मैं तुझसे अपने प्रियतम की पूछताछ कर रही हूँ। ऐ पर्वत ! तू ही मुझे उसका कुछ पता बता दे। आँखों के आलस्य (नींद) ने इस औरत के साथ यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग़ज़ब किया है। अर्थात् यदि मेरे आँखों में आलस्य न होता, तो आज मेरा यह हाल न होता।

पर्तंपर्तो पुन्हुअ जो, सहाई, स्याहु।
मूँहुँ ड्रेई मूँ आइयो, रन्गारन्गी राहु।
पहरीं ड्रीन्दा पाहु, पोइ रङींदा रङ में।।

पुन्हू (रूपी पूर्ण सद्गुरु) में कभी चाँदनी का प्रकाश है तो कभी अन्धकार। यह तरीक़त (आध्यात्मिकता) का रास्ता मेरे सामने आया है। (इस रास्ते पर) वह (सद्गुरु) पहले तो मुझे तेज़ाब में डालेंगे अर्थात् मुझे कष्ट देकर मेरी कलुषता को साफ़ करेंगे; फिर अलौकिक रंग में रंगकर लाल कर देंगे। (तात्पर्य यह कि सद्गुरु पहले कठोर बनकर साधक के मन की कालिमा को धोने के लिए कसौटी के तौर पर उसे नाना तरह की मुसीबतों में डालता है पर बाद में उसे अलौकिक रंग में रंगकर निहाल कर देता है।)

हक़ीक़त हिन हाल जी, जे ज़ाहिर करियाँ ज़री।
लग्रे माठि मिरूअनि खे, डूंगर पवनि ड्रुरी।
वन्नि वण ब्ररी, ओभरि उभिरे कीन की।।

(ससुई अपने विरह का वर्णन करती कहती है) यदि मैं अपनी विरहाग्नि को रत्तीमात्र भी प्रकट करती, तो पशु तक आश्चर्य में पड़ जाते तथा पहाड़ों के हृदय फट जाते। वृक्ष जलकर खाक हो जाते तथा हरियाली कहीं भी दिखाई न देती।

ब्रियूँ ड्रेई ब्रन खे हलिजि पासे हेक।
वरु न सहे वेक, तूँ टेड्री! टिआयूँ करीं।।

(शाह साहब ससुई रूपी साधक से कहते हैं) दूसरा सब कुछ त्याग कर तू एक (परमात्मा) की ही ओर चल। प्रियतम को दूरी (द्वैत) सह्य नहीं और तू टेढ़ी (अज्ञान में फँसी हुई) तीन बातें कर रही है अर्थात् अज्ञानी जीव अज्ञान के कारण, अपने आप को, परमात्मा को तथा जगत को तीन अलग-अलग हस्तियाँ मान बैठता है, पर वास्तव में तो सब कुछ एक परमात्मा ही है, और उसके सिवा कुछ भी नहीं है।

अजाँ तू अवाट, वाटाँ पासे वेसिरी।
सून्हीं थी सुवाट, त मन्झाँ दिलि दग्रु लहीं।।

(ऐ ससुई) अब तक तू गुमराह तथा सत्य के रास्ते से अनभिज्ञ है। तू सीधे रास्ते से अवगत हो जा ताकि तू अपने हृदय में ही प्रियतम का मार्ग ढूंढ सके।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"स्वर प्रभाती"

प्रभाती एक रागिनी का नाम है, जो प्रभात के समय गाई जाती है। इस स्वर में कवि ने इन्सान को परमात्मा की बन्दगी करने के लिए सावधान किया है और परमात्मा की उदारता की प्रशंसा की है। शाह-साहब ने उदार सपड़ राजा तथा मन्द-बुद्धि याचक की कहानी द्वारा बताया है कि यदि मन्द-बुद्धि मानव जो अनेक दोषों से भरा हुआ है, परमात्मा के समक्ष अनुनय-विनय करे तो दयानिधान उसके समस्त दोषों को क्षमा कर उसे समस्त इच्छित वस्तुएँ दे देता है। सपड़ लसबेले का राजा था, जिसकी उदारता की बराबरी कोई नहीं कर पाता था। अपनी उदारता के कारण उसने एक मन्द-बुद्धि चारण पर प्रसन्न होकर, उसे एक सौ ऊंचे नस्लवाले अश्व पुरस्कार के तौर पर दे दिए। सपड़ राजा की तरह ही उदार परमात्मा भोले भाले याचकों को छप्पर फाड़ कर देता है।

ईय न भाननि भीरु, जिअं केनरु कीरीअ टंगियो।
सून्हारी सुबूह सीं, विझी वेठें वेरु।
तोखे चवंदो केरु, कीरत धारां मङिणो ?

(शाह साहब मानव को परमात्मा की बन्दगी करने के लिए परामर्श देते कहते हैं) ये याचकों के लक्षण नहीं है कि वे अपने (शरीर-रूपी) साज़ को एक कोने में रख दें तथा प्रभात से वैर कर बैठ जाएँ। (तात्पर्य यह कि मानव-शरीर पाकर मनुष्य को सदैव परमात्मा के गुण गाने चाहिए, न कि अज्ञान की नींद में मस्त रहना चाहिए) भला बिना भजन करने के तुझे याचक कहकर कौन पुकारेगा (अर्थात् भगवद्भजन न करने वाला मनुष्य, मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं है।)

सुतो कीअं निन्डूँ करीं, रो विहाणीअ रोइ।
सुभाँ साज़ु सन्दोइ, प्यो हून्दो पट में।।

(ऐ याचक) तू अज्ञान की नींद में कैसे सोया है ? प्रभात को उठकर तू (परमात्मा के सामने) रो (प्रार्थना कर) क्योंकि कल तेरे मरने पर तेरा यह (शरीर रूपी) साज़ ज़मीन पर व्यर्थ ही पड़ा रहेगा। (तात्पर्य यह कि मानव-शरीर पाकर मनुष्य को परमात्मा की बन्दगी कर उसे सफल बनाना चाहिए और अज्ञान की नींद में पड़कर उसे नष्ट नहीं करना चाहिए।)

मूढ़ो भणीं मङिणा, केद्राहिं हुएं काल ?
लंघा छद्रि लतीफ़ु चए, उझण जा अफ़ाल।
सपड़ दरि सुवाल, करि त कीमत आणिईं।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐ याचक, तू उदास और चिन्तित होकर क्यों घूम रहा है ? कल तू कहाँ था ? ये अप्रशंसनीय कार्य छोड़ दे (सांसारिक लोगों के पीछे दौड़ना छोड़ दे।) तू उदार सपड़ (परमात्मा) के द्वार पर जाकर माँग तो तुझे मूल्यवान दान मिले।

जेंकी ड्डॾनि ड्रे, गुझयाँई गुझ में।
से जे सुणनि कड्डाहिं, किरिति वारा के।
त साज़ मिड़ोई से, हून्द पिथूँ कनि पलक में।।

परमात्मा गुप्त रूप से मन्द बुद्धिवाले याचकों को जो कुछ देता है, उसका पता यदि (सांसारिक लोगों की) प्रशंसा करनेवालों को जान पड़े तो वे क्षण में ही अपने साज़ तोड़कर चूर-चूर कर दें। (तात्पर्य यह कि परमात्मा के द्वार से माँगनेवाले भोले भाले याचकों को सांसारिक लोगों की प्रशंसा करनेवाले चतुर याचक से भी ज़्यादा मिलता है।)

ड्राति न आहे ज़ाति ते, जो वहे सो लहे।
आरियूँ अब्रोझनि जूँ, सपड़ ज्ञाम सहे।
जो राइ वटि राति रहे, तंहि जुखी ताँ न थिए।।

परमात्मा की अनुकम्पा किसी जाति विशेष पर नहीं होती है, जो साधना करता है, उसे ही वह प्राप्त होती है। भोले भाले मानवों के दोष दानी सपड़ (परमात्मा) ही सहन कर सकता है। जो सपड़ राजा (परमात्मा) के पास रात गुज़ार देता है (अर्थात् संसार को छोड़कर बन्दगी करता है) उसे किसी भी तरह का दु:ख दर्द नहीं होता है।

ड्ड्डु थी ड्रानु घुरीजि तूँ, छदि विज़ा विञाए।
सपड़ राति सन्बाह्या, ताज़ी तो लाए।
जो ज़ाणी न ग़ाए, तिन्हीं सी ब्रेली धणीअ ब्राझ की।।

(ऐ मानव) तू अपनी झूठी विद्वत्ता भूल कर, अनजान (नम्र) बनकर दान माँगना। दानी सपड़ (परमात्मा) ने कल रात तेरे लिए ताज़ी-नस्ल के अश्व तैयार कर रखे हैं। जो बिल्कुल गा नहीं पाता है (अर्थात् जो हर तरह से दोषी और अयोग्य है) उस पर भी वह कृपा करता है।

पियो लेटीं लुट, सज़ियूँ रातियूँ सुम्हीं।
उथी आधीअ न करिएं, सपड़ साणु सहट।
रून्झी रात उपिटया, पेटीन्ओं पाणीट।
मेड़े त्याँ मट, चून्डे भरिया चारणीन।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ऐ मानव) तू रात के समय दानी सपड़ (परमात्मा) से बातचीत न करके (माया में) मस्त होकर सारी रात अज्ञान की नींद में सोया रहता है। दयालु राजा ने अपनी (कृपा की) पेटी से अनेक रत्न निकाल कर रख दिए। सच्चे याचकों ने उन रत्नों से अपने हृदय-रूपी घड़े भर कर रख दिए।

ॾातार ॾुख कया, पाणा मथे मङणियन।
"मूँ दर छड्डियो मङणा, मङी कोह ब्रिया।
तद्ॾहिं तो पिया, विचाँ विल्हा ॾीन्हड़ा।।

दाता ने याचकों को उपालम्भ देते हुए कहा—'ऐ याचको, मेरा द्वार छोड़कर तुम दुसरों के दरवाज़े पर माँगने क्यों जाते हो? इस (मेरे द्वार का त्याग करने के) कारण ही तुम्हें बीच के कुछ दिन कठिनाइयाँ देखनी पड़ी।

मङु तंहिखाँ मङिणा! जो ॾीहाड़ी थो ड्रिए।
कूड़ा दर दुनिया जा, जाजिक मङीं जे।
सुभाँ तव्हीं खे, मोटी ॾीन्दा मुँह में।।

ऐ याचक, तू उसी से दान माँग, जो प्रति दिन तुझे देता है। ऐ चारण, जिन सांसारिक दरवाज़ों पर तू हाथ फैलाता है, वे सब झूठे हैं, वे कल तेरे सामने ही तेरा मज़ाक उड़ायेंगे। (तात्पर्य यह कि परमात्मा खामोश दान देता है, पर संसार के लोग अपने दान की चर्चा सभी से करते रहते हैं।)

खड़ह अग्रियाँ खपु, ड्रिहाणी ॾातार जे।
लन्घा! लाइ म लिख सीं, मथाँ चाँउठि चपु।
मङणहारनि मपु, कोन्हे ब्रियो कीरत रे।।

ऐ मँगता, तू दानी सरदार के आगे प्रतिदिन अपने आपको गला। ऐ याचक! तू रत्ती मात्र भी उसके द्वार की चौखट से यहाँ-वहाँ मत हो, क्योंकि याचकों के लिए प्रार्थना के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं है।

सपुड़ साहु पसाहि, जाजिक जिम विसारिईं।
रेही रुपे संदियूँ, तन्दुं तुम्बे खे पाइ।
लंघा तू लीलाइ, अग्रियाँ वञी उन जे।।

ऐ चारण तू एक पल भी उदार, दानी सपड़ (परमात्मा) को मत भूल। तू अपने (शरीर-रूपी) साज को ठीक कर उसमें चाँदी की तारें जोड़ दे (अर्थात् मानव-शरीर पाकर अच्छे कार्य कर तथा परमात्मा की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बन्दगी कर उसे सफल बना।) ऐ याचक, तू उसके समक्ष जाकर अनुनय-विनय कर।

तूँ सपड़ु आऊँ सेकड़ू, तूँ साहबु आऊँ सग़ु।
पुछी तुंहिंजो पग़ु, कुल्हे पातुमि कीनरो।।

(शाह साहब परमात्मा की दया व उदारता का बखान करते हैं—) (ऐ मालिक) तू दानी सपड़ सरदार हो, मैं एक अकिंचन याचक हूँ। तू मालिक हो, मैं तेरा कुत्ता हूँ, तेरी राह पूछते-पूछते मैंने कन्धे पर अपना साज़ रखा है।

तूँ सपड़ु, आऊँ सेकड़, तूँ ड़ातरु आऊँ ड़ोह।
तूँ पारसु, आऊँ लोहु, जे सञीं, तूँ सोनु थियाँ।।

(ऐ मालिक) तू सपड़ दानी है, मैं भिखारी हूँ, तू दाता है, मैं पूर्ण दोषी हूँ। तू पारस है, मैं लोहा हूँ, पर यदि तू मुझे अपनी कृपा-दृष्टि से देखेगा तो मैं भी स्वर्ण बन जाऊंगा।

उभिरियो तारो, उथी वर विहाग़ु ड़े।
सपड़ु रीसारो, चिति परखे चारणीनि।।

(ऐ मानव) प्रभात का तारा निकल चुका है, तू उठकर अपने प्रियतम को रिझाने के लिए प्रभाती गा। सपड़ अपनी विरद का पालन करता है। वह याचकों के (झूठे आडम्बर को न देख) हृदय को परखता है (अर्थात् तेरे हृदय में यदि सच्चे प्रेम के सिवा कुछ नहीं है तो वह तुझ पर अवश्य ही कृपा करेगा)।

"स्वर पूरब"

इस स्वर में शाह साहब ने पूरब देश (परमात्मा के देश) का वर्णन किया है। वे जोगियों को पूरबिया कहते हैं क्योंकि वे सदैव पूरब देश की ओर ही से चलते दिखते हैं। माना जाता है कि शाह साहब का हृदय किसी पूरबी जोगी से जुड़ा हुआ था पर वह सर्वस्व त्याग कर तथा उसे छोड़कर चला गया। परिणामतः शाह की आत्मा विरह में दीवानी सी बन जाती है और कौए द्वारा अपने प्रियतम को संदेश भेजती है, और लौट आने के लिए प्रार्थना करती है। वह कौए से कहती है—ऐ कागा, तू प्रियतम को मेरा नम्रता से प्रणाम करना और धीमी आवाज़ में मेरा संदेश उसे देना। कहना कि तेरे विरह में मेरी आँखों का पानी तक सूख गया है। ऐ कागा, यदि तू मेरे प्रियतम को यहाँ ले आयेगा तो मैं तेरे पंख सोने से मढ़

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूंगी, यदि तू केवल प्रिययम का कुशल-मंगल भी ले आयेगा, तो मैं अपना कलेजा अपने हाथ से निकालकर तुझे दूँगी। तू उसे ले जाकर प्रियतम के सामने खाना, ताकि उसे मेरे हाल का पता चले। इस प्रकार पूरे स्वर में एक जीवात्मा की अपने प्रियतम से मिलने की तड़प दिखाई देती है।

करे काँग ! कुर्निशूँ, पेरें प्रियिन पईजि।
आऊँ जो ड्रीन्ई स्नेहो, विच न विसारेजि।
अल्लाह लग्नि, लतीफ़ु चए, गुझो ग़ाल्हाइज़ि।
चुवाँ तीअं चईजि, त खिन्याता खुशि हुएं॥

शाह साहब कौए को सम्बोधित करते कहते हैं— ऐ कागा, तू प्रियतम को (मेरी ओर से) प्रणाम करना तथा नम्रता-पूर्वक उसके चरण स्पर्श करना। मैं जो तुझे संदेश दे रही हूँ, उसे राह में ही भूल मत जाना।

परमात्मा के लिए, उससे गुप्त रूप से बातचीत करना। ऐ कौए, यदि जैसे मैं तुझे कहूँ, वैसे ही तू करेगा, तो सदैव ही प्रसन्न रहेगा।

आऊ उड्रामी कांगड़ा ! पारान्भानि पचारि।
वेही हिति वसाल जो, ताँ को तिरु तन्वारि।
जे ड्रिसण में ड्रेसारि, से उड्रामी आणि प्रियनि॥

ऐ कौए, तू वापस उड़कर आ और प्रियतम का संदेश मुझे सुना। तू यहाँ मेरे पास बैठकर, मिलन के विषय की कुछ बातें बता। जो प्रियतम, बाह्य रूप से किसी दूर देश में है, उसे उड़ाकर मेरे पास ले आ।

काँगल, से ई कोठि, प्रियनि जे परड्रेहि विया।
जिनीं रिड़ जहान में, अखड़ियुनि अरोठि।
अल्लाह लग्नि लतीफ़ चए, कजि ग़ाराचो ग़ोठि॥

ऐ कागा, उस दिलेजान को बुला ला, जो परदेश गया, और जिसके सिवा रो-रोकर मेरी आँखों का पानी ही सूख गया है। परमात्मा के लिए यहाँ गाँव में आकर खुशियाँ मना (अर्थात् प्रियतम के आने का शुभ समाचार ले आ ताकि हम उसके स्वागत में खुशियाँ मनाएँ।) यदि प्रियतम, किसी कारण से नाराज़ है तो तू (उसे मनाकर) वापस उड़ा ला।

प्रियनि जी परदेस में, तिनिजी काँगा ! कजि ख़बर।
त सभि मढ़ियाँ सोन सीं, पखी ! तुंहि जा पर।
घुमी मथाँ घर, ड्रिज पारान्भा प्रियनि खे॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐ कागा, मेरा प्रियतम जो दूर देश में है, उसका समाचार यदि मुझे आकर सुनायेगा, तो ऐ परिन्दे, तेरे पंखों को मैं स्वर्ण से जड़ दूँगी। प्रियतम के घर के ऊपर उड़-उड़कर, उसे मेरा संदेश देना।

कढी काँगा ! तो ड्रियाँ हिन्ओ साणु हथनि।
वञी खाउ विलाति में, अग़ियाँ अजीबनि।
प्रियनि मां चवनि, त हिअं क़ुर्बानु केरु थिई॥

ऐ कागा, मैं अपना कलेजा अपने ही हाथों से काटकर तुझे दूँ, तू उसे परदेश में प्रियतम के सामने जाकर खा, ताकि प्रियतम तुझ से पूछे— "इस प्रकार किसने अपने को कुर्बान कर दिया है ?"

काँगल क़रीबनि जा, अची वाई वणु।
तो में बोइ बहार जी, मुशिक खथोरीअ मणु।
अची अजीबन जो, ओरान्धिजि अङणु।
तोखे पसी तणु, सूरन्आँ साफ़ु थिए॥

ऐ प्रियतम के कागा, तू आकर कोई शुभ समाचार सुना। तेरे संदेश में वसन्त का सौरभ तथा मन जितनी कस्तूरी की महक है। तू यदि महबूब के आँगन के ऊपर उड़ कर आयेगा तो मेरा शरीर दर्द और पीड़ा से मुक्त हो जायेगा।

काँगल नेई कांगि, मुन्हिजी ड्रे महबूब खे।
लालन लायई ड्रीन्हड़ा, कँहि सटाणे सांगि।
अवाँ रिड़ अड़ान्गि, वेठी विरह वसाइयाँ॥

ऐ कागा तू मेरा यह पैगाम प्रियतम को पहुँचा (उससे कहना) "ऐ प्राणनाथ, तू ने किस कारण इतने दिन लगाए हैं। तेरे सिवा मैं दुखिया विरह-अग्नि में जलकर अपने दिन गुज़ार रही हूँ।"

ज़ाग़ ! तुंहिजीअ ज़ाति जो, थोरो मथे मूँ।
अुड्रामिजि अब्दुल्लतीफ़ चए, सुबह सेणनि ड्रूँ।
कजि वेन्तियूँ वितरियूँ, ब्राझाइजि ब्रहूँ।
त "लालन कोन लहूँ, जिहो तो जहान में"॥

ऐ कौए, तेरी जाति का मुझ पर बड़ा अहसान है। तू सुबह प्रियतम के पास उड़कर जाना और उससे मेरी ओर से अनुनय-विनय करके पूछना—"ऐ प्राणधार, इस संसार में तुझ जैसा कोई भी दिखाई नहीं देता है।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क़रीबनि जो काँगड़ो, मथे टार टिले।
खणियो खिन्यातो ख़बरूँ, खीरूँ द्रियो खिले।
लाई जंहि लालन साँ, मन्हिजी बाति बिले।
सो वरु चश्मिनि ते चले, जो दरबारी दोस जो॥

प्रियतम का कागा, शाखा के ऊपर नाच-कूद रहा है। वह शुभ समाचार ले आने के कारण ही विहँस और किलक रहा है। चूँकि वह मेरे महबूब के दरबार से होकर आया है तथा मेरे जीवनाधार तक मेरी बात पहुचाई है अतः मेरी इच्छा है कि वह मेरी आँखों के ऊपर चले।

तिनि अख्युनि उतां सुख, खिलन्दे खणनि जे।
प्रियुनि पाब्रोहण साँ, दूर कया सभि ड्डुख।
माड़हुनि लेखे बुख, सामी सूर सना कया॥

उन नेत्रों से सुख प्राप्त हुआ जिनसे प्रियतम ने मुस्करा कर मेरी ओर देखा। प्रियतम ने अपनी मुस्कान से आशिक के समस्त दुख-दर्द मिटा दिए। मनुष्य समझते हैं कि भूख तथा फ़ाक़ों ने योगियों को जर्जर बना दिया है, किन्तु वास्तव में उन्हें विरह ने कमज़ोर बना दिया है।

सामी चवाईं, सुखु तल्बीं, सिखिएँ न, सामी।
अञा ओरिएं पन्ध में, वेठें विसामी।
गुर खे तूँ न गद्गिएं, चवाईं इनामी।
दाइमु मुदामी, पूरो रहिजि प्रियनि सीं॥

शाह साहब योगी को संबोधित करते कहते हैं—(ऐ योगी) तू अपने को स्वामी कहलाता है और सुख की कामना करता है ? वास्तव में तू ने कुछ भी नहीं सीखा है। (तात्पर्य यह कि सच्चे योगी कभी सुख की तमन्ना तक नहीं रखते, अतः जो तमन्ना रखते हैं वे योगी कहलाने के अधिकारी नहीं है।) तू (आध्यात्मिक) यात्रा के आरम्भ में ही बेचैन होकर बैठ गया है। तू गुरु के सन्मुख तो हो नहीं पाता (अर्थात् गुरु के बताए हुए मार्ग पर तो चल नहीं पाता) और स्वयं को पुरस्कृत कहलाता है। तुझे सदैव ही अपने गुरु से वचन तथा विचार में सच्चा रहना चाहिए।

पूरबिया पूरे विया, आसण आधीअ राति।
सुयमि न सनासियुनिजूँ, पचारूँ प्रभाति।
का जा जोगी ज़ाति, मिट न मँज़ूरिनि जा॥

पूरब के पथिक, आधी रात को अपने (सांसारिक) स्थान बन्द कर चले गये। प्रभात के समय उन परदेशियों के स्वर सुनाई नहीं दिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन योगियों की ज़ाति ही ऐसी है कि वे सांसारिक दु:खों के मारे हुए लोगों के सम्बन्धी नहीं होते हैं अर्थात् उन्हें किसी से किसी प्रकार का मोह नहीं होता है।

मथे राइ रवान थिया, पूरब पूरियाऊँ।
ही घरु घोरियाऊँ, आग़ान्ढियाऊँ अग़ियाँ।।

सच्चे योगी पूरब देश की यात्रा के लिए अग्रसर हुए। उन्होंने सांसारिक आसन त्यागकर दूरस्थित देश में जाकर अपनी कुटिया बनाई है।

पूरब पूरब तबि करूँ, जबि हिन्अड़े आब़नि पूर।
सिकन्दे खे सज़णिन, निकूँ लायूँ नूर।
मारियसि तिन्हीनि सूर, जिअं साज़नु सुज़े, न मिले।।

(शाह साहब फ़र्माते हैं) मुझे जब (पूरबी योगी के) विचार हृदय में आते हैं तब मैं पूरब-पूरब पुकार उठता हूँ। प्रियतम के लिए तड़पते हुए मेरे नेत्रों ने अश्रुओं की वर्षा की है। मुझे इसी दु:ख ने बेचैन बना दिया है कि मुझे लगता है कि मेरा प्रियतम (योगी) मुझे अब नहीं मिलेगा।

"स्वर कारायलु"

'कारायलु' शब्द का अर्थ है हंस। इस स्वर में शाह साहब ने हंस के गुणों की प्रशंसा की है। उन्होंने सच्चे आशिक़ों को हंस माना है तथा संसार की माया में फँसे हुए लोगों की तुलना बगुलों से की है। संसार को उन्होंने मैले पानी की उपमा दी है।

वास्तव में परमात्मा के प्रेमी, जिन्हें वास्तविक ज्ञान है, वे हंस की तरह सत्य व ज्ञान के मोती चुगते रहते हैं बल्कि संसार के विषय-वासनाओं में फंसे हुए लोग बगुले की तरह कपटी एवं धूर्त हैं तथा वे (विषय-वासना रूपी) दुर्गन्धमयी मछली की ओर ही आकर्षित रहते हैं। इन्सान की आत्मा तो हंस की तरह उज्जवल व पवित्र है, पर उसे चारों ओर से विषय-वासना रूपी व्याध घेरे हुए बैठे हैं।

इसी स्वर में शाह साहब यह भी कहते हैं कि यह संसार मरुभूमि की तरह है, जिसमें विषय-वासना रूपी अनेक छोटे बड़े जहरीले सर्पों का निवास है, जिनसे मानव को हमेशा ही सतर्क रहना चाहिए। जो सच्चे आशिक़ हैं, वे इन सर्पों को भस्म कर अर्थात् अपनी इन्द्रियों को जीतकर परमानन्द में डूबे रहते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'वहदह' वाई, चढ़न्दे चयाईं ।
सो लुड़ लन्धियाईं, जिते पारख पखियाँ ।।

हंस (सच्चे आशिक़) उड़ते हुए यही रट लगाते हैं "केवल एक परमात्मा ही है" और इस तरह वे संसार रूपी बहाव में परीक्षा देकर पार हो जाते हैं ।

ब्रगहिन सीं ब्राणु हणीं, उद्राणो आकासि ।
जिते प्रियनि संदासि, सो सुर मणे हंजड़ो ।।

सच्चे आशिक़ रूपी हंस बगलों (सांसारिक लोगों) की संगत त्याग कर आकाश की ओर उड़ते हैं और जिस सरोवर में उनका प्रियतम है, उसी की ओर उड़कर जाते हैं ।

अखिड़यूँ ओड़ाह में, उभो तके तारि ।
पथूँ जे पातारि, हन्जु तिन्यनु जो हेरऊँ ।।

हंस की आँखें (ज्ञानरूपी) गहरे समुद्र पर लगी हुई हैं और वह खड़ा रहकर उस पानी को अच्छी तरह से जाँच-परख रहा है । हंस उन मोतियों का आदी है जो समुद्र के बिल्कुल नीचे हैं । तात्पर्य यह कि सच्चे आशिक़ की आँखें गहन ज्ञान में ही लगी रहती हैं ।

वञीं न पेही, पिथुनि लाइ पातार में ?
कन्धीअ में केही, हाज तुन्हिंजी हन्जड़ा ।।

ऐ हंस, तू मोतियों के लिए समुद्र के तल में क्यों नहीं चला जाता ? (अरे मूर्ख) किनारे पर तेरा क्या काम ?

हँजनि सीं हेकार, जे ग्रण करे निहारिईं ।
ब्रगहिनि साणि ब्रीहार, ब्रेल्ह न ब्रधीं कद्रहीं ।।

(ऐ इन्सान) यदि तू एक बार सोच-समझकर हंसों का संग करेगा तो फिर तू भूलकर भी बगलों की संगत ग्रहण नहीं करेगा ।

आउ अुद्रामी हन्जड़ा ! सर में सारियन्ई ।
मताँ मारियन्ई, पाड़ेहरी पहु करे ।।

ऐ हंस (सच्चा इन्सान) तू उड़कर (ज्ञानरूपी) सरोवर में आ, क्योंकि वहाँ सभी तुझे यादकर रहे हैं । (सावधान रह) कहीं ऐसा न हो कि (विषय-वासना रूपी) व्याध तुझे किसी षड़यन्त्र या युक्ति द्वारा मार दे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कवंरि पाड़ॾ पातार में, भँवर भिरे आकासि।
ब्रिन्हीं सन्दी ॻाल्हड़ी, राज़िक़ आन्दी रासि।
तंहि इश्क़ खे शाबासि, जंहि मुहबती मेड़िया ।।

कमल के फूल की जड़ पाताल में है और उसका आशिक़ भ्रमर आकाश में उड़ता है, फिर भी परमात्मा ने दोनों के प्रेम को पूरा किया, वह प्रेम धन्य है जो प्रेमियों को एक दूसरे से मिलाता है। (तात्पर्य यह कि प्रेम वह धन्य है जो हर तरह की दूरी को मिटाकर प्रेमियों को एक करता है।)

कंवरि पाड़ॾ पातार में, भँवर भिरे में सुञ।
ब्रिन्हीं सन्दी ॻाल्हड़ी, इश्क इय में अहञ।
तोइ न लहेनि उञ, जे पियो पसीं पाण में ।।

कमल के फूल की जड़ पाताल में है और भ्रमर शून्य आकाश में घूमता है, फिर भी दोनों की क़हानी प्रेम की निशानी है। वे आपस में प्रेम के जाम पीते रहते हैं फिर भी उनकी प्यास नहीं बुझती) उसी तरह यदि जीवात्मा को परमात्मा से प्यार हो जाता है, तो दूरी नष्ट हो जाती है और जीवात्मा की प्रेम की प्यास दिन प्रति दिन बढ़ती रहती है, बुझती नहीं।)

जेहर लोकु झप करे, ओहेर उॾामनि।
पिथूँ जे पातार जा, चेतारियो चुणनि।
कोहु कन्दा खे तनि, पाड़िहेड़ी पहु करे ? ।।

जिस समय लोग (अज्ञान की) नींद में डूबे हुए रहते हैं, उसी समय हंस रूपी स्नेही उड़ते हैं (बन्दगी करते हैं।) ज्ञान रूपी रत्न जो समुद्र के तल में है, उन्हें वे परख-परख कर चुगते हैं। भला विषय-वासना रूपी शिकारी इन पर युक्तियाँ चलाकर क्या करेंगे ? अर्थात् सांसारिक विषय-वासना रूपी शिकारियों का प्रभाव सच्चे आशिक़ों पर नहीं पड़ता है।

विया मोर मरी, हन्जु न रह्यो हेकड़ो।
वतनु थियो वरी, कूड़न कानेरनि जो ।।

(कलियुग का वर्णन करते शाह साहब कहते हैं कि) समस्त मोर (सच्चे मानव) मर चुके हैं और एक भी हंस (सत्पुरुष) नहीं रहा है। यह संसार रूपी सरोवर फिर से झूठे कपटी कौवों का वन गया है अर्थात् कलियुग में सच्चे मानव व सतपुरुष कहीं भी दिखाई नहीं देते हैं; केवल कपट, धोखेबाज़ ही दिखाई पड़ते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सो पखी सो पिञिरो, सो सरु सोई हन्जु ।
पेही जाँ परूड़ियो, मूँ पान्हिजो मन्झु ।
ड्रील जंहिं जो ड्रन्झु, सो मारी थो मन्झु फिरे ।।

शाह साहब फ़र्माते हैं) कि वास्तव में पक्षी (अर्थात जीव), पिंजरा (अर्थात् शरीर), सरोवर (अर्थात् संसार) और हंस अर्थात् परमात्मा) सब एक ही है। (तात्पर्य यह कि सब कुछ परमात्मा ही है। उसके सिवा और कुछ भी नहीं है)। मैंने आत्मावलोकन कर जबसे यह रहस्य जान लिया है, तब से ही मुझे मालूम हुआ है कि जिस मन रूपी व्याध का डर व ख़तरा है, वह भी भीतर ही है।

सन्हा भांइ न सप, वियाइ वासींगनि जा ।
जिनीन जी झड़प, हाथी हन्धाँ ही न चुरे ।।

(ऐ मानव) विषय-वासना रूपी वासींग सर्प के बच्चों को छोटा मत जान, क्योंकि इनका भी यदि डंक लग जाय तो हाथी भी वहीं ढेर हो जाए। तात्पर्य यह कि साधारण सी वासना भी हाथी जैसे शक्तिशाली व्यक्ति को अपने डंक द्वारा समाप्त कर देती है।

आसण जे आरीज में, औ कछर विह खरी ।
तिनि ज़ा मुंह मलकनि जहिड़ा, टिको ताँ न टरे ।
जे उन्हीनि साणु अड़े, त कान्हे जाइ जरीअ जी ।।

जिन (विषय-वासना रूपी) सर्पों का निवास इस (संसार रूपी) मरु भूमि में है, उनका ज़हर बड़ा ही क़ातिल है। उनके रूप तो फ़िरिश्तों की तरह सुन्दर हैं (अर्थात् सांसारिक भोग बाहर से सुन्दर है परन्तु परिणाम में वे विष-सदृश हैं) यदि उनका मात्र स्पर्श हो जाए तो फिर उनसे बचना रत्ती मात्र भी सम्भव नहीं है।

कंहिं कंहिं कारीअ ज़ाति खे, मोर न मटाईनि ।
जे चतुरा चखिया करे, त वग्र वराअे ड्रियनि ।
साथ समूरा नियनि, जे मठें भांई मोटिया ।।

(इस संसार रूपी मरु भूमि में) सर्पों की कुछ जातियाँ ऐसी हैं जिनसे (सच्चे इन्सान रूपी) मोर भी दूर भागते हैं अर्थात् संसार की कुछ विषय-वासनाएं ऐसी हैं जिनसे सत्पुरुष भी दूर रहने के लिए विवश हैं। यदि वे नीच जाति के सर्प अपनी चतुराई से उन मोरों को डंक मार देते हैं तो बेचारे मोर अपना सब कुछ गँवाकर (अर्थात् मानव शरीर नष्ट कर) जाते हैं। किन्तु यदि वे उस नीच जाति के सर्पों को बुरा समझकर उससे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूर रहते हैं तो फिर वे (न केवल खुद बच जाते हैं पर) अपने सभी साथियों को भी सुरक्षा से उस रास्ते से पार लगा देते हैं।

खपुर गोराड़ियुनि सीं, वद्वो विधुइ वेरु।
नाँग न वींदें निकिरी, तो ड्रर मथे पेरु।
ही तिनीं जो ढेरु, जिनि झूनागढ़ जलाइयो।।

(शाह साहब विषय-वासना रूपी सर्पों को सम्बोधित करते कहते हैं—) ऐ वासींग सर्प, तू ने शिर मुंडवाने वाले साधुओं के साथ शत्रुता मोल ली है। ऐ सर्प ! तुम अब बचकर नहीं जा सकते हो। तुम लोगों ने महान खतरे पर पैर रखा है। यहाँ उन सच्चे सन्तों का डेरा है, जिन्होंने अपने योग-बल से समस्त जूनागढ़ को जलाकर खाक कर दिया है।

"सुर सोरठ"

राइ ड्रयाच को गाथा और उसका आध्यात्मिक अर्थ

किसी समय राइ दयाच नामक राजा जूनागढ़ पर राज्य करता था। उसके एक बहन थी, जिसके कोई सन्तान न थी। एक बार उसकी निःसन्तान बहन ने किसी फ़कीर से सन्तान-प्राप्ति की दुआ माँगी। फ़कीर ने कहा—"मेरी दुआ से तुझे पुत्र प्राप्त होगा, किन्तु वह तेरे भाई का काल होगा।" यह सुनकर वह अत्यन्त ही परेशान हुई, अतः नौ महीनों के बाद जब उसने पुत्र को जन्म दिया, तब उसने उसी समय बालक को एक पेटी में बन्दकर उसे दरया में बहा दिया। यह पेटी तैरते-तैरते राजा अनीराइ के राज्य में जा निकली और एक चारण को हाथ लगी। उस चारण ने बालक को उठा लिया और उसे पाल-पोसकर बड़ा किया। बालक का नाम रखा बीजल।

बीजल जब बड़ा हुआ तब वह अपने पशुओं को जंगल में चराने के लिए ले जाने लगा। एक दिन जंगल में पशुओं को चराते समय उसे एक मधुर सुरीली आवाज़ सुनाई दी। उस आवाज़ में इतना माधुर्य था कि पशु-पक्षी तक मस्ती से झूमने लगे। बीजल वहाँ गया जहाँ से वह आवाज़ आ रही थी। उसने देखा कि किसी पशु की अन्तड़ियाँ वृक्ष पर टंगी हुई हैं और हवा के लगने से उनमें से मधुर आवाज़ आ रही है। बीजल ने शीघ्र ही सूखी हुई अंतड़ियाँ उठाईं और घर जाकर उसने अपने तम्बूरे में तार के रूप में उन्हें बाँध दिया। परिणामतः उस तम्बूरे की आवाज़ सुनकर मनुष्य तो क्या, जीव जन्तु तक मस्त हो जाते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिन दिनों बीजल का जन्म हुआ था उन्हीं दिनों राजा अनीराइ के यहाँ एक पुत्री का जन्म हुआ, किन्तु उस पुत्री को किसी कारण अपने लिए दुखदायी समझकर उसने उसे पेटी में बन्दकर समुद्र में फेंक दिया। वह पेटी राजा राइ दयाच के राज्य में रहनेवाले रत्ने नामक एक कुम्हार को मिली। रत्ने को अपनी सन्तान नहीं थी अतः वह पेटी में सुन्दर बालिका को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बड़े लाड़ प्यार से उसका लालन-पालन करने लगा। बालिका का नाम रखा गया सोरठ। सोरठ बचपन से ही सुन्दर थी पर जवानी में प्रवेश करते ही उसकी सुन्दरता में मानों चार चाँद सा लग गये। चारों तरफ उसके लावण्य की प्रशंसा होने लगी। राजा अनीराइ ने भी अपने लोगों के मुख से सोरठ की प्रशंसा सुनी। उस दुष्ट को यह पता ही नहीं था कि वह उसकी ही पुत्री है, जिसे उसने पैदा होते ही समुद्र में बहा दिया था। कामान्ध राजा अनीराइ ने शीघ्र ही रत्ने कुम्हार से सोरठ की माँग की। बिचारा कुम्हार राजा की बात कैसे टाल सकता था। अनीराइ ने विवाह की खूब तैयारियाँ कीं, किन्तु इसी बीच राइ दयाच को इस बात का पता चल गया। सोरठ का सौन्दर्य देख वह खुद भी उस पर मोहित हो चुका था अतः वह रत्ने कुम्हार को खूब डाँट-डपट कर सोरठ को अपने महल में ले आया।

राजा अनीराइ को जब इस बात का पता चला तब वह आग बबूला हो उठा। उसी समय बड़ी भारी सेना लेकर जूनागढ़ पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ा। बारह महीनों तक लड़ता रहा, पर उसे विजय नहीं मिली। अन्त में हार कर वह अपने देश वापस चला गया। राजा अनीराइ के हृदय में प्रतिहिंसा की अग्नि धधक रही थी। उसने अब युक्ति से राइ दयाच को मारने की ठानी। अतः राज्य में पहुँचते ही उसने एक थाल स्वर्ण मुद्राओं से भरकर यह ढिंढोरा पिटवाया कि जो राइ दयाच का सिर काट कर ले आयेगा, उसे वह थाल दिया जायगा, इसके अतिरिक्त जो भी वह माँगेगा, वह भी दिया जाएगा।

बीजल की पत्नी अत्यन्त ही लालची स्वभाव की थी। उसने जब राजा का वह आदेश सुना तब पति की अनुपस्थिति में ही उसने स्वर्ण मुद्राओं वाला थाल लेकर रख दिया और लोगों को वचन दिया कि उस का पति अवश्य ही राइ दयाच का सिर काटकर ले आयेगा। क्योंकि उसे विश्वास था कि बीजल अपने तम्बूरे की तान द्वारा सब कुछ कर सकता है। बीजल को जब इस बात का पता चला तब वह अत्यन्त ही दुःखी हुआ। उसने पत्नी को भी खूब फटकारा, किन्तु पत्नी के दिये हुए वचन तथा वचन न निभाने के कारण राजा अनीराइ द्वारा दिये जानेवाले कष्टों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का ध्यान कर, विवश होकर अपना तम्बूरा लेकर जूनागढ़ की ओर चल पड़ा। राइ दयाच के महल के समीप पहुँचते ही उसने अपने अलौकिक तम्बूरे के तार झंकृत किये। फिर क्या था। स्वर सुनते ही राइ दयाच अपनी सुध-बुध खो बैठा। उसने शीघ्र ही चारण बीजल को अपने महल में बुलाया और कहा—माँग जो कुछ तुझे माँगना है। तेरा स्वर सुनकर मैं आनन्द-विभोर हो उठा हूं। बीजल राजा की उदारता, निश्चलता एवं पवित्रता देखकर सकपका गया। उसे अपने आप से घृणा होने लगी, पर दूसरा कोई चारा न देखकर उसने कहा—"राजन्! मुझे आप से कुछ रहस्यमयी बातें करनी है।" राजा ने शीघ्र ही उसे एकान्त में अपने पास बुलाया। बीजल अपने तम्बूरे से नाना तरह के अद्वतीय स्वर झंकृत करता रहा, जिन्हें सुनकर राजा उसे नाना तरह की बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट की तौर पर देने लगा, किन्तु बीजल ने उन्हें लेने से साफ़ इन्कार कर दिया। अन्त में बीजल ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"ऐ दानी! मुझे तेरे बहुमूल्य उपहार नहीं चाहिए बल्कि तुझ दाता का शीश चाहिए।" यह सुनकर राजा ने कहा—"ऐ चारण! तूने मात्र मेरे मिट्टी के बने सिर की ही माँग की है, जिसका मूल्य कौड़ी-तुल्य भी नहीं। यदि मेरे पास सहस्त्र सिर होते तो उन्हें तेरे स्वर पर न्यौछावर करके भी मैं उसका मूल्य नहीं चुका पाता। तराजू के एक पलड़े में यदि मेरे सहस्त्र सिर और दूसरे पलड़े में तेरे इस मधुर आलाप को रख दिया जाता फिर भी तेरा पलड़ा ही भारी होता।" यों कहकर राइ दयाच ने ख़ुशी ख़ुशी अपने ही हाथों से अपना सिर काट कर बीजल के सामने रख दिया।

इच्छित वस्तु प्राप्त करने पर भी बीजल को ख़ुशी नहीं बल्कि दुःख हुआ। उसने शीघ्र ही राइ दयाच का सिर उठा लिया और जाकर राजा अनीराइ के सामने रखा। तत्पश्चात् स्वर्ण-मुद्राओं से भरा हुआ थाल पत्नी के सामने पटक दिया और स्वयं जूनागढ़ की ओर चल पड़ा।

आध्यात्मिक अर्थ—इस कहानी में राइ दयाच जिज्ञासु भक्त का प्रतीक तथा बीजल पूर्ण सद्गुरु का प्रतीक है। जो जिज्ञासु सद्गुरु के एक संकेत पर अपना सिर काटकर दे देता है, सद्गुरु भी उसे रहस्यमय स्वर सुनाकर उसे सच्चे स्वरूप से परिचित कर देता है। तम्बूरा, हृदय का साज़ है, जिसके आलाप सांसारिक साज़ों से बहुत ही मधुर एवं मोहक हैं। हृदय के साज का आलाप सुनकर जिज्ञासु को एक ऐसा अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है, कि उस पर वह सांसारिक सभी वस्तुओं को न्यौछावर कर देता है।

अल्लाह जी आस करे, हल्यो हिआईं।
चारण ब़धा चंग खे, झूड़ा ऐं झाईं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ड्रोली राइ ड्रयाच जी, दूराँ डि्ठाईं।
वेनती वाहिद दरि, तंहिं वेर कयाईं।
"सब्राझा साईं ! राउ रीझाईं राग्र सीं॥

(शाह-साहब कहते हैं) बीजल हृदय में परमात्मा पर विश्वास रख कर वहाँ (राजा अनीराइ के राज्य) से निकला। चारण ने अपने तम्बूरे पर रेशम के धागे तथा घुँघरू बाँध दिये। दूर से ही राइ दयाच के महल को देखकर, उसने परमात्मा से प्रार्थना की—"ऐ दयालु ! मेरी हार्दिक इच्छा है कि तू राजा को मेरे गीत पर मस्त बना दे।"

परदेसाँ पन्धु करे, हली आयो हूँ।
ऊँचो तूँ अर्श ते, आँ भोरो मथे भूँ।
कीअं तुसन्दें तूँ ? ही सिर सुवाली मंङणो॥

(बीजल राइ दयाच को सम्बोधित करते कहता है—) "मैं परदेश से चलकर यहाँ आया हूँ। तू अर्श पर है और मैं अनजान फ़र्श पर हूँ (अर्थात् तू ऊँची पदवी पर और मैं साधारण इन्सान हूँ।) तू किस तरह से मुझ पर प्रसन्न होगा ? मैं तेरे सिर की ही याचना करने वाला याचक हूँ।"

परदेसाँ पन्धु करे, सुणी आयुसि शानु।
मङा कहिड़ीअ मति सीं, निसूरो नादानु।
सो को ड्रियारिएं ड्रानु, जो तमइ खे तर्कु करे॥

(ऐ राजन) तेरी प्रतिष्ठा सुनकर मैं परदेश से चलकर यहाँ आया हूँ। मैं बिल्कुल नादान हूँ, किस युक्ति से तुझ से माँगूँ ? मुझे कुछ ऐसा दान दे जिससे मेरी आकांक्षा पूरी हो।

तो दरि आयुसि राज्या: जाजिकु वठे जीउ।
कनाँ नारु हामाह, हाणि बचाइजि हीउ।
वाली ड्रियारेईं, वीउ, जिति आहे 'जनातु अदनि'॥

ऐ राजन् ! यह याचक तेरे प्राण लेने के लिए तेरे द्वार पर आया है। तू इसे (अनीराइ के दिये जाने वाले कष्ट रूपी) अग्नि से बचा। मेरी यही दुआ है कि परमात्मा तुझे स्वर्ग का बगीचा—अदन प्रदान करे।"

ब्रिया दर ड्रेई ब्रन खे, आयुसि तुंहिंजे दरि।
सून्हारा सोरठवर ! का मुंहिंजी करि।
भला ! भेरी भरि, पाल्हो पाँदु पीनार जो॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"मैं दूसरे द्वार त्याग कर, तेरे ही द्वार पर आया हूँ। ऐ सोरठ के श्रेष्ठ पति, ज़रा मेरे विषय में सोच। ऐ सज्जन! मुझ याचक की खाली झोली भर दे।"

जाजिकु झूनागढ़ में, को अताई आयो।
तंहि कामिल कढी कीनरो, वेही वज़ायो।
शहरु सज़ोई सुर सीं, तन्दुनि तपायो।
दायूँ दरि मान्दियूँ थियूँ, ब्रायुनि ब्राद्रायो।
चारण थी चायो, त मारी आहे मंङणो॥

जूनागढ़ में आया हुआ याचक प्रतिभा-सम्पन्न था। उस प्रतिभाशाली ने वहाँ अपना साज़ निकालकर बजाया। उसने अपने साज़ के तारों में से निकलने वाले स्वरों से शहर में हाहाकार मचा दिया। दासियाँ विस्मय चकित थीं तथा रानियाँ रो रही थीं क्योंकि चारण अपने तम्बूरे से यही ध्वनि निकाल रहा था—"यह याचक क़ातिल-व्याध है" (अर्थात् यह अपने वाद्य यन्त्र से हृदयों को घायल करनेवाला है।)

निरती तन्दु न्याज़ सीं, ब्रुराई ब्रीजलु।
राजा रतोलनि में, ऊनाई अमुलु।
राज़ु कयाईं राइ सीं, कंहिं मोचारीअ महल।
"अन्ना अहमद बिलामीम" सेन हंई साइल।
कंहिं कंहिं पेई कल, ता हरि दोई हेकु थिया॥

बीजल ने नम्रता से तम्बूरे के तार को सावधानी से झंकृत किया, जिसे सुनकर अमूल्य (व्यक्तित्व वाले) राजा ने उसे अपने रंगमहल में बुलाया। शुभ घड़ी में बीजल ने राजा को एक गहन रहस्य बताकर कहा—"अन्ना अहमद बिलामीम" (अर्थात् 'अहं ब्रह्म अस्मि')। याचक ने राजा को यह तीर मारा (उसे अपने सच्चे स्वरूप से परिचित करा दिया)। किसी विरल व्यक्ति को ही पता चला कि दोनों (राजा और बीजल) आपस में एक हो गये हैं।

नोट—सूफ़ियों के विश्वास अनुसार मुहम्मद ने अपने संबंध में कहा था "अन्ना अहमद बिलामीम" अर्थात् मैं हक़ (परमात्मा) से एक हो गया हूँ। अतः माना जाता है कि पूर्ण सद्‌गुरु अपने शिष्य को वास्तविक रहस्य बताकर उसे स्वरूप में लय कर देता है।

सिर जी हुआईं हलियो, चारणु चिताए।
सो मूड़ा झले न माल जा, थो माणिक माटाए।
"तो दरि आयुसि ते, जिएं तो नाहि न सिखियो॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

याचक वहां से (अपने घर से) ही अपने हृदय में (राजा के) मस्तक की तमन्ना लेकर चला था अतः वह (राजद्वार की दी हुई) धन की थैलियाँ नहीं स्वीकारता है, तथा हीरे जवाहर भी अस्वीकार कर देता है। वह यही कहता है—"मैं तेरे द्वार पर इसी कारण आया हूँ क्योंकि तू ने कभी 'न' कहना नहीं सीखा है।"

"का जा ग़ाल्हि ग़री, ब्रीजल्या ! ब्रुधाइ मूँ।
पेठें जिएं गिरनार में, तन्दुनि तानु करे।
कि तो पन्धु परे ? कि मङ झलीं दें ? मंङणा !"

राइ दयाच कहते हैं— ऐ बीजल, मुझे कोई रहस्यमयी तान सुना। गिरनार में प्रवेश करते समय तू ने जो तान छेड़ी थी, वही मुझे सुना। ऐ याचक, (तू इतनी दूर से चलकर आया है) क्या तू फिर वापस चला जायगा ? बता तुझे क्या दान दूँ ?

मङ न झलियाँ मूरहीं, न मूं पंधु परे।
ग़िणी आयुसि ग़ाल्हड़ी, ग़ुझी तो ग़री।
सा समझिज सोरठ वर ! वेंदुसि कीन वरी।
परियाँ पेर भरे, तो लाइ आयो आहियाँ॥

बीजल कहता है—ऐ सोरठ के पति मैं दान कदापि नहीं लूंगा और न ही मैं वापिस चला जाऊँगा। मैं एक रहस्यमयी बात तेरे लिए ले आया हूं। यह याद रख कि मैं वापिस तो हर्गिज़ नहीं जाऊँगा। मैं तेरा (सिर प्राप्त करने के) लिए ही इतनी दूर से चलकर आया हूँ। (माना जाता है कि ख़ुदी मिटाने से ही ख़ुदा मिलता है। पूर्ण सद्‌गुरु भी अपने शिष्य से हीरे-मोती न लेकर उसकी ख़ुदी ही लेता है)।

आऊ मथाहूँ मंङणा ! चढ़ी में चौंडोल।
तोखे घोट घ़ुराइयो, राज़ा मंझि रतोल।
बीजल तो सीं ब्रोल, विहाणीअ वढणजी॥

(बीजल को राजा का संदेश मिला) ऐ याचक, तू पालकी से ऊपर चढ़कर जा क्योंकि तुझे राजा ने अपने महल में बुलाया है। ऐ बीजल, उसने सुबह होते ही अपना सिर काटकर देने का वचन भी दिया है।

महलें आयो मङिणो, खणी साज़ु सिरी।
लग़ी तन्दु तुनीयर जी, पिया कोट किरी।
हन्धीनि माग़ियन होइ थीं, तुहिंजी ब्रीजल दाँहँ ब्रुरी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिसी तन्हि सुल्तान खाँ, अची घोट घुरी।
झूनागिढ़हु झुरी, पुन्दीअ जहाँ झरोक में॥

याचक ने अपने अनोखे साज़ को उठाकर महल में प्रवेश किया। उसने उस पर ऐसी तान छेड़ी कि गढ़ भी धराशायी हो गये (अर्थात् सभी का अभिमान चूर-चूर हो गया।) चारों तरफ शोर मच गया और बीजल की प्रशंसा फैल गई। बीजल ने राजा से उसके सिर की माँग की। (इस माँग के कारण) जूनागढ़ दुःख में डूब जायगा तथा महल में रोना-पीटना मच जायगा।

ॾातारु ऐं मङिणे, को न वसीलो विचि।
साई ताल तन्दुनि जी, साई चारण चिति।
जे हिते जी हुति, त ग़ाल्ह मिड़ियाई हेकड़ी॥

दाता (राजा दयाच) और याचक (बीजल) के बीच किसी भी तरह का व्यवधान न रहा। जो कुछ चारण के चित्त में था, वही वह अपने (साज़ के) तारों से आलाप रहा था। जब वह नीचे (ज़मीन पर) था या अब जब वह ऊपर (महल में) आ गया है, वह सिर्फ़ एक ही राग आलाप रहा था (अर्थात् वह उसके सिर (ख़ुदी या अहं) की ही माँग कर रहा था क्योंकि ख़ुदी के नाश से ही ख़ुदा मिलता है।)

जाजिक तो जुहारु, ॾह भरो ॾयाचु चए।
जंहिं में मालु न मिरीअ जेतिरो, तंहिं तूँ तलमैदारु।
जे अचेई कमु कपारु, त वीह भेरा वढे ॾियैं॥

(राजा बीजल से कहता है) ऐ चारण, तुझे राजा दयाच के दस बार प्रणाम हैं। जिस सिर में रत्ती जितना भी सार नहीं है, उस सिर की ही तू माँग कर रहा है। यदि तुझे मेरा सिर काम आता है तो वह मैं तुझे बीस बार काट कर दे दूँ।

ॿेली ॿई पार, जाँ मूँ नेण हणी निहारिया।
चोई रखियम चित में, ॾिसें जा ॾातार।
हीउ सिर तव्हाँ धार, ॿीजे कंहिं न ॿोलियो॥

बीजल कहता है—मैंने अपनी आँखों से अच्छी तरह से आगे-पीछे देखा। सभी देशों के दाताओं को भी हृदय में धारण किया, किन्तु तेरे सिवा किसी ने भी अपना सिर देने का वचन नहीं दिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मथो मथाईं घोरियाँ, मथो तो मथाइ ।
हड्डो हीउ हथि करे, जाजिक वहिलो जाइ ।
तू सीं अनीराइ, जिम वाचा में विल्हो वहीं ॥

राजा कहता है—मैं अपना मस्तक तुझ पर न्यौछावर करता हूँ। ऐ चारण, यह खोखला कपाल प्राप्त कर शीघ्र चला जा, कहीं ऐसा न हो कि तू मेरे कारण राजा अनीराइ को दिये हुए वचन न निभाने में पीछे पड़ जाए।

मथो मूरि न पाड़ियाँ, तुहिंजीअ तन्दु तन्वार ।
सिर में सजण नाहि की, मोटु म मङ्गिणहार ।
कीन्हें मंझि कपार, लज़ीन्दो थो लाहियाँ ॥

राजा कहता है—"मैं यह सिर तेरे साज़ से निकलने वाले आलाप के बराबर कदापि नहीं मानता। यद्यपि सिर कोई उपहार देने की वस्तु नहीं है फिर भी ऐ याचक, तू निराश होकर मत लौट। वास्तव में तो मेरे इस मस्तक में कुछ भी नहीं है, इसलिए मैं इसे काटकर देने में लज्जा से गड़ रहा हूँ।

सौ सिरनि पाए, जे तन्दु बराबरु तोरियाँ ।
उटल ओड़ाहीं थिए, जेड़ांहि ब्रीजल ब्रुराई ।
सखिणो हड्डु आहे, सिर में सजणु नाहि की ॥

"यदि तराजू के एक पलड़े में मेरे सौ मस्तक तथा दूसरे पलड़े में बीजल के साज़ की एक तान डालकर तोली जाय, तो वही पलड़ा भारी होगा जिसमें बीजल की तान होगी। (अर्थात् पूर्ण सद्‌गुरु के एक आध्यात्मिक रहस्य के सामने शिष्य के सौ सिर भी तुच्छ हैं।) मेरे सिर में तो केवल हड्डियाँ हैं, यह वास्तव में उपहार देने की वस्तु ही नहीं है।

मथे उते मुंहिंजे, जे कोड़ें हुवनि कपार ।
त वारियो वारियो वढियाँ, सिसीअ खे सौ वार ।
त पिणु तन्दु तन्वार, मूहाँ मथाऊ मङ्गिणा ॥

"ऐ याचक, यदि मेरे पास कोटि सिर होते तो मैं सहस्रों वार उन्हें काट-काटकर तुझे देता, फिर भी (मुझे लगता कि) तेरे साज़ की तान अधिक मूल्यवान है।

पसी पाटु पुर थियो, सन्दो जादिम जूदु ।
मङ विहाणीअ मङ्गिणा, मथो हेर मौजूदु ।
बलकि आहे बूदु, नाकसीअ, नाबूदु में ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गायक (बीजल) यादव-कुल के राजा की उदारता देख पूर्ण तृप्त हुआ। (राजा ने कहा) ऐ याचक मेरा सिर अभी हाज़िर है परन्तु दान तुझे प्रभात के समय मिलेगा। वास्तव में सच्ची हस्ती तो त्याग और ख़ुदी को नष्ट करने में ही है।

रिइ मस्लिहत मङिणा, क़सरि कीन अचनि।
नूर तज्लो नूर सीं, निम्यो नेंण पसनि।
ख़ेमे में खन्गहार जे, चाँडूणा चिमिकनि।
लधाईं लतीफ़ चए, सन्दा ड्राण ड्रिसिनि।
तेलाँ मुल्क धणीनि, मञियो मङणहार खे॥

शाह साहब फ़र्माते हैं कि (सद्‌गुरु रूपी) याचक बिना कृपा के महल में नहीं आते हैं (अर्थात् पूर्ण सद्‌गुरु बिना परमात्मा की कृपा के नहीं मिलते हैं।) सद्‌गुरु की ज्ञान-ज्योति से अन्वेषक के नेत्र अलौकिक ज्योति देखते हैं। यही कारण है कि राजा दयाच के शरीर में चन्द्रमा का प्रकाश चमक रहा था। लगता था मानो उसने समस्त देशों के दान प्राप्त कर लिए हैं (अर्थात् समस्त सृष्टि की कृपा मानों उस पर है)। इसी हेतु तो सांसारिक सम्राट भी ऐसे महान् याचकों के सामने सिर झुकाते हैं।

तन्दु तुमारीअ तानु, कहियो सो क़बूल पियो।
सिरु त आहे सिट में, पर ब्रियो की मंङिजि दानु।
ख़ाकि मिटी काबानु, काटिया पोइ कुझ नहीं॥

राजा बीजल से कहते हैं—जो स्वर तू ने अपने साज़ से निकाला है, वह मुझे स्वीकृत है। मेरा यह मस्तक इस स्वर के लिए उपस्थित है, इसके अतिरिक्त तू कुछ और भी दान माँग। यह शरीर तो माटी का पुतला है; यदि इसे काट दिया जाय, तो इसमें कोई बड़प्पन नहीं है।

चारण ब्रोलिजि की ब्रियो, घुरीइ सो घोरियाँ।
घरु, सोरठ न पड़े, जाँ तन्दुनि बराबर तोरियाँ।
ग़ुझी आहिमि ग़ाल्हड़ी, आऊ ओरे, ताँ ओरियाँ।
कि कुल्हन्ऊ कोरियाँ? कि जाजिक जुसे सीं ड्रियैं॥

ऐ याचक, जो तू ने माँगा, वह तो मैं सहर्ष तुझ पर न्यौछावर करता हूँ। यदि मैं अपना घर तथा अपनी पत्नी सोरठ को तेरे साज़ के स्वर से तोलूँ तो वे भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते। ऐ चारण, मुझे तुझसे एक रहस्यमयी बात करनी है, तू समीप आ तो मैं तुझे बताऊँ। बता यह सिर कँधे पर से काटूँ, या धड़ सहित ही दे दूँ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टेई परिचिया पाण में, तन्दु कटारो, कन्धु।
तंहि जिहोई नाहि की, जो तो, चारण कयो पन्धु।
ऐ शुकरु अल्हमदु, जिअं मथो घुरियोइ मङिणा !

बीजल के साज़ की तार, तलवार तथा राजा का मस्तक तीनों ही मानों एक बात (राजा की शहादत) का समझौता करके खड़े हैं। (राजा कहता है) ऐ चारण, तू जो यहाँ चलकर आया है, वास्तव में उस जैसी अमूल्य कृपा विश्व में दूसरी नहीं है (अर्थात् पूर्ण सद्गुरु यदि स्वयं शिष्य के पास चलकर आता है तो उसकी वह कृपा अमूल्य है।) ऐ याचक, परमात्मा की कृपा है तथा उसकी प्रशंसा करनी चाहिए कि तू ने केवल मुझसे सिर माँगा है (तात्पर्य यह कि तू ने यदि और किसी वस्तु की माँग की होती जो मैं तुझे कदाचित दे ही न पाता।)

कन्ज़हे कीरति कीनरो, वाज़ो विलाती।
हन्ई तन्दु हुज़ूर में, तंहि पारस पीराती।
ड्रिसन्देई ड्रियाच खे, ज़ाहिरु थियो ज़ाती।
कढी तंहि काती, विधो करटु कपार में॥

वह राग अलापने वाला विलायती (अलौकिक) साज़ बज उठा। उस पारस जैसे पुरुष (पूर्ण सद्गुरु) ने राजा (शिष्य) के सामने पूर्ण तान छेड़ दी (अर्थात् समस्त आध्यात्मिक रहस्य उसके सामने खोलकर रख दिये।) यह देखते हैं राजा दयाच के भीतर अलौकिक प्रकाश चमकने लगा (अर्थात् उसके अज्ञान के पर्दे फट गये और वे ज्ञान के अलौकिक ज्योति से जगमगाने लगे)। फिर उसने तलवार निकालकर अपना सिर (खुदी) काटकर गुरु के सामने उपहार के तौर पर रख दिया।

सोरठ मुई, सुखु थियो, खेमा हंया खन्गहार।
थियो रागु रूप सो, लग़ी तन्दु तन्वार।
सो ढटीनि पटीनि पार, पसो ! राज़ा राज़ी थियो॥

राजा के मरने के बाद सोरठ सती हो गई। शाह साहब कहते हैं सोरठ मर गई अतः अब चारों तरफ शान्ति और आराम फैल गया। (क्योंकि सोरठ मन का प्रतीक है, मन के कारण ही बेचैनी होती है। किन्तु जब मन मर जाता है तब सब कुछ शान्त हो जाता है) राजा दयाच ने अपना तम्बू (इस संसार से) उठाकर उसे जाकर आकाश में लगाया तथा आध्यात्मिक संसार में वह राग स्वरूप होकर निवास करने लगा। यह राग यत्र-तत्र-सर्वत्र बज रहा है (पर जिन्हें ज्ञान के कान है, केवल वे ही उसे सुन पाते हैं।) देखो राजा दयाच कितने आराम से आकाश में बैठा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है [तात्पर्य यह कि जो जिज्ञासु अन्वेषक, पूर्ण सद्गुरु को सिर (ख़ुदी) देकर राज़ी करता है, वह सदैव आकाश में प्रसन्न रहता है।]

"स्वर सरेराग"

इस स्वर में शाह साहब ने समुद्र, मल्लाह जहाज़ आदि प्रतीकों द्वारा आध्यात्मिक बातें समझाई हैं। शाह साहब के अनुसार समुद्र के दो अर्थ हैं—१. ज्ञान रूपी समुद्र २. संसार रूपी समुद्र। शाह साहब के अनुसार इस संसार रूपी सागर में मनुष्य रूपी मल्लाह अपने जीवन रूपी नौका को चाहे तो पार कर सकता है। जिस तरह से समुद्र की लहरें असंख्य हैं तथा उसका पानी अथाह है, उसी तरह इस भव-सागर में विषय-वासनाओं तथा विकारों का कोई अन्त ही नहीं है। यदि मनुष्य रूपी मल्लाह सदैव सावधान रहे तथा अपने आपको विषय-वासना रूपी भँवर में न उलझाए तो वह अपनी जीवन-नौका को आसानी से पार उतार सकता है।

शाह साहब के अनुसार सच्चे ज्ञानी पनडुब्बे की तरह हैं, जो ज्ञान रूपी सागर में डुबकी लगाकर अमूल्य रत्न इकट्ठे करते हैं, किन्तु अज्ञानी जीव झूठे सांसारिक प्रपंचों रूपी काँच के पीछे पड़ अमूल्य रत्नों से सदैव वंचित रहते हैं, अतः वे अन्त समय में ख़ून के आँसू बहाकर चले जाते हैं ज्ञानी व्यक्ति हँसते-हँसते जाते हैं और उनके जाने पर लोग आँसू बहाते हैं। ज्ञानी व्यक्तियों की मिट्टी का भी मूल्य होता है। लोग श्रद्धा से उसके सामने झुक जाते हैं।

मान पुछनिई सुप्रियनि, चिताँ लाहि म चरु।
उन्यिन जा अमुर, खणु त ख़ाली न थिएं॥

(शाह साहब मानव को उपदेश देते कहते हैं) प्रियतम को हृदय से मत भुला ताकि वह भी तेरी याद करता रहे। तू उसकी सभी आज्ञाओं का पालन कर, ताकि उसकी कृपा-दृष्टि सदैव ही तुझ पर रहे।

मान पुछनिई सुप्रियनि, चित में रखिजि चेतु।
सिड़हु धुआरे साफु कर, साबुण सांणि सुपीतु।
सामुन्डी ! सुचेतु, थीउ त पहुँचीं पार खे॥

शाह साहब उपदेश देते कहते हैं— ऐ नाविक, हृदय में सदैव प्रियतम की याद रख, ताकि वह भी सदैव तेरी रक्षा करे। तू अपनी शरीर-नौका को (अच्छे कर्म रूपी) साबुन से साफ़ और उज्ज्वल रख तथा इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बात का सदैव ध्यान रख कि तुझे सुरक्षा से प्रियतम से उस पार जाकर मिलना है।

ब्रेड़ी पुराणी, वखुर पाइ म वितरो।
तरे में तुन पिया, पासंऊँ पाणी।
हीअ हद्रि विहाणी, कड़्हु काल्हूणी ड्रींह खे॥

शाह साहब कहते हैं कि शरीर रूपी नौका अब पुरानी हो चुकी है अतः इसमें ज़्यादा सामान मत डाल (अर्थात् बुढ़ापा आ चुका है, अब तक भी विषय-वासनाओं में लीन मत रह।) इस नौका में अनेक छेद हो चुके हैं, जिससे पानी भीतर आयगा अर्थात् विषय-वासनाओं में ही जीवन नष्ट हो जायगा। इसलिए जो बीत चुकी है, उसे भूलकर आगे का ध्यान रख।

तरे तुन पियास, पासंऊं पाणी वहे।
खुहो झुरु झुनो थियो, लाज़ू सभि लड़यासि।
जेलाँ सघरु सुखाणियासि, वहे ते वह साम्हूँ॥

(शाह साहब कहते हैं) शरीर रूपी नौका में छेद हो चुके हैं तथा उसमें पानी भर आया है (अर्थात् मानव जीवन रूपी नौका पर सांसारिक प्रपंच का प्रभाव पड़ रहा है तथा विषय-वासनाओं ने इसे जर्जर बना दिया है) इसका लंगर भी पुराना हो गया है तथा (इन्द्रियों रूपी) रस्सियाँ भी ढीली हो गई हैं; फिर भी यदि मल्लाह दृढ़ है तो वह (संसार रूपी समुद्र के) तेज बहाव में भी तैरती रहेगी। (तात्पर्य यह कि यदि मल्लाह संयमी है तो वह अपनी नाव को विषय-वासनाओं से बचाकर पार ले ही जाता है)

वेठो तुन तुनींसि, मखि ड्रीहाणी मकुड़ी।
सन्बाहे सय्युद चए, मथे नींडिवु नींसि॥
वटाए वड़ान्दरा, लाज़ू लग़ाईंस।
आख़रि उहिराईंसि, त जोखो थिए न जहाज़ खे॥

(शाह साहब कहते हैं— जिस तरह एक बुद्धिमान नाविक समय-समय पर अपनी नाव की मरम्मत करता है तथा उसमें तेल आदि डालता है) उसी तरह मनुष्य को भी चाहिए कि अपने शरीर रूपी नाव के छेद बन्द करे (अर्थात् बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी बने) तथा (ज्ञान रूपी) तेल डालकर इसे ठीक रखे एवं (साधना रूपी) बड़े-बड़े रस्से तैयार कर उसमें रख दे। फिर पूरी तैयारी से वह यदि इस भवसागर में कूद पड़ेगा तो भी उसकी नाव को कोई ख़तरा न होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दुन्गे विच दरियाह, की ब्रुड़े की उपिड़े ।
हू जे वाडे वाणिया, से सून्हण सभि सड़िया ।
मुइलम माग्रि न अग्रिईं, फिरंगे मंझि फिरिया ।
मल्लाह तुहिंजी मकुड़ीअ, अची चोर चढ़िया ।
जिते ढींग ढरिया, तिते तारी तुहिंजी ।।

(शाह साहब कहते हैं) कोई नहीं जानता इस भवसागर में यह काया रूपी नाव डूबेगी या पार उतर जायगी । (गुरु रूपी) सुतार ने जो (उपदेश रूपी) कीले इस पर लगाये थे, वे सब सड़ गये हैं (अर्थात् सांसारिक प्रपंच में पड़कर सद्गुरु के उपदेश का प्रभाव ही नष्ट हो गया है) सामुद्रिक चोर (अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकार) इस नाव पर टूट पड़े हैं । हे परमात्मा जहाँ बड़े-बड़े जहाज़ भी टूट पड़ते हैं, वहाँ अब मुझे केवल तेरा ही सहारा है ।

ब्रेड़ियाता ! ब्रेई, तो न फब्रन्दियूँ ग्राल्हिड़ियूँ ।
सज्रियूँ रातियूँ सुम्हीं, भरु सुखाण ड्रेई ।
सुबाह सभेई, पारि पुछन्दइ ख़ब्रूँ ।।

शाह साहब मनुष्य को सम्बोधित करते कहते हैं—ऐ मल्लाह, दो कार्य—१-अज्ञान की नींद में सोना और २-भवसागर से पार होना—एक साथ सम्पन्न नहीं होते हैं । तू अपनी पतवार को एक कोने में रखकर अज्ञान की नींद में पड़ा है, अतएव कल उस पार (मृत्यु के बाद) तुझ से ठीक-ठीक हिसाब लिया जायगा ।

वह तिख वहिकरा, जित लंगर न ठहरनि ।
वद्रान्दरियूँ वह सामुट्यूँ, झझे ज़ोर ज़ुम्बनि ।
नींडौ में नातारियूँ, वणजारा विझनि ।
मुल्लाँ मुइल्मन्न, मूँ ग्ररी सुई ग्राल्हिड़ी ।।

(शाह साहब भवसागर की भयानकता का वर्णन करते कहते हैं) मैंने बड़े-बड़े (महापुरुषों रूपी) नाविकों से आतंकित कर देने वाली बातें सुनी हैं । इस (संसार रूपी) समुद्र के तेज़ प्रवाह में बड़े-बड़े जहाज़ (ज्ञानी) भी डगमगाते हैं । बड़ी-बड़ी नावें (महापुरुष) भी बड़ी कठिनाई से बहाव के सामने ठहर पाती हैं; पर (सच्चे आत्मज्ञानी रूपी) नाविक (ज्ञान रूपी) बड़े भारी वज़न डालकर नाव को एक जगह पर खड़ा रख देते हैं अर्थात् सांसारिक प्रपंचों में भी विचलित नहीं होते ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सभेई सुब्हान जे, करि हवाले कम।
थी तहक़ीक़ु तस्लीम में, लाहे ग़म वहम।
क़ादरु साणु करम, हासलि करे हाज तो।।

(ऐ मानव) अपने सब कार्य परमात्मा को सौंप दे। तू चिन्ता और सन्देह मिटाकर, परमात्मा की इच्छा पर राज़ी रह तो वह शीघ्र ही अपनी अनुकम्पा से तेरे समस्त कार्य सपन्न कर देगा।

अमुल आछि म उन खे, जे न परूड़ीनि मटि।
जिति गद्रिजेई जोहरी, माणिकु तितहीं मटि।
जिनीं सोन सीं सटि, तिनि हणी री रदि कयो।।

(ज्ञान रूपी) अमूल्य मोती उनको मत दे जो उन्हें पहचानते तक नहीं। किन्तु जहाँ तुझे कोई जौहरी (सच्चा जिज्ञासु) मिले वहाँ ही अपने (ज्ञान रूपी) रत्नों का सौदा कर। जिन्हें स्वर्ण की जानकारी है, उन्होंने (संसार के) झूठे काँच को त्याग दिया है।

सोना ! वाऊँ सराफ सीअनि, लद्रो लाहि म लद्रि।
सोदो सोई छद्रि, जंहि में जवाहिरु नाहि की।।

(शाह साहब मनुष्य को उपदेश देते कहते हैं) ऐ स्वर्ण (सच्चा इन्सान) तू किसी (सद्गुरु रूपी) जौहरी के पास चला जा। इस तरह बैठकर अपना समय मत गँवा। उस सौदे का ही त्याग कर दे जिसमें (ज्ञान रूपी) रत्नों का व्यवहार नहीं है। अर्थात् जहाँ ज्ञान की चर्चा होती है वहीं बैठ; पर जहाँ ज्ञान की चर्चा नहीं होती, वहाँ मत बैठ।

माणिकु मुन्ध हथाँ, पेतीअ में पुर्ज़ा थियो।
सज़ो ताँ सय्यदु चए, लहे लखु सवा।
भग्रे पुज़ाणा, पद माँ परे थियो।।

शाह साहब कहते हैं कि (आत्मा रूपी) रत्न (जीवात्मा रूपी) नारी के (काया रूपी) पेटी में चूर-चूर हो गया है। जब तक वह संपूर्ण था (अर्थात् जब तक सांसारिक माया में चूर-चूर नहीं हुआ था) तबतक उस का मूल्य सवा लाख था, पर टूटने के बाद अपनी पदवी से गिर गया है।

कुछ आलोचक इस पद का अलग अर्थ बतलाते हैं। उनके अनुसार यहाँ एक से अनेक (अर्थात् वहदत से कसरत की ओर इशारा है)। उनके अनुसार इस सृष्टि रूपी पेटी में ब्रह्म शक्ति के सहारे परमात्मा रूपी एक रत्न से (प्राणी रूपी) अनेक रत्न हो गये हैं और उन रत्नों का मूल्य पद्म से भी ज़्यादा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लहिरियुन लेखो नाहि को, जिति कपर कुन कारा ।
आछाड़ा अमीक़ जा, अचनि ओभारा ।
उथी असारा ! वीर विढ़न्दीअ वेसिरा ।।

(शाह साहब इस संसारसागर की भयानकता का वर्णन करते कहते हैं) ऐ बेसुध, इस भवसागर की लहरों का कोई अन्त ही नहीं है। यहाँ के किनारे भी बहुत ऊँचे हैं तथा इसमें अनेक तिमिरमय भँवर हैं। यहाँ की (विषयी रूपी) लहरें भी अत्यन्त ऊँची हैं। अतएव तू सचेत रह, नहीं तो ज्वार तुझे हर तरह से परेशान कर देगा।

मुलाहिजो महिराण जो, मूरि म लाहि मनाउ ।
सामून्डी ! सम्भाल की ! सुम्हण आयुइ साअ ।
जाग़ी जर मथांउ, तारे वाँउ तराज़ खे ।।

ऐ संसार-सागर के यात्री, तू इस भवसागर की भयानकता को कदापि मत भूल, बल्कि सदैव सचेत रह। लगता है तुझे (अज्ञान की) नींद में मज़ा आ गया है। तू इस सागर पर जागृत रहकर अपनी नाव को पार लगा ले (अर्थात् परमात्मा की यादकर मुक्ति पा ले।)

तारे वाँऊ तराज़ खे, मन्झाँ मोज मल्लाह ।
दान्हूँ कनि दरियाह जूँ, ऊन्हे जा आग़ाह ।
सून्हनि जी सलाह, वहु त वीर लंघे वञीं ।।

ऐ मल्लाह, तू अपनी इस शरीर रूपी नौका को इस भवसागर से पार लगा ले। क्योंकि इस गहरे समन्दर के अनुभवी इसकी भयानकता के सम्बन्ध में शिकायतें कर रहे हैं। किसी (सद्गुरु रूपी) पथप्रदर्शक की सहायता ले, ताकि तू इससे पार उतर जाय।

सून्हाँ सधियूँ ड्रियनि, हिन दीवाने दरियाह जूँ ।
कूड़ ओड़ाई कीन की, रुग़ो सचु सोदीनि ।
इज्ज़ जो अध रात खे, वखरु विहाईनि ।
साथु निब्हायो नीनि, साबितु इन्हीअ सीर माँ ।।

(शाह साहब सच्चे ज्ञानियों की विशेषताएं बताते हुए कहते हैं) अनुभवी मल्लाह इस विषम (संसार रूपी) सागर के सम्बन्ध में बड़ी चिन्ताजनक बातें सुनाते हैं। वे कभी भी झूठ के समीप नहीं जाते और केवल सत्य का ही व्यवहार करते हैं। वे आधी रात को नम्रता एवं बन्दगी का सामान इकट्ठा करते रहते हैं (अर्थात् जब संसार सोया हुआ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहता है, तब वे जगकर परमात्मा की बन्दगी करते हैं)। वे अपने साथियों को भी सुरक्षा से मँझदार से पार लगा देते हैं।

क़र फुल, फोटा, पारचा, पाणियठ पाताऊँ।
कोठियूँ कीमत सन्दियूँ, तर में ताक्याऊँ।
लाज़ुनि मंझि लतीफ़ चए, ब्रेड़ा ब्रधाऊँ।
नज़रु नबीअ ज्ञाम जो, चढ़न्दे चयाऊँ।
जे छूही छोड़ियाऊँ, से ब्रेड़ियूँ रखीनि ब्राझ सीं॥

(माना जाता है कि जब व्यापारी, व्यापार के लिए सर्वप्रथम अपना बेड़ा लेकर जाते थे, तब वे अपनी नाव को ख़ूब फूलों से सजाते थे तथा शुभ शकुन के तौर पर उसमें इलायची, लवंग तथा बताशे आदि डालते थे। व्यापार की मूल्यवान वस्तुएँ बड़ी सावधानी से नाव में नीचे रखकर नबी की मनौती मनाकर यात्रा आरम्भ करते थे।) शाह साहब कहते हैं कि जिन्होंने अपने शरीर-रूपी नाव में लवंग, इलायची, कीमती वस्त्र, मोती तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ सुरक्षित रख दी हैं (अर्थात् सत्कार्यों द्वारा जीवन सफल व सुन्दर बनाया है) तथा (इन्द्रियों-रूपी) रस्सियों को (संयम-रूपी) फूलों से सजा दिया है और नबी के उपहार की मनौती मानकर (ईश्वर की प्रार्थना कर) इस संसार-सागर के तेज़ प्रवाह में अपनी नाव को डाल दिया है, परमात्मा अपनी अनुकम्पा से उनकी रक्षा करे।

ताँघे में ताणे, ब्रधु पहिंजो तुरहो।
ऊन्हे में आणे, को न ड्रीन्दअ को ब्रियो॥

(शाह साहब मानव को उपदेश देते कहते हैं—) जब तू इस संसार-सागर की कछार पर है तब ही अपना तुम्बा कस कर बाँध ले क्योंकि बीच समुद्र में कोई भी तुझे तुम्बा लाकर नहीं देगा अर्थात् परमात्मा की बन्दगी जीवन के प्रभात में ही कर ले, नहीं तो अन्त समय में पछतायेगा।

ड्रोरे लहु ड्रातारु, जिम विहीं वेसिरो।
हक्यो होइजि होशियारु, खिवणि खिवंदइ ओचिती॥

(ऐ मानव) ग़ाफ़िल होकर मत बैठ, बल्कि, परमात्मा को ढूंढ ले। हर पल सचेत रह क्योंकि (मृत्यु-रूपी) बिजली अचानक ही आकर तुझ पर टूट पड़ेगी।

सामून्डी ! थो सन्बहीं, साज़ो झलु सुखाणु।
लग्गे वाउ वड्रान्दरो, मुन्झाए महिराणु।
जिनीं भान्यो पाणु, करे नबाई तिनि खे॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐ (संसार-सागर के) यात्री, तू अब तक मात्र तैयारी कर रहा है, अब तो पतवार को मज़बूत पकड़। इस सागर में अचानक ही जब तूफ़ान आ जाता है तब हाहाकार मच जाता है। जिन्होंने ख़ुदी (अहं) दिखायी, उसे वह शीघ्र ही नष्ट कर देता है!

अहुखी राह अल्लाह जी, अहुखी, अहुखीअ भति।
होइ जे द्रीहाई द्रेह जा, तिनि पिण मूढ़ी मति।
आछाड़ानि उबति, घिड़िजि घाटे नींहँ सीं॥

शाह साहब कहते हैं कि परमात्मा को पाने का मार्ग अत्यन्त ही कठिन एवं विषम है। जो उस देश के वासी हैं, उनकी भी मति कभी-कभी उलझ जाती है। (अर्थात् ज्ञानी भी कभी-कभी भटक जाते हैं) अतएव (ऐ मानव) तू गहन प्रेम से इस सागर की लहरों में कूद जा।

तन में तराज़ तोह जी, घणो लहु घोरे।
अदब ऐं इख़्लास जा, सिड़ह ब्रधिजि सोरे।
वखर वेनतीनि जो, तंहि में पाइज तोरे।
त आदनिऊँ ओरे, तुहिंजो तवाई न थिए॥

(ऐ मानव) तू अपनी काया-रूपी नाव में परमात्मा की अनुकम्पा, प्रयत्न द्वारा खोज कर डाल दे; फिर उस (नाव) में नम्रता एवं सच्चाई के रस्से कसकर तान दे, उसके भीतर सोच समझकर प्रार्थना तथा पश्चाताप का सामान डाल, ताकि तेरी नाव अदन बन्दरगाह पर (आध्यात्मिक मंज़िल पर) पहुँचने तक डाँवाडोल न होवे।

समुन्ड जे सेवियनि, तिनीं माणिक मेड़िया।
छिलर जे चोईनि, तिनि साखोय ऐं सुतियूँ॥

जिन्होंने (ज्ञान-रूपी) गहरे समुन्द्र की मन से पूजा की, उन्होंने अनेक रत्न इकट्ठे किये। किन्तु जो केवल जाली तथा छोटी-छोटी नावों को ही ढूँढ़ते रहे (अर्थात् निडर होकर समुद्र में स्वयं प्रवेश नहीं किया, केवल किनारे पर ही बैठे ज्ञान-रूपी रत्न पाने के प्रयत्न करते रहे) उन्हें केवल रिक्त सीपी और शंख ही मिले।

"स्वर बरवो सिन्धी"

इस स्वर में शाह साहब ने परमात्मा के ऐश्वर्य एवं अनुकम्पा का बखान कर, मानव को उसकी ही शरण लेने की सलाह दी है तथा सच्चे आशिक़ों के हृदय की अभिलाषा का वर्णन किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शाह साहब कहते हैं कि इन्सान को परमात्मा की ही ओट लेनी चाहिए क्योंकि वही सब का मालिक है। उसे सांसारिक अमीरों की गुलामी न कर परमात्मा की ही चाकरी करनी चाहिए, क्योंकि वास्तव में वही इन्सान सुखी है, जिसका प्रेम परमात्मा से है। परमात्मा का प्रेम विनम्रता से ही प्राप्त किया जा सकता है, यही कारण है कि कुछ नज़दीक रहकर भी दूर हैं तो कुछ दूर रहकर भी नज़दीक हैं। जिज्ञासु के ज्ञान के पर्दे कभी खुल जाते हैं तो कभी बन्द हो जाते हैं।

शाह साहब का कहना है कि प्रेम में कठिनाइयों और दुःखों का कोई अन्त ही नहीं होता, फिर भी सच्चे आशिक़ों के हृदय में प्रेम की हिलोरें लगती रहती हैं और वे प्रियतम के हाथों क़त्ल होने पर भी अपने को भाग्यशाली मानते हैं; उनकी मात्र अभिलाषा होती है कि प्रियतम उनकी ओर देखते रहे।

छा खे वञियो छो, ब्रेली थिईं ब्रियनि जो।
वठु कन्जक करीम जी, जग्र जो वाली जो।
सौखो हून्दो सो, जंहि जो इश्क़ु अल्लाह सीं॥

शाह साहब मानव को सांसारिक अमीरों का ग़ुलाम न बनकर परमात्मा का ग़ुलाम बनने की सलाह देते कहते हैं—) ऐ मानव! तू क्यों दूसरों का ग़ुलाम बनता है? तू कृपालु परमात्मा की सेवा कर, जो विश्व का मालिक है। वही मनुष्य सुखी है, जिसका प्रेम परमात्मा से है।

धर ते दूनह जिअं, सिर भरि सुप्रियुनि ड्रे।
लग्रो आहि लतीफ़ु चए, तनु प्रियाँ ड्रे तिअं।
हासुलु थिए हिअं, क़रीनो क़रीब जो॥

जिस तरह हाथी की सुन्ड (सूंड़) पृथ्वी पर झुकी रहती है, उसी तरह हमें भी झुककर परमात्मा की ओर जाना है। वास्तव में हमारा अस्तित्व परमात्मा से जुड़ा हुआ है और नम्रता के द्वारा ही प्रियतम का स्नेह प्राप्त किया जा सकता है।

के ओड्राई दूरि, के दूरि बि ओड्रा सुप्रियुनि।
के सम्भिर्जनि न कद्रहीं, के न विसरनि मूरि।
जिअं मेंह कुन्डीअ पूरि, तिअं दोस्त वराको दिली सीं॥

कुछ लोग (प्रियतम के) समीप रहकर भी दूर हैं, तो कुछ दूर रह कर भी पास हैं। कुछ लोगों की याद कभी आती नहीं, तो कुछ कदापि नहीं भुलाए जाते हैं। (शाह साहब कहते हैं) मेरे हृदय में प्रियतम के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रेम का पेच ऐसे पड़ा हुआ है जैसे गोलाकार सींगों वाली भैंस के सींगों का पेच पड़ा रहता है। (तात्पर्य यह कि जिस तरह गोलाकार सींगों वाली भैंस के सींगों को सीधा नहीं किया जा सकता है, उसका टेढ़ापन नहीं निकाला जा सकता है, उसी तरह मेरे हृदय में प्रियतम ऐसे अड़ गए हैं कि उसे किसी भी तरह से नहीं निकाला जा सकता है।

कोठे कुठाऊँ, अज़ु पिणु अखड़ियुनि सीं।
मासु विराहे हल्या, करंगलु छड्डियाऊँ।
"वतवांस्वाबाँलहक वतवास्वबालसबरु" इएं उताऊँ।
मुई मारियाऊँ, खिली घाइयो सज्ञणिनि ॥

आज भी प्रियतम ने मुझे बुलाकर अपने नयनों से घायल कर दिया। मेरे शरीर का मांस काट और उसे बाँट कर, मात्र हड्डियों के ढाँचे को छोड़कर चले गये और कहा—"धैर्य के साथ सत्य से, अपने आप से परामर्श करते रहो।" इस मरी हुई को प्रियतम ने हँसकर घायल बना दिया और मारकर नष्ट कर दिया।

माड़हू घुरनि मालु, आऊँ सभु द्रीहाँ घुराँ सुप्रीं।
दुनिया तहिं दोस्त ताँ, फ़िदा करियाँ फेअल्हालु।
कयसि नाम निहालु, पसणु ताँ परे थियो ॥

(शाह साहब कहते हैं) लोग सांसारिक वैभव की माँग करते हैं किन्तु मैं सदैव प्रियतम को पाने की तमन्ना रखता हूँ। अपने प्राण प्यारे को देखना तो दूर रहा, उसके नाम ने ही मुझे इतना मस्त बना दिया है कि मैं उस पर संसार का ऐश्वर्य भी न्योछावर कर दूँ।

जानिब ! तूँ जेड्रो, आहीं शान शऊर सीं।
मूँ ते करि मुंहिजा प्रीं, तोहु तुसी तेड्रो।
ऐ कामिल ! कमु केड्रो ? जिअं नवाज़ींमि निगाह सीं ॥

ऐ प्राणाधार प्रियतम ! तुम जितने वैभवशाली और ऐश्वर्यवान हो, उतनी ही मुझ पर दया करना। ऐ पूर्ण प्रियतम, क्या मेरी ओर कृपा-दृष्टि से देखना, तेरे लिए कोई कठिन कार्य है ?

जानिब मुंहिजे जीअ में, तुंहिजी तमइ पोइ।
वठु काती, वढि अँगुड़ा, अदबु करि म कोइ।
भाँया भालु सन्दोइ, जे साज्ञन ! संओं निहारिइं ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐ प्राणाधार, मेरे हृदय में केवल तुझे पाने की तमन्ना है। मुझ से यह तलवार ले और किसी तरह का लिहाज़ न कर, निःसंकोच होकर मेरे अंग काट ले। ऐ प्रियतम, मैं तेरा आभार मानूँगा यदि तू सीधे मुख मेरी ओर करेगा।

कड़ो मंझि कड़ी, जीअं लुहार लपेटियो।
मुंहिंजो जीउ जड़ी, सुप्रियाँ सोघो कयो।।

जिस तरह लुहार ज़ँजीर की एक कड़ी, दूसरी कड़ी से जोड़ देता है, उसी तरह प्रियतम ने मेरे हृदय को अपने से जकड़ कर मज़बूत कर दिया है।

फ़ानी नी फ़ानी, दुनिया दमु न हेकिड़ो।
लटे लोड़हु लतुनि सीं, जोड़ीन्दअ जानी।
कोद्रिरि एं कानी, आहे सिरि सभ कन्हीं।।

यह संसार नश्वर तथा क्षणभंगुर है, उसमें ज़िन्दा रहना एक पल की तरह है। ऐ सज्जन पुरुष, लोग तेरी लाश पर पैरों से मिट्टी डालकर तेरी क़ब्र बनायेंगे। सभी के सिर पर फावरा और काना है (तात्पर्य यह कि सभी लोगों के लिए मात्र दो ही चीज़ें आवश्यक हैं। फावरा १—क़ब्र खोदने के लिए और २—(काना) शव को नापने के लिए फ़ीता।)

इश्क़ु अहिड़ी ज़ाति, जो माँझी मुन्झाए मयनि खे।
द्रीहां द्रोरणु डून्गरें, रुअणु सज़ियाई राति।
उथे बेठे ताति, मियाँ महबूबनि जी।।

(शाह साहब कहते हैं) ऐ बन्धु, प्रेम ऐसी विपत्ति है, जो वीरों और बलवानों को भी हैरान और परेशान कर देती है। प्रेमियों को दिन के समय पर्वतों में भटकना (कष्ट सहन करना) और रात को आँसू बहाना है। उन्हें उठते बैठते प्रियतम की ही रट लगी रहती है।

यारु सद्राए सभुको, जानी ज़िबानी।
आहे आसानी, कम पए थी कल पवे।।

मुख से अपने को जिगरी दोस्त कहलाना सरल है, पर जब काम पड़ता है, तब ही वास्तविकता का पता चलता है।

खोड़े खणुम सुप्रीं, खंइए ताँ खोड़ि।
आदत जा अखियुनि जी, सा नेई निबाहिजि तोड़ि।
मूँ में ऐबनि कोड़ि, तूँ पाणु सुञाणिजि सुप्रीं।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐ प्रियतम, एक बार अपनी दृष्टि मुझ पर डाल कर, उसे मत उठा ले; यदि तू ने उठा ली है तो फिर से उसे डाल (तात्पर्य यह कि सदैव ही तू मुझे अपनी कृपा-दृष्टि से देखता रह।) ऐ परमात्मा! आँखों की जो आदत है, उसे अन्त तक निभाना (आँखों की आदत है कि जिसे प्यार करती हैं, उसे निरन्तर देखती रहती हैं।) ऐ प्रियतम, मुझ में तो करोड़ों त्रुटियाँ हैं, किन्तु तू अपने विरद को देखते रहना।

"स्वर आसा"

"आसा" एक मधुर रागिनी है, जो प्रभात के समय गाई जाती है। प्रायः प्रभात के समय समस्त सृष्टि परमात्मा की यश-गाथा गाती है। शाह साहब ने इस स्वर में बताया है कि परमात्मा को इस विशाल संसार में ढूंढ़ने पर पता चलता है कि उस अनन्त का कोई अन्त ही नहीं है तथा उसके सौन्दर्य व सुषमा की कोई सीमा ही नहीं है। किन्तु जिन्होंने अहं की भावना को त्याग दिया है, वे उस असीम तक पहुँच सकते हैं, क्योंकि वास्तव में पुरुष परमात्मा का रहस्य है और परमात्मा पुरुष का। परमात्मा की तरह पुरुष का भी न है आदि, और न है अन्त, क्योंकि उसकी आत्मा परमात्मा का ही अंश है। विद्वानों तथा मनीषियों का कहना है कि जब तक प्रार्थना करनेवाला अपने आप (ख़ुदी) को देखता है, तब तक उसकी प्रार्थना व बन्दगी का कोई अर्थ ही नहीं है, पर जो अपने आपे को नष्ट कर देते हैं, वे ऊँची पदवी को प्राप्त होते हैं। वे सोते हुए भी जाग्रत हैं और उनकी नींद भी एक इबादत (उपासना) है।

लोचाँ थी लाहद में, हादीअ लहाँ न हद।
सुप्रियाँ जे सून्हँ जो, न को कदु न मदु।
हिति सिकणु बे अददु, हुति प्रियनि परवा नाहि को॥

(जीवात्मा कहती है) मैं इस विशाल संसार में पूर्ण परमात्मा को ढूंढ़ती हूँ, पर उसके अन्त को नहीं जान पाती हूँ। परमात्मा के सौन्दर्य का भी न है अन्त, और न है सीमा। यहाँ प्रेमी के हृदय में अनन्त तड़प है, तो वहाँ प्रियतम परमात्मा को मानो कोई परवाह नहीं है।

'आऊँ' सीं उन पारि, कदुहिं ताँ को न पियो।
'इन अल्लाह वितरुयहबु अल्वितर' नेई ब्याई ब्यारि।
हेकिड़ाईअ वटु हारि, हन्जूँ जे हुअण जूँ॥

(ऐ इन्सान) ख़ुदी से उस तरफ़ (आध्यात्मिक देश में) कोई नहीं पहुँच पाया। परमात्मा एक है और उसे एकत्व पसन्द है। अतः तू द्वैत को जलाकर ख़ाक कर दे और उस एकत्व के आगे ख़ुदी के आँसू बहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हू पिणु कोन्हे हिन रे, ही न हुन्हाँ धार।
"अलान्सानु सिरी व अना सिरहु" परूड़जि पचार।
कन्दा विया तन्वार, आलम आरफ़ अहिड़ी ।।

सच्चे ज्ञानी फ़क़ीर यही कह गये हैं कि वास्तव में वह (परमात्मा) इस (इन्सान) से अलग नहीं है तथा यह (इन्सान) उस (परमात्मा) से अलग नहीं। (परमात्मा ने कहा है) "इन्सान मेरा रहस्य है और मैं इन्सान का रहस्य हूँ।" (ऐ साधक) परमात्मा के इस कथन को समझ।

जाँ जाँ पसीं पाण खे, ताँ ताँ नाहि निमाज़।
सभि विञाए साज़, तिहाँ पोइ तक्बीरि चवु ।।

(ऐ साधक) जब तक तू अपने आपको देख रहा है (अर्थात् जब तक तू आत्मा-परमात्मा को अलग-अलग समझ रहा है) तब तक तेरी नमाज़ स्वीकृत नहीं होगी। अतएव तू समस्त साधन छोड़कर, (परमात्मा में लीन हो जा) फिर परमात्मा की प्रशंसा के लिए "अल्लाह अक्बर" (ईश्वर महान) का नारा लगा।

जिनि विञायो विजूद खे, से फ़ानी थिया 'फ़ी अल्लाह' में।
न तिनि क़ियामु, न क़ुऊदु में, न को कनि सुजूदु।
जेलाँ थिया नाबूदु, तेलाँ गद्रिया बूदु खे ।।

जिन्होंने अपनी ख़ुदी (अहं) को नष्ट किया, वे ही परमात्मा से एक हो गये। उनके लिए नमाज़ के समय, न बैठना आवश्यक है, न खड़ा होना, और न ही नमन करना ही अनिवार्य है। जिस हालत में उन्होंने अपने अहं को नष्ट किया है, उस हालत में वे सच्चे अस्तित्व को पहुँच गये हैं।

उभिरन्दे ई सिजि, प्रियुनि जे न पसन्दियूँ।
कढी ब्रेई द्रिजि, अखड़ियूँ काँगनि खे ।।

सूर्य उदय होते ही, जो आँखें प्रियतम को नहीं देखतीं, वे आँखें निकाल कर कौवों को दे दे अर्थात् जीवन के प्रभात काल में जो आँखें महबूब के दीदार करने के लिए प्रयत्न नहीं करतीं उनका न होना ही अच्छा है।

अखियूँ अलाई अल्सबाह, दोस्तु दीखण आइयूँ।
उभीन्दियूँ अरदास में, ब्री न कन्दियूँ काइ।
रचन्दियूँ रिइ पाह, परिचन्दियूँ प्रियन सीं ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रभात के समय जब आँखें प्रियतम का सौन्दर्य देखने आयीं तब वे दूसरा कार्य न कर प्रार्थना में खड़ी हो जायेंगी तथा बिना किसी रंग में रंग कर प्रियतम से बातें करने में मस्त हो जायेंगी। (तात्पर्य यह कि परमात्मा के अपार सौन्दर्य से प्रभावित होकर वे उसके प्रेम रंग में रंग जायेंगी।)

वसनि और वहसनि, ॾीहाड़ी ॾिसण लइ।
ॾिसी ॾिसी आइयूँ, तोइ तलाशूँ कनि।
ढाप्यो न ढापनि, पसण मंझाँ प्रियन जे॥

आँखें प्रियतम को देखने के लिए नित्यप्रति आँसू बहाती रहती हैं और विहँसती रहती हैं। वे प्रियतम को बार-बार (प्रकृति में) देखकर आती हैं, फिर भी उसको ढूँढती ही रहती हैं। वे दिलबर के दीदार से तृप्त ही नहीं होती हैं।

अखियुनि खे आऊँ, जाँ की झुलूँ पाइयाँ।
लोकु लताड़े निंड में, साॻनु सोठाऊँ।
मूँ खे मारियाऊँ, पाण पर्ची आइयूँ॥

आँखों को मैं कितना भी रोकती हूँ, फिर भी वे नींद में संसार को लाँघकर, प्रियतम को ढूँढ निकालती हैं। मुझे तो (इन आँखों ने) विरह में मार डाला है, पर स्वयं (नींद में) मिलन सुख उठाकर प्रसन्न हो जाती हैं।

अखड़ियुनि आरो, मूँ हाँ पुछी न कयो।
उते वञी अड़ियूँ, जिते चवणु न चारो।
हिन्अड़ो वेचारो, वाटूँ झल्यो विझुले॥

मेरी इन आँखों ने मुझ से पूछ कर मुहबत नहीं की है। ये वहाँ जाकर क़ैद हुई हैं, जहाँ मुक्ति का कोई रास्ता ही नहीं है। बिचारा हृदय प्रियतम की राह निहार-निहार कर चिन्तित एवं जर्जर होता जाता है।

अखि उल्टी धारि, वऊँ उल्टो आम सीं।
जे लहवारो लोकु वहे, तूँ ऊचो वहु ओभारि।
मन्झाँ नूच निहारि, पुरु पुठीरो प्रियनि ॾे॥

(शाह साहब साधक को उपदेश देते कहते हैं) ऐ साधक, तू उल्टी नज़र ग्रहण कर तथा साधारण लोगों के प्रतिकूल चल (अर्थात् जैसे साधारण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सांसारिक जन विषय-वासनाओं में लीन रहते हैं, वैसा तू मत कर। जिस तरह वे व्यवहार करते हैं उस तरह से तू मत कर।) यदि मनुष्य सांसारिक बहाव में बह रहे हैं तो तू उस बहाव के प्रतिकूल तैर और दृढ़ दृष्टि से देख (अर्थात् मन को स्थिर कर) प्रियतम की ओर चल।

अखियूँ सेई धारि, जिनि साँ पसीं प्रियनि खे।
बिए ड्रान्हिँ की म निहारि, घणो रीसारा सुप्रीं॥

(ऐ साधक) तू वैसी आँखें ग्रहण कर, जिनसे केवल प्रियतम को ही देख सके। दूसरी ओर दृष्टि तक मत उठा, क्योंकि प्रियतम बड़े ही दयालु हैं।

देखु म तूँ सीं तनि, ही जे मिजाज़ियाणियूँ मुँहँ में।
कीन न सुञातो सुप्रियुनि, निहारे नेणनि।
प्रियनि से पसनि, ब्रई जिनियन बूटियूँ॥

(ऐ साधक) तू अपनी इन बाहरी शारीरिक आँखों से मत देख, जो तेरे चेहरे पर हैं; क्योंकि इन बाहरी आँखों से किसी ने भी उस सत्यस्वरूप प्रियतम को नहीं पहचाना है। प्रियतम को वे ही देख पाते हैं, जिन्होंने अपनी दोनों ही आँखें बन्द कर दीं हैं।

अखियुनि में थी वेहु, त आऊँ वारी ढकियाँ।
तोखे ड्रिसे न ड्रेहु, आऊँ न पसाँ की ब्रियो॥

ऐ प्रियतम, तू मेरी आँखों में आकर बैठ जा, फिर मैं उन्हें बन्द कर दूं, जिससे विश्व तुझे न देख पाये और मैं तेरे सिवा किसी और को न देख पाऊँ। प्रस्तुत दोहा कबीरदास जी के निम्नलिखित दोहे से साम्य रखता है।

नैना अन्दर आव रे, नैन ढाँप तोहि लेहुँ,
ना मैं देखूँ और को, ना तोहि देखन देऊँ।

मुए हाथीअ ते मामिरो, अची कयो अन्धनि।
मनाड़ियनि हथनि सीं, अखिएं कीन-पसनि।
'फ़ी अलहक़ीक़त' फ़ील खे, सञा सुञाणनि।
सन्दी सरदारनि, बसीरत बीना करे॥

मृतक हाथी पर अन्धों ने झगड़ा किया। वे हाथी को हाथ से छू रहे थे पर आँखों से देख नहीं पा रहे थे (उसी तरह अज्ञानी जीव भी अन्धों की तरह परमात्मा के सम्बन्ध में व्यर्थ का वाद-विवाद करते हैं।)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वास्तव में हाथी को आँखों वाले (ज्ञानी) ही पहचान सकते हैं। आत्मज्ञान की दृष्टि ही हमें (सत्य को) देखने में योग्य बनाती है। (तात्पर्य यह कि सत्य को अज्ञानी जीव उसी तरह से नहीं पहचान पाते हैं, जिस तरह से अन्धे, हाथी को नहीं पहचान पाते हैं और अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उसका ग़लत वर्णन करते जाते हैं।

मुँहँ मन्झि ख़लीलु, अन्दरु आज़रु आहिईं।
सध म करि सिहत जी, अञा तू अलीलु।
नालो नाहि निफ़ाक़ जो, जिते रबु जलीलु।
मुँहँ में मुस्लमान तूँ, क़लबु ताँ क़लीलु।
वालीअ जे विसाल में, दूई नाहि दलीलु।
अला, अब्दुल्लातीफ़ु चए, सचो रखाइजु सीलु॥

(ऐ साधक) बाहर से तो तू इब्राहीम खलील (परमात्मा का मित्र) दिखाई देता है, पर भीतर से तू मूर्ति-पूजक (संकीर्ण) है। अतः तू सच्चे स्वास्थ्य (सत्य को समझने) की इच्छा मत कर, क्योंकि अब तक तू बीमार (अज्ञानी) हो। जहाँ नूरानी प्रियतम है वहाँ बीमारी (अज्ञान) का नामोनिशान तक नहीं रहता। चेहरे से तो तू मुसलमान (ज्ञानी) दिखाई देता है पर तेरा हृदय बड़ा ही संकुचित है। प्रियतम से मिलने के पथ पर द्वैत कभी सहायक नहीं होता (दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि यदि मिलन का आनन्द उठाना चाहते हो तो द्वैत को अपना पथ-प्रदर्शक मत बनाओ।) अन्त में शाह लतीफ़ परमात्मा से निवेदन करते कहते हैं "ऐ अल्लाह, तू मुझसे सच्चा चरित्र ग्रहण कराना।"

द्रिसणु द्रिसीं जे, त हमह खे हक़ु चईं।
शारिक, शकु म ने, अन्धा इन्हींअ ग़ाल्हि में॥

ऐ मज़्हबी अन्धे, यदि तुझे सच्ची दृष्टि (ज्ञान) प्राप्त होती, तो तू हरेक को सत्य (परमात्मा) ही कहता, तू इस बात में ज़रा भी सन्देह मत ला।

इन परि न ईमानु, जिअं कल्मे गो कोठाईं।
दग़ा तुंहिंजे दिलि में, शिरक ऐं शैतानु।
मुँहँ में मुसलमानु, अन्दरि आज़रु आहिईं॥

ऐ मुसलमान, केवल अपने को नमाज़ी कहलाने में ही मुसलमानीयत नहीं है। तेरे दिल में तो कपट, सन्देह और शैतान का वास है। सूरत से तो तू मुसलमान दिखाई देता है, पर भीतर से तू मूर्तिपूजक तथा मन के विकारों का पूजक है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुँहँ त आहेरियाँई उजिरो, क़ल्ब में कारो।
ब्रहराँ ज़ेबु ज़िबान सीं, दिलि में हचारो।
इन परि वेचारो, वेझो नाहि विसाल सीं॥

तेरा चेहरा तो शीशे से भी ज़्यादा साफ़ है, पर हृदय से तू काला है। ज़बान से तो तू मीठी बातें करता है, पर हृदय से हीन एवं निष्ठुर है। ऐसा व्यवहार करनेवाला इन्सान परमात्मा से कदापि नहीं मिल पाता।

तू का कानी पाइ, वनिनि में विसाल जी।
दू बीनाई दूर करे, मैरिफ़त मल्हाइ।
सुप्रियाँ जे सून्हिँ में, रुख़्नो कोन रिहाइ।
अखि अशहद चाइ, त मुसलमानी माणिईं॥

(ऐ साधक !) आँखों में तू परमात्मा-मिलन का सुर्मा लगा, द्वैत को नष्ट कर सच्चे ज्ञान-पद का आनन्द उठा। परमात्मा के सौन्दर्य की गवाही देनेवाली आँख उठा ताकि सही अर्थों में मुसलमानी का आनन्द उठा सके।

सुर्मो स्याहीअ जो, रननि खे रिहाइ।
कानी काराईअ जी, मुड़िसु थी म पाइ।
अखियुनि में अटिकाइ, लालाई लालन जी॥

काला सुर्मा तो रंगीली औरतों को ही शोभा देता है। तू मर्द बनकर, काला सुर्मा आँखों में मत धारण कर, बल्कि अपनी आँखों में प्रियतम की लाली लगा अर्थात् सच्चे प्रेम में रंग कर लाल हो जा।

सुर्मो सुर्ख़ीअ जो, जद्ॾहिं पातो जिनि।
तद्ॾहिं ड्रिठी तिनि, रौनक़ रेटे जहिड़ी॥

जिन्होंने (प्रेम का) लाल सुर्मा आँखों में डाला, उन्होंने हर जगह लालिमा की रौनक़ देखी।

मूँ ताँ लिकाई घणो, रूअण की रोशनु।
रसियो रेज़ालनि खे, मन्झाँ ज़र्दीअ ज़नु।
वेरी मू वरनु, ग़ाल्हि कयाईं ग़ुझ जी॥

(सच्चा प्रेमी कहता है) मैंने इश्क़ की बात बहुत छिपाई, पर मेरे रुदन ने उसे प्रकट कर दिया। मेरे चेहरे के पीलेपन से दुष्टों को संदेह हुआ। मेरा पीलापन मेरा वैरी हुआ, जिसने मेरे (प्रेम के) रहस्य को प्रकट कर दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'पाणु' पर्दो पाण खे, सुणी करि सन्भाल।
विचाँ जो विसाल, सो ताँ हुअणु हिन जो॥

(ऐ साधक) अहं की भावना ही तेरे आगे रुकावट है। यह बात सुनकर सावधान हो जा। परमात्मा से मिलन में जो बाधा है, वह इसी अहं भावना के कारण है।

गन्दीअ नींहु न सपजे, तुह न पचे माहु।
कचीअ परि किआउ, थिए समा जोॻु सॼणें॥

जिस तरह इश्क़ खलिहान में रखने की चीज़ नहीं है, मांस अन्न के छिलकों पर पकाना सम्भव नहीं, उसी तरह कच्चे स्नेह से मिलन सम्भव नहीं है।

मूँ खे मूँ प्रियनि, ॿधी विधो ॿारि में।
उभा ईअं चवनि, मछुणि पान्दु पुसाइईं॥

मेरे प्रियतम ने मुझे बाँधकर गहरे पानी में डाल दिया और स्वयं खड़े होकर कह रहे हैं—"सावधान, अपना आँचल गीला मत करना।" तात्पर्य यह कि परमात्मा स्वयं इन्सान को सांसारिक विषय-वासना-रूपी समुद्र में भेज देता है, पर साथ ही साथ उसे इन विषय-वासनाओं में डूबे रहने से सावधान भी करता है।

पियो जो पातारि, सो किअं पुसण खाँ पाल्हो रहे ?।
सालिक, मू सेखारि, को पहु इन्हींअ पान्द जो॥

जो गहरे पानी में पड़ा है, वह भला कैसे गीले होने से बच सकता है (अर्थात् जो सांसारिक समुद्र में पड़ा है, वह कैसे विषय-वासनाओं से अपने को बचा सकता है ?) ऐ पूर्ण सद्गुरु ! मुझे इस (मानव शरीर रूपी) आँचल को गीले होने से बचाने की कोई युक्ति सिखाइए।

करि तरीक़त तकियो, शरीअत सुञाणु।
हिओं हक़ीक़त हेरि तूँ, माॻु मैरिफ़त ॼाणु।
होइ साबूतीअ साणु, त पुसणाँ पाल्हो रहीं॥

(पूर्ण सद्गुरु जिज्ञासु शिष्य से कहता है—) तू तरीक़त की राह को अपना अवलम्बन बना, शरीअत (धार्मिक कर्तव्य) पहचान, अपने हृदय को हक़ (सत्य) से परिचित करा और मारफ़त की मंज़िल की जानकारी रख। अपने पैरों पर दृढ़ रह, मन को स्थिर बना, तो गीले होने से (मानव-जीवन नष्ट करने से) मुक्त रह सकेगा।

नोट—सूफी मत के अनुसार परमात्मा से मिलने की चार मंज़िलें हैं। तरीक़त, शरीअत, हक़ीक़त, मारफ़त जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुतोई सेज़ घुरीं, जफ़ा ड्रिएं न जानि।
सुलह रिइ सेणाँ, मताँ नून्धीनि न चढ़हीं ।।

(ऐ साधक !) तू अपने शरीर को ज़रा सा भी कष्ट न देकर सोते-सोते (आराम से) ही शय्या-सुख (मिलन-सुख) की इच्छा कर रहा है। पर सद्गुरु को राज़ी करने के विना तू आध्यात्मिक दुल्हा न बन पाएगा अर्थात् तू प्रेमियों की गिनती में नहीं आएगा।

तनु तसबीह, मनु मणियो, दिलि दम्बूरो जनि।
तन्दू जे तलब जूँ, वहदत सिरि वज़नि।
"वहदह ला शरीक लहु" इहो रागु रगुनि।
से सुताई जाग्रनि, निन्ड इबादत उन जी ।।

(शाह साहब कहते हैं) जिनका शरीर माला है, मन माला का मणिका है, तथा हृदय तम्बूरा है, जिसकी तारें परमात्मा के एकत्व के रहस्य से बज रही हैं, और जिनकी रग-रग यही गीत आलाप रही है—"वह (परमात्मा) एक है और उस जैसा दूसरा कोई नहीं है"— वे लोग चाहे सोये हुए हैं, फिर भी जाग्रत हैं और उनकी नींद भी मानों बन्दगी है।

"स्वर रामकली"

इस स्वर में शाह साहब ने योग एवं वैराग सम्बन्धी विचारों का वर्णन किया है। माना जाता है कि शाह साहब ने तीन वर्ष हिन्दू-योगियों की संगत में बिताए और उनके साथ पर्यटन करते रहे। अतः इस स्वर में उन्होंने उन्हीं योगियों की प्रशंसा की है तथा उनके गुणों एवं आध्यात्मिक सौन्दर्य का बखान किया है। शाह साहब उन योगियों पर मुग्ध थे और उनके सिवा उन्होंने अपना ज़िन्दा रहना कठिन बताया है।

शाह साहब ने इन योगियों को अनेक नामों से सम्बोधित किया है, जैसे वैरागी, आशिक़ फ़कीर नाँगा, संन्यासी, सामी (स्वामी का बिगड़ा हुआ रूप), कनचीर (कटे हुए कानों वाले), लँगोटिया (लँगोट धारण करने वाले), पूरबी (पूरब अर्थात् आध्यात्मिकता की ओर जानेवाले), गूँगा (मौन), बहरा, भभूतिया (भभूत या धूल मलनेवाले) आदि। उनका कहना है कि बाहर से ये योगी भद्दे और कुरूप दिखाई देते हैं, किन्तु भीतर से वे पूर्ण-प्रकाशित हैं। उनके पास लँगोट, कम्बल तथा कमण्डल के सिवा और कुछ नहीं है। वे सदैव वीरान मरुभूमि में गूँगे और बहरे बनकर घूमते रहते हैं और सांसारिक लोगों के द्वार से सदैव दूर रहते हैं। उनके हृदय आध्यात्मिक रहस्यों के खज़ाने से परिपूर्ण हैं तथा आँखें नित्य प्रियतम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के विरह में आँसू बहाती रहती हैं। उनका मन राम से जुड़ा रहता है, दृष्टि परमात्मा पर टँगी रहती है। वे अंश को कुल में विलीन कर देते हैं अर्थात् अपना अस्तित्व खोकर परमात्मा में लीन हो जाते हैं। वे निर्लिप्त तथा निरपेक्ष रहते हैं एवं सुख-दुःख, मान-अपमान, पाप-पुण्य, उन्नत्ति-अवनति, अपने-पराये तथा भले-बुरे को समान दृष्टि से देखते हैं। विश्व मानों उनके लिए इबादतगाह (प्रार्थना-स्थल) है, जहाँ हरेक वस्तु में उन्हें अपने प्रियतम के ही दर्शन होते हैं।

नूरी अें नारी, जोग्रियड़ा जहान में।
ब्ररी जिनि ब्रारी, आऊँ न जिअंदी उन रे॥

संसार में जमाली (नूरानी) तथा जलाली (अग्नि की सी गरिमा वाले) योगी हैं, जिनके दरबार में स्नेह-ज्योति चमकती रहती है। (शाह साहब कहते हैं) ऐसे योगियों के सिवा मैं न जी सकूंगा।

जोग्रियड़ा जहान में, हुआ मन्झि हमाम।
आरामाँ अरग्रु थिया, ओद्रा न आराम।
कयाऊँ क़याम, आऊँ न जिअंदी उन रे॥

विश्व में सच्चे योगी सदैव (प्रेम की) आग में जल कर, अपना जीवन व्यतीत करते हैं। वे आराम से दूर हैं और कभी भी विश्राम नहीं करते। वे मुझ पर क़हर (जुल्म) कर गए। अब मैं उनके सिवा न जी सकूंगा।

सतुरु सिङड़ीन सीं, लहज़े लाथाऊँ।
कीनर कुठी आहियाँ, उन्हनि जी आऊँ।
मूँ खे मारियाऊँ, आऊँ न जिअंदी उन रे॥

उन्होंने (योगियो ने) एक पल में मेरे भीतर के (अविद्या रूपी) पर्दे को अपनी मुरली की तान से हटाकर दूर कर दिया। मैं उनके वाद्ययन्त्रों की मारी हुई हूँ। उन्होंने मुझे मारकर नष्ट कर दिया; अब उनके सिवा मैं न जीऊँगी।

मेड़ियो भाणु भरियूं कयो, जोग्री जलाईनि।
सामी सिङड़ियुनि सीं, ख़ुदीअ खे खाईनि।
हू जे तारि तग्राईनि, आऊँ न जिअंदी उन रे॥

योगी समस्त ख़ुदी इकट्ठी कर, उसे जलाकर भस्म कर देते हैं। वे अपनी मुरली की आवाज़ से अपने अहं को खत्म कर देते हैं। वे बीच मझदार से पार लगाते हैं, उनके सिवा मैं न जीऊँगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सदाईं सफ़र में, रमनि मथे राह।
पुरनि पूरब पन्ध्य ड्रे, मन्झि मवाली माह।
जिनि अलख सीं आगाह, हलो तकिया पसूँ तिनि जा।।

शाह साहब योगियों की विशेषता बताते कहते हैं) सच्चे योगी सदैव ही पर्यटन करते रहते हैं और अपने ही मार्ग पर चलते रहते हैं, वे मस्ताने वैरागी देश-देशान्तर घूमते हुए पूरब देश (आध्यात्मिकता) की ओर ही चलते रहते हैं। जिन्हें परमात्मा की पहचान है; (शाह साहब कहते हैं) चलो तो चलकर उनके स्थान देखें।

सामी खामी प्रियनि लइ, कुसी थिया क़बाबु।
जहिड़ो ड्रिसनि ड्रोह खे, तहिड़ो तिनि सवाबु।
ओतीनि अरिती गाडुओं, मन्झिआँ अखियुनि आबु।
सन्दो ज़ाति जवाबु, तूँ कीअं पुछीं तिनि खे ? ।।

योगी अपने प्रियतम के लिए (प्रेमाग्नि में) जलकर कबाब हो जाते हैं। वे पाप और पुण्य को समान दृष्टि से देखते हैं। वे अपनी आँखों से आँसू बहाते रहते हैं। भला ऐसे योगियों से तू उनकी जाति-पाँति के विषय में कैसे पूछ-ताछ कर रहा है ?

जे भांईं जोगी थियाँ, त सङ सभेई छिनु।
वञी दरि दोस्तनि जे, नाँगा ! कीम निनु।
पटि तनीं जी पिनु, जिनि बुझी न बुझियो।।

(ऐ मानव !) यदि योगी बनना चाहते हो, तो सभी तरह के रिश्ते-नाते तोड़ दो। ऐ नांगा ! तू मित्र के द्वार पर जाकर रुदन मत कर, बल्कि संन्यासियों के उस समूह से आत्मिक ख़ज़ाने की याचना कर, जिन्होंने वास्तव में तो (परमात्मा-सम्बन्धी) रहस्य जान लिया है, पर दिखावा ऐसा देते हैं मानों वे कुछ नहीं जानते।

जे भांईं जोगी थियाँ, त सङ सभेई टोड़ि।
जे ज़ावा न ज़ापन्दा, जी तनीं से जोड़ि।
त तूं पहुँचीं तोड़ि, मुहबत जे मैदान में।।

यदि योगी बनना चाहते हो तो समस्त नाते तोड़ दो। जो न पैदा हुए हैं न पैदा होंगे (अर्थात् जो जन्ममरण से मुक्त हैं) उनसे स्नेह कर तो तू प्रेम के मैदान में अन्तिम मंज़िल तक पहुँच पाएगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जे भांई जोग़ी थियाँ, त मन पूरे, मन्झि मारि।
दाइम दून्हीं दिलि में, मन सीं माल्हा वारि।
सहु सभका आरि, आगे जी अदब सीं।।

यदि योगी बनना चाहते हो तो भीतर ही भीतर मन को वश में कर उसे अपने अधीन बना लो। अपने हृदय में ही सदैव धूनी रमा तथा मन से माला का जाप कर। परमात्मा की हर इच्छा को ससम्मान स्वीकार कर।

जे भांई जोग़ी थियाँ, त कीन प्यालो पीउ।
नाहि निहारे हथि करे, "आऊँ" से उति न बीउ।
त सन्दो वहदत वीउ, तालिब तोड़ाँ माणिइँ।।

यदि तेरी योगी बनने की इच्छा है तो नेस्ती (अस्तित्वहीनता) के प्याले का पान कर। अपने अहं पर विजय प्राप्त कर तथा आपे या ख़ुदी से मत खड़ा रह। ऐ जिज्ञासु! (यह सब कुछ करने के बाद ही) तू एकत्व-उद्यान का आनन्द लूट सकेगा अर्थात् परमात्मा से एक होकर परमानन्द प्राप्त कर पाएगा।

जोग़ियुनि जोग़ु जुग़ाइ, जोग़ु पिणु सून्हे जोगियनि।
जोगियुनि सन्दी जानि में, ग़ुझु ग़ुझान्दरु आहि।
हाइ! मून्हीं खे वाइ, जा आऊँ जोग़ु न सिखी।।

[प्रस्तुत पद्यांश में शाह साहब बताना चाहते हैं कि योग साधना कठिन है, अतः यह साधना योगियों द्वारा ही की जा सकती है।]

योगियों को ही योग-साधना करना योग्य है और योगियों को ही योग शोभा देता है, क्योंकि उनके हृदय में गहन रहस्य समाये हुए हैं। (शाह साहब खेद प्रकट करते कहते हैं) हाय! मुझे अपनी हालत पर खेद है क्योंकि मैं योग करना न सीख पाया।

जोग़ न जोग़ो तूँ, करीं पचारूँ जोग़ जूँ।
हिकिड़ो पन्धु प्रियुनि जो, ब़ी तुंहिंजी भूँ।
सामी सेणनि दूँ, रुअन्दा ई रतु विया।।

(ऐ मानव!) तू बातें तो योग की कर रहा है पर वास्तव में तू योग-साधना करने के योग्य नहीं है क्योंकि परमात्मा को पाने का रास्ता एक है और तू दूसरी ओर से ही जा रहा है। (अर्थात् वास्तविक रास्ते को न

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपना कर, दूसरा ही रास्ता अपना रहा है।) सच्चे वैरागी तो प्रियतम की ओर ख़ून के आँसू बहाकर गये।

जाँ की जोग॒ी थी, ना त निर्ज॒ा ! वञ्ञ निकिरी।
कोहु थो कन कपाईं, जाँ न सहीं सीउ ?।
भज॒ु, पराहूँ थी, मताँ ब्रिया लज॒ाईं॥

ऐ निर्लज्ज ! या तो सही अर्थों में योगी बन या तो इस रास्ते को ही त्याग दे। तू अपने कानों में छेद क्यों करवा रहा है, जब तुझ में ठण्डी (योग की कठिनाइयाँ) सहने की क्षमता नहीं है ? तू यहाँ से भाग कर, दूर चला जा, क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि तू (अपनी करतूतों से) दूसरे सच्चे योगियों को बदनाम करे।

गोला जे ग्राह जा, जूठा से जोग॒ी।
फिटल से फोग॒ी, जिनि शिकम साँढिया॥

जो योगी भोजन के ग़ुलाम हैं, वे झूठे हैं। जिन्होंने पेट पूजा ही की, वे सारहीन एवं तुच्छ हैं।

निसूरोई नींह जो, दिलि में दूद दुखाइ।
आणे आग॒ि इश्क़ जी, ब॒ारे जानि जलाइ।
ज़िन्दा ईएं जुग॒ाइ, जिअं आन्शाँ आबु थिए॥

शाह साहब उपदेश देते कहते हैं कि यदि योगी बनना चाहते हो तो अपने हृदय में स्नेह की धूनी तथा प्रेम की आग जलाकर, उसमें अपने शरीर को जला। ऐ जीवित इन्सान, तुझे इस तरह का व्यवहार करना चाहिए कि जिससे आग बदल कर पानी हो जाए।

मूना तूरसीना, सन्दा सन्यासियुनि।
पूरब खंयो न पाण सीं, बूदु बेराग॒ियुनि।
रिदा आहे राज॒ जी, ओछणु आदेसियुनि।
क़ुरबु कापड़ियुनि, नहँ चोटीअ सीअं ढकियो॥

योगियों के घुटने 'तूर सीना' पर्वत की तरह हैं। (तूरसीना पर्वत वह पर्वत है जहाँ पर हज़रत मूसा ने ख़ुदाई-नूर देखा था और ख़ुदा से बातें की थीं। योगी भी अपना सिर अपने घुटनों के बीच में रखकर ईश्वरीय ज्योति देखते रहते हैं।) इन वैरागियों ने पूरब देश (आध्यात्मिक मंज़िल) की ओर जाते हुए अपने साथ अहं की भावना नहीं रखी है। इन फ़क़ीरों ने आध्यात्मिक रहस्यमयी चद्दर ओढ़ ली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। इन कनफटे फ़क़ीरों ने अपने को नख से चोटी तक सच्चे प्रेम से ढाँक लिया है।

मुँहुँ महराबु प्रियुनि जो, जामअ सभ जहानु।
फ़रहीअ ताँ फ़ुरक़ान जे, काटियाऊँ क़ुरानु।
उद्रामी उति वियो, अक़ुलु ऐं अर्फ़ानु।
सभोई सुबुहानु, काढ़े वञी नियतियाँ ॥

योगियों के लिए प्रियतम का मुखड़ा ही मेहराब (वह जगह जहाँ नमाज़ के समय इमाम खड़ा रहता है) और पूर्ण विश्व ही महान मस्जिद है। इन पूर्ण पुरुषों ने सत्य और झूठ के बीच अन्तर दिखाने वाले विवेक-पट से पवित्र पुस्तक (क़ुरानशरीफ़) के दौर को मिटा दिया है (क्योंकि क़ुरानशरीफ़ ख़ुदा को पाने का मात्र साधन है, साध्य नहीं। ये योगी साध्य को प्राप्त कर चुके हैं अतः इन्हें अब साधन की आवश्यकता नहीं है।) वे बुद्धि एवं ज्ञान के पंख लगाकर वहाँ (आध्यात्मिकता की ओर) उड़ गये हैं। (वे सोचते हैं कि) जब सारी सृष्टि ही परमात्मा का दीदार है तो फिर कहाँ जाकर नमाज़ में सिर झुकाएँ।

मञ्झि मुहबत मचु, ब्रहर धूधा धूड़ि सीं।
छद्रियाऊँ चुर लही. कूड़, कुलखणु कचु।
अवग्रुण ओद्रा न थिया, ग्रुणु कयाऊँ ग्रचु।
जिअ सड़नु तीअं सचु, जिअं सड़नु तीअं सनरा ॥

योगियों के भीतर प्रेमाग्नि जलती रहती है और बाहर से धूल से सने हुए रहते हैं। उन्होंने एकान्त स्थान प्राप्त कर झूठ, कपट तथा कुलक्षणों को त्याग दिया है। वे दोषों के समीप नहीं जाते और उन्होंने असंख्य गुण प्राप्त कर लिये हैं। (जैसे-जैसे वे प्रेमाग्नि में) जल रहे हैं, वैसे-वैसे वे (स्वर्ण की भाँति) सत्य (शुद्ध) हो रहे हैं। जैसे-जैसे वे कष्ट सहन कर रहे हैं, वैसे-वैसे वे प्रफुल्लित दिखाई देते हैं।

केही काम कापड़ी, था अहिड़ी रवशि रवनि।
नका दिलि दोज़ख़ द्रे, नकी बिहिश्तु घुरनि।
नको कमु कुफ़ार सीं, नका मुसलमानी मनि।
उभा ईअं चवनि, त प्रीं कजो पांहिजो ॥

(शाह साहब योगियों के व्यवहार पर आश्चर्य प्रकट करते कहते हैं) किस कारण ये संन्यासी इस तरह का व्यवहार कर रहे हैं? उनके हृदय में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

न तो कभी नरक के विचार आते हैं और न कभी वे स्वर्ग की ही इच्छा करते हैं; न तो उनका वास्ता कुफ़्र से है और न उनका मन इस्लाम की ओर झुका हुआ है। वे खड़े होकर यही कह रहे हैं—"अपने प्रियतम को रिझाकर अपना कर लो"। (तात्पर्य यह कि वे किसी धर्म और मज़हब के न रहकर अलख के ही पुजारी हैं।)

ना उमेदी आजिको, ओछणु आदेसियुनि।
कद्रहिं ताज़ीअ पुठि ते, कद्रहिं हेठि हलनि।
सामियड़ा समून्ड में, तुम्बे जिअं तरनि।
जे वाग़ूअ वाति वञनि, त कुसनि, कुछनि कीन की॥

निराशा (समस्त इच्छाओं का त्याग) ही योगियों का ओढ़ना है। वे कभी ताज़ी (ऊँचे नस्ल वाले) घोड़े पर सवार हैं तो कभी ज़मीन पर चल रहे हैं (अर्थात् सुख, दुख, उन्नति-अवनति उनके लिए समान है।) इस संसार रूपी समुद्र में ये सच्चे फ़क़ीर तुम्बे की तरह तैर जाते हैं (अर्थात् इन्हें संसार रूपी सागर में डूबने का कोई डर नहीं है।) यदि वे मगर के मुँह में भी चले जाते हैं, (अर्थात् महान विपदा में पड़ जाते हैं) फिर भी वे मुख से उफ़् तक नहीं करते हैं।

लाल के लालु थिया, लालु लन्घियो जिनि।
अदम जे ओड़ाह ते, कया आसण आधोतियुनि।
गर्दान्यो गुन्गनि, ग्रदाब खे ज्ञान सीं॥

बिरल हीरे जैसे सच्चे फ़क़ीर ही आध्यात्मिक रंग में रंगकर आभायुक्त हो जाते हैं; और जिनके सामने से अमूल्य प्रियतम गुज़र जाते हैं (अर्थात् जिन्हें अलख का दर्शन होता है) उन अवधूतों ने नेस्ती (अस्तित्वहीनता) में अपने निवास-स्थान बनाए हैं (तात्पर्य यह कि ख़ुदी और अहं को मिटा कर नष्ट कर दिया है)। उन एकान्त-वासियों ने मन-रूपी भँवर को ज्ञान द्वारा मथ डाला है।

रूह में रहेनु रामु, बहरि ब्रोलीनि की ब्रियो।
प्यालो पुरु करे, जोप पीताऊँ जामु।
तिहाँ पोइ तमामु, तिनि तकिया ताके छद्रिया॥

योगियों की रूह में तो राम का ही वास है, पर बाहर से वे कुछ और ही कहते रहते हैं। उन्होंने प्रेम का प्याला लबालब भर कर, उसमें से ख़ूब पी लिया है, उसके पश्चात् उन्होंने अपने समस्त अवलम्बन त्याग दिए अर्थात् समस्त सांसारिक साधन और सहारे त्याग दिए हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेठे जन्हीं वरिह थिया, मथे सें मेरे।
अखियूँ जंहिं जूँ अलख ड्रे, भुवन ड्रेन भेरे।
काराणियाँ कका थिया, ज़राटिया ज़रे।
लुड़िक लाल, लतीफ़ चए, कम्बे ऐं केरे।
नोहुं न निबेरे, सूर चरन्दे सनरो॥

जिन्हें धूल भरे सिर से बैठकर वर्ष गुज़र गए, जिनके नेत्र परमात्मा की ओर ही लगे रहते हैं और पृथ्वी की ओर नही मुड़ते हैं, जिनके काले बाल आग में झुलसने के कारण कत्थई रंग के हो गए हैं, लतीफ़ साहब कहते हैं कि वे सच्चे आशिक़ अलख से डरते हैं और (उसके बिरह में) आँसू बहाते रहते हैं, पर अपना स्नेह नहीं तोड़ते और दुःखों में जीवन बिताते हुए भी प्रसन्न दिखाई देते हैं।

पिननि कीनि पट़ु खणी, घुरनि कीनि घराँ।
महेसी मख़लूक़ जे, उभ्यनि दूरि दराँ।
पुछनि कोहु शरआँ, जु अन्दरि अदालत उनजी ?॥

सच्चे योगी भिक्षापात्र लेकर मनुष्य से भीख नहीं माँगते बल्कि वे महेश के पुजारी लोगों के द्वार से दूर खड़े रहते हैं। वे मज़हबी अथवा धार्मिक क़ानून-क़ायदे क्यों पूछें जब उनके भीतर ही (विवेक-रूपी) न्यायालय है ?

आदेसियुनि अदबु, आहे अखड़ियुनि में।
तिनि जो हसबु-नसबु नाहि की, न अमा न अबु।
सामियुनि खे सभीनि परीं, रूह में रहियो रबु।
रिड़ लाँगोटीअ लबु, पाछी कनि न पाण सीं॥

सच्चे योगियों की आँखों में संयम है। (अर्थात् उनके नेत्रों में सांसारिक वस्तुओं के प्रति उपेक्षा तथा परमात्मा की आज्ञापालन के लक्षण दिखाई देते हैं)। उनका न कोई वंश है, न माता है और न पिता है, बल्कि हर अवस्था में उनके हृदय में परमात्मा का निवास है। वे सिवा लँगोट के अपने साथ कुछ भी नहीं लेते हैं।

पूज़ा कारि म पाण खे, जोग़ी रखुजि जोग़ु।
ख़ल्क़ ख़ादिम जिअं करीं, ऐ रावल! वड्रो रोग़ु।
भग़नि कोन्हे भोग़ु, नाँगा वञनि निड़िया॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐ योगी, तू अपनी पूजा मत करा, बल्कि अपने योग पर दृढ़ रह। ऐ बांवरे, तू लोगों को अपना सेवक बनाता है, वह तेरे लिए महान व्यधि है। दुनिया को त्यागनेवालों के लिए सांसारिक ऐशोआराम नहीं होते। नंगे फ़क़ीर (सच्चे वैरागी) तो माया के इस फन्दे से अपने को मुक्त कर आगे निकल जाते हैं।

बुख विधाऊँ बुगिरियनि, जोग़ी कन्दा, जञ।
तलब न रखनि तआम जी, ओतियो पियनि उञ।
लाहूतीनि लतीफ़ चए, मनु मारे कयो मुञ।
सामी झाग़े सुञ, वसउनि खे बेझा थिया॥

सच्चे योगी अपनी झोली में भूख डाल, आनन्द मनाते हुए चलते रहते हैं (अर्थात् खान-पान की चिन्ता न कर खुशी-खुशी से चलते रहते हैं।) वे पकवानों की इच्छा तक नहीं करते और प्यास को पी जाते हैं। वे अपना मन भार कर अपने वश में कर लेते हैं। तथा इस (संसार-रूपी) सुनसान भूमि को पार कर (परमात्मा की) बस्ती में जा पहुँचते हैं।

वेठो पुछीं परु, करि का हिन्आर हलण जी।
अज़ु आदेसी ! मरु, सुबाह मरन्दो सभु को॥

(ऐ योगी) तू अब तक अतीत की चर्चा कर रहा है, अरे ! अब तो (परमात्मा की ओर) चलने की बात कर। ऐ फ़क़ीर, आज ही अपने (मन) को मार क्योंकि कल (अर्थात् कभी न कभी) तो हरेक को मरना होगा (तात्पर्य यह कि शारीरिक मौत से पहले ही अपने को मार दे, क्योंकि दूसरों की तरह किसी न किसी दिन उसका शरीर मृत्यु को प्राप्त होगा)।

मरणु मुसल्लमु जिनि, वाहदु तिनि न विसरे।
मथे सग़ड़ कापड़ी, का नाँगा निंड न कनु।
नेण सदाईं तिनि, ओजाग़नि उजारिया॥

जो मरना स्वीकार करते हैं, वे परमात्मा को नहीं भूलते। वे सच्चे त्यागी आध्यात्मिक रास्ते पर चलते, नींद तक नहीं लेते हैं। उनकी आंखें (ज्ञान की) जागृति के कारण चमकती रहती हैं।

ड्रोरि म ड्रिआँ धार, ड्रोरणु घणो ड्राखिड़ो।
कोड़ें लख हज़ार, इन उन्दाहीअ अन्धा कया॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(सद्‌गुरु रूपी) दीपक के सिवा परमात्मा की तलाश करना, बड़ा कठिन काम है, क्योंकि (सांसारिक अज्ञान रूपी) अन्धकार ने लाखों करोड़ों का अन्धा बना दिया है।

गुल गुल पसी गोदड़िया, घणा म भांईज।
सोई सुञाणीज, ही हू आहे हेकिड़ो ॥

ऐ योगी ! अनेक प्रकार के रूप रंग वाले फूलों को देख, उन्हें अनेक मत समझ, बल्कि सब में उसी एक को ही पहचान; क्योंकि इसमें या उसमें अर्थात् सभी में उस एक ही परमात्मा का रूप है। तात्पर्य यह कि बाह्य विभेद होते हुए भी आन्तरिक रूप से सभी एक हैं, सबमें उस एक परमात्मा की ही सत्ता है।

पट छद्रियाऊँ पट में, द्रुन्ड छद्रियाऊँ द्रिसु।
आलाइशाँ अग्रे थिया, मोटी थियनु न मिसु।
ही छद्रियाऊँ हिसु, वञी काल्ह कुलु थिया ॥

(शाह साहब सच्चे योगियों की प्रशंसा करते कहते हैं—) देखो, इन योगियों ने अपने भिक्षापात्र जमीन पर फेंक दिए हैं तथा अपने आसन एवं साधना के अन्य साधन त्याग दिए हैं। वे झूठ तथा कलुषता से दूर हो (स्वर्ण बन) गए हैं और कभी भी ताम्बा नहीं बनते (ताम्बे से तात्पर्य है अज्ञानी इन्सान से और स्वर्ण से तात्पर्य है ज्ञानी व योगी से जिस तरह ताम्बे पर (जंग) चढ़ जाता है पर स्वर्ण पर नहीं चढ़ता, उसी तरह अज्ञानी जीव पर तो माया का प्रभाव पड़ता है किन्तु सच्चे योगियों पर स्वर्ण की तरह माया का प्रभाव नहीं पड़ता है।) इन योगियों ने सांसारिक विषय वासनाएँ त्याग दी हैं, अतः पूर्ण परमात्मा से मिलकर पूर्ण बन गए हैं। (माना जाता है कि परमात्मा पूर्ण है, कुल है और जीवात्मा उसका अंश; किन्तु जो अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेते हैं, वे परमात्मा से मिलकर पूर्ण बन जाते हैं।)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सचल सरमस्त

सिन्ध के प्रसिद्ध कवि सचल साहब का कलाम (काव्य) मस्ती तथा सूफियाने रँग में रँगा हुआ है। सचल जी का वास्तविक नाम अब्दालवाहब था, पर उन्हें "सचेदिनो" (सत्य का दिया हुआ) भी कहा जाता था। उनका उपनाम 'सच्चू' और 'सचल' था। विद्वानों के अनुसार सचल का जन्म सन् १७३९ में ख़ैरपुर प्रान्त के दराज़न नामक गाँव में हुआ था; तथा उनकी मृत्यु सन् १८२९ (लगलग ९० वर्ष की आयु) में हुई। सचल साहब के पिता का नाम मियाँ सलाहअल्दीन तथा दादा का नाम अब्दालवाहब था; पर उन्हें 'साहबदिनो के नाम से भी पुकारा जाता था। मुसलमानों में यह प्रथा थी कि प्रायः दादे का नाम ही पोते पर रखा जाता था, इसी प्रथा के अनुसार सचल का नाम भी अब्दालवाहब रखा गया। सचल के दादा मियाँ साहबदिनों (परमात्मा का दिया हुआ) एक योग्य विद्वान थे, इन्हें लोग महम्मद हाफ़िज़ कहकर पुकारते थे। मियाँ साहबदिनो के दो पुत्र थे—सलाहअल्दीन तथा अब्दालहक़। सचल के पिता सलाहअल्दीन ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण पिता की गद्दी के हक़दार थे। पर अब्दालहक़ फ़क़ीरी की ओर ज़्यादा आर्कषित थे अतएव योग्यता के अनुसार पिता के बाद फ़क़ीरी की गद्दी पर उन्हें बिठाया गया तथा उनकी मृत्यु के बाद सचल साहब को उनकी गद्दी पर बिठाया गया।

सचल साहब के पूर्वज फ़ारुक़ी जाति के थे। यह जाति हज़रत उमर के ख़ानदान में से थी। माना जाता है कि हज़रत उमर, पैग़म्बर साहब के चार मित्रों में से एक थे। इन्हें फ़ारुक़ी इसी कारण कहा जाता था क्योंकि वे अच्छे-बुरे तथा सत्य-असत्य के फ़र्क़ (अन्तर) को जानते थे और बड़े ही न्यायप्रिय थे।

कहा जाता है कि सचल साहब के पूर्वजों ने अमीरी छोड़कर फ़क़ीरी क़बूल की थी और वे जंगल के कन्दमूल फल पर ही जीवन बिताते थे। सचल जी में जो फ़क़ीरी का अंग दिखाई देता था, वह मानों उन्हें विरासत में ही मिला था। उनका जीवन अत्यन्त ही सादगी से भरा था। वे किसी तरह के नशे का सेवन नहीं करते थे, पर उनकी आँखें प्रेम के रंग में सदैव रंगी रहती थीं। सचल साहब की वेश-भूषा भी अत्यन्त ही सादी थी। वे सिर पर टोपी तथा शरीर पर घुटनों तक कुर्ता पहनते थे। कवि वली के शब्दों में कहा जा सकता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"हमन को खुश्क टोपी बस, कमर को यक लँगोटी बस,
सिरे पर एक टोपी बस, हमन को लज्ज़ताँ क्याड़ी ?"

स्पष्ट है कि कवि सचल उन सच्चे सूफ़ियों में से थे जिन्होंने मन को मार कर आत्मा को जाग्रत किया था।

सचल साहब बचपन से ही एक असाधारण बालक थे। वे काफ़ी पढ़े लिखे थे। उनके गुरु का नाम आखवन्द अब्दाल्लह था। सचल साहब ने चार भाषाओं में कविता की—सिन्धी, सराइकी, उर्दू और फ़ारसी। फ़ारसी भाषा में वे "आशिक़ारी" उपनाम से कविता लिखते थे। वे न केवल एक सन्त, फ़क़ीर और कवि थे बल्कि एक दार्शनिक और संगीतप्रेमी भी थे।

सचल साहब एकान्तप्रिय थे। वे बचपन से ही घण्टों जंगल में बैठकर सोचते-विचारते रहते थे। बचपन में ही पिता का देहान्त हो गया, अतः वे अपने चाचा मियाँ अब्दालहक़ के पास रहते थे और उन्हें अपना गुरु भी मानते थे। सचल साहब ने अन्य अनेक फ़क़ीरों का भी संग किया और उनसे प्रभावित हुए। सचल जी के मतानुसार सच्चे सूफ़ी न हिन्दू होते हैं, न मुसलमान। वे किसी भी धर्म के सच्चे साधकों को ही महत्व देते हैं, यही कारण है कि उन्होंने अपने काव्य में भगवान कृष्ण, गुरु गोविन्द सिंह तथा अन्य महापुरुषों की महिमा गाई है। वे जानते थे कि परमात्मा एक है, पर उन्हें पाने के रास्ते अनेक हैं। बचपन से ही धर्म-निरपेक्षी होने के कारण वे धर्म को महत्त्व न देकर इश्क़ को ही महत्व देते थे। उनकी दृष्टि में हिन्दू-मुसलमान दोनों एक थे। वे कहते थे "दिसो इश्क़ जो हिसाब, सभेई मज़हब कयाइं माफ़" (तात्पर्य यह कि इश्क़ का अनोखा ढंग है, वह सभी धर्मों को माफ कर देता है अर्थात् धर्म को महत्त्व नहीं देता) तथा "ओही काम करीजे, जस विच अल्लाह आप बणीजे; दीन कुफर इस्लाम में आशिक़ कदहाँ न अड़ीजे।"

"ऐ आशिक वही कुछ कर जिससे तू स्वयं ही खुदा बन जाए, हिन्दू-मुसलमान धर्म में अपने आपको मत अड़ा।)"

सचल साहब ने अपनी युवा अवस्था भी फ़क़ीरी में गुज़ारी। शादी करने की तमन्ना उन्हें नहीं थी, पर जब उनके चाचा मियाँ अब्दालहक़ ने अपनी बेटी के साथ उनका विवाह करना चाहा, तो उन्होंने इन्कार नहीं किया; क्योंकि वे विवाह को शरीअत (धार्मिक कर्तव्य) समझते थे। सचल जी को एक पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ पर बचपन में ही वह बालक इस असार संसार को छोड़ कर चल बसा। सचल के पुत्र की मृत्यु के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उन दिनों मीर रुस्तमखाँ खैरपुरी का बेटा मीर मुहमद हुसैन बीमार था और उन्होंने सचल फ़क़ीर को दुआ के लिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुलाया। सचल ने बीमार बच्चे के लिए दुआ माँगकर कहा—"मैं तेरे बेटे के बदले अपने बेटे को ख़ुदा के हवाले करता हूँ", नतीजा यह हुआ कि मीर का बेटा स्वस्थ हो गया किन्तु सचल साहब का बेटा चल बसा। तब से खैरपुर के निवासी सचल साहब को सिद्ध पुरुष मानने लगें।

साहित्यिक दृष्टि से सचल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन जैसा गायक-कवि सिन्ध में अब तक नहीं पैदा हुआ है। सचल जी के गीत उस ऊँचाई पर पहुँचे हुए हैं, जहाँ किसी सिन्धी कवि को क़दम रखने की हिम्मत तक नहीं हुई। सचल फ़क़ीर को संगीत से बड़ा ही प्रेम था। कहा जाता है कि सारंगी तथा तबले पर हाथ लगते ही वे मस्ती में आ जाते थे, उनकी आँखों से अश्रु बरसने लगते थे और वे सुध-बुध खोकर मस्ती में गाते जाते थे।

सचल साहब बाह्याडम्बर तथा कपट के कटु विरोधी थे, अपने नाम के अनुसार वे सत्य के ही पक्षपाती थे। जहाँ शाह साहब ने कहा कि वही कला धन्य है, जिससे प्रियतम को देखा जा सकता है, पर रोज़ा और नमाज़ भी बुरे नहीं है, सचल जी शाह साहब से एक क़दम आगे बढ़ गए हैं और कहते हैं—

कयडो मस्त प्रियनि जे नाज़ मूंखे,
विसिरियो रोज़ों, न आह याद नमाज़ मूंखे।

अर्थात् प्रियतम के नाज ने मुझे इतना मस्त बना दिया है कि मैं रोज़ा रखना ही भूल गया हूँ तथा नमाज़ की याद तक नहीं है।

शाह-सचल की तुलना करते प्रा० जेठमल परसराम गुलराजाणी कहते हैं— "शाह समस्त कवियों के सिरताज थें, परन्तु सचल भी कम नहीं थे। यदि शाह साहब का काव्य गहनता से भरा है, तो सचल का काव्य ऊँचाई पर चढ़ा हुआ है। शाह पनडुब्बे की तरह ज्ञान-समुद्र में डुबकी लगाकर बहुमूल्य मोती ले आये हैं, तो सचल आकाश में उड़कर सूर्य-सितारों के प्रकाश की जगमगाहट ले आये हैं।"

सचल साहब मन्सूर की तरह अपने को हक़ (सत्) ही मानते थे। शंकराचार्य की तरह वे भी 'सोऽहं' अर्थात् 'मैं वही हूं' में विश्वास करते थे। वे कहते थे कि लोग चाहे मुझे कुछ भी कहें किन्तु मैं जो हूँ वही हूँ अर्थात् मैं कोई नहीं बल्कि परमात्मा हूँ।

आऊँ जोई आहियाँ सोई आहियाँ।
को कीअं चवे, को कीअं चवे।
आऊँ जो ई आहियाँ सोई आहियाँ।
को मोमिन चवे, को काफ़िर चवे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को जाहिल नालो ज़ाहरु चवे।
को साहिर चवे, को शाइर चवे ॥ आऊँ जोई०

को पन्थ चवे, को सन्त चवे।
को बाग़ बहार बसन्त चवे।
को मीरासी कुलवन्त चवे ॥ आऊँ जोई०

को मुलाँ चवे, को क़ाज़ी चवे।
को मुफ़्ती चवे, को ग़ाज़ी चवे।
को रोज़हदार नमाज़ी चवे ॥ आऊँ जोई०

को रद चवे को बद चवे।
को बेदीनी बेहद चवे।
को मशरक़ भे मल्हद चवे ॥ आऊँ जोई०

को सूरत में इन्सानु चवे।
को शिर भरियो शैतानु चवे।
को बुज़ुर्ग को मस्तानु चवे ॥ आऊँ जोई०
को मस्त कोई सिरमस्त चवे।
को राह ते दीन दुरस्त चवे।
को आशिक़ रोज़ालस्त चवे ॥ आऊँ जोई०

को ज़ेर ज़बर जन्दीकु चवे।
को राह निमाउ रफ़ीक़ु चवे।
को ग़ुर्क़ी मन्झि अमीक़ु चवे ॥ आऊँ जोई०
को रंगु कोई बेरंगु चवे।
को मस्तो मस्तु मल्लंग चवे।
को नंगो को बेनंग चवे ॥ आऊँ जोई०

को शकु चवे, ना हक़ु चवे।
को बात अहा बरहक़ु चवे।
मूँखे मुर्शिद अब्दालहक़ चवे ॥ आऊँ जोई०

को ख़ासु चवे, को आमु चवे।
को पुख़्तो चवे, को ख़ाम चवे।
को सचू सचो नाम चवे ॥ आऊँ जोई०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सचल-साहब कहते हैं कि मुझे कोई कुछ कहता है तो कोई कुछ; किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ। कोई मुझे मुसलमान कहता है, तो कोई हिन्दू कहता है; कोई स्पष्ट रूप से मुझे नादान कहता है। कोई जादूगर कहता है तो कोई शाइर (कवि) कहता है; किन्तु मैं जो हूँ वही हूँ।

कोई मुझे पंथ कहता है, तो कोई सन्त मानता है; कोई बाग़, बहार बसन्त कहता है तो कोई गायक-फ़क़ीर कहता है; किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ।

कोई मौलवी कहता है तो कोई क़ाज़ी कहता है; कोई न्यायाधीश कहता है तो कोई ग़ाज़ी कहता है; कोई रोज़ा रखनेवाला नमाज़ी कहता है; किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ।

कोई मुझे बेकार मानता है, तो कोई बुरा कहता है; कोई अधर्मी तो कोई कट्टर धार्मिक कहता है; कोई आस्तिक कहता है; तो कोई नास्तिक कहता है; किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ।

कोई मेरी सूरत के कारण मुझे इन्सान कहता है, तो कोई शरारती शैतान; कोई बुज़ुर्ग कहता है तो कोई मस्तान (उन्मत्त) कहता है; किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ।

कोई मुझे दीवाना कहता है तो कोई मस्ताना कहता है; कोई धार्मिक राह पर ठीक तरह से चलनेवाला कहता है तो कोई प्रथम कोटि का आशिक़ कहता है; किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ।

कोई ऊंच कहता है, कोई नीच कहता है, कोई काफ़िर (नास्तिक) कहता है; कोई पथप्रदर्शक दोस्त कहता है तो कोई प्रेम में डूबा हुआ प्रेमी कहता है; किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ।

कोई मुझे रँगीला कहता है, कोई बेरंग कहता है, कोई मस्त मौला व मल्लंग कहता है, कोई लजीला तो कोई निर्लज्ज कहता है; किन्तु मैं जो हूँ, वही हूँ।

कोई मुझे सन्देह से देखता है तो कोई झूठा, कोई बड़े ही अधिकार से मुझे अब्दालहक का शिष्य कहता है, परन्तु मैं जो हूँ वही हूँ।

कोई मुझे विशिष्ट (व्यक्ति) कहता है तो कोई साधारण (व्यक्ति) कहता है, कोई स्थिर कहता है तो कोई अस्थिर कहता है। सचू कहते हैं कि कोई मुझे सतनाम (सच्चा नाम) कहता है। मैं जो हूँ, वही हूँ।

"ब्रान्हो भाँइ म पाण"

ब्रान्हो भाँइ म पाण, तू हीं मालिक मुल्क जो।
लाखेरफ़ी इबीदी, इहो अथेई अुहब्राणु।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाण पंहिंजो पाणहीं, सूरत मंझि सुञाणु ।
तूँ ई ञाणन्दड़ सभि की मियाँ, थिएं कीअं अञाणु ।
अल्लाह अल्लाह छो चवीं, पाण ई अल्लाह ञाणु ।
सचो साईं हिकिड़ो, नाहे शकु गुमानु ।।

(सचल साहब मानव को उपदेश देते कहते हैं कि वह अपने को शरीर न मानकर आत्मा माने, क्योंकि अपने को शरीर मानने में बन्धन है किन्तु आत्मा मानने में मुक्ति है ।)

अर्थ— ऐ मियाँ, तू इस मुल्क का मालिक है, अतएव अपने को गुलाम मत समझ । गुलामी में किसी तरह का हित नहीं है । (तेरा) यही लक्षण है कि तू आत्मावलोकन कर, अपने सच्चे स्वरूप को पहचान । तू सब कुछ जाननेवाला है, फिर भी अनजान (अज्ञानी) बनकर क्यों बैठा है ? (ऐ मूर्ख) तू अल्लाह ! अल्लाह !! क्यों पुकार रहा है ? खुद को ही अल्लाह समझ । सचल साहब कहते हैं कि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सच्चा मालिक एक ही है ।

"पखी परदेही"

ख़ाक मिट्टीअ दा बुतड़ा बनाइ, विचु पखी परदेही ।
पाणी पींदा, दान चुगन्दा, ज़ाति न ञाणाँ केही ।
कल इन्हीअ दी कल न काई, समझ साँ कल पेई ।
ही जगु सारा ख़्वाबु नीशानी, समझ सचू तूँ अेही ।।

(सचल साहब कहते हैं कि) मिट्टी का शरीर बनाकर उसमें (आत्मारूपी) पक्षी को रखा गया है, वही पक्षी पानी पीता है, दाना चुगता है, किन्तु मैं नहीं जानता कि उसकी जाति क्या है । इस (शरीर रूपी) तिलस्मी बनावट का कुछ भी पता नहीं चलता है । सोच-विचार से पता लगता है कि यह सारा संसार स्वप्नवत् है, अतएव ऐ सचू, तू भी इसी बात को समझ ।

"कहिड़ी शै आहियाँ"

शै आहियाँ काकियों कहिड़ी, जा समझी न ञाणाँ ।
बैजे भाँयाँ पुतिली, या आहियाँ गुडीअ डोर ।
या गोइ आहियाँ हथ यार जी, वाँगीअ वाँगुरु ज़ोर ।
या ता महल आहियाँ, जंहिं में शाहन्शाह ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रोलियूँ करे केतिरियूँ, थो दरवँऊँ दानाह।
या त घोड़ो आहियाँ, जो हलाए हसवार।
या त मौज दरियाह जी, जो ब्रोड़े थी ब्राहार।
या मेंदीअ गुल ताँ आहियाँ, जंहिं अन्दरि लालाई।
या आहियाँ गुल गुलाब जो, जंहिं सूर में सुरहाई।
या त चश्मो आहियाँ, अबर भरियो आबु।
तंहिं में सायो सिज जो, या पाछोई महताबु।
या त पाछो हक़ जो, आऊँ असुल खों आहियाँ।
जँहिं में ग़ाल्हिनाहिता, सो भी ता नाहियाँ।
ग़ाल्हि सचूअ सा समझी, खूँ हादीअ इहाई।
ता ग़ैर ख़ुदा जो नाहीअं, आहे साहिब सदाई॥

उमर ख़ैयाम की तरह सचल साहब इन्सान को परमात्मा की कठपुतली मानते हैं। उनका कहना है कि मानव में परमात्मा का ही नूर है, वह है तो मिट्टी का बना हुआ पुतला जिसकी अपनी तो कोई सत्ता ही नहीं है; बल्कि वह ईश्वरीय शक्ति से चल फिर सकता है। वास्तव में मानव को परमात्मा ने ही बनाया है और वही उसे चलाता है। अतः वह मेंहदी भी स्वयं है तो उसमें समाई हुई लालिमा भी स्वयं है, किन्तु कोई विरल व्यक्ति ही उसे जान पाता है। कवि सचल भी आश्चर्य में पड़ा हुआ है और सोचता है कि आखिर वह कौन है?

कवि कहते हैं कि मैं कौन हूँ, यह मेरी समझ में ही नहीं आता। कभी लगता है कि मैं एक कठपुतली या धागे से बँधी पतंग हूँ, जिसे कोई बाजीगर (मदारी) छिपी डोर से बाँधकर नचाता व चलाता रहता है; या कोई ऐसा गेंद या लट्टू हूँ जिसे हकीक़ी प्रियतम का हाथ घुमाता रहता है; या कोई ऐसा महल हूँ जिसमें एक विद्वान सम्राट विराजमान है, जो नाना प्रकार की बोलियाँ बोल रहा है; या एक अश्व हूँ, जिसकी लग़ाम किसी श्रेष्ठ घुड़सवार के हाथ में है; या मेंहदी का फूल हूँ, जिसमें विचित्र लालिमा समाई हुई है; या गुलाब का पुष्प हूँ, जिसमें महक भरी है; या तो कोई सोता हूँ, जिसे किसी बादल के पानी ने भर दिया है और उसमें सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है; या तो चन्द्रमा की चाँदनी हूँ या स्वयं आदि ईश्वर की परछाईं हूँ। सचल कहते हैं, वास्तव में दूसरी सब बातें सारहीन व तत्वहीन हैं, क्योंकि गुरु ने मुझे यह रहस्यमयी बात बताई है कि हक़ अर्थात् सत्य परमात्मा के सिवा दूसरी कोई वस्तु की सत्ता नहीं है। केवल वही (सत्य) है और उसके सिवा कोई वस्तु सत्य नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"छा मंझाँ छा !"

इहो अथमि अरमान, छा मँझाँ हितु छा थी आयसु ।
चाकरु थियसु न ज्ञाणाँ छा खों, ना त हुवस सही सुल्तानु ।
हुवस दानाउ देस उन्हीअ में, हितु नाँऊ थियसु नादानु ।
कोई ज्ञाणे कोई सुञाणे, इहो मर्दीअ जो मैदानु ।
बहर अबाध जो लहर लिकायो, थियो तरह नवीन तूफ़ानु ।
असिलू खूँ साणु वठी हितु आयसु, सूरनि जो सामानु ।
हिक घर खूँ थी ब्रे घरु आयसु, महज़ आयुसि महमानु ।
बहर उतूँ जा लहर उभी थी, मोटी थियो महिराणु ।
सचुअ खे कयो साइत साइत हैरत हिन हैरान ।।

(आत्मा परमात्मा का अंश है किन्तु इस संसार में आने के बाद, वह अपना वास्तविक स्वरूप भूल जाती है और अपने को शरीर मानकर भटकती रहती है; किन्तु जाग्रत होने पर वह परमात्मा से मिलकर एक हो जाती है।)

मुझे इसी बात का खेद है कि क्या था और यहाँ (संसार में) क्या बनकर आया हूँ। वास्तव में तो मैं सम्राट ही था किन्तु मुझे पता नहीं कि क्यों मैं यहाँ (विषय-वासनाओं का) ग़ुलाम बन गया हूँ। उस देश में तो मैं ज्ञानी था, किन्तु यहाँ आकर नादान (अज्ञानी) नाम पड़ गया है। वास्तव में यह (आत्मतत्व का) मैदान पुरुषत्व का है, जिसे कोई-कोई ही समझ सकता है और जान सकता है। (तात्पर्य यह कि आत्मतत्व बड़ा गहन है और उसे जानना वीरों या ज्ञानी लोगों का ही काम है।) इस गहरे (मायारूपी) समुद्र ने मेरी (आत्मारूपी) लहर को छिपा दिया है, जिस कारण ही यह नया तूफ़ान उठ खड़ा हुआ है। अर्थात् माया के कारण ही आत्मा अपने स्वरूप को भूल गयी और भटक रही है।) लगता है कि मैं यहाँ दुःखों और कष्टों का ही सामान लेकर आया हूँ। मैं एक घर से दूसरे घर (संसार) में केवल मेहमान बनकर आया हूँ (किन्तु यह बात भूल गया हूँ।)

सचू कहते हैं कि पल-पल यह विचित्रता मुझे आश्चर्य में डाल रही है कि जब (आत्मारूपी) लहर (मायारूपी) समुद्र में उठ खड़ी होती है (अर्थात् जाग्रत होकर अपनी सत्ता पहचानती है) तब वह (परमात्मारूपी) सागर में समाकर सागर ही बन जाती है (अर्थात् परमात्मा से मिलकर परमात्मा ही बन जाती है।)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असुल आहियाँ इस्रारु, ज़ाहिरु ग़ाल्ह ज़बानूँ नाही ।
पहिरियों पाण न ज्ञातमु हीअं थे, शौक़ भरियमु शूकार ।
मुर्शद रम्ज़ ग़ुझी पुरझाई, आन्दमु हितू ऐतुबार ।
दीद कुफ़र इस्लाम मज़ाहब, अव्वलु छडुण दरिकार ।
ब्रोड़ियमु समु सभु इरादा आन्दमु, हिक इरादे आर ।
जाई ग़ाल्हि सुञातमु साई, साग़ी आहियाँ सरदार ।
यसमै, यबसर, युन्तक़ु हिकिड़ो, नाहे आणणु इन्कारु ।
"ख़ल्क़ इला इश्या वह वईन्हा" थी ख़ासा ख़बरदार ।
सचू ग़ैरु ख़ुदा जो नाहे, गोशु करणु गुफ़्तार ।।

(सचू अपने को ही हक़ु [सत्य] मानते हुए कहते हैं—) मैं आरम्भ से ही एक रहस्य हूँ, जिसे ज़बान से प्रकट नहीं किया जा सकता है। पहले मैंने अपने को यों (सत्य) नहीं समझा था अतः उस समय मैं शौक से ठण्डी आहें भर रहा था (अर्थात् जब तक मुझमें यह ज्ञान नहीं था, मैं संसार में शौक से रहता था और दुःखो के कारण ठण्डी आहें भरता था) बाद में मुझे सद्गुरु ने रहस्यमयी बात (आत्मतत्त्व) समझा दी, जिस पर मैंने पूर्ण विश्वास कर लिया। कुफर, इस्लाम अन्य दीन-धर्म तथा मज़हबों को त्याग देने की ज़रूरत सोचकर, मैंने अपने सभी संकल्प-विकल्प डूबो दिए और एक प्रेम को ही पकड़ लिया। मैंने जैसे ही रहस्यमयी बात पहचान ली, वैसे ही मुझे पता चला कि मैं ही सरदार (परमात्मा) हूँ। इस बात से अब इन्कार नहीं किया जा सकता है कि सब में एक ही आतमा बोलने, सुनने और करने का काम करती है। परमात्मा ने सभी वस्तुओं का सृजन किया है, पर खुद सब के सार व तत्त्व हैं। सचू कहते हैं कि परमात्मा के सिवा दूसरी गुफ्तार (चर्चा) करना उचित नहीं।

जहिड़ो ही अजाइबु आहे, नाहि अजबु को ब्रियो अहिड़ो।
हेड़े होड़े न ड्रिसीं, मुंहुं पाणईअ में पाइ ।
पव तसवरु हिन में, ब्री बाज़ी का म बनाइ ।
अखियूँ उपटे जे ड्रिसीं, ता हादी आहे हर जाइ ।
सचू सारो सचु चयो, रम्ज़ दिलीअ साँ लाइ ।।

सचू कहते हैं कि जितना विचित्र यह (आत्मतत्त्व) है, उतनी विचित्र कोई दूसरी बात नहीं है। (ऐ मानव) तू (इस तत्त्व को समझने के लिए) यहाँ वहाँ मत देख, पर अपने ही भीतर निहार। फिर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसी में एकाग्र हो जा तथा दूसरे किसी प्रकार के कार्य के सम्बन्ध में मत सोच। यदि तू अपनी आँखें खोल कर देखेगा, तो तुझे सर्वत्र ही वह परमात्मा दिखाई देगा। सचू कहते हैं कि यही सच्चा सार है अतः इसी युक्ति को अपने मन में रख।

जोई आहिआँ सोई आहियाँ, हिन्दु मोमिन नाहियाँ।
ना मैं मुल्ला, ना मैं क़ाज़ी, ना मैं सबक़ु पढ़ायाँ।
ना मैं मस्जिद ना मैं हुजरा, अन्दर पेर न पाइयाँ,
ना मैं काबा, ना मैं क़िबलः, मक्के मूल न जावाँ।
ना मैं सुन्नी, ना मैं शीआँ, सैयदु कीअं सद्राइयां।
ना मैं नानकु, ना मैं लछमणु, गंगा मूल न जावाँ।
यार त मेड्रा दरस दराज़ी, सचलु नाँव सद्राइयाँ॥

मैं न हिन्दू हूँ, न मुसलमान हूँ, बल्कि जो हूं वही हूं (अर्थात् मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ)। मैं न मौलवी हूँ, न मैं काज़ी हूं और न ही मैं दूसरों को शिक्षा देने वाला हूं। मैं न मन्दिर में न हीं मस्जिद में अपना क़दम रखता हूँ। मैं न काबे में जाता हूँ, न कर्बला में और मक्के में तो मैं कभी भी नहीं जाता। मैं न सुन्नी जाति का हूँ, न ही शीहा जाति का, तो फिर अपने को सैय्यद कैसे कहलाऊं। मैं न गुरु नानक हूँ, न लक्ष्मण हूँ, तथा गंगा में तो मैं कभी भी नहीं जाता। मैं तो अपने प्रियतम का दराज़ों (सचल का निवास स्थान) में ही दर्शन करता हूँ तथा अपने को सचल (सच्चा तत्त्व) कहलाता हूं।

न माँ मुरीद, न माँ पीरु, सारे फक़र जो फ़क़ीरु।
न माँ हाकिमु, न माँ ज़ालिमु, आहियाँ अमन जो अमीरु।
न माँ ताइत न माँ तक्वाई, आहियाँ विरह जो वज़ीरु।
न माँ घुमंणु, न माँ घतणु, आहियाँ इश्क़ जो असीरु।
न माँ कुछण, न माँ पुछणु, आहियाँ दोसनि लाइ दिलगीर।
सचूअ ब्रधो महकुम सिर ते, मुहबत जो मन्दीरु॥

(सचल अपने को कुछ न समझ कर, आत्मा को ही सर्वस्व समझ कर कहते हैं—) न मैं गुरु हूँ, न पीर-पैग़म्बर हूँ। बल्कि मैं दरिद्रता का ही फकीर हूँ। मैं न हाकिम (राजा) हूँ, न मैं ज़ालिम हूं बल्कि अमन का ही अमीर हूं। न मैं बन्दगी हूँ, न मैं परहेज हूं, बल्कि मैं विरह का वज़ीर हूँ (अर्थात् परमात्मा को पाने के लिए तड़पता रहता हूँ) न मैं घूमता हूँ, न फिरता हूँ पर मैं प्रेम का कैदी हूं। न मैं कुछ कहता हूँ,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न कुछ पूछता हूँ, बल्कि सदैव ही प्रियतम के लिए बेकरार और बेचैन रहता हूँ। सचू कहते हैं कि मैंने अपने सिर पर प्रेम का फन्दा मज़बूती से बाँध लिया है।

मन्दिर करे मन खे, पुज़ारी पूज़ाइ।
पारि न ब्रियो पुछाइ, सचू पुज़ारिया पुरबन्दर जा॥

सचू साहब कहते हैं ऐ पुजारी, पोरबन्दर के पुजारियों की तरह तू मन के मन्दिर की पूजा कर और दूसरे सब तरीके छोड़ दे तब ही तुझे रत्न प्राप्त होंगे।

इस दोहे का अर्थ ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। माना जाता है कि सोमनाथ के मन्दिर के बीचोबीच लात और मिनात नामक दो मूर्तियाँ थीं जो बिना किसी अवलम्बन के खड़ी थीं। जब महमूद ग़ज़नवी ने मन्दिर पर आक्रमण किया तब एक पुजारी ने उसे बताया कि इन मूर्तियों में बहुत से हीरे जवाहर समाये हुए हैं पर कोठरी के चारो तरफ की दीवारों, ज़मीन तथा छत में बड़े-बड़े चक्रमक-पत्थर रखे हुए हैं, जिससे ये मूर्तियाँ बिना किसी सहारे के खड़ी हैं। यह बात सुनते ही ग़ज़नवी ने दीवारों, ज़मीन और छत को तोड़ देने का हुक्म दिया दीवारों तथा छत के टूटते ही मूर्तियाँ भी टूट कर ज़मीन पर आ पड़ीं और वास्तव में उन में से बहुत हीरे जवाहर निकले। सचल शरीर की तुलना मन्दिर से करते हुए कहते हैं कि यदि मानव इस शरीररूपी दीवारों को तोड़ दे तो उसे भी हृदय में छिपे हुए आत्मारूपी हीरे जवाहर मिल सकते हैं।

सचल साहब अद्वैतवादी थे। वे आत्मा-परमात्मा को एक समझते थे। उनका कहना था कि जिस तरह नवनीत तथा दूध में कोई भेद नहीं है, नवनीत दूध का ही तत्त्व है उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा में भी कोई अन्तर नहीं; जिस तरह दूध में मक्खन प्रकट रूप से दिखाई नहीं देता है, पर मंथन से वह ज़ाहिर होता है उसी तरह मनुष्य भी साधना, अभ्यास तथा आत्मावलोकन द्वारा अपने ही भीतर अपने सच्चे स्वरूप को देख सकता है। यह सत्य स्वरूप हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी में समाया हुआ है अतः मनुष्य को मनुष्य से घृणा न कर उससे प्रेम करना चाहिए और अपनी खुदी को मिटाकर खुदा बन जाना चाहिए।

पाण पंहिंजो पाणही, सूरत मंझि सुञाणु।
अल्लाह अल्लाह छो करीं, पाण ईं अल्लाह ज्ञाणु।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तूँ ईं बुधन्दड़, तूँईं ड्रिसन्दड़, शाहदि आहि कुरानु ।
नाहे शकु गुमान, सचू साईं हेकड़ो ।।

(सचल मानव को उपदेश देते हुए कहते हैं—) ऐ मानव ! तू आत्मावलोकन से अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान ! तू अल्लाह-अल्लाह की रट क्यों लगा रहे हो; (ऐ मूर्ख) तू खुद ही अपने को अल्लाह समझ । क़ुरान शरीफ साक्षी है कि तू ही श्रोता तथा तू ही दर्शक है । सचू साहब कहते हैं कि इस बात में रत्तीमात्र भी संदेह नहीं है कि परमात्मा एक है ।

पाण विञाए पाण, गोल्हे लहजि पाण खे ।
पाण मंझाँ पाण खे, पवन्दी ज्ञाण सुञाणु
मखणु अखरु हिकिड़ो, सोई खीर संभाणु ।
इहो अथी अहुञाणु, सचू ग़हीला इन्हींअ ग़ाल्हिजो ।।

(ऐ मानव) तू अपनी खुदी को नष्ट कर, अपने स्वरूप को ढूंढ क्योंकि अपने भीतर खोजने से ही तुझे सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा । सचू साहब कहते हैं; ऐ मूर्ख, जिस तरह से मक्खन शब्द दूध से अलग है, किन्तु वास्तव में वह दूध का ही तत्त्व है, सार है; उसी प्रकार इस बात (आत्मा परमात्मा) को समझने का यही ठीक लक्षण है । (तात्पर्य यह कि जिस तरह से दूध और मक्खन में कोई भेद नहीं है उसी तरह, आत्मा-परमात्मा में भी कोई अन्तर नहीं है । जिस तरह दूध में ही नवनीत छिपा रहता है, किन्तु ज़ाहिरी तौर पर दिखाई नहीं देता है, बल्कि मंथन से ही प्रकट होता है, उसी प्रकार परमात्मा भी हमारे भीतर समाया हुआ है और आत्मावलोकन से ही दिखाई देता है ।)

जे तो ज्ञातो पाण, त आऊँ को ब्रियो आहियाँ ? ।
कन्दइ ग़र्क़ु गुमानु, सचू ग़हीला इन्हीअ ग़ाल्हि में ।।

सचू साहब कहते हैं: ऐ मूढ़ ! यदि तू ने यह समझ लिया कि तू कोई दूसरा है (अर्थात् तू शाश्वत आत्मा नहीं, नश्वर शरीर है); तो यह ज्ञान तुझे अवश्य ही डूबो देगा ।

टोरि रवाज अें रस्मूँ सारियूँ, मर्द थिएं मर्दानो ।
पाण बेगानो, मूल न ज्ञाणीं, आहीं यारु युगानो ।
वहमु सचल कढु ब्रान्हप वारो, शमिलो ब्रधु शहानो ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सचल साहब मनुष्य को उपदेश देते हुए कहते हैं (ऐ मानव) तू समस्त रीति-रिवाज तोड़ दे, ताकि तू वीर पुरुष बन सके। तू मूल (सत्य) को न जानने के कारण ही अपने को बेगाना समझ रहा है, परन्तु वास्तव में तो तूं सत्य का युगों का मित्र है; अब भी अपने हृदय से दासता के भ्रम को त्याग दे और (ज्ञान की) शानदार पगड़ी बांध (अर्थात् अपने को ग़ुलाम न समझ कर हक़ (सत्य) समझ।

पाण सुञाणजि पांहिंजो, अथी गिल अन्दरि ग़ोहर।
फिटो करु ॿयाईअ जो, ॿुहारे ॿोहर।
जोति भरियो जोहर, सचल पाणही पसीं पारखू॥

सचल साहब कहते हैं: ऐ मानव; तू स्वयं ही अपने स्वरूप को पहचान क्योंकि मिट्टी (के शरीर) के भीतर ही (आत्मारूपी) प्रकाश छिपा हुआ है; अतएव तू द्वैत का कूड़ा कर्कट बुहारकर फेंक दे। ऐ पारखी; तू (आत्मारूपी) ज्योति जगमगात जवाहर खुद ही देख सकता है।

पसी भुत भुल्योसि, ता आऊँ आदमी आहियाँ
विचाँ जो वियोसि, साग़ियो सचू आहियाँ॥

सचू साहब कहते हैं कि मैं अपने शरीर को देख कर भ्रम में पड़ गया और सोचा कि मैं आदमी हूँ किन्तु जब द्वैत मिट गया, तब मुझे पता चला कि मैं वही सत्य हूँ।

छा जो काबो, छा जो किबलो, ही भी सभ बहाना।
नाक़स नियत काबे वारी, मर्द घुमनि मैख़ाना।
सचल सत्गुर इंअ आखियो, हक़ु लहनि मस्ताना॥

क्या काबा, क्या कर्बला, ये सब तो (परमात्मा को पाने के) बहाने हैं। काबे में जाने की इच्छा ही तुच्छ है, यही कारण है कि सच्चे पुरुष (प्रेम की) मधुशाला में ही घूमते रहते हैं। सचल साहब फर्माते हैं कि सदगुरु ने कहा है कि मस्ताने ही सत्य को ढंढ पाते हैं।

जे मञनि था आदमी, से न मञाँ माँ।
सचू आहियाँ आऊँ, जो ॿान्हे ॿिए जो न थियाँ॥

सचल साहब कहते हैं कि जो लोग मानते हैं, वह मैं नहीं मानता क्योंकि मैं सत्य हूँ, हक़ हूँ, इसलिए मैं दूसरों का ग़ुलाम नहीं बनता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ज़ाति सिफ़ात हिकाई आहे, भूल न विझीं भोले ।
सोई अन्दरि, सोई ब्राहरि, सोई तुंहिजे चोले ।
तो में, मूँ में, हुन में, हर जा, सचु सचू थो ब्रोले ।।

सचू साहब कहते हैं; ऐ भोले जीव, तू भ्रम में मत उलझ क्योंकि मैं सत्य कहता हूँ कि (आत्मा) वास्तव में एक ही जाति और विशेषता वाली है । वही आत्मा भीतर है, वही बाहर है और वही तेरे शरीर में है । वह तुझ में मुझ में और हर जगह है ।

राम रहीम हिको हिकु समझीं, मौज मुहबत माणीं ।
काफिर मोमिन गबर, नसारू, ग़ैर गुमानु न आणीं ।
माँ तूँ सूरत सागी सचा, जे तूँ पाण पछाणीं ।।

सचल साहब कहते हैं (ऐ मानव) यदि राम-रहीम को एक समझेगा, यदि तू हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई धर्म मानने वालों में परायेपन का संदेह न लाएगा, तो प्रेम का आनन्द लूटेगा । यदि तू अपने स्वरूप को पहचानेगा, तो तुझे ज्ञात होगा कि तू और मैं एक ही सूरत वाले हैं अर्थात् तुझ में और मुझ में एक ही आत्मा है ।

राम रहीम हेकड़ो, त रावण में वरी केरु ।
कृष्न थी छो कंस खाँ, वठीं वेठो वेरु ।
पाए प्रेम प्रह्लाद साँ, तूं हरनाकुश खे हेरु ।
सचल वेर अवेर, पन्हिन्जो अथी पाण में ।।

(ऐ मूर्ख) यदि राम और रहीम एक हैं, तो रावण में फिर कौन है ? तू कृष्ण बनकर कंस से वैर क्यों ले रहा है ? प्रह्लाद से प्रेम प्राप्त कर, तू हिरण्यकश्यप को देख । सचल साहब कहते हैं कि शीघ्र ही या देर से तुझे यही पता चलेगा कि सब में एक ही (सत्य) समाया हुआ है ।

सचो साईं हेकड़ो, नाहे शकु गुमानु ।
पंहिजो तमाशो पाण ड्रिसे थो, सूरत मंझि सुल्तानु ।
काथे पढ़े पोथियूँ, काथे पढ़े क़ुरानु ।
किथे ईसा, किथे अहमद, काथे हनुमानु ।
हैरत में हैरानु, पंहिजो विधाईं पाण खे ।।

सचू साहब कहते हैं कि इस में ज़रा भी संदेह नहीं है कि परमात्मा एक है। वह सुल्तान अपने ही रूप में अपना तमाशा देख रहा है। कहीं पर वह (हिन्दू बनकर) पोथियाँ पढ़ रहा है तो कहीं पर (मुसलमान बनकर) कुरान शरीफ़। कहीं ईसा बन बैठा है, कहीं हज़रत-मुहम्मद बन कर बैठा है तो कहीं पर हनुमान बन कर बैठा है, इस तरह से उसने अपने आप को ही आश्चर्य में डाल दिया है।

समुझायो माँ तालिब तोखे, सचु इहोई सारो।
अर्ज़ समा में वाह वज़ाइजि, आशिक़ नींह नग़ारो।
नामु छद्दे बदनामु थी अचु तूँ, लोकु ड्रिसी सभि सारो।
सटु सचलु सामान सुल्ह जो, मारि हक़ानी नारो॥

सचल साहब कहते हैं, ऐ जिज्ञासु प्रेमी, मैंने तुझे यह तत्त्वमय सत्य समझा दिया है कि पृथ्वी तथा आकाश में तू प्रेम का नग़ारा बजाता रह। पूर्ण विश्व देख परखकर, अपना नाम छोड़कर बदनाम होकर आ तथा सभी तरह के नाते पटक कर सत्य का नारा लगाता रह।

ग़ोल्हा करीं जंहिं जी, सो तूं आहीं पाण।
पाण कनाँ पासे कयो, तोखे तुहिंजीअ ज्ञाण।
पंहिंजो पाण सुञाणु, सचू, तूँ ताँ नाहीं आदमी॥

(ऐ मानव) जिस (परमात्मा) की तू खोज कर रहा है, वह तो तू स्वयं है। तेरी जानकारी (अज्ञान) ने ही तुझे अपने स्वरूप से दूर कर दिया है। सचू साहब कहते हैं, अब भी अपने आप को पहचान क्योंकि तू शरीर नहीं है (बल्कि आत्मा है।)

सचल सारो सच थियो, मन्झाँ कसरत कुलु।
अलफ़ माँ आदम थियो, करे हन्गामो हुलु।
हिन्दू मोमिन हिक थियो, भूल न ब्री कंहिं भुल।
ख़ल्क़ आलाश्याइ फहो ईंनुहा इहो आणि अमलु।
थिजि गुलाबी गुलु, मर मारनी मन्सूर जाँ॥

सचल साहब कहते हैं कि एक सत्य (परमात्मा) से अनेक (प्राणी) पैदा हुए हैं। एक अलफ (अल्लाह शब्द का पहला वर्ण) से ही सम्पूर्ण सृष्टि का शोरोगुल हुआ है। हिन्दू मुसलमान सब एक हैं अतएव तू अपने को भ्रम में मत उलझा। तू यही याद रख कि उसने ही सब वस्तुएँ पैदा की हैं अतः वे सब उसके ही स्वरूप हैं, उससे अलग उन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वस्तुओ का कोई अस्तित्व नहीं है। इस मान्यता के लिए यदि तुझे भी मन्सूर की तरह मार दें (तो वह मरना भी स्वीकार कर) और गुलाब का फूल बन (तात्पर्य यह कि जिस तरह गुलाब का फूल काँटों में भी मुस्कराता रहता है उसी तरह इस मान्यता के कारण यदि तुझे मुसीबतें उठानी पड़े फिर भी तू उनके बीच गुलाब की तरह हंसता रह।)

फिकरि इन्हीअ में पियासूं सचा, आहियूँ या सचु नाहियूँ।
नाहियूं ज्ञाणि इहाई सारी, आहियूँ ता बी नाहियूँ।
फरऊनी मन्सूरी हिकिड़ी सचल, हर्फ केहो चऊ डाहियूँ।
सचा सचु तद्ढहिं आ थियणो, पोश पाणाँ ही लाहियूँ।।

सचल साहब कहते हैं कि हम इसी फिक्र में पड़े हुए हैं कि हम सत्य हैं या नहीं हैं। वास्तव में सत्य होते हुए भी हमें यही ज्ञान रखना चाहिए कि हम कुछ नहीं हैं। सचल कहते हैं कि फरऊनी तथा मन्सूर दोनों ने ही कहा था कि हम ख़ुद ख़ुदा हैं किन्तु किसका डींग मारना सच्चा था किसका झूठा ? (कहा जाता है कि फरऊनी तथा मन्सूर में से मन्सूर ने जो दम भरा था कि मैं हक़ (सत्य) हूँ वह सच्चा था क्योंकि शूली पर चढ़ते समय भी वे अपनी बात पर डटे रहे और नश्वर शरीर के मरने पर किसी तरह का दुःख प्रकट नहीं किया, किन्तु फरऊनी का दम झूठा था क्योंकि वह मौत से डर गया।) सचू साहब फर्माते हैं कि हम तभी सत्य होंगे जब हम शरीर के भ्रम का पोश उतार देंगें।

फर्क़ु कुफ़र इस्लाम न कोई, ज्ञाणि इहोई ज्ञाणीं।
काफिर मोमिन हिको हिका, ग़ैर न ग़ाज़ी आणीं।
कुलु शै हू अल्लाह सचल, सभ सूरत हिक सुञाणीं।।

(ऐ मानव) इस सच्चे ज्ञान की जानकारी रख कि कुफर तथा इस्लाम में कोई अन्तर नहीं है। काफिर और मोमिन दोनों एक हैं तथा ग़ाज़ी को भी ग़ैर मत समझ। सचल साहब कहते हैं कि समस्त वस्तुओं में अल्लाह ही समाये हुए हैं, जिसकी सूरत सब में पहचान।

शख़्सु को जामों करे, जामों न नालो सो सद्राइ।
नाँव सो पंहिजो सद्राइंदो, सिर जंहिजो नाँव आहि।
केई ग़ालिहयों कोंड़ें करे, महले में वेठा पातशाह।
इंअ न चइबो आहे ही ता, माग्गि महले जो अलाइ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आहे अजाइब जेहिड़ो, बाज़ीगरी हिन जो बनाउ ।
पाण ता पंहिंजो लहे, हिन सिर जो सारो समाउ ।
रम्ज़ मुर्शिद खूँ सही कयमि, जो निदा सोई सदाइ ।
उस सचू रे सिज खूँ, नाहे ज़रो कोई जुदाइ ।।

सचल साहब कहते हैं कि जिस तरह अभिनेता अभिनय करते समय अपने निजी रूप को भूल कर, जिसका वह अभिनय कर रहा है, वही मान लेता है, पर अपने वास्तविक जीवन में अपने को उस नाम से नहीं बुलवाता पर अपने निजी नाम से ही बुलवायेगा, उसी तरह आत्मा को भी शरीररूपी पोशाक पहन कर अपने को शरीर नहीं बल्कि आत्मा ही कहलाना चाहिए ।

एक बादशाह अनेक तरह के ठाट बनाकर यदि महल में बैठा हुआ है तो यह नहीं कहा जा सकता है कि वह हमेशा से लेकर इसी महल का मालिक है । (उसी तरह आत्मा एक शरीर रूपी महल में सदैव नहीं रहती ।) वास्तव में उस बाज़ीगर (परमात्मा) की बनायी हुई सृष्टि आश्चर्यमयी तथा रहस्यमयी है और उस रहस्य को हम स्वयं अपने भीतर ही ढूंढ सकते हैं क्योंकि मैंने सद्‌गुरु से यह युक्ति सीखी है कि जो नहीं है वही सदैव है अर्थात् जो आत्मा हमें दिखाई नहीं देती उसका तो अस्तित्व है । किन्तु जो शरीर हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है वह नहीं है । सचू साहब कहते हैं जिस तरह धूप सूर्य से अलग नहीं है उसी तरह कोई भी वस्तु उस (परमात्मा) से अलग नहीं है ।

ईअं लखियो मूँ ईअं लखियो मूँ,
पंहिंजो पाण खे ईअं लखियो मूँ ।
वरिद वज़ाइफ कढियमु मुराक़बा,
परो प्रियनि जो कोन पियो मूँ ।
पढ़ियमि निमाजाँ, रखियमि रोज़ा,
ज़रो बि हासिलु कोन थियो मूँ ।
सवें कलाम जारी मूँ पढ़िया,
असरु कलामनि कोन कयो मूँ ।
अव्वलु ज़ातमि पोइ सुञातमि,
आहे तो रीअ कोन ब्रियो मूँ ।
सचू सारो सरि हक़ानी,
कीअं चवाँ आहे केरु थियो मूँ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सचल साहब का कहना है कि परमात्मा रोज़ा रखने, नमाज़ पढ़ने आदि से नहीं मिलता है। वह तो सृष्टि के कण-कण में समाया हुआ है, इस रहस्य को जानने के पश्चात् ही परमात्मा को पहचाना जाता है, पर पहचानने के बाद भी उसका वर्णन नहीं मात्र, अनुभव ही किया जा सकता है क्योंकि परमात्मा वर्णनातीत है।

अर्थ: सचल साहब अपने हृदय की बात प्रकट करते हुए कहते हैं कि मैंने अपने स्वरूप को ऐसे पहचाना, ऐसे पहचाना। जब मैंने अनेक तरह के दान आदि दिए, उपवास किए, फिर भी मुझे प्रियतम की जानकारी प्राप्त नहीं हुई मैंने नमाज़ पढ़े, रोजे रखे पर मुझे परमात्मा के विषय में थोड़ा सा भी ज्ञान प्राप्त न हुआ। मैंने सहस्त्रों कलामों का अध्ययन किया, किन्तु उन कलामों ने भी अपना कुछ प्रभाव नहीं दिखाया। सचल साहब कहते हैं कि मैं पहले मात्र जानता था, किन्तु अब मैंने पहचान लिया है कि तेरे सिवा मुझमें कोई दूसरा नहीं है, यह सारी सृष्टि एक हक़ (सत्य) से ही परिपूर्ण है, इस बात का मात्र अनुभव ही किया जा सकता है, वर्णन नहीं।

इहो ड्राहियूँ ड्रसु आहि, साँवल इते वसे थो।
फोले लहिजि पाण मूँ, परे न पेरा पाइ।
दाइम आहे दोस्त जी, तुंहिजे जीअ में जाइ।
कंहिजे कारण थी करीं हारी री हाय हाय।
सोई ड्रिसन्दड़, सोई सुणन्दड़, पाणहीं ग़ाल्हियूँ ग़ाइ।
सारा डून्गर ड्रोरईं, काकी री कंहिं लाइ।
सचू ओड्रो साह खूं, केरु चवे ता नाहि।

सचल साहब जीवात्मा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं: ऐ बुद्धिमता ! यही लक्षण सही है कि साँवल (परमात्मा) का वास यहीं (हृदय में) है अतः तू अपने भीतर ही उसे ढूंढ, दूर-दूर मत जा क्योंकि तेरे हृदय में ही परमात्मा का सदैव स्थिर वास है। ऐ मूर्खा; तू किस कारण हाय-हाय कर रही है। वास्तव में वही दर्शक है, वही श्रोता है और वही वक्ता है (क्योंकि देखने, सुनने और बोलने का कार्य आत्मा द्वारा ही संभव है।) अतएव तू क्यों पर्वतों पर उसे खोजने के लिए भटक रही है। सचू साहब कहते हैं कि परमात्मा तो हमें अपने प्राणों से भी ज़्यादा समीप है; कोई भला कैसे कह सकता है कि वह वहाँ नहीं है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उते कुफ़र न इस्लाम आहे सभिनी खे सलामु ।
कद्ग्हिं ड्रिए कीन की, इहो आरांभो आरामु ।
मज़हब मूर न मञियाँ, आऊं मशरब मन्झि मुदामु ।
कँदु भञी ज़ाहिरु थियाँ, आऊँ जारी पियाँ जामु ।
हादी साईंअ पाण सचूअ खे, इश्क़ु कयो इनामु ॥

सचल साहब आध्यात्मिक देश का वर्णन करते कहते हैं कि वहाँ कुफर और इस्लाम में कोई भेद नहीं है, वहाँ तो सबको ही सलाम रहता है क्योंकि वास्तव में यह द्वैत की आग कभी किसी को आराम नहीं लेने देती है। मैं मजहब को क़दापि नहीं मानता हूँ, बल्कि सदैव ही प्रेम की मधुशाला में मस्त रहता हूँ। मैं (माया का) बन्धन तोड़कर प्रकट हुआ हूँ और निरन्तर ही प्रेम का जाम भर-भर कर पीता हूँ क्योंकि मुझे हादी (सद्गुरु) ने स्वयं इश्क़ का पुरस्कार दिया है।

छा खे डून्गर ड्रोरियाँ, मन वसे यारु मुंहिजो ।
प्रीं आहे पाण साँ, तक ब्रिया छो तोरियाँ ।
रातों ड्रीहाँ रूह में, आरियाणी थी ओरियाँ ।
सभ कंहि पारीं पाड़े सुप्रियुनि, आऊँ घणोई घोरियाँ ।
होत हमेश हाज़िरी, विन्दुर कंहि लग्र वोड़ियाँ ।
सचू सची ग़ाल्हड़ी, चित इहाई चोरियाँ ॥

मैं क्यों व्यर्थ ही पर्वत ढूँढती फिरूँ, मेरा प्रियतम तो मेरे हृदय में ही निवास करता है। जब मेरा प्रियतम मेरे साथ है, तब मैं दूसरे रास्ते क्यों ताकती रहूँ। (कवि अज्ञानी जीवात्मा को संबोधित करते कहते हैं)—ऐ ग़ाफिला, मैं तो दिन रात अपने हृदय में प्रियतम को अपना हाल-चाल बताती रहती हूँ। मेरा प्रियतम सभी ओर है अतः मैं अपना सर्वस्व उस पर न्योछावर करती हूँ। मेरा भतार तो नित्य मेरे पास है, फिर मैं मन को बहलाने के लिए यहाँ वहाँ क्यों जाऊँ, सचू कहते हैं यही सच्ची बात (कि प्रियतम मेरे भीतर ही है, बाहर नहीं) मेरे चित में रहती है।

सचू नाँव थो सड्राई, चव त काथे तूं आहीं ।
ज्ञाणी वाणी पाणखे, कीअं थो भोल भुलाईं ।
ख़ूदीअ वारे ख़याल खे, राह इन्हींअ थो रुलाईं ।
पेर मथो आङिरियूँ नाँव बिया थो रखाईं ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

काथे पैदा न थिएं, काद्हूँ वरी तूँ आएँ।
नाँव इहो नापैद थियो जो, सूच असुल खाँ तू नाहीं॥

सचू अपने आपसे कहते हैं कि तू अपने को सचू (सत्य) के नाम से पुकारता तो है, पर बता कि तू कहाँ है ? तू जानबूझ कर अपने आपको भ्रम में क्यों भुला रहा है। तू अहं के वश होकर यहाँ वहाँ भटक रहा है। इस नश्वर सिर पैर वाले शरीर पर भिन्न-भिन्न नाम रख रहा है। वास्तव में तो तू पैदा ही नहीं हुआ है और न ही कहीं से आया है (क्योंकि माना जाता है कि आत्मा न कभी जन्मती है और न कहीं से आती है बल्कि सर्वत्र फैली हुई है।) सचू साहब कहते हैं कि तेरा नाम तो कभी पैदा ही नहीं हुआ है और तू भी आरम्भ से नहीं है तात्पर्य यह कि चोला सदैव ही बदलता रहता है और कोई भी शरीर आरम्भ से स्थिर नहीं है।

"इश्क़"

सचल साहब ईरान के कवि इतार की तरह इश्क़ के अवतार थे। उन्होंने इश्क़ को ही अपना मज़हब समझा। इश्क़ की स्तुति करते वे मस्ती में आ जाते थे। उनका कहना था कि परमात्मा ने इश्क़ का उपहार मात्र मनुष्य को ही दिया है और इश्क़ के द्वारा ही इन्सान हक़ (सत्य) से एक हो सकता है। किन्तु इश्क़ करना आसान नहीं है, सभी ऐरे ग़ैरे प्रेम नहीं कर सकते केवल वीर ही इस बोझ को सहन करने की क्षमता रखते हैं; तथा प्रेम के बन्धन को सहर्ष स्वीकार करते हैं, और इस रास्ते पर आये हुए दुःखों का सहर्ष सामना करते हैं।

एक दिन बज़ार में, मैं देखा अजब नज़ारा।
तिफ्लाँ के हाथ में, अरी बुलबुल हुवा बेचारा।
पर बाल रिश्तः सेती, उसने किया हुआ मुहकम।
थड़पन से ओई न छूटे, करता है लख पुकारा।
हम हाल उसका पूछा, कह बुलबुला हमन सूँ।
किस जाइ आ पड़ा है, छोड़ीअे चमन हज़ारा।
तिस हँस हमन से गोया, होया है तुझ खबर नहीं।
आशिक़ जो कोई हुवा है, जाने हाल ओई हमारा।
दम इश्क़ जिसने मारिया, उस ग़ल पड़ी है ग़ारी।
सर जान सदक सजन पर, सचू सरीर सारा॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रस्तुत उर्दू कविता में कवि सचलजी ने प्रेम के बन्धन का वर्णन किया है और बताया है कि इस बन्धन में बँध जाने पर, स्नेही दुःख में भी सुख का अनुभव करते हैं और तड़पने में ही उसे राहत मिलती है।

अर्थः एक दिन मैंने बाजार में एक आश्चर्यमय दृश्य देखाः एक बालक के हाथ में एक बुलबुल थी जिसे उसने (प्रेम रूपी) धागे से कसकर बाँध लिया था बिचारी बुलबुल तड़प रही थी और लाख पुकारें कर रही थी पर उस बन्धन से मुक्त नहीं हो पा रही थी। मैंने उस बुलबुल से जाकर उसका हाल-चाल पूछा और कहा कि हज़ारों चमन छोड़कर यहाँ कैसे आ पड़ी हो? यह सुनकर वह हँसकर मुझसे कहने लगी कि तुझे मेरे हाल का अहसास नहीं होगा, पर जो सच्चा आशिक है, वही मेरा हाल समझ सकता है। जिसने इश्क़ करने का दम भरा है, उसके गले में (प्रेम की) फाँसी पड़ी रहती है। सचू साहब कहते हैं कि मेरा तन, मन तथा सर्वस्व प्रियतम पर न्योछावर है।

बिरह जी बाज़ार, जेका ड्रिसण ईंदी।
जेका जो ड्रिसन्दी तिजिलो तुंहिंजो, रहन्दी मन्झि ख़ुमार।
सौदो जा कन्दी सिर जो, विहन्दी सा कीन क़रार।
जे कंहिं चिमको ड्रिठो तुंहिंजो, सा सिर ड्रीन्दी सरदार।
सचू इन्हीअ सीर में, आहे कुसण जी कार॥

सचल साहब प्रेम की आग का वर्णन करते कहते हैं कि जो (जीवात्मा) प्रेम का बाज़ार देखने आयेगी, वह उसका तेज देखकर मस्ती में मस्त हो जायेगी। जो सिर का सौदा करती है वह आराम से नहीं बैठ सकती। ऐ प्रियतम, जिसने तेरी चमक देखी है, वह अपना सिर तक दे देगी। सचू साहब कहते हैं कि इस (प्रेम के) रास्ते में अपने को कत्ल ही कर देना है।

ड्रिसो इश्क़ जो इन्साफ़, सभेई मज़हब कयाईं माफ़ु।
मके वञणु मक़सदु केहो, करि अन्दरि तनु तवाफ़ु।
वादीअ में वहदत जे, जुड़ी लाम काफ़ु।
'इलान्सान सिरी वअना सिरहु' ग़ाज़नि आहे ग़लाफ़ु।
जोई मज़हब इश्क़ जो, सोई आहे साफ़ु।
सचू इन्हीअ ग़ाल्हि में ख़सु न आहे ख़िलाफ़ु॥

(सचल साहब इश्क़ को ही सच्चा मज़हब मानकर कहते हैं) कि इश्क का इन्साफ तो देखो, कि उसने सभी मज़हबों को माफ कर दिया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है अर्थात् सच्चा इश्क़ मज़हबी भेद नहीं मानता है। (ऐ मानव) मक्के में जाने से क्या प्रयोजन ? अपने हृदय के भीतर ही परिक्रमा कर (क्योंकि परमात्मा का निवास वास्तव में वहीं है।) तू उस एक परमात्मा में अपना अस्तित्व जोड़कर एक हो जा। "इन्सान मेरा (ख़ुदा का) रहस्य है और मैं इन्सान का रहस्य हूँ," यही सच्चे वीरों का पहनावा है (अर्थात् ज्ञानी अपने को परमात्मा से अलग नहीं मानते हैं।) सचू साहब कहते हैं कि इस बात में रत्ती मात्र भी विरोध नहीं है कि प्रेम का मज़हब ही हर तरह से साफ और पवित्र है।

आशिक मरन्दा कीन की, रहन्दा कीन मकान में।
दीवाने दरियाह जो, पीतऊँ प्यालो पुर करे।
अजर मन्झि अमरु थिया, उहे गद्रिया कीन जहान में।
ग़ैब में जे ग़र्क़ु थिया, तिनि घाव गर्दन में लग्रा।
ब्रोली ब्रोलनि था ब्री न का, उहे रहनि अलामान में।
केई पढ़न्दे साल थिया, रोज़ा नमाज़ूँ नफल नी।
तन कुठन कल कानका, बात्रन जे बयान में।
चीन विलायत घर करे, घिड़ी घारिनि कीनकी।
पसन हादी हक़ खे, रहन था बयाबान में।
हर्दम आहें दमु दोस्त ड्रे, उहे सुन्हनि थासर अन्ज़ाम में।
सचूअ खे सोई मिलियो, ही गुर अची त ज्ञान में।।

(प्रेमियों की विशेषताएँ बताते हुए सचल साहब कहते हैं) आशिक़ कभी नहीं मरते और न ही वे इस (संसार रूपी) मकान में ही रहते हैं। वे (प्रेमरूपी) मस्त समुद्र से (प्रेम का) प्याला लबालब भर कर पीते हैं। वे संसार में लीन न होकर अजर-अमर हो जाते हैं। रहस्यमय प्रेम समुद्र में डूब जाने से, उनके गर्दन पर घाव लगे रहते हैं, फिर भी वे (प्रेम के सिवा) दूसरी कोई बोली नहीं बोलते हैं और अपने स्वरूप में ही लीन रहते हैं। उन्हें अपनी ही इच्छा से रोज़ा रखते और नमाज़ पढ़ते हुए अनेक वर्ष हो गए हैं। वे प्रेम के मारे हैं और उन्हें अपनी कोई सुधि नहीं रहती, वे अपने आप में ही खोए रहते हैं। वे संसार में अपना घर बनाकर नहीं रहते बल्कि मरु भूमि (एकान्त में) रहकर हक (सत्य-परमात्मा) को निहारते रहते हैं। उनके प्राण सदैव ही प्रियतम से जुड़े रहते हैं और वे अपने को प्रेम पर न्योछावर करते हैं। सचू साहब कहते हैं कि मुझे भी प्रेम-ज्ञान का यह रहस्य प्राप्त हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कियड़ो मस्त प्रियनि, जे खणी नाज़ मूँखे ।
विसिरियो रोज़ो नाहे, याद नमाज़ मूँखे ।
शौक़ शराब पियाँ, पिड़ वटि रातो द्रीहाँ ।
कोन्हे वरी काज़ी मुल्लाँ, जो को लिहाज़ मूँखे ।
नेणे निन्डड़ी हराम, आहे वत रोज़ अज़ल ।
सुरन्दो सोज़ सज़णु, जो आहे साज़ मूँखे ।
वाई वात कुहाई, मुईअ खे जेका प्रियीं ।
अचे वरी हू-हू प्रियनु, जो थो आवाज़ मूँखे ।
सचल मक़सदु सारो, तूंहीं वतु तूंहीं अल्लाह
द्रस को राजु, पंहिजे, जो को न्याज मूँखे ।।

सचल साहब कहते हैं कि प्रियतम के नाज-नखरों ने मुझे मस्त बना दिया है अतः मैं रोज़ा रखना भूल गया हूँ तथा नमाज़ की मुझे याद तक नहीं रहती । मैं तो चौराहे पर खड़ा होकर प्रेम रूपी शराब दिन-रात पी रहा हूँ; मैं अब किसी काज़ी और मुल्ला का भी लिहाज़ नहीं करता हूँ । मेरी आँखों की नींद अब हराम हो गई है तथा प्रियतम का सोज़ (दुःख) से भरा हुआ बाजा ही मेरे लिए साज़ (वाद्ययन्त्र) बन गया है (तात्पर्य यह कि प्रियतम के विरह से उत्पन्न दुःख में भी मुझे आनन्द आ रहा है ।) मुझ ग़ाफिला से प्रियतम ने जो कुछ कहा है, उसी की प्रतिध्वनि ही मुझे सुनाई दे रही है । सचल परमात्मा से प्रार्थना करते कहते हैं ऐ अल्लाह ! तू ही मेरी शक्ति हो, तू ही मेरे जीवन का लक्ष्य हो, मुझे अपने रहस्य बताने की कृपा करो ।

मुहबत जी मै मारियो मूँखे, काकियूँ कंहि साँ विरह विराहियाँ ।
अक़ुलु इल्मु सभु छोड़ द्रिनासी, इश्क़ द्रिनो ओलारो ।
अखियाँ खोलु त ज़ाहिर द्रेखीं, सीर सज़ण जो सारो ।
पुर्झी पेरु ऐद्राहीं पायो, होतु अथव हाकारो ।
मुहबत मूँ मन्सूर विझायो, ग़िचीअ जे विचु ग़ारो ।
सन्भरु सचेद्रिना छोड़ सांबाहा, विरह कयो जान वारो ।।

ऐ सखियों ! मुझे प्रेम की शराब ने तो मार ही दिया है । मैं किससे अपने विरह का दुःख बाँटू । जब से इश्क ने हम पर वार किया है तब से इक्ल और इल्म (बुद्धि और शिक्षा) ही छूट गया है । (ऐ सखियों) ज़रा आँखे खोलकर देखो तो तुम्हें प्रियतम का पूर्ण दृश्य दिखाई देगा । मेरे प्रियतम बड़े ही प्रसिद्ध हैं, अतः सोच समझकर उसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रेम में ही पैर रखना (तात्पर्य यह कि मात्र परमात्मा से ही प्रेम करना।) इस प्रेम ने ही मन्सूर के गले में फाँसी का फँदा लगाया था। सचल साहब जीवात्माओं को सावधान करते कहते हैं कि अब मिलन की तैयारियाँ करना छोड़ दो क्योंकि विरह ने ही हमें जानवाला बना दिया है दूसरे शब्दों में कवि प्रेम में मिलन से ज़्यादा विरह को ही महत्त्व देते हैं।

चुको इन्हीअ चाश जो, चखी थिया चरिया।
चरियो-खरियो लोकु चवे, आहिनि कीन चरिया।
भाग़ी से भरिया, सचा सिक वारा थिया।।

सचू कहते हैं कि जो (प्रेमरूपी) चाश को चख लेते हैं, वे मस्त हो जाते हैं। संसार उन्हें पागल और दीवाने कहता हैं पर वास्तव में वे पागल और दीवाने नहीं बल्कि भाग्यशाली हैं क्योंकि वे सच्चे प्रेमी बन जाते हैं।

दिल दिलीर करे अचु आशिक़, सुस्त यकीन न थीउ तूं।
टोड़े शक गुमान सभेई, प्रेमी प्यालो पीउ तूं।
मूतू क़बल अन्त मूतू, सचू जीवण में मर जीउ तूं।

ऐ प्रेमी, तू अपना हृदय मज़बूत कर (प्रेम के रास्ते) में प्रवेश कर। तू सुस्त मत बन बल्कि अपनी निष्ठा पर अटल रह और समस्त भ्रम-भुलावा तोड़कर, प्रेम-प्याले का पान कर। तू जीवित ही इस संसार को त्याग दे तथा सांसारिक सभी वस्तुओं से अपने को अलग रख, जिससे ऐसा प्रतीत हो मानों तू इस संसार से जिन्दा ही मरकर निकला है।

दमु नफ्सक जी सचल सची, राह न ज्ञाणनि मूढ़ा।
हस्ती वारा कोट बणाइनि, कन्गुरा रखनि कूड़ा।
सचा राह उहे ही लहन्दा, ग़ाल्हींइदा जे गूढ़ा।।

सचल साहब कहते हैं कि मूढ़, मन को सच्चे ढंग से नियन्त्रित करने का सही रास्ता जानते नहीं हैं, अतएव वे बड़े-बड़े महल बनाते हैं (प्रयत्न करते हैं) पर उस महल के सब कंगूरे झूठे ही होते हैं। (तात्पर्य यह कि वे परमात्मा को पाने का सही मार्ग नहीं जानते हैं और झूठे रास्ते ही अपनाते रहते हैं।) (परमात्मा को पाने का) सच्चा मार्ग वे लोग ही ढूंढ पायेंगे, जो गम्भीरता से ज्ञान-भरी बातें करेंगे।

देवी रखी दिलि में, जंहि मनु कयो मन्दिरु।
अन्दरई अन्दर, सचू पुज़ारी सो पुरि थियो।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सचू कहते हैं जिसने अपने मन को ही मन्दिर बनाकर उसमें परमात्मा की स्थापना की है, वह सच्चा पुजारी भीतर ही भीतर ज्ञान से परिपूर्ण होता जाता है।

रे सिक साहबड़िनो चवे, तोरे कोड़ें पढ़ीं किताबु।
भज़ी ग़ैर गुनाह खूं, सवें करीं सवाबु।
सुणी दहशत दोज़ख जी, अखियों भरे आबु।
अथेई सभु हिजाबु, रे सिक साहबड़िनो चवे॥

सचल जी कहते हैं कि बिना स्नेह के चाहे तू करोड़ों पुस्तकें पढ़ ले, पाप से दूर भागकर चाहे अनेक पुण्य के काम कर दे, नरक के भयानक दुःखों को सुनकर, चाहे तू आँखों से आँसू बहा दे किन्तु प्रेम के सिवा यह सब मात्र दिखावा ही है।

इश्क़ु इहो आईअ खाँ, सिखियो सामीअड़नि।
आशिक़ मथाँ आग जे ओलारा ड्रियनि।
भन्भर बाहि इश्क़ में, सम्पूरनि सड़नि।
अचियो पवनि आड़ाह में, सिर जो साँग न कनि।
लाइक़ लालु थियनु, सचल खामी, लहसी लूसिजी॥

सच्चे फकीरों ने प्रेम का रहस्य भट्ठी से ही सीखा है (जिस प्रकार भट्ठी की आग भीतर ही भीतर जलती रहती है) उसी प्रकार सच्चे आशिक़ भीतर ही भीतर प्रेमाग्नि में जलते रहते हैं (मुख से उफ् तक नहीं करते) वे अपनी जान की परवाह न कर इस प्रेमाग्नि में कूद पड़ते हैं और उसमें सम्पूर्ण जल जाते हैं। सचल साहब फर्माते हैं कि ऐसे ही लाल (आशिक) जलकर, भुनकर और दग्ध होकर (परमात्मा को पाने के) योग्य बनते हैं।

इश्क़ जनी साँ ग़मज़ो लातो, इल्मु न से ब्रियो पढ़ंदा।
मन्झि कुफ़र इस्लामु मज़ाहिब, आशिक़ मूर न अड़न्दा।
मारे नारो हक़ जो सचा, सूली सिरड़ा धरंदा॥

जो प्रेम के नाज़-नखरों के चक्कर में पड़ गए हैं, वे कदापि दूसरी विद्या व कला का अध्ययन नहीं करेंगे। सचल जी कहते हैं कि सच्चे स्नेही, कुफर, इस्लाम तथा अन्य मजहबों में कभी भी नहीं उलझते हैं बल्कि सत्य का नारा लगाकर शूली पर चढ़ जाते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मचु मचायो मन में ब्राफ न ब्रहरि विझनि ।
वतनु वेग्राणा विरह में, नेणें निन्ड न कनि ।
सुद्रिका सेई सोज़ जा, भिनीअ रातु भरनि ।
पंहिंजे पिर में पाण खे, था पिरतियों पर्चाईनि ।
सिखियो सामीअड़नि, सचल इश्क़ु इहो सभु आईअ खाँ ।।

सच्चे प्रेमी हृदय में प्रेम की आग जलाकर उसकी भाप तक बाहर नहीं आने देते हैं (अर्थात् प्रेम को अपने हृदय में ही छिपाकर रखते हैं।) वे विरह में व्याकुल होकर, यहाँ वहाँ भटकते रहते हैं तथा उनकी आँखों में नींद तक नहीं रहती है। वे आधी रात को विरह से व्याकुल होकर, दुःख भरी आहें भरते हैं और खुद ही अपने आपको सान्त्वना देते रहते हैं। सचल साहब कहते हैं कि इन प्रेमियों ने ऐसा प्रेम भट्ठी से ही सीखा है (क्योंकि भट्ठी की आग भी भीतर होती है, बाहर बिल्कुल दिखाई नहीं देती है।)

मुल्ला जे मुहबत जी, वटी हिक पीएँ ।
छद्रे मक्तब मारिका, हून्दि सूरीअ सिरु द्रिएं ।
कीअं थो हितु जिएं, रे सिक साहबद्रिनों चवे ।

ऐ मौलवी, यदि तू प्रेम की एक प्याली पिएगा, तो फिर तू सब तरह के मक्तब और मार्के छोड़कर शूली पर सिर देने के लिए भी तैयार हो जाएगा। साहबदिनों कहते हैं, कि बिना स्नेह के तू (मौलवी) किस तरह जी रहा है ?

मौतु त माणहूनि खे, आहि आशिक़नि वद्री ईद ।
पी प्यालो प्रीति जो, थिया शौक़ वद्रे शोरीद ।
तोरे थियनु शहीद, साहबद्रिनो त बि पुछनि वाट वसाल जी ।।

साधारण मनुष्यों के लिए जो मौत है, वह प्रेमियों के लिए ईद है (तात्पर्य यह कि जिन मुसीबतों से साधारण लोग डरते हैं, उन्हीं मुसीबतों में प्रेमियों को आनन्द मिलता है।) वे बड़े शौक से प्रेम का प्याला पीकर मस्त हो जाते हैं। यद्यपि (प्रेम में) उन्हें शहीद भी होना पड़ता है, फिर भी वे प्रेम का ही रास्ता पूछते रहते हैं।

प्रार्थना

सचल साहब विनय तथा नम्रता की मूर्ति थे। वे जानते थे कि परमात्मा की दरबार में अभिमान एवं घमण्ड की भावना से प्रवेश नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिलता है, अतः वे परमात्मा से अनुनय-विनय करते हैं। अपने दोषों का बखान कर, परमात्मा की अनुकम्पा की याचना करते हैं।

आऊँ ब्रान्हनि जी ब्रान्ही, आहियाँ ऐबदार सज्रण।
उमर सज्रियाई कूड़ कमायमि, बख़्श मूँखे इहो जानी।
रोज़ अज़ल खूँ अब्द ताईं, आहि ग्रिचीअ मंझि ग्रानी।
द्रोह द्रिन्गायूं द्रिसु न मुन्हिजियूँ, मुहब करी महरबानी।
कीअं सचूअ जे दिल साँ दिलबर, दोस्त कयव दीवानी॥

(जीवात्मा परमात्मा प्रियतम से कहती है) ऐ प्रियतम, मैं आपके सेवकों की भी दासी हूँ एवं दोषों से परिपूर्ण हूँ। ऐ प्राणाधार, मैंने जीवनपर्यन्त झूठ और कपट की ही कमाई की है, पर अब मेरे उन दोषों को क्षमा कर दे। आदि काल से अनन्त काल तक मेरे गले में (जन्म-मरण की) फाँसी पड़ी हुई है। मेरे दोषों और बुराइयों को न देखकर मुझ पर अपनी कृपा और प्रेम कर। सचू कहते हैं ऐ प्रियतम, आपने मुझ जैसे मूर्ख से कैसे प्रेम किया है ?

तुंहिजी आहियाँ आऊँ, पंहिजी करे ज्राणु।
जाद्रे ताद्रे तूं ही दिलबर, काद्रे काहियाँ आऊँ,
हून्दियसु आव्हाँ साणु।
आऊं कनींज़ क तूं ता साईं, सङु न साहियाँ आऊँ
चेटक कयसु अज्राणु।
सिकनि केई तो लइ साँवल, हिक ता छाहियाँ आऊँ
सदिके कयमु पाण
तो हौं ब्राहरि सुन सचू रे, को दम नाहियाँ आऊँ,
मुंहिजो झलिज ब्राणु।

(जीवात्मा परमात्मा से विनती करती हुई कहती है) हे प्रभो, मैं तेरी हूँ, अतः तू मुझे अपना ही समझ। ऐ प्राणाधार, तू तो सर्वत्र हो, फिर मैं कहाँ-कहाँ दौड़ूँ, मैं सदैव तेरे ही साथ हूँ। मैं दासी हूँ, आप मालिक हो, पर मैं अपना नाता नहीं निभा पाती हूँ क्योंकि (माया रूपी) जादू ने मुझे अनजान और अज्ञानी बना दिया है। ऐ साँवल, एक मैं ही नहीं बल्कि अनेक (जीवात्माएँ-) आपके लिए तड़पती रहती हैं; अब तो मैंने अपने को आप पर न्योछावर कर दिया है। सचू कहते हैं, आपके सिवा मेरा हृदय सूना सा लगता है क्योंकि आपके सिवा मेरा कोई अस्तित्व नहीं है अतएव आप मेरी रक्षा करें।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तूँ त पाणहीं थो साईं ॼाणीं, केहो हाल चवाँ तोखे हाणे ।
दिल दीवानी कई असाँजी, मुहब अव्हाँजी माणे ।
ॾोहनि ॾे ॾिसु कीन असाँजे, साईं तूं पाण सुञाणे ।
दर्द मन्दीअ जी दिल तोई साँ, अखिनि अड़ाई आणे ।
कॾहिं असाँ वटु ईन्दें दिलबरु, वेठी विझाँ वेञाणे ।
सुवाल सचूअ जो आहे इहोई, तुंहिजो इश्कु न शाल उकाणे ।।

ऐ मालिक, आप मेरा हाल जानते ही हैं, अतः मैं अपने हाल का क्या बखान करूँ । आपकी दया व अनुकम्पा का आनन्द लूट कर मेरा हृदय दीवाना हो गया है । ऐ प्रभो अपने (विरद को) पहचानकर, मेरे दोषों की ओर मत देखिए । इस दर्द की मारी ने आपसे ही आँखें लड़ाई हैं (प्रेम किया है ।) ऐ प्राणाधार, मैं आपका ही रास्ता देखती रहती हूं, आप कब यहाँ आयेंगे ? सचू की मात्र यही याचना है कि आपके प्रति उसका प्रेम कभी भी समाप्त न हो अर्थात् आपके प्रति प्रेम सदैव ही बना रहे ।

१ तोखे जानी न जुग़ाए थो, रुसणु निमाणनि साँ ।
जेही तेही ताँहिंजी, आऊँ असुलु खों आहियाँ ।
अव्हाँजे ता अचण जो आसिरो हद्रि न लाहियाँ ।
सिर ते सोज़ फराक़ जा, ही मीन्हड़ा वसाए थो ।।
२ परे करि न पाण खूँ, ॾे दिलबर दिलासो ।
तो रीअ सुझे को न को, मूखे प्रीं ॿियो पासो ।
जेहो तेहो असुल खूं, ही सन्दवे सद्राए थो ।
३ सुखनि मथे दुखड़ा, थी मुहब मटायाँ ।
ग़मु खुशीअ खों अग़िरो, आऊँ भलेरो भायाँ ।
मुँहू मुक़ाबल ताँहिजे, इहो गून्दरि गद्राए थो ।।
४ अङण निमाणी जे तूँ अचिजु अल्लाह काण ।
हेकर होत करीज तूँ यार भेरो मुंहिजो भाण ।
सोज़ तंहिजो सुप्रीं, हितु साँवल सिझाए थो ।।
५ वठी वेठी आहे, इहो वादो वेचारी ।
ग़िचीअ पाए कपड़ो, हीअ करे थी ज़ारी ।
सचू सगि अव्हाँजो, हित पाँधी पुछाए थो ।।

ऐ प्राणाधार, तुझे मुझ गरीब से रूठना नहीं सुहाता । मैं जैसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हूं, वैसी सदैव से आपकी ही हूँ। आपके आने की आशा मैं कभी भी नहीं छोड़ती हूँ; और विरह के दुःख से मैं आँसू बहाती रहती हूँ।

ऐ दिलदार, मुझे अपने से दूर मत कीजिए तथा मुझे सहारा दीजिए क्योंकि मुझे आपके सिवा कुछ भी नहीं सुझाई देता है। मैं जैसी हूँ, वैसी सदैव ही आपकी कहलाती हूँ।

प्रेम के कारण मैं सुखों के बदले दुःख ले रही हूँ। मैं दुःखों को सुखों से ज़्यादा हितकारी मानती हूँ क्योंकि दुःख और ग़म ही मुझे आपसे मिलाते हैं।

ऐ भतार, परमात्मा के लिए इस याचिका के आँगन में आना। एक बार अवश्य ही मेरे पास आना क्योंकि आपके विरह का दुःख मुझे बुरी तरह से जला रहा है।

यह बिचारी (जीवात्मा) तेरे वादे को लिए गले में कपड़ा डालकर बैठी है और विनय कर रही है; कि सचू आपका ही कुत्ता है, जो आपके दूतों (ज्ञानी पुरुषों) से आपके विषय में ही पूछता रहता है।

पाए ॾोह पंहिंजे पान्द में, आऊँ दोस्त तो दरि आइयाँ।
रातो ॾीहां पंहिंजे रूह में तुंहिंजा सवें ग़ुण ग़ाइयाँ।
ॾोठ ॾोरापो बुधी, आऊं पलो तोखे पाइयाँ।
ज़ारियूँ ज़ैफीअ मूँ करे, प्रीं तोखे परिचाइयाँ।
जा तो पणी पीज़ार जी, साखहि लिङनि खे लाहियाँ।
सभि ग़ाल्हि पंहिंजें सिर जी, तोखे सचू समझाइयाँ॥

ऐ प्रियतम, मैं अपने दोषों को आँचल में डालकर तेरे द्वार पर आई हूं। मैं दिन-रात अपने हृदय में तेरे सहस्र गुणों का गान करती रहती हूं। लोगों के ताने सुनकर, मैं तेरे आगे अपना आँचल फैलाती हूं। ऐ परमात्मा, अपनी कमज़ोरियों के कारण रो-रो कर अब मैं तुझे रिझाती हूं। तेरे पैरों की जूती की मिट्टी मैं अब अपने शरीर पर लगाऊंगी। सचू कहते हैं कि मैं अपनी समस्त बातें अब तुझे ही समझाऊँगा।

दिल जूँ ग़ाल्हियूँ, आऊँ ता तोसाँ ओरियाँ।
गुझियूँ ग़ाल्हियूँ करियाँ किनि साँ, तक वेठी थी तोरियाँ।
सग़ो तुंहिंजीअ सिक जो, साहु अन्दरि थी सोरियाँ।
सिक अव्हाँ जी सिर ते, ॾेहु सारोई ॾोरियाँ।
रातो ॾीहां काणि अव्हांजे, चित्त में चर्खो चोरियाँ।
अङण सचूअ जे आउ तूँ प्यारा, पाण घणोई घोरियाँ॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हे प्रियतम, मैं अपने मन की बातें तुझ से ही करूँगा; भला, गूढ़ व रहस्य भरी बातें मैं (तेरे सिवा और) किससे करूँ, इसलिए मैं तेरा ही इन्तज़ार कर रहा हूं तेरे प्रेम का धागा मैं अपने प्राणों में संजोकर बैठा हूं। इस स्नेह में बेचैन होकर, मैं तुझे पूरे संसार में ढूंढ़ रहा हूँ। मैं दिन-रात अपने चित्त में तेरी चर्चा का चर्खा चलाता हूँ। सचू कहते हैं; ऐ प्यारे, यदि तू मेरे आँगन में आएगा तो मैं अपने आपको तुझ पर न्यौछावर कर दूंगा।

देसु छद्दे परदेसु वियो, हाणे होतु मूँखे हीअं मारे।
उन्हनि ब्राझूँ सरितियूँ, ही गून्दर द्रीन्ह गुज़ारे।
रातो द्रींहां रूहे मुन्हिंजो, साथ धणिनि खे सारे।
दुआ करीजो ज़ेद्रियूँ, शाल विहन्मि कीन विसारे।
सारियो सूरत सज्ञणनि, ही ग़ाल्हि असाँ खे ग़ारे।
वियो वेसाही निकिरी, चार घड़ियूँ पँज घारे।
राहाँ अचणु उन जूँ, सचू नितु निहारे॥

पुन्हू (परमात्मा) के विरह में व्याकुल होकर ससुईरूपी जीवात्मा कहती है) मेरा भतार, अपना देश छोड़कर, मुझे बेचैन बनाकर, परदेश चला गया है। ऐ मेरी हमवयस्क सखियों, उनके किये हुए उपकारों की याद कर मैं दुखिया दुःख के दिन बिता रही हूँ। मेरे प्राण दिन-रात प्रियतम के साथ बिताए हुए समय को याद कर रहे हैं। ऐ सखियों, मेरे लिए यही दुआ माँगों ताकि वह मुझे भूलाकर न बैठ जाए। प्रियतम की सूरत को याद कर, मैं (दुःख में) गलती जा रही हूँ। जिस प्रियतम पर मैंने विश्वास किया था, वही चार पाँच घड़ियाँ मेरे साथ बिताकर चला गया। सचू कहते हैं कि मैं सदैव ही उनके आने की प्रतीक्षा किया करता हूँ।

सारियो द्रींह रूआँ रे, हुयसि जेके होत पुन्हूंअ सां।
ब्रुधण वारो नाहि को, जंहि खे हालु चवाँ रे।
क़ासुदि अचे को ओद्रहूँ, पेरें तंहि पवाँ रे।
दुखायो ना द्रील खे, अदियूँ अज़ु अव्हाँ रे।
उन्हनि ब्राझूँ सरितियूँ, नितु नितु सूर नवाँ रे।
मारियो महबूबन जे, तलबु नाहि तव्हाँ रे।
ग़र्ज़ न रखाँ लोक जो, हिकु साईं हुवनि सँवाँ रे।
सचू ब्राझूँ सोज़ जे, बियूँ लातियूँ कीन लन्वाँ रे॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(ससुईरूपी जीवात्मा विरह में व्याकुल होकर कहती है) जो दिन, मैंने अपने पुन्हू-प्रियतम के साथ बिताए उन दिनों की याद कर मैं रोती रहती हूँ। मेरी बात सुनने वाला कोई नहीं, जिससे मैं अपनी दशा का बखान करूँ। यदि प्रियतम का कोई संदेशवाहक ही मेरे पास आए, तो मैं उसके चरण स्पर्श करूँ। ऐ सखियो (मेरा मज़ाक कर) मेरा मन मत दुखाओ; क्योंकि मैं पहले ही उनकी कृपादृष्टि की याद कर सदैव ही नए नए दु:ख सहन करती रहती हूँ। तुम लोगों को तो प्रियतम के प्रेम ने घायल किया ही नहीं है (अतएव तुम लोग मेरा दर्द क्या जानो।) यदि मेरे प्रियतम मेरे साथ सीधा व्यवहार करते, तो मैं संसार की परवाह तक न करती।

सचू कहते हैं कि मैं व्याकुल होकर भी प्रियतम की अनुकम्पा के बखान के सिवा दूसरी बातें नहीं करता।

कड़हिं क़ासुद वरी वींदें, देस ब्रारोचल जे मियाँ।
ख़बर खुशीअ जी वठी उताहूँ, सिधो असाँ द्रे की ईंदें।
दर्द मन्दीअ जे दिल खे हाणे द्राहा दिलासो द्रीन्दें।
सुप्रियुनि जे ग़ाल्हि गुझीअ जो वञी सो वाक़ुफ थींदें।
सोज़ु फ़राक़ु जो यार सचूअ जो, तूँ ही नियापो नींदें।।

(ससुईरूपी जीवात्मा प्रियतम के दूत को सम्बोधित करते हुए पूछती है) ऐ संदेशवाहक; तू बारोचल पुन्हू (परमात्मा) के देश से फिर कब वापस आओगे? कब वहाँ का सुखदायी-संदेश लेकर शीघ्र ही हमारे पास आओगे? ऐ भद्र पुरुष कब मुझ दर्द की मारी को आकर सान्त्वना दोगे तथा प्रियतम की गूढ़ रहस्यमयी बातों से भी अभिज्ञत होगे? सचू कहते हैं कब मेरे विरह से दु:खी मन का संदेश प्रियतम तक ले जाओगे?

मूँखे तुंहिन्जड़ो आहि, अचण जो वड्रो आसिरो।
जोड़े छड्रियुम जायूँ, लिवं लिवं में तो लाइ।
कीन जुड़े ब्रियो जीअ में, तुंहिजी सिक सिवाइ।
कड्रहिं कड्रहिं थो ड्रिसाँ, तोखे जाइ बजाइ।
हिति गुज़ारे ड्रीन्हड़ा, सचू तुंहिजे साइ।।

ऐ प्रियतम, मुझे तेरे आने का पूर्ण विश्वास है यही कारण है कि मैंने अपने रोम-रोम में तेरे रहने की जगह बना ली है। मेरे हृदय में तेरे स्नेह के सिवा कुछ भी नहीं है। कभी-कभी तो मैं तुम्हें सर्वत्र देखता हूँ। सचू कहते हैं कि मैं यहाँ तेरी याद का सहारा लेकर अपने दिन काट रहा हूँ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हाणे मुंखे प्रियुनि पोइ, जेद्रियूँ जियणु जँजालु थियो।
वेठी वाटेड़ियुनि ते हीअ, रातो द्रीन्हाँ रोए।
विहणु हिन जो विहि थियो, हू सद्रे वियड़ा लोए।
दर्दमन्दी दान्हूँ करे, आहि होतनु रीअ होए होए।
काकियों मूँद्रे केच खूँ, शाल क़ासुदि अचे कोए।
सचू कन्दे साल थिया, वरेतियों वोए वोए।

ऐ मेरी हमवयस्काओं; प्रियतम के चले जाने के बाद, मेरा जीना ही जंजाल हो गया है। मैं दिन-रात उनके रास्ते पर बैठकर रोती रहती हूं। जब से प्रियतम देश छोड़कर चले गए हैं, तब से, मेरा उठना-बैठना ही ज़हर हो गया है। मैं दर्द की मारी प्रियतम के विरह में हाय-हाय कर रही हूं। ऐ सखियों; काश केच (पुन्हू का निवास स्थान) से कोई सन्देशवाहक मेरे पास आए। सचू कहते हैं, ऐ सौभाग्यशाली सखियों, प्रियतम की प्रतीक्षा करते करते मुझे वर्ष बीत गए हैं।

हींअ ता खबर कंहि साँ करियाँ, ही ही नी हैड़े हाल जी।
आहे मिड़ियाई महबूब खे, आगह मुँहिजे अहवाल जी।
मारियोमि फलक फ़ाक़ जे, कंहि दरि द्रियाँ हीअ दान्हड़ी।
तालिब आहियाँ दीदार जो, नाहे तमै मिल्क़ ऐं मालजी।
आम इहे नितु था करीनि, ताना मथे मूँ तुहिमताँ।
आहे न ब्री कंहि खलिक़ खे, ख़ासी ख़बर हिन ख़्याल जी।
आखिर ख़िजल से ख़र थींदा, द्रिसी युगानाई यार जी।
हिन तौं हिजर मुआफी कन्दा, वाई थींदी वसाल जी।
जेके ब्रियाईअ में ब्रुद्रा, रहन्दी न नीशानी तिन्हीं।
साहब मदद सिघड़ी कन्दा, सचूअ सन्देबि सुवाल जी॥

ऐ सखी, मैं अपने दुःख की चर्चा किससे करूं? क्योंकि मेरे प्रियतम तो मेरे दुःखी हालत से भली-भाँति परिचित हैं। मुझे विरह के दुःख ने मार दिया है, किन्तु यह शिकायत मैं किसके द्वार पर जाकर करूं। मैं तो उनके दीदार की इच्छुक हूँ, मुझे धन-धाम की बिल्कुल तमन्ना नहीं है।

साधारण लोग सदैव ही मुझ पर ताने कसते रहते हैं तथा आरोप लगाते रहते हैं, उन्हें मेरी भावनाओं की कोई चिन्ता और फिक्र नहीं है।

मेरी युगों की मित्रता देखकर आखिर ये गधे (अज्ञानी या मूर्ख जीव) लज्जित होंगे क्योंकि प्रियतम मेरे सभी अपराध क्षमा कर देंगे और मेरे मिलन की चर्चा ही होती रहेगी। जो (अज्ञानी) द्वैत में डूबे हुए हैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनका कोई चिह्न तक न रहेगा। सचू कहते हैं कि मेरी याचना को पूर्ण करने के लिए अवश्य ही मेरे मालिक मेरी पूरी तरह से सहायता करेंगे।

यार पुन्हू करि पंहिजे हवाले, हीअं न घुरिजे यार जुदाई।
आहियाँ इयाणी ऐबनु हाणी, दोस्त वठी वञु नाल निमाणी।
साहु सिके थो तो लाइ सदाई, अव्वलु मूंसीं नींहड़ो लायै।
गोलीअ सीं पंहिजो पाण गद्रायै, पोइ न जुगाए बेपरवाही।
तोरे लाइक़ु तुंहिंजे नाहियाँ, ता भी ओड़क तुंहिंजी आहियां।
केचनु अग्रियाँ कन्दियसु कमाई, रोजु अव्हाँ जी
राह निहारियाँ।
हर हर आबु हन्जूँ थी हारियाँ।
होत अचण जी करि का वाई, कोड़ें तो लाइ काँग उड्रायाँ।
पलु पलु पोथीदार पुछायाँ, ड्रियनु ड्रिहाड़ी वसुल वधाई।
जंहिं ड्रीन्हु जानी मूँ वटु ईंदें, 'साहबड्रिनो' करे सड्रीन्दें।
तंहिं ड्रीन्हु थीन्दुस जानि फिदाइ॥

(ससुईरूपी जीवात्मा प्रार्थना करती हुई कहती है—) ऐ पुन्हू ! मुझे अपनी शरण में ले। मुझे इस तरह की जुदाई देना, तुझे उचित नहीं है। मैं बुद्धिहीन हूँ, मूर्ख हूँ तथा दोषों से भरी हुई हूँ, फिर भी तू (अपना विरद देखकर) मुझे अपने साथ ले चल क्योंकि मेरे प्राण तेरे लिए तड़प रहे हैं।

तू ने प्रथम मुझसे प्रीति की, मुझ दासी को अपना बनाया, फिर (मेरे प्रति) तेरी यह लापरवाही उचित नहीं है।

मैं यद्यपि तेरे योग्य नहीं हूँ, फिर भी मैं अन्त तक तेरी ही दासी रहूँगी तथा केचियों (केच के रहनेवाले पुन्हू के सम्बन्धी) के लिए हर तरह की सेवा करूंगी।

ऐ प्रियतम; मैं रोज तेरी ही राह देखती हूँ; और आँखों से निरन्तर आँसू बहाती रहती हूँ, अतः अब तो आने की कुछ चर्चा कर।

मैंने तेरे लिए करोड़ों कौए उड़ाए हैं तथा पल-पल पंडितों से पूछ-ताछ कर रही हूँ, वे रोज तेरे मिलन की बधाइयाँ देते हैं।

ऐ प्राणाधार जिस दिन तू मेरे पास आयेगा और मुझे "साहबड्रिनों" (सचल) कहकर पुकारेगा, उस दिन मैं अपने प्राण तुझ पर न्योछावर कर दूंगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तूं आऊ असाँ वटु यार ।
तुंहिंजे अचण काणु जीअड़ो जुखे थो ।
तुंहिंजे अचण काणु साहड़ो सिके थो ।
बसु न वहणु खू करनि, नेणनि सन्दा नार ।
माठु कन्दे ई चाढ़िया, बिरह असाँ ते बार ।
प्रीं पारिजि पांहिजा, जे कयै क़ौल क़रार ।
चुमी चश्मनु ते खन्यमु, तुंहिंजो इश्क़ु अल्लाद तोहरि ।
बाह जेहूँ आऊं भाइंया, जो दमु तो हूँ धारि ।
रातो ड्रीन्हा तान्हिजी, आहे सचूअ सारि संभारि ।।

ऐ प्रियतम, तू हमारे पास आ क्योंकि तेरे कारण हृदय व्याकुल है तथा प्राण तड़प रहे हैं। हमारी आँखों से आँसुओं की धारा का बहना रुकता ही नहीं है। विरह ने चुपचाप हम पर दुःखों का बोझ लाद दिया है। ऐ प्रियतम; जो प्रतिज्ञाएँ और वादे किये थे, उन्हें पूरा करना। ऐ अल्लाह; मैंने तेरे प्रेमरूपी उपहार को सिर आँखों पर उठा लिया है अतः जो पल मैं तेरे सिवा बिताती हूँ, वह पल मुझे आग के समान (जलाने वाला) लगता है। सचू कहते हैं कि मुझे दिन-रात आपकी ही याद आती रहती है।

प्रीं आहिन पारि, आँऊ ताहिति ड्रींह गुज़ारियाँ ।
वेही विसारण इतही, आहि कमीणनु कारि ।
इश्क़ वारनि खे जेड्रियूँ, ब्रोड़े हद्रि न ब्रारि ।
दड़िका ड्रियो न दरियाइ जा, तरी वीन्दसि तारि ।
ईन्दियूँ विरह वारियूं, अदियूं ड़ी हिन आरि ।
सचूं विधो सुप्रीं, जानी ड़ी कंहिं जारि ।

मेरे प्रियतम तो उस पार हैं और मैं यहाँ (संसार में) अपने दिन गुज़ार रही हूँ। वास्तव में उन्हें भूलकर यहाँ बैठना कमीनों (दुष्टों) का ही काम है। ऐ सखियों, इश्क करनेवालों को पानी भी नहीं डुबो सकता है अतः मुझे समुद्र में डूब जाने के भय से भयभीत मत करो मैं तो इस बहाव से तर जाऊँगी (पार उतर जाऊँगी, डूब नहीं जाऊँगी) ऐ बहनों, इस प्रेम के चक्कर में केवल प्रेम की मतवाली (आत्माएँ) ही प्रवेश करेंगी।

सचू कहते हैं, ऐ प्रियतम प्राणाधार, आपने मुझे किस आग में डाल दिया है?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिलि नाहे सा मुन्हिजे वसु, ड़ी ज्रेड़िड़यूँ कीअं करियाँ ।
इन्हनि अखिड़ियुनि खे, नाहि ड्रिसण खूँ बसु ।
असुल लाकों आहियाँ, पोड़ेचूँ परवसु ।
काक़ियूँ आहि न आम सां रूह मुन्हिजड़ो रसु ।
ब्राझूँ वेढ़े दोस्त जे, ब्री गाल्हि न लग़े कसु ।
साहु सचूँअ जो सरितियूँ, दोस्त वठी कयो वसु ।

ऐ सखियो, मेरा मन मेरे वश में नहीं है, मैं क्या करूँ ? मेरी ये आँखें प्रियतम को देखने से कभी भी सन्तुष्ट नहीं होती । ऐ पड़ोसिन, मैं हमेशा से परवश और लाचार हूँ । मेरा मन संसार में नहीं लगता है । प्रियतम की बातों के सिवा मुझे कोई दूसरी बात सुहाती ही नहीं है । सचू कहते हैं, मेरे प्राणों को प्रियतम ने अपने वश में कर लिया है ।

करि याद याहू या अल्लाह, दिल में, धरींनि सूरत अल्लाह ।

१ दिल में तकियो दिलदार जो, ऊन्हो बहर इसरार जो ।
सुध लहु समझ सिर यार जो, दिल में धरींनि०
२ आशिक़ु सद्राईं जे अदा, जिन्द जानकर फानी फिदा ।
ताँ तू पसीं साजनु सदा, दिल में धरींनि०
३ छो थो वञी ब्रीअ पार तूँ, दिल जो दिलबर हिकु धार तूँ ।
नदु नफ्सु मुरितदु मारि तूँ, दिल में धरींनि०
४ वठु पार पिर जो पेचिरो, सुहबतु कन्दइ सिक सोझरो ।
ववरिज अथेई वटि वेझिड़ो, दिल में धरींनि०
५ दिल में दग़ाई दूरि करि, मन में ज़िकरु मशहूर करि ।
मुहबनि सन्दो मज़कूर कर, दिल में धरींनि०
६ हथि दोस्त जे खूनी खन्जरु, आशिक द्रीयनु रीअ साँग सिर ।
पुरु था पियनु ज़ोक़ौं ज़हरु, दिल में धरींनि०
७ सूरीअ मथे सूरीह वञनि, मानंद परवाने पचनि ।
खतिरो न सिर जो खौफु कनि, दिल में धरींनि०
८ सन्दिरो जनी सच जो ब्रधो, तिनिखों कयो सूरनि सन्धो ।
तहक़ीक तिनि वोड़े लधो, दिल में धरींनि०
९ साहबद्रिन जो सुवाल तूँ, राहमु ब्रुधिजु अहवालु तूँ ।
फज़लूँ रसिजु फेअल्हालु तूँ, दिल में धरींनि०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(सचू मानव को उपदेश देते हुए कहते हैं) ऐ मानव; तू परमात्मा की याद कर तथा उसकी सूरत हृदय में धारण कर। यह (संसाररूपी) रहस्यमय सागर बड़ा ही गहरा है, वहाँ सोच समझ कर प्रियतम का अवलम्बन हृदय में लेकर, उस (प्रियतम) की जानकारी प्राप्त कर तथा उसे हृदय में धारण कर।

ऐ मित्र, यदि तू अपने को आशिक़ कहलाने का इच्छुक है, तो अपने इस नश्वर जीवन को उस पर न्यौछावर कर दे, तब ही तुझे नित्य साजन का दीदार होगा।

(ऐ मानव) तू दूसरी ओर क्यों जा रहा है ? तूँ एक ही परमात्मा को हृदय में धारण कर। ऐ कपटी, तू अपने मन के विकारों को मार और मन में प्रियतम की मूर्ति धारण कर।

ऐ मित्र, प्रियतम के रास्ते को ही अपना, क्योंकि स्नेह का संग ही (तेरे मार्ग को) प्रकाशित करेगा (जिससे तुझे पता लगेगा कि) तेरा भतार, तेरे बिल्कुल समीप ही है।

(ऐ आशिक) तू अपने मन से छल कपट दूर कर दे तथा हृदय में उस प्रसिद्ध प्रियतम के गुणों का गान कर तथा प्रेमियों का सा आचरण कर और मन में उसकी सूरत धारण कर।

सच्चे आशिक़ों की विशेषता बताते हुए कवि सचल जी कहते हैं) यद्यपि प्रियतम के पास रक्त का प्यासा खन्जर भी रहता है, तो भी सच्चे प्रेमी बिना हिचक के अपना सिर दे देते हैं तथा ज़हर (दुःख) के लबालब प्याले भी बड़े शौक़ से पी जाते हैं और हृदय में उसकी मूर्ति धारण करते हैं।

सच्चे शूरवीर (ज्ञानी और प्रेमी) परवानों की तरह शूली पर चढ़ कर अपने को कुर्बान कर देते हैं वे अपने जान की परवाह रत्ती मात्र भी नहीं करते हैं और हृदय में परमात्मा की सूरत धारण किये रहते हैं।

जो सत्य को पाने के लिए कटिबद्ध हैं दुःख दर्द भी उनके सामने आने की हिम्मत नहीं करते परिणामतः वे सत्य को ढूँढ ही निकालते हैं।

ऐ कृपालु, तू साहबड़िने (सचल) की याचना दयापूर्वक सुनना तथा उस पर अपनी अनुकम्पा करते ही रहना।

घोड़िया छड़ि ऐश आलिम जा, बिना दीदार दोस्तन जे।
घोड़िया छड़ि बाग बिहशतनि जा, बिना दीदार
दोस्तन जे। (टेक)

१ पसी सूरत सुप्रियुनि जी, मल्क हूराँ करनि हैरत
तोरे सिज चन्ड जी तिलोइत, निहारण सुन्हं सजन जी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ऐ मानव) प्रियतम के दीदार के सिवा, यदि तुझे संसार के ऐशोआराम मिलते हैं, तो उन्हें न्यौछावर कर दे। प्रियतम के दीदार पर स्वर्ग के बाग़-बगीचों तक को वार दे (तात्पर्य यह कि प्रियतम के दीदार के सिवा, सांसारिक सुख और आराम अर्थहीन ही है।)

प्रियतम का रूप देखकर अप्सराएँ तथा फ़िरिश्ते भी आश्चर्य चकित हो जाते हैं। उन्हें सूर्य-चन्द्रमा के उदय की सुन्दरता में प्रियतम का ही सौन्दर्य दिखाई देता है।

२ अजब लँव जा प्रियुनि लाई, सुती वेठी वणे साई।
अचे खुश कान ब्री वाई, सिकम सिक साह साजन जी।

प्रियतम ने जो अनोखी प्रीति की है, उससे वह (प्रियसी जीवात्मा) प्रसन्न होकर अपनी सुध-बुध खो बैठी है। उसकी ज़बान पर, "मेरे प्राण प्रियतम के लिए तड़प रहे हैं—" इस वाई (बात) के सिवा दूसरी कोई बात नहीं आ रही है।

३ महल माड़ियूँ दुनिया दौलत, हूराँ हुजिरा ज़ेवर ज़ीनतु।
ईन्दइ कम कीन में कयामत, बिना सुहबत सुप्रियनु जे।

वास्तव में संसार का वैभव, महल, ऊँचे-ऊँचे मकान, सुन्दर स्थान, आभूषण और सौन्दर्य प्रियतम के संग के सिवा, कयामत के दिन किसी भी काम नहीं आते हैं। (अर्थात् कयामत के दिन परमात्मा के सिवा, सांसारिक साधन किसी भी काम नहीं आते हैं।)

४ साहबड्निः दवा दारूँ, मन्झूँ मुहबनि सन्दो सूरनि।
ड्रिठे ड्रुख डूर वहम वञनि, निहारण दे निमाणनि जे।

सचल साहब कहते हैं कि महबूब की मुहब्बत के कारण मिले हुए दुःख दर्द, दवा-दारू से दूर नहीं होते, बल्कि परमात्मा की कृपादृष्टि से ही सभी तरह के दुःख, वहम तथा भ्रम नष्ट होते हैं।

मूँखे यारु मिलियो, जीऊ जानि जिनीं साँ जारि लग्गो।
लंघिया असाँ तिऊँ ड्रींह खिज़ाँ जा, सरितियूँ अज़ु
बहारु लग्गो।
हुवासीं ग्गोलाऊ असीं जंहिजा, सो ता अज़ु शिकारु लग्गो।
ग्गलीअ ग्गलीअ में तालु तमाशा, चहचिटो चौधार लग्गो।
रंगारंगी बेरंगीअ वारो, शहर बहर बाज़ारु लग्गो।
अङणु उहे ही पेही आयमि, बिरह जंहि साँ बे
अखितयार लग्गो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब़ाँहूँ ड़िनियूँ ग़ल यार असाँखे, नींहु जंहिसाँ निर्वारु लग़ो ।
मुर्शद हादी अब्दालहक़ जे, वतु पुठीअ पेज़ारु लग़ो ।
सचू हिजाब विया हिकु थियासीं, दम बदम दीदारु लग़ो ।।

(प्रियतम के मिलन पर जीवात्माएँ अपनी प्रसन्नता प्रकट करती हुई कहती हैं।) हमें अपना वह प्रियतम मिल गया, जिससे ही हमारा नेह (प्यार) लगा हुआ था। ऐ सखियों; प्रियतम के मिलने के कारण हमारे (जीवन के) पतझड़ के दिन बीत गए हैं और बहार का आगमन हुआ है। हम जिस महबूब की खोज में थीं, आज उसी का शिकार हमें लग गया है (अर्थात् हमें वह मिल गया है।) अब तो गली-गली में नृत्य-तमाशे हो रहे हैं तथा चारों ओर चहल-पहल मची हुई है (अर्थात् चारों ओर आनन्द ही आनन्द फैला हुआ है।) अब तो बेरंग देश तथा बाज़ार रंग बिरंगे दिखाई दे रहे हैं (तात्पर्य यह कि प्रियतम के सिवा जीवन नीरस तथा आनन्दहीन था, पर अब तो आनन्द से परिपूर्ण हो गया है) जिस प्रियतम का विरह हमें बेचैन कर रहा था उसी ने ही हमारे (हृदयरूपी) आँगन में प्रवेश कर लिया है। जिस महबूब से हमारा नेह लगा था उसने ही आज हमें अपनी भुजाओं में थाम लिया है। सचू साहब कहते हैं हम पूर्ण शक्ति से गुरू अब्दालहक़ के पैरों पर पड़े, जिससे हमारे (मन के) भ्रम और संदेह दूर हो गये हैं और हमें पल-पल प्रियतम का दीदार हो रहा है।

यारो मुंहिजो यारु, कई कई सूरत सैरु करे थो।
काथएँ बुढिड़ो पीरु थियो, काथएं ब़ोले ब़ारु।
काथएँ बेराग़ी फिरे, काथएं कयसु क़रारु।
काथएं आहे बादशाह, काथएं चोबदार।
काथएं पेरें पन्धु करे, काथएं घोड़े जो हसवारु।
काथएं अहमदु थियो अली, काथएं अब्दालहक़ु इज़िहारु।
आहे दिलबर दोस्त जो, सचू सभु सींगार।।

ऐ मित्रो, मेरा दिलदार प्रियतम अनेक रूप धारण करके घूम रहा है। कहीं पर वह वृद्ध पीर बन जाता है, तो कहीं पर बच्चे के रूप में कुछ बोल रहा है। कहीं वैरागी बनकर भटक रहा है तो कहीं आराम कर रहा है। कहीं बादशाह बन कर बैठा है, तो कहीं चोबदार। कहीं पैरों से चल रहा है, तो कहीं अश्वारोही है। कहीं पर वह एक ही परमात्मा अली का रूप धारण करता है तो कहीं अब्दालहक (सचल के चाचा तथा गुरू) के रूप में प्रकट होता है। सचू कहते हैं कि सब कहीं (पूरी सृष्टि में) मेरे प्रियतम का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
ही श्रृंगार फैला हुआ है । (तात्पर्य यह कि एक परमात्मा ने ही अनेक रूप धारण किए हैं और सृष्टि को अपने ही श्रृंगार से सुसज्जित बना दिया है ।)

मैख़ाने की मस्ती

सच्चे सूफी धार्मिक कर्मकाण्ड की अपेक्षा प्रेम को ही महत्त्व देते हैं अतः उनकी दृष्टि में नमाज़ तथा ज़ियारत (तीर्थ यात्रा) केवल परमात्मा को पाने के बहाने हैं । उनका कहना है कि जब तक ख़ुदी (अहं) को जलाकर भस्म नहीं किया जाता है, जब तक प्रियतम के प्रेम में सब कुछ भलाया नहीं जाता है, तब तक मुहब्बत का जाम प्राप्त नहीं होता है । एक बार यदि यह मुहब्बत का जाम मिल जाय तो जिज्ञासु बेख़ुद होकर (अहं से विहीन होकर) शाश्वत मस्ती व ख़ुमारी में ही रहता है ।

मस्जिद छड्रे मैख़ाने अंदरि, हासुलु कैफ़ कयासीं ।
ही सभु हुस्नु जमालु असांजो, जंहिं में पाण पियासीं ।
द्रोह सवाब खां आजा थी, पोइ सचल सचु थियासीं ।।

सचल साहब कहते हैं कि मस्जिद छोड़कर मैख़ाने के भीतर जाकर हमने वह मस्ती प्राप्त की है जिस कारण लगता है कि यह सब सौन्दर्य और तेज हमारा ही है अतः हम अपने आप में ही लीन हो गए हैं । अब तो हम गुण तथा दोष से मुक्त होकर सच (परमात्मा) ही बन गए हैं ।

साकी द्रेजि सुठी, सुर्क सुराहीअ माँ कढी ।
पिक पियारिंजि पारखू ! मुहबत जी मिठी ।
पियण साँ पुठी, पाण द्रियां जिअं पाण खे ।।

(सचल साहब अपने सद्गुरुरूपी साकी को प्रेम की हाला पिलाने के लिए प्रार्थना करते कहते हैं)

ऐ पारखी साकी, (ज्ञानरूपी) सुराही से ऐसा प्रेम का मधुर जाम पिला कि जिसके पीने से ही मैं अपनी ख़ुदी (अहं) से मुख मोड़ लूं ।

नका मुहबत सुराहीअ साँ, नकी मीना साँ मतिलबु ।
साकी सभु सबबु, सचल सिक वारनि जो ।।

सचल साहब सच्चे सूफी सन्तों की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि सच्चे आशिकों को न सुराही से प्रेम होता है न मीना के पात्र से ही मतलब रहता है; उन्हें मतलब है तो केवल हाला (प्रेम) और साकीबाला (प्रियतम) से ही है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मस्तु रही मैख़ाने अन्दरि, मंगि वतीसीं मस्ती ।
मस्तीअ साँ ना सिरु सुञाणे, तंहिजोकमु कमबख़्ती ।
ब्रियूं सभु कूड़ियूं ग़ाल्हियूँ, सचा सचो इश्कु अलस्ती ।।

सचू साहब कहते हैं कि मधुशाला के भीतर मस्त रहकर ही हमने मस्ती माँगकर ली है परन्तु जो मस्ती का रहस्य नहीं जानता है, वह वास्तव में भाग्यहीन ही है क्योंकि मस्ती (प्रेम) के सिवा इस (संसार रूपी) मैखाने की सभी बातें झूठी ही हैं केवल प्रियतम का प्रेम ही सत्य है ।

छा जो काबो, छा जो क़िब्लो, ही भी सभु बहाना ।
नाक़िस नियत काबे बारी, मर्द घुमनि मैख़ाना ।
सचल सत्गुरु इएं आखियो, हक़ु लहनि मस्ताना ।।

क्या काबा, क्या करबला ? ये सब तो परमात्मा को पाने के मात्र बहाने हैं । काबे आदि में घूमने के विचार बेकार हैं । सच्चे पुरुष तो (प्रेमरूपी) मैखाने में ही मस्त रहते हैं । सचल जी कहते हैं कि सद्गुरु ने यही कहा है—"प्रेम के मतवाले ही हक़ (सत्य) को ढूँढ लेते हैं ।

मुल्ला छड्रि किताबनि पचर, मै जी पीउ प्याली ।
पल में मुल्ला साहिब ! थीं तू मस्तु व मस्तु मवाली ।
छड्रि कुलाली काज़ी साहिब, क़ाइमु थिजि कलाली ।
माफ़ु कराए इश्क़ु इएं थो, सचल काफ़ु कशाली ।।

ऐ मुल्ला, पुस्तकों का प्रपंच छोड़ कुछ मै का प्याला पी जिससे ऐ मुल्ला साहब, तू एक ही क्षण में मस्त मौल्ला हो जाए ! ऐ काज़ी साहब, तू भी अपनी टोपी (बाह्याडम्बर) छोड़कर सदैव ही (प्रेमरूपी मदिरा का) रोगी बन जा । सचल साफ कहते हैं कि प्रेम सभी तरह के कष्टों को क्षमा कर देता है अर्थात् प्रेमी को दुःख में भी सुख का अनुभव होता रहता है । उसे दुःख दुःख नहीं लगता ।

तालिब ! ज़ुहिदह न तक़वा ताइत, मौज मंगां मूं मस्ती ।
ड्रिनी आहि उस्ताद अज़ल जे, हथि तलब जी तख़्ती ।
सचा मस्ती मूलु न इंदी, जां जां वञे न हस्ती ।।

ऐ तलबदार । (परमात्मा को ढूंढनेवाला—जिज्ञासु) तू शरीअत (धार्मिक कर्मकाण्ड) तथा कोरी बन्दगी में ही खोया न रह बल्कि उस मस्ती की माँग कर तथा उस आध्यात्मिक शौक की तख़्ती (ज्ञान) को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
प्राप्त कर जो अज़ल के उसताद (परमात्मा) ने दी है। सचल साहब फर्माते हैं कि जब तक यह हस्ती या ख़ुदी नष्ट नहीं होती, तब तक यह मस्ती कदापि नहीं आती।

ससुई के दुःख एवं विलाप

शाह लतीफ़ जी की तरह सचल सरमस्त जी ने भी ससुई पुन्हू (आत्मा-परमात्मा) की एक दूसरे के लिए तड़पन और दुःखों तथा कष्टों का वर्णन किया है। अतः ससुई पुन्हू की कहानी फिर से न बताकर मात्र प्रतीक समझाकर सचल जी के उद्गारों का वर्णन करना उचित जान पड़ता है।

ससुई आत्मा का, पुन्हू परमात्मा का, भंभोर संसार का तथा केच आध्यात्मिक मंज़िल का प्रतीक है।

सचल जी की मान्यता है कि यदि ससुई (जीवात्मा) पुन्हू (परमात्मा) को पाने के लिए कमर कस लेती है, तो उसे अवश्य ही वह मिल जाता है। यदि जिज्ञासु में ससुई की सी दृढ़ता, अचलता, उत्साह एवं दर्द है, तो वह न केवल पुन्हू को प्राप्त करता है पर खुद ही पुन्हू बन जाता है। तात्पर्य यह कि आत्मा माया के कारण परमात्मा को अपने से अलग समझकर उसे पाने के लिए भटकती रहती है पर जब वह अपने सच्चे स्वरूप को पहचानती है तब वह अनुभव करती है कि वह खुद ही परमात्मा है। सचल जी का कहना है कि इस संसाररूपी मरुभूमि को पार करने तथा परमात्मा को पाने के लिए ग़म, दुःख तथा यातनाएँ ही सच्चे मार्ग दर्शक हैं अतः जिज्ञासु को दुख तथा कष्टों से घबराना नहीं चाहिए बल्कि उन्हें सहर्ष स्वीकारना चाहिए।

उथी कमरि ब्रंधु, लोचि त लहीं सुपिरीं।
हाड़े वारो हंधु, द्रिसीं अखिड़ियुनि साँ॥

(ऐ ससुई) तू उठ, कमर कसकर प्रियतम को ढूंढ तो तुझे प्रियतम मिले और हाड़ा पर्वत को (आध्यात्मिक मंज़िल को) अपनी आँखों से देख सके।

ड्रेहु दुखीअ जो दूरि, रहबर! रसु रुञमें।
मूँ वेचारीअ मूरि, ही थरु थेलियो न थिए।

(ससुई इस संसाररूपी मरुभूमि से पार लगाने के लिए पुन्हू-परमात्मा से प्रार्थना करती हुई कहती है) ऐ मेरे पथ प्रदर्शक, मुझसे इस मरु भूमि (संसार) में आकर मिल ताकि मुझ दुखिया का दुःख दूर हो, क्योंकि तेरे सिवा मुझ बिचारी से यह मरुभूमि पार न हो सकेगी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेठी विरह वसायाँ, कांध ! अची लहु कल ।
जीनी ! तुहिजें जल, मुंहिजो अंदरु अध कयो ।।

ऐ प्रियतम, मैं विरह के आँसू बहा रही हूँ ज़रा आकर मेरी सुधि ले। ऐ प्राणाधार तेरी विरहाग्नि ने मेरे हृदय को जलाकर अधमरा सा कर दिया है।

ग़ोलिनि गड्डु गुज़रानु काकियूँ ! कंदियसि केच में ।
आरीअ थिए अरमानु, मन ड्रिसी हालु हकीरि जो ।।

ऐ बहनों; मैं केच (पुन्हू का निवास स्थान) में वहाँ की दासियों के साथ गुज़ारा करूँगी ताकि कहीं इस कमीनी की दयनीय हालत को देखकर पुन्हू को कुछ दया आ जाए।

विंदुर जे वणनि में करे वाका वेचारी ।
जा महबूबनि मारी, तंहिंजो मोटणु मस थिए ।।

(कवि सचल ससुई की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं—) विचारी ससुई विंदुर-वन के वृक्षों में चिल्ला-चिल्ला कर भटक रही है। भला जो प्रियतम के प्रेम में मरी हुई है, उसका वहाँ से लौटना कैसे सम्भव हो सकता है ?

काफ़ कशाला केतिरा, बारी बर बयबान ।
लांघा हिकु लकनि जा, ब्रियो कोहनि में कहदान ।
अग्रियाँ ड्रियनि कीन की, हलणु ही हैवान ।
आउ आरियाणी अग्रवान ! मूँ खा डूंगरु ड्रोरियो न थिए ।।

(ससुई आध्यात्मिक मार्ग के कष्टों और दुःखों का वर्णन करती हुई पुन्हू से सहायता के लिए प्रार्थना करती है—) पर्वत पर चढ़ते समय के अनेक कष्ट, कन्दराओं के बीच में से थका देनेवाले रास्ते तथा मरुभूमि के ताप आदि, आगे बढ़ने की प्रेरणा ही नहीं देते। ऐसे रास्ते तो पशुओं के चलने के लिए हैं। हे मेरा नेतृत्व करनेवाले पुन्हू, तू शीघ्रातिशीघ्र आ क्योंकि मुझसे अब इन पर्वतों पर चढ़ा नहीं जाता है।

काफ़ कशाला केतिरा, मारगु मथाहूँ ।
छोरीअ खे हिति छपरें, छद्देविएं छाहूँ ? ।
तोखे करे थी सुपिरीं ! थी दर्दमन्दि दान्हूँ ।
तू अचिजि अग्राहूँ, ना त दोस्त ! थी दमु ड्रियाँ ।।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ससुई पुन्हू से कहती है "ऐ प्रियतम ! पर्वत के ऊबड़ खाबड़ मार्ग पर, अनेक कष्टों और दुःखों में तू मुझ अबला को कैसे छोड़ गया है ? दुःख पीड़ा से यह दुखिया तुझसे शिकायत कर रही है। ऐ नाथ ! तू मेरे समीप आ, अन्यथा मैं अपने प्राण त्याग दूंगी।

बारी बिरहु बलोच जो, सारो सआदत।
काकियूँ आहे क़ाफ में, हीणनि हिदायत।
कंदो किफ़ायत, पाणूं वाणी पंध में॥

(ससुई कहती है) वह (जीवात्मा) खुशकिस्मत है, जो पुन्हू के विरहाग्नि में जल रही है। ऐ बहनों काफ़ पर्वत (आध्यात्मिक रास्ते) पर चलने वाली शक्तिहीन (जीवात्माओं) को मेरी यही हिदायत है कि पुन्हू खुद ब खुद उनके राह में किफायत कर देंगे अर्थात् सरल बना देंगे।

काफ़ कशाला केतिरा, दिक्कत अऊं तस्दीअ।
अची पहुँच पीअ ! मूँ हिन निमाणीअ ते॥

ऐ प्रियतम ! पर्वत के अनेक दुःख, कठिनाइयाँ एवं यातनाओं को सहन करनेवाली इस बिचारी आश्रयहीना के पास शीघ्र ही पहुँच जा।

शाल न विसिरीं होत ! ब्रियो सभु मूँ विसरे।
मूँ खे ताईं मौत, हुएं अखिड़ियुनि में॥

ससुई कहती है—चाहे मैं और सब कुछ भूल जाऊँ पर एक प्रियतम को न भूलूं। (मेरी अभिलाषा है कि) मरते दम तक वह मेरी आँखों में ही रहे।

मुंहिंजो अंदरु अध कयो, फ़ना हिन फ़िराक़।
मरे थी मुश्ताकि, का करि वर ! विल्हीअ जी॥

ऐ प्रियतम ! तेरे विरह के दर्द ने तो मुझे अधमारा सा कर दिया है। यह तेरी प्रेमिका मर रही है अतएव कुछ तो इस (ग़रीब) की सुधि ले।

आरीअ जे अचण जो, रोज़ु निहारियाँ राह।
आणींदुसि अल्लाहु, मूँ सिरु सदिके कयो॥

मैं रोज पुन्हू के आने की राह देखती रहती हूँ, अवश्य ही मालिक उसे मेरे पास ले आएगा; मैंने तो अपने प्राण उस पर न्योछावर कर दिए हैं।

कोहु करियाँ भंभोर खे, हारियूँ बिना होत।
मूँ ता ताईं मौत "वोइ वोइ" हद्दि न विसरे॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ऐ सखियो ! मैं पुन्हू के सिवा भंभोर (सांसारिक सुखों) का क्या करूँ ? (अर्थात पुन्हू के सिवा सांसारिक सुख सब मेरे लिए व्यर्थ हैं ।) हाय हाय ! मैं तो मरते दम तक उसे नहीं भूल पाऊँगी ।

"पुन्हू ! पुन्हू !" थी करियाँ, आऊं पिण पुन्हू पाण ।
अदियूँ थियसि अज़ाण, जो कीन परूड़ियुमि पाण खे ।।

ऐ सखियो ! मैं "पुन्हू पुन्हू" पुकार रही हूँ पर वास्तव में तो मैं स्वयं ही पुन्हू हूँ । मैं भी कितनी अनजान थी कि मैंने अपने आपको नहीं पहचाना । (तात्पर्य यह कि जब तक द्वैत की भावना रहती है तब तक आत्मा अपने को परमात्मा से अलग मानती है, किन्तु द्वैत के नष्ट होते ही आत्मा अपने सच्चे स्वरूप को पहचानती है अतः अब उसे अपने में और परमात्मा में कोई भेद दिखाई ही नहीं देता ।)

जां परूड़ियुमि पाण खे, तां पाण पुन्हू आहियाँ ।
केहि तरफ़ काहियाँ, जो तरफ़ मिड़ेई तम थिया ।।

जब मैंने अपने आपको पहचाना तब मुझे पता चला कि मैं खुद ही पुन्हू हूँ । अब मैं किस दिशा में भटकूँ जब सभी दिशाएँ ही ग़ायब हो चुकी हैं ।

रातो ड्रींहां रतु, अतणु आयुमि उनरे ।
आयलि, इश्क़ अलील में, शाल न पवे कतु ।
जबल सभि झाग़े वञी, जेदियूँ ड्रिसाँ जतु ।
हिन मुईअ जो मतु, पवे मजिकूरु पिरियुनि में ।।

ऐ जननी ! उस (प्रियतम) के सिवा दिन रात मेरी आँखों को खून के आँसू ही बहाने आते हैं । काश ! मुझ अबला के इश्क में किसी तरह की कमी न पड़े । ऐ हमवयस्कों (मेरी महत् अभिलाषा है कि) पर्वत लाँघकर जाकर अपने प्रियतम को देखूं । काश ! इस दुखिया के इस इरादे की चर्चा प्रियतम और उसके लोगों के बीच हो ।

सुहिणी-मझधार में

सुहिणी मेहार की कहानी भी शाहलतीफ में विस्तारपूर्वक दी गई है, अतः दुबारा देने की आवश्यकता नहीं है ।

सुहिणी (जीवात्मा) प्रेमरूपी सागर में कूद पड़ी है बीच समुद्र में जहाँ अनेक मगरमच्छ हैं तथा जहाँ बड़े-बड़े चतुर, साहसी तैराकों के हृदय मुँह को आते हैं, वहाँ वह मेहार (परमात्मा) को अपनी सहायता के लिए पुकारती है । जब तक वह थोड़ा सा भी सांसारिक सहारा लिए हुए है,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तब तक मेहार नहीं आता, किन्तु जब सब सहारे छूट जाते हैं तब वह अपने अस्तित्व तक को भूलकर मेहार पर अटल विश्वास रखती है तब उसी क्षण ही वह उसे मझधार में आकर मिलता है।

मेहर महिर का, पवंदी मन मणी।
सुहिणीअ जा सुणी, सद्रिड़ा विचां सीर जे।।

(सुहिणी के प्रेम की दृढ़ता का वर्णन करते कवि कहते हैं) बीच समुद्र से सुहिणी की पुकार सुनकर अवश्य ही मेहार के हृदय में दया उत्पन्न होगी।

कचो सचो कीन थिए, तोड़े अचनि रंग।
सचे संदे संग, कचा सचा थी विया।।

कच्चा (शरीररूपी) घड़ा कभी भी सच्चा (वफादार) नही होता, चाहे उसे कितने ही रंगों से सजाया जाए; किन्तु सत्य की संगत कर कच्चे भी सच्चे हो जाते हैं तात्पर्य यह कि यह शरीररूपी घड़ा चाहे कितना भी सजाया जाय, पर रहता है नश्वर का नश्वर। किन्तु यदि इसी नश्वर शरीर का सत्य (परमात्मा) से संग हो जाय तो वह शाश्वत बन जाता है।

दिले साँ हुई दिलि, दादुलीअ दिलेरि जी।
उन्हीअ द्रिनुसि ओचिते, जल अन्दरि अजलु।
कल न हुई कुंभारि खे, त ख़कीअ मंझि ख़ललु।
मिटीअ जो महलु, पुर्ज़ा पाणीअ में थियो।।

(सचल साहब मानव जीवन की नश्वरता का वर्णन करते कहते हैं) अभिमानिनी लाडली (जीवात्मा) की जिस (शरीर रूपी) घड़े से वृथा प्रीति थी, उसी घड़े ने उसे जल के भीतर मौत दी। बेचारे (मनुष्य रूपी) कुम्हार को यह पता ही नहीं था कि सब दोष इस घड़े रूपी शरीर के ही हैं, यह मिट्टी का महल (शरीर) पानी में पड़ते ही अस्त-व्यस्त हो जायगा।

न का कंधी, न को कपरु, न का विचूं वाह।
मुँझिया मौजनि में उते, सियाणा सेणाह।
सुहिणी घिड़ी सीर में करे काहूँ काह।
पाणीअ में पनाह, परवर द्रिनसि पाण खणी।।

(सचल साहब सुहिणी के साहस एवं दृढ़ता की प्रशंसा करते कहते हैं) जिस (प्रेम रूपी) समुद्र का न कोई किनारा था, न तट था और न ही कहीं से कोई रास्ता था; जिसकी लहरों को देख साहसी, तुम्बे का सहारा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेनेवाले, तैराक भी घबड़ा जाते हैं, परेशान हो जाते हैं, उसी समुद्र में सुहिणी बिना हिचक के, शीघ्रता से कूद पड़ी; किन्तु परमात्मा ने ख़ुद ही आकर उसे पानी में सहारा दिया।

जेसीं दिलि दिले साँ, साहड़ु कीन सचो।
कचो थियसु कचो, ता साहड़ु पुग़सि सीर में ॥

जब तक (मनुष्य का) शरीर रूपी घड़े से मृषा प्रेम है तब तक मेहार (परमात्मा) उससे वफ़ादार (सहायक) नहीं होता, किन्तु जैसे ही इस नश्वर (शरीर रूपी) घड़े ने धोखा दिया, वैसे ही मेहार बीच समुद्र में उसे आकर मिला।

हणी हणी हीच थी हणी थी हीणी।
बाहड़ ऐं वीरुनि में, थी वाग़ुनि वहीणी।
सीर अन्दरि सुहिणी, वेचारीअ वस कया ॥

सुहिणी (प्रेम रूपी, संसार रूपी) सागर पार करने के लिए संघर्ष करते-करते तथा हाथ पटकते-पटकते शक्तिहीन बन गई है। बेचारी भवसागर में (विषय-वासना रूपी) मगर-मच्छों के हवाले हो गई है। किन्तु मझधार में पहुँचकर उसने सब (विकारों) को वश में कर लिया।

हणी हणी हीच थी, हथ थियसु हीणा।
सिपारियाई सचू चवे, लाखे खे लीणा।
ब़ुड़ंदीअ ब़ीणा, साहड़ कया सीर में ॥

बेचारी सुहिणी (संसार रूपी) सागर को पार करने के लिए हाथ पटकते-पटकते शक्तिहीन हो गई है। सचल जी कहते हैं कि अब उसने अपने को लाखे नामक पीर (सद्गुरु) के हवाले कर दिया है, अतः मझधार में डूबने वाली की उसने आकर सहायता की।

असाँ पिरियुनि विच में, दौर वहे दरियाउ।
छोली छरां थी करे, पियो विछुटी वाउ।
सुणी आहां आउ, मियाँ! हिन मुश्ताक़ि जूं ॥

सुहिणी प्रियतम से कहती है कि हमारे-तुम्हारे बीच में यह अथाह सागर बह रहा है, लहरें जोर से छल-छल कर बह रही हैं, बीच में ज़ोरों का तूफ़ान लग रहा है, अतएव ऐ प्रियतम! इस प्रेमिका की आहें सुनकर शीघ्र ही आ जा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असाँ पिरियुनि विच में, जरु वहे जारी।
हिकु कड़िको कुननि जो पवे, ब्रियो वीर ड्रिए वारी।
हुति साजन जा सारी, सा दहिली कीन दरियाह खूँ॥

हमारी (जीवात्माएँ) और प्रियतम के बीच यह अथाह जल बह रहा है, एक तो इस सागर में भँवर उठ रहे हैं जिनका भयानक शोर हो रहा है, दूसरे लहरों में ज्वार और उफान आ रहा है। किन्तु प्रियतम जिस (जीवात्मा) को याद करता है वह इस भयानक सागर से नहीं घबराती है अर्थात् उसे पाने के लिए उसमें कूद ही पड़ती है।

घिड़नि जे घेड़ाउ, ताँघो इश्क़ु तिनि जो।
जिनि खे इश्क़ु अलील कयो, से ईंदियूँ अवतड़ाऊ।
जे सूर चखंदियूँ साउ, मेहरु से माणींदियूँ॥

जो आशिक़, (प्रेम रूपी सागर में) सुरक्षावाले स्थान जहाँ गहरा पानी नहीं है, वहाँ से प्रवेश करते हैं, उनका प्रेम भी एक आडम्बर है, गहन नहीं है। किन्तु जिन्हें सच्चे इश्क़ की बीमारी लगी है, वे गहरे पानी में ही कूद पड़ते हैं। जो (जीवात्माएँ) इश्क के दर्द का स्वाद चखेंगी अर्थात् दुःखों का सामना करेंगी, वे ही मेहार (परमात्मा) के मिलन-सुख का आनन्द लूटेंगीं।

दुःख और ग़म

आशिक़ों की मान्यता है कि प्रेम रूपी कंचन (स्वर्ण) दुःख रूपी अग्नि में पड़कर ही चमकता है अतः वे दुःखों को सुखों का सौन्दर्य मानते हैं। वास्तव में दुःख ही प्रियतम के समीप लाते हैं। सचल जी का कहना है कि सांसारिक क्षणभंगुर सुख तो बहुत ही सस्ते हैं, पर प्रियतम के विरह के दुःख इतने महँगे हैं कि यदि किसी को सिर देने पर भी मिल जाते हैं तो उसे अपने को भाग्यशाली ही समझना चाहिए।

जे गूंदर गोशु न कनि, खुहि पवनि से सरतियूँ।
जिनि संगति साणु सुखनि, से पाणूं होतु परे कयूँ॥

(सचल जी दुःख व ग़म का महत्त्व बताते कहते हैं) ऐसी सहेलियाँ ही नहीं चाहिए जो दुःखों और ग़मों को अभिशाप मानती हैं। वास्तव में जिन्होंने (सांसारिक) सुखों से नाता जोड़ा है, उन्होंने स्वयं ही अपने प्रियतम को अपने से दूर किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गूंदर ड्रीह गुज़ारि, जां तूं जिए जिंदड़ा।
सोई अहदु पारि, जो ई कयुइ पिरीअं साँ॥

ऐ इन्सान, जब तक तू ज़िन्दा है, तब तक दुःख और ग़म में ही दिन गुज़ार। तू ने जो वादा प्रियतम से किया था, उस वादे का पालन कर।

गूंदरि जिनि गुज़ारिया, आऊं पखे तिनि पेही।
वटाउनि वेही, वठां वासु विरह जो॥

जिन्होंने (प्रियतम को पाने के लिए) दुःख-कष्टों में दिन गुज़ारे हैं, मैं उनकी कुटिया में पैठकर, उनके समीप बैठकर विरह का वास (पाठ या शिक्षा) लेना चाहती हूँ।

गूंदरि ज़िनि गुज़ारियो, आऊं तिनीं घोरी।
सदा मूँ झोरी, आहे विरह वारिएं॥

मैं अपने को उन पर न्योछावर कर दूँ, जिन्होंने (प्रियतम के) ग़म में दिन गुज़ारे हैं क्योंकि मैं भी सदैव विरहनियों से ही मित्रता करना चाहती हूँ।

दुखनि सुख, मूँ तां लधा जेद्रियूँ।
ड्रोरींदे खे दुख, सूँहां थियड़ा सज़णा॥

ऐ सखियो, मुझे दुःखों से ही सुख प्राप्त हुए हैं, क्योंकि दुःखों को झेलते ही, मुझे प्रियतम प्राप्त हुए।

ही सहांगा सुख, जे सारे आलम आइया।
ड्रूरि महाँगा ड्रुःख, जे वरिता विरद वारिएं॥

इस विश्व के समस्त सुख तो बहुत ही सस्ते हैं, किन्तु वे दुःख बड़े ही महंगे हैं, जिन्हें (परमात्मा के विरह में व्याकुल) विरहनियाँ ही ले सकती हैं।

गूंदर कीअं घोरियां, जंहिं कयसि सेंधी सज़णें।
जा तुक पेई तोरियाँ, ताँ ड्रुःख मोचार सुख खूँ॥

मैं उन दुःखों को कैसे छोड़ दूँ, जिन्होंने ही प्रियतम को मेरे समीप ला दिया है। यदि मैं सुख-दुख को तराज़ू के पलड़ों में तोलती हूँ, तो दुःख सुख से भारी (मूल्यवान) दिखाई देते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो सारो पुछां लोकु, तां गूंदर वारो न लहां ।
हहिड़ो भलो थोकु, कहीं भाग़ पिरोइयो ।।

यदि मैं सारे विश्व में ढूंढू, तो भी सच्चा ग़मवाला (परमात्मा के प्रेम में बूबा) नहीं मिलता है । भला (दुःख रूपी) आभूषण तो कोई भाग्यशाली ही प्राप्त कर सकता है ।

सेंधियूं जे सुखनि, तिनी गूंदर घोरिया ।
ड्रिनमि काणि ड्रुखनि, ही सिरु सारो सटि में ।।

सचल साहब कहते हैं कि जो (सांसारिक) सुखों से परिचित हैं (अर्थात् जो सांसारिक सुख भोगते हैं) उन्होंने दुःख व ग़म को छोड़ दिया है, किन्तु मैंने तो दुःखों के लिए अपना सिर दे दिया है ।

सारो लोकु सुखनि, पोइ रहायो पिरीअं खूं ।
ड्रिसो वाह ! ड्रुखनि, होतु विहारियो हंज में ।।

संसार के सुखों ने, लोगों को प्रियतम-परमात्मा से दूर कर दिया है, किन्तु दुःखों की करामात देखो तो उन दुःखों ने प्रियतम को गोद में बिठा दिया है ।

परमात्मा की ओर जाने का मार्ग

परमात्मा की ओर जानेवाला मार्ग बड़ा ही कठिन है । जो इस मार्ग पर चलते-चलते फ़ना (नष्ट) हो जाते हैं, वे भाग्यशाली माने जाते हैं । सचल साहब मानते हैं कि यद्यपि इस रास्ते पर पैरों के बल न चलकर सिर के बल चलना पड़ता है, फिर भी आशिकों को इस रास्ते से पीछे नहीं हटना चाहिए, बल्कि अपने अहं को त्याग कर आगे बढ़ना चाहिए ।

जे तूं मार्ग ते मरीं, वड्रा तालइ तो ।
सांवल साग़ी से, मथां ते हथ मढ़े ।।

वे (जीव) भाग्यशाली हैं, जो परमात्मा की ओर बढ़ते-बढ़ते फ़ना (नष्ट) हो जाते हैं क्योंकि उनके सिर पर स्वयं प्रियतम अपना हाथ रखता है।

मार्ग़ु मरनि जे, वरु तिनीं खे वेझिड़ो ।
हइ ! हइ ! होतनि खे, थिए अरमानु उन्हनि जो ।।

जो परमात्मा के रास्ते पर चढ़ते-चढ़ते मर जाते हैं, प्रियतम उनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समीप रहते हैं, ऐसे आशिक़ों के मरने का दुःख उसे (परमात्मा को) भी होता है।

मार्ग॒ु मरां शाल, दुआ करेजो ज़ेद्रियूँ।
होत हहिड़े हाल, मान मथां मूँ हथु थिए॥

(जीवात्मा कहती है) ऐ मेरी हमउम्र सखियो, मुझे यही आशीर्वाद दो कि मैं प्रियतम की राह पर चलते-चलते ही फ़ना हो जाऊँ; ताकि प्रियतम मुझे उस स्थिति में देखकर, अपना हाथ मेरे मस्तक पर रख दे।

मार्ग॒ु जे मुईअ, तां हुईअ होतियाणें हंज में।
वञी केचु सुईअं, तां "वेचारीअ वसुकयो"॥

(ऐ जीवात्मा) यदि (आध्यात्मिक) राह पर चलते-चलते ही तू मर जाएगी, तो अवश्य ही जाकर प्रियतम की गोद में बैठेगी। केच (परमात्मा का निवासस्थान) में भी फिर यही बात सुनाई देगी "उस बिचारी ने अर्थात् मार्ग पर फ़ना होने वाली जीवात्मा ने अपनी नम्रता से प्रियतम को वश में कर लिया है।

पिरियाँ संदे पार द्रे, पंधु अजाइबु आहे।
घोरे सिर घुमाइ, मथे दरि दोस जे॥

प्रियतम के देश का मार्ग बड़ा ही अनोखा व विचित्र है। (ऐ मानव) तू अपने प्रियतम पर अपने आपको न्योछावर ही कर दे।

पंधु अजाइबु पिरींअ जो, सिसी पेर करणु।
इन्हींअ ध्यानु धरणु, आहे कदमु केच द्रे॥

प्रियतम के देश का रास्ता बड़ा ही अनोखा है। वहाँ सिर को पैर बनाने पड़ते हैं अर्थात् वहाँ पैरों के बल नहीं, बल्कि सिर के बल चलना पड़ता है। इसी बात को ध्यान में रखकर ही उस रास्ते पर क़दम रखना चाहिए।

पंधु अजाइबु पिरींअ जो, "मां" सां कीन हले।
साई चाह चले, जंहि "मां" छद्री विच में॥

परमात्मा की ओर जाने वाली राह अनोखी है, वहाँ पर "अहं" की भावना लेकर कोई नहीं चल सकता है। वही (जीवात्मा) बड़े शौक से इस मार्ग पर चलती है जिसने "मैं-मेरे" को छोड़ दिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आयु गुज़र गई

इन्सान का जीवन स्वप्न की तरह है, वह बालक से जवान और जवान से बूढ़ा बनता है। बचपन खेल कूद में और जवानी विषय-वासनाओं में गुज़र जाती है, किन्तु बुढ़ापे के आने पर जब वह शक्तिहीन और जर्जर हो जाता है, जब उसके अपने भी पराये बन जाते हैं, तब उसे अपने परमात्मा की याद आती है और पश्चाताप की आग में जलकर कहता है—

उमिरि अजाई गुज़िरी, वही आयमि हीअ।
आऊ सब्राझा सुपिरीं, पर वर काणि पीअ।
ससुईअ कोन्हे जीअ, का वर! वेचारिअ वरि कयो॥

ऐ कृपालु प्रियतम ! मेरी आयु तो (संसार के प्रपंचों में) व्यर्थ ही गुज़र गई, अब यह बुढ़ापा आ गया है। ससुई (जीवात्मा) का तेरे सिवा और कोई नहीं, अतः परमात्मा के लिए, मेरी रक्षार्थ मेरे पास आ जा।

उमिरि अजाई गुज़िरी, कारनि मटियो रंगु।
मूं निहारणु न थिए, सांवल! सारो संगु।
हिन निमाणीअ जो नंगु, आहि अव्हां ते सुपिरीं॥

ऐ प्रियतम, मेरी आयु तो व्यर्थ ही गुज़र गई। अब तो काले बालों ने भी अपना रंग बदल दिया है (सफ़ेद हो गए हैं)। ऐ साँवले! मुझे अब अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों में भी कोई अपना नहीं दिखाई दे रहा है, अतएव इस अबला की लाज अब तेरे ही हाथ में है।

उमिरि अजाई गुज़िरी, हहिड़ो थियड़ुमि हालु।
कंहि सुणायां सरतियूं! अंदर जो अहवालु।
आरियाणी इलहालु, कंदो ग़ौरु ग़रीब जो॥

मेरी आयु व्यर्थ ही गुज़र गई। अब मेरी यह (दयनीय) हालत हुई है। ऐ सखियो, अब किसे अपने हृदय की बात बताऊँ? ग़रीबों की लाज रखनेवाला अवश्य ही मेरे बारे में भी सोचेगा।

योगी

योगी दो प्रकार के पाये जाते हैं एक वे जिन्होंने मन को रंग दिया है, और दूसरे वे जिन्होंने केवल कपड़े ही रंगे हैं। दोनों प्रकार के योगियों के व्यवहार में ज़मीन आसमान का अन्तर है। किन्तु सचल साहब कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसे सच्चे योगियों के सम्पर्क में आए थे, जिनसे वे काफ़ी प्रभावित हुए थे। अतः उन्होंने सच्चे योगियों की विशेषताएँ बताई हैं और साथ ही साथ कहा है कि आजकल के युग में भी कुछ महान योगी हैं, जिनकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

धूणीय मंझि ध्यानु, आहे आधूतनि जो।
गुमु थी, गुर गम गोदिड़िया कनि गिरोड़ी ज्ञानु।
असुल खां इश्नानु, गंगा जमुना तिनि जो॥

सच्चे योगी अपनी धूनी में मस्त रहते हैं। वे गुदड़ी धारण करनेवाले गुरू के दिए हुए ज्ञान में ही अपने को डुबो देते हैं, वे आरम्भ से (आत्मिक) गंगा-यमुना में स्नान करते हैं।

पूरब पंध आइ कद्रहिं कापड़ियुनि खे।
जिति माण्हुनि मेड़ाको थिए, सा जूठी जोगियुनि जाइ।
सचा सच सवाइ, सौदो कनि न को ब्रियो॥

सच्चे कनकटे योगी, जिस जगह पर लोगों का समूह देखते हैं, उस जगह को झूठी मानकर पूर्व दिशा (जहाँ पर तीर्थ स्थान हैं) में चलते रहते है। सचल साहब कहते हैं कि वे सत्य के सिवा और किसी भी तरह का सौदा नहीं करते हैं। अर्थात् परमात्मा की याद के सिवा कोई काम नहीं करते हैं।

करे लंघिया लोक मां, लाहूती लोड़ा।
घोड़ा ड़े घोड़ा, करे मनु मस्तानु विया॥

सच्चे योगी मधुर आलाप आलापते संसार से गुज़रे। (सचल कुछ ऐसे ही योगियों के सम्पर्क में आये थे और उनके चले जाने पर दुःख प्रकट करते कहते हैं—हाय! हाय!! वे योगी मुझे मस्त बनाकर चले गये हैं।

जोग़ी जाल ड्रिठामि, पर को को लभे कापड़ी।
ही वही वस्तुनि में विया हू न लोक लड़ियामि।
तिनीं काणि थियामि हइ! हइ, हहिड़ा हालड़ा॥

(सचल जी कहते हैं—) मैंने अनेक योगी देखे, पर उनमें से कोई विरला ही सच्चा कनकटा योगी होता है। झूठे योगी तो सांसारिक वस्तुओं में ही बह जाते हैं किन्तु वे सच्चे योगी जिनके चले जाने के कारण मेरा यह दयनीय हाल हुआ है वे संसार की ओर आकर्षित नहीं होते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जोग़ी आहिनि जाल, पर लाहूती लद्दे विया।
ही मिणि मिणि कनि मणियनि सां, हू खड़ा मथे ख़्याल।
से लांगोटिया लाल, भेनरु, भाग़ि मिड़नि मूँ॥

योगी तो अनेक हैं किन्तु विरले सच्चे योगी तो यहाँ से चले गये हैं। ये झूठे योगी तो माला की मणियों पर केवल मिन-मिन करते हैं किन्तु वे (सच्चे) उस परमात्मा के विचारों में ही खोये रहते हैं। ऐ बहनो, ऐसे लंगोट धारण करनेवाले योगी तो मुझे भाग्य से ही मिल सकते हैं।

लाहूती मां लोक, थोरा घणा लंघिया।
सचल सामीअड़नि ते, मुहबत वसे मोक।
सो ज़ाबिर मंझां ज़ौक, कंधु द्रियनि था कात ते॥

इस संसार से कुछ ऐसे योगी गुज़र जाते हैं जिनका हृदय प्रम से प्लावित है, वे बड़े शौक और वीरता से अपना सिर खंज़र पर चढ़ा देते हैं अर्थात् अपने को उत्सर्ग कर देते हैं।

व्रिलो वेराग़ी, ज्ञानी द्रिठुमि गोदिड़ियो।
भुलिया द्रिठमि भीर में, भोग़ी ऐ भाग़ी।
तालिबु त्याग़ी, लखनि में को हिकिड़ो॥

सचल साहब कहते हैं—मैंने संसार के कोलाहल में किसी विरल ज्ञानी, वैरागी, गुदड़ी धारण करनेवाले को देखा है; बाकी सब तो भोगी और आराम में खोये हुए व्यक्ति ही मैंने देखे हैं। सचमुच परमात्मा के लिए सर्वस्व त्यागने वाला कोई लाखों में एक ही होता है।

पुज़ारी जे पारखू, महादेव तिनि मनि।
गंगा गुम रहनि, ब्रुधनि द्रिसनि कीन की॥

जो पारखी (परखने वाले) पुजारी हैं, उनके हृदय में सदैव महादेव का निवास है। वे (ज्ञान रूपी) गंगा में डूबे रहते हैं तथा कुछ भी देखते और सुनते नहीं हैं।

अञा आधूती, आहिनि अकीचार।
अविद्या अहंकार, भञी जिनि भोरा कया॥

अब तक भी ऐसे अनेक अवधूत पाए जाते हैं, जिन्होंने अविद्या एवं अहंकार को तोड़कर चूर-चूर कर दिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ज़ोगी आहिनि जे, गोशु गंगा ड्रे तिनि जो।
आहिनि कोढ़िया कात जा, कनकट कापड़ के।
सिरु संबाहिनि से, जिनीं नातो नाथ साँ।

जो सच्चे योगी हैं, उनके कान (ज्ञान रूपी) गंगा की ओर ही लगे रहते हैं, वे विरल कनकटे योगी तलवार की धार पर चलने के शौकीन हैं (अर्थात् दुःखों का सामना करने से नहीं डरते हैं)। वास्तव में उनका नाता नाथ (परमात्मा) से है, वे सिर देने को सदैव तैयार हैं।

मथे कात कदमु, काकियूँ! कापड़ियुनि जो।
संसो मिटे सरूप में, सचल थिया से समु।
सदा सामियड़नि जो, दमामियुनि साँ दमु।
आदेसी अदमु, थिया नाले अंदरि नाथ जे॥

ऐ बहनो! जिन योगियों ने सिर काट पैरों पर फेंक दिया है अर्थात् अहं से मुक्त हो गए हैं, उनका भ्रम मिट गया है। सचल कहते हैं; वे अपने स्वरूप में लीन हो जाते हैं। ऐसे योगियों का सम्मान सदैव ही (अनहद रूपी) बाजे-गाजे के साथ होता रहता है और वे परमात्मा के नाम में मस्त रहते हैं।

कापड़ी कंदील, खंयो घुमनि गोदिड़िया।
छब्रटु करे छब्रनि में, वतन कारीहर कातील।
मुंडीनि मुरलियुनि सां उहे, आधूती असील।
सचल सिक सबील, जीअ में जोगीअड़नि जे॥

गुदड़ी धारण करनेवाले सच्चे कनकटे योगी (ज्ञान-रूपी) मशाल लेकर घूमते रहते हैं। वे (हृदय रूपी) टोकरी में छिपे (विषय-विकारों-रूपी) ज़हरीले वासींग नाग को अपनी मुरली की धुन से (अर्थात् अपने उपदेशों से) वश में कर देते हैं। सचल साहब कहते हैं, ऐसे योगियों के हृदय में (परमात्मा के प्रति) प्रेम लबालब भरा रहता है।

आहीनि अकीचार, अन्तर्मुख आधूत।
पूरब से न पुरिया, नकी कनि प्रचार।
अठई पहर अछ में, रहनि से ग़ुमुग़ार।
सचल संस्कार, संसा तिनि विञाइया॥

ऐसे अन्तर्मुखी अवधूत भी हैं, जो पूर्व दिशा की ओर नहीं चलते हैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
(अर्थात् तीर्थ यात्रा नहीं करते हैं) और न ही अपना प्रचार ही करते हैं; बल्कि वे आठों याम ज्ञान रूपी समुद्र में ही डूबे रहते हैं। सचल साहब कहते हैं उन्होंने अपने संस्कारों से मायावी भ्रम नष्ट कर दिए हैं।

जोग़ी भातों भाँति, पर मुंहिंजो आधूतिनि साँ।
सफ़रि विया साझरे, रहिया रुग़ी राति।
तलब तिनीं जी ताति, रातियाँ ड्रीहां रूहखे।।

(सचल साहब आपबीती बताते हैं) योगी तो अनेक प्रकार के होते हैं, पर मेरा सम्बन्ध तो उन अवधूतों से है, जो सिर्फ़ एक रात रहकर, सुबह होते ही चले गए। अब मेरी रूह को दिन रात उन्हें पाने की ही धुन लगी हुई है।

विया लाहूती लाल, लोडा करे लोइ मां।
ग़ाल्हि न ग़रहण जहिड़ी, मगरि मुंहुं मशालु।
हइ हइ हहिड़े हाल, सारियो से सध मराँ।।

इस देश से वे लासानी योगी मधुर आलाप आलापते चले गए। वास्तव में उनकी बात दूसरों से कहने जैसी ही नहीं है। उनके मुख मशाल की तरह (ज्ञान से) चमक रहे थे। (सचल उनके जाने से दुखी होकर कहते हैं) हाय, वे मेरा यह दयनीय हाल कर गए हैं अब तो मैं उनकी याद में मर रहा हूँ।

मचु मचायो मन में, ब्राफ न बाहरि विझनि।
वतनि वेग़ाण विरह में, नेंणें निन्ड न कनि।
सुद्रिका सेई सोज़ जा, भिनीअ राति भरिनि।
पंहिजीअ परि में पाण खे, था प्रितऊँ पचाइनि।
सिखियो सामियड़नि, इश्क़ु इहो सभु आईअ खाँ।।

सच्चे स्नेही भीतर ही भीतर (प्रेम रूपी) आग जलाते हैं पर उसकी थोड़ी सी भी भाप (ताप) बाहर नहीं निकलने देते (अर्थात् ख़ामोश होकर प्रेमाग्नि में जलते रहते हैं, दिखावा नहीं देते।) वे बेगानों की तरह घूमते रहते हैं। उनकी आँखों में नींद नहीं रहती और आधी रात को उठकर प्रेम-विह्वल होकर हिचकियाँ भरते हैं। वे अपने ही प्रेमाग्नि में अपने आप को पकाते हैं। सचल साहब कहते हैं कि इन आशिक़ों ने इस तरह का प्रेम करना भट्ठी से ही सीखा है। (तात्पर्य यह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कि जिस तरह भट्ठी के ताप को बाहर नहीं आने दिया जाता है उसी तरह ये भी अपने प्रेम का रहस्य प्रकट होने नहीं देते हैं।)

इश्कु इहो आईअ खां, सिखियो सामियड़नि।
आशिक़ मथां आग जे ओलारा ड्रियनि।
भंभड़ बाहि इश्क़ में, सपूरनु सड़नि।
अचियो पवनि आड़ाह में, सिर जो सांग न कीन।
लाइक़ लाल थियनि, लहिसी लूसजी॥

कवि कहते हैं कि आशिक़ों ने यह प्रेम की रीति भट्ठी से सीखी है। ये प्रेमाग्नि के ऊपर चक्कर काटते हैं (अर्थात् सहर्ष मुसीबतें मोल लेते हैं) तथा इस आग में सम्पूर्ण रीति से जल जाते हैं। ये अपने प्राणों की परवाह न कर इन लपटों में कूद पड़ते हैं और ताप सहन, करते-करते योग्य लाल बनते हैं।

न मां कयड़ो खुड़िको तस्बीह, न कयड़मि ज़ुहिद इबादत।
न की मस्जिद मंदरि बियड़ुस, न कयड़मि तकवा ताइत।
सचल जो थिथो बख़्तु सवायो, जो कयड़इ इश्क़ु इनायत॥

(सचल साहब कहते हैं—) न तो मैं ने माला का जाप किया और न मैं ने इबादत-बन्दगी की। न मैं मन्दिर में गया, न मस्जिद में, और न ही मैंने पूजा-पाठ किया। वास्तव में मेरा भाग्य अच्छा बना है कि मुझ पर इश्क़ ने अपनी अनुकम्पा की है।

इश्क़ु जिनीं सां ग़म्ज़ो लाते, इल्मु न से ब्रियो पढ़न्दा।
मंझि कुफ्र इस्लाम मजाहब, आशिक़ मूरु न अड़न्दा।
मारे नारो हक़ जो सचा, सूलीअ सिरड़ा धरंदा।

जो इश्क़ के चक्कर में पड़ जाते हैं वे दूसरी विद्या नहीं ग्रहण करते। सच्चे सूफ़ी कुफ़, इस्लाम तथा अन्य मजहबों में नहीं उलझते। सचू साहब कहते हैं, वे सच्चे स्नेही तो केवल एक हक़ (सत्य) का नारा लगाकर शूली पर सिर रख देते हैं।

आशिक़ पियनि ज़क़ोमु, हथां हबीबनि जे।
हलाहल जे हेर ते, हातिक कनि हुजूमु।
इहा थनि रुसूमु, कड़े काणि न तनि खे॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सच्चे आशिक़, हबीब (परमात्मा) के हाथों से ज़हर पीते हैं। उन्हें ज़हर पीने की इतनी आदत पड़ गई है (दुःख सहने की इतनी आदत पड़ गई है) कि वे उसको पाने के लिए आकर इकट्ठे होते हैं, यही उनका दस्तूर और रिवाज सा हो गया है। उन्हें सुख की रत्ती भर भी परवाह नहीं है।

वक़्तु इहा थी वेल, दोई दूरि करण जी।
कढु मज़ाहब मन मां, साझुरु साणु सवेल।
हिन्दू मोमिन साँ मिली, मुहबत जा करि मेल।
मतां थिए अवेल, ओलहि सिजु न उलहे॥

(सचल मानव को उपदेश देते कहते हैं—) ऐ मानव! हृदय से द्वैत निकालने का यही समय है। तू मज़हबों को हृदय से निकाल दे और शीघ्र ही अपने को सम्भाल ले। हिन्दू-मुसलमान से मिलकर प्रेम कर कहीं ऐसा न हो कि तुझे देर हो जाए और तेरा (जीवन रूपी) सूर्य अस्त हो जाए।

के था चवनि "सूफु", के था चवनि "सेबु"।
इन में कहिड़ो ऐबु फलु मिड़ियोई हेकिड़ो॥

सचल साहब कहते हैं कि एक ही फल को कुछ लोग सूफ़ (ऐपिल) कहते हैं तो कुछ सेब कहते हैं; तो इसमें किसी तरह भी बुराई नहीं मानी जाती है। (फिर क्या कारण है कि परमात्मा को अलग-अलग नामों से पुकारने पर लोग एक दूसरे से लड़ते-झगड़ते हैं? (तात्पर्य यह कि परमात्मा एक है; उसे ही कोई राम के नाम से पुकारते हैं तो कोई रहीम के नाम से पुकारता है। इसमें किसी तरह की बुराई नहीं है इसलिए इस पर लड़ना मूर्खता ही है।)

सिरु ड्रिएं तूं सिरु ड्रिएं, जे इश्क़ु में थो सिर ड्रिएं।
थियनि वड्रा तालिअ तोई जा, जानि जिस्म खूं जे ड्रिएं।
थो उमिरि नाहक विञाइं, ग़ैर जे ख्यालात में।
मुहब भी तोखे मञिनि, जे नींह जीं बाज़ी निएं।
महवु करि ब्री ग़ाल्हि कुली, मूड़ म चढ़ु मैदान ते।
जीअं चवां थो, सा मञिजि, ही इश्क़ु बुधु आहे इएं।
ग़ाल्हि करण एं थियण में, आहे तफ़ावतु ता वड्रो।
हाल साँ हमेशगीअ जे, पुरि इहो प्यालो पिएं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मौतु मोटी ना पुछे, तुहिंजे इहा घर जी गली।
"क़ब्लू मूतु" खूं पुज़ाणा, नी वरी जानी जिएं।
ब्रियो मुबदल करि सभोई, ख्याल पड़ तोहीद जे।
जीअं कयो मन्सूरशह, ता आखिरीं तू करि तिएं॥

(ऐ मानव) यदि तू प्रेम में अपना सिर उत्सर्ग कर देता है, यदि अपने को महबूब पर न्यौछावर कर देता है, तो विश्व में भाग्यशाली माना जायेगा।

(ऐ मानव) तू ब्यर्थ ही अपना जीवन ग़ैर (पराये) के विचारों में खो रहा है। यदि तू स्नेह की बाज़ी जीत लेगा, तो प्रियतम (परमात्मा) भी तेरी दाद देगा अर्थात् प्रशंसा करेगा।

(ऐ आशिक़) तू (संसार रूपी) मैदान पर चढ़ने की बात ही ख़त्म कर दे, क्योंकि यह इश्क़ ऐसा अनोखा है कि जैसे मैं तुझसे कहता हूँ वैसा ही कर (अन्यथा तू इसे प्राप्त नहीं कर सकेगा); बात करने और होने में बड़ा अन्तर है। यदि तू सदैव इस (प्रेम रूपी) मस्ती का प्याला लबालब भर कर पियेगा, तो मौत तेरे घर की गली में आकर तेरे बारे में फिर नहीं कुछ पूछेगी (अर्थात् तू मौत से मुक्त हो जायगा।) जब तू मौत के आने से पहले ही अपने को मार देगा (अपनी ख़ुदी को मिटा देगा) तब ही सदैव ज़िन्दा रह सकेगा। तू तो सब कुछ भूल जा, केवल एक परमात्मा के ही विचारों में डूब जा। जिस तरह से शाह मन्सूर ने किया था, तू भी आखिर में वही कर।

मन्सूर—मन्सूर एक सूफ़ी सन्त थे, जिन्हें अनाअल्हक़ (अहं ब्रह्म अस्मि अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूं) के नारे लगाने के कारण शूली पर चढ़ाया गया)। कहते हैं कि अन्त तक वे यही नारा लगाते रहे; उनके शरीर से जो ख़ून निकला, उससे पृथ्वी पर "अनाअल्हक़" शब्द का चित्र चित्रित होता रहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

' प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी ।

सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ।। '

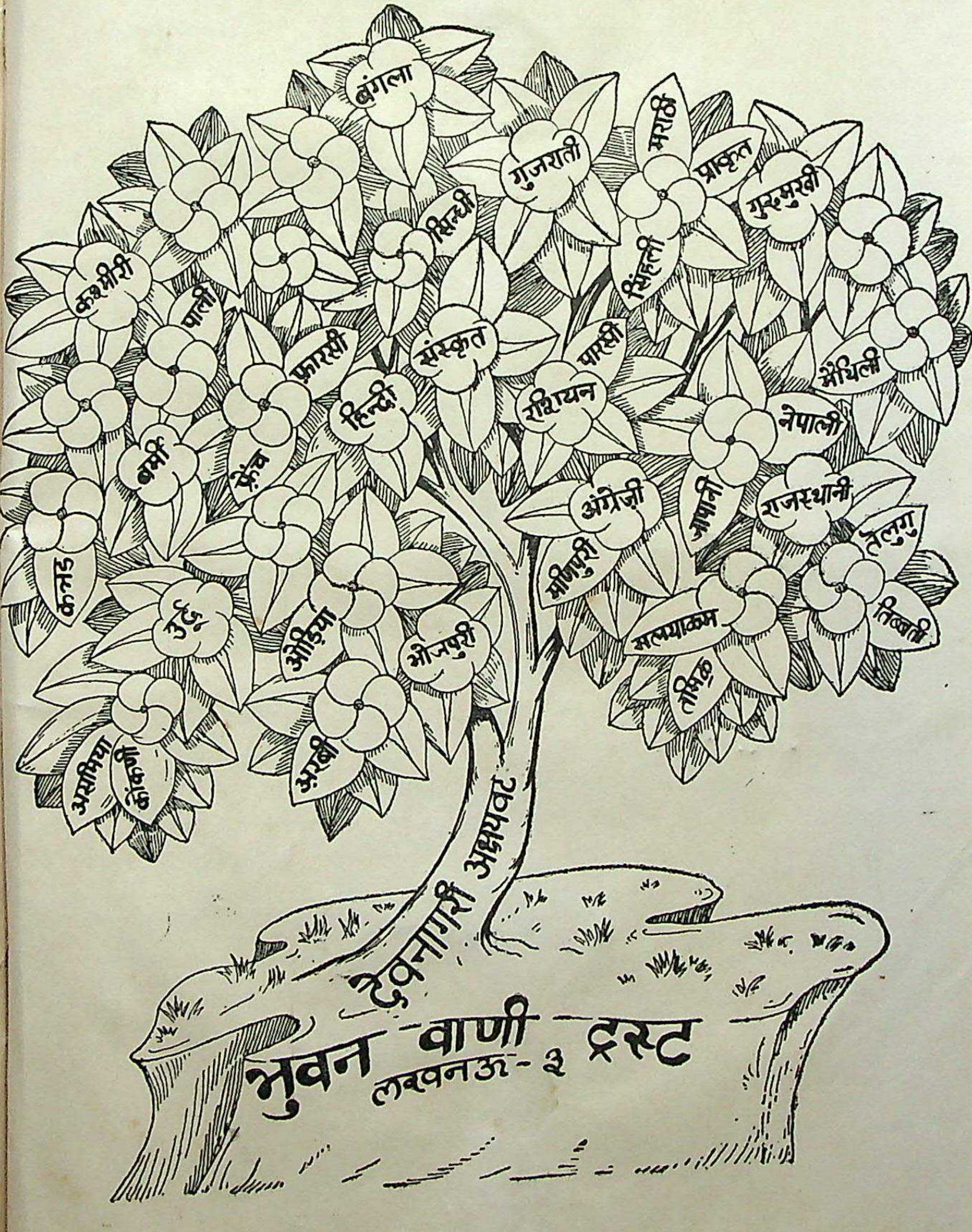

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ताज़ी विज्ञप्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकाशित हो चुके हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण ग्रन्थः—

१ गुजराती—गिरधर रामायण (रचनाकाल-१८३५ ई०) हिन्दी अनुवाद, नागरी लिप्यन्तरण पृष्ठ संख्या १४६० मूल्य ६०·००

२ ,, प्रेमानन्द रसामृत— ना० लिप्य० हिन्दी अनुवाद पृ० संख्या ४९६ मूल्य ३५·००

३ मलयाळम—अध्यात्म रामायण (एळुत्तच्छन् कृत) १५वीं शती हिन्दी अनुवाद, नागरी लिप्यन्तरण पृ०सं० ७५२ मू० ४०·००

४ ,, —महाभारत-एळुत्तच्छन्(१५वीं शती) पृ० १२१६ मू०६०·००

५ बंगला— कृत्तिवास रामायण (पाँचकाण्ड)—१५वीं शती। हिन्दी पद्या० सहित नागरी लिप्य० पृ० ६२४ मू० २५·००

६ ,, कृत्तिवास लंकाकाण्ड— ,, गद्यानुवाद पृ० ४८८ मू० २५·००

७ ,, ,, उत्तरकाण्ड ,, ,, मूल्य २५·००

८ कश्मीरी—रामावतारचरित-प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत पृ०४८९ मू०२०·००

९ ,, लल्द्यद—(नागरी) हिन्दी गद्य संस्कृत पद्यानु० पृ०१२० ,, १०·००

१० राजस्थानी—रुक्मिणी मंगल पदमभगत कृत। पृ० ३०० मू० १५·००

११ तमिळ— तिरुक्कुरळ्-तिरुवळ्ळुवर कृत। २००० वर्ष से अधिक प्राचीन; नागरी लिप्यन्तरण, गद्य-पद्य हिन्दी अनुवाद, पृ०३५२ मू०२०·००

१२ ,, कम्ब रामायण बालकाण्ड(९वीं शती) पृ०६५२ मूल्य ४०·००

१३ ,, ,, अयोध्या-अरण्य पृष्ठ १०२४ मूल्य ७०·००

१४ ,, ,, किष्किन्धा-सुन्दर ,, १०१६ मूल्य ७०·००

१५ ,, ,, युद्धकाण्ड पूर्वार्ध ,, १०१६ मूल्य ७०·००

१६ ,, ,, ,, उत्तरार्ध ,, ८४० मूल्य ७०·००

१७ कन्नड— रामचन्द्रचरित पुराणं, अभिनव पम्प विरचित (जैन-मतानुसार रामचरित्र ११वीं शती) पृ० ६९० मूल्य ४०·००

१८ तेलुगु— मोल्ल रामायण (१४वीं शती) पृ० ४०० मूल्य २०·००

१९ ,, रंगनाथ रामायण (१३वीं शती) अनु. पृ. १३३५ मू० ६०·००

२० ,, श्री पोतन्न महाभागवतमु १-४ स्कन्धपृ० ८५६ मूल्य ७०·००

२१ ,, ,, ,, ५-९ ,, मूल्य ७०·००

२२ ,, ,, ,, १०-१२ स्कन्ध मूल्य ७०·००

२३ मराठी—श्रीरामविजय-श्रीधरकृत(१७वीं शती) पृ० १२२८ मू०६०·००

२४ ,, श्रीहरि-विजय (श्रीधर कृत) पृष्ठ १००४ मू० ७०·००

२५ फ़ारसी—सिर्रे अक्बर(दाराशिकोह कृत उपनिषद-व्या०) २८० मू०२०·००

२६ उर्दू— शरीफ़ज़ादः (मिर्ज़ा रुस्वा कृत) पृ० १३६ मूल्य ८·००

२७ ,, गुज़श्तः लखनऊ (मौ० शरर) पृ० ३१६ मूल्य २०·००

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

२८ गुरमुखी—श्री
२९ ,,
३० ,,
३१ ,,
३२ ,, श्री
३३ ,,
३४ ,,
३५ ,,
३६ ,, श्री
कृत
३७ ,, सु
३८ सिन्धी— सा
३९ नेपाली—भा
४० असमिया—म
४१ ओड़िआ—बैदे
४२ ,, तु
औ
४३ संस्कृत—मान
संस्कृ
४४ ,, अद्

प्रचारित प्रकाशन

४५ अरबी क़ुर्आन

४६ ,, ,, के
४७ ,, ,,
४८ ,, क़ोरा
४९ ,, जादे
५० ,, तफ़्सी
अरबी
अब्दुल
वृहत्
५१ बहुभाषाई—

प्रा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हो चुके हैं (सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण):—

१—(बंगला) कृत्तिवासरामायण-पाँचकांड नागरी लिप्य०, अवधी पद्यानुवाद मूल्य २५·००
२—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लका काण्ड ,, गद्यानुवाद ,, १५·००
३—(मलयाळम) अेळुत्तच्छन्‌कृत महाभारत हिन्दी अनु० नागरी लिपि० ,, ४०·००
४—(,,) ,, अध्यात्मरामायण, उत्तररामायण ,, ,, ४०·००
५—(कश्मीरी) रामावतारचरित—प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत ,, ,, २०·००
६—(,,) ललद्यद—हिन्दी, सस्कृत अनुवाद सहित ,, ७·००
७—बाइबिल सार (सालोमन के नीतिवचन) सस्कृत उद्धरणयुक्त ,, १·००
८—(उर्दू) श्री 'रुस्वा' कृत शरीफ़ज़ाद: (आर्यपुत्र) नागरी लिपि में ,, ५·००
९—(गुरमुखी) जपुजी तथा सुखमनी साहब—गुरमुखी मूल पाठ तथा ख्वाज: दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानु०—दोनों देवनागरी लिपि में—मूल्य ५·००
१०—(फ़ारसी) सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर) की फ़ारसीव्याख्या हिन्दी में— ,, २०·००
११—(अरबी) रियाज़ुस्सालिहीन जादे सफ़र (इस्लामी हदीस) प्र० खण्ड ,, १२·००
१२—(तमिळ) तिरुक्कुरळ् नागरी में मूल, हिन्दी गद्य-पद्यानुवाद— ,, २०·००
१३—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर कृत, हिन्दी अनुवाद सहित ,, ४५·००
१४—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत सानुवाद ,, २०·००
१५—(तेलुगु) मोल्ल रामायण सानुवाद लिप्यन्तरण ,, २०·००
१६—(,,) रंगनाथ रामायण ,, ,, ,, ६०·००
१७—(कन्नड) रामचन्द्र चरित पुराणं—जैनसाहित्य (अभिनव पम्प नागचन्द्रकृत) ,, ४०·००
१८—(राजस्थानी) रुक्मिणीमंगल—पदम भगत कृत ,, १५·००
१९—(गुजराती) गिरधर रामायण हिन्दी अनुवाद सहित (नागरी लिपि.) ,, ६०·००
२०—(रामचरितमानस) ओड़िया लिपि में लिप्यन्तरण एवं ओड़िया गद्य-पद्यानुवाद ,, ५०·००
२१—(सिंधी) स्वामी, शाह, सचल की त्रिवेणी ,, २०·००
२२—(वाणी सरोवर)—उपर्युक्त अनुपम ग्रंथों का सानुवाद धारावाहिक देवनागरी लिप्यन्तरण का त्रैमासिक पत्र—वार्षिक ,, १०·००

इस के अतिरिक्त, सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण के अन्य कार्य, जो अन्यत्र हो चुके हैं:—

२१—(अरबी) कुर्आन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित— मूल्य ४०·००
२२—(,,) क़ोरानिक कोश क़ुर्आन के पठनक्रम से शब्दार्थ ,, १०·००

ट्रस्ट में प्रकाशित हो रहे सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण ग्रन्थ (यन्त्रस्थ):—

१—(तमिळ) कम्ब रामायण २—(तेलुगु) पोतन्न भागवतमु
३—(असमिया) माधवकंदली रामायण ४—(बंगला) कृत्तिवास उत्तरकाण्ड
५—(हिब्रू) बाइबिल ओल्ड टेस्टामेण्ट हिन्दी अनु० सहित हिब्रू तथा अंग्रेजी मूल नागरी
६—(ग्रीक) ,, निउ ,, ,, ,, ,, ग्रीक ,, ,, लिपि में
७—(गुरमुखी) श्रीगुरुग्रंथ साहब ८—(ओड़िआ) बैदेहीशबिळास—उपेन्द्र भञ्जकृत
९—(मराठी) श्रीहरि-विजय—श्रीधर कृत मूलपाठ हिन्दी अनुवाद सहित
१०— ,, संत एकनाथ भावार्थ रामायण ११—(कोंकणी) ख्रीस्त पुराण
१२—(गुजराती) प्रेमानन्द भजनमाला १३—(उर्दू) गुज़श्त: लखनऊ—मौ० शरर
१४—(,,) आखा १५—(फ़ारसी) दाराशिकोह कृत ५० उपनिषद (द्वि० खण्ड)
१६—(अरबी हदीस)—(जादे सफ़र) द्वि० खण्ड १७—(अरबी) बुखारी शरीफ़
१८—रामचरितमानस (तुलसी)—संस्कृत पद्यानुवाद सहित